हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जनवरी, १९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जनवरी, १९३९

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)— एक प्रति १)

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ६ } जनवरी, १६३६ { अंक १

भाषा का सवाल

[लेखक—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (आक्सन)]

हिंदुस्तानी हमारे देस की सब बोलियों में सब से जियादा बोली और समझी जाती है। यह कहना गलत न होगा कि यह हिंदुस्तान के आधे रहने वालों की जबान है। पंजाब, राजपूताना, दिल्ली, आगरा, अवध, बिहार और महाकोसल में तो हिंदुस्तानी या इस से बहुत मिलती-जुलती बोलियां बच्चे अपनी माओं से सीखते हैं, लेकिन इन सूबों से बाहर हर एक बड़े शहर में इस के बोलने वाले मिलते हैं, और इस के समझने वालों की गिनती तो और भी बड़ी है।

हिंदुस्तानी कोई मनघड़त नई भाषा नहीं है। यह वही खड़ी बोली है जिसे दिल्ली और मेरठ के आस-पास के रहने वाले बहुत पुराने वक़्तों से बोलते चले आते हैं। इस के चारों तरफ़ और और बोलियां बोली जाती थीं। उत्तर में पंजाबी और लँहदा, पच्छिम में राजस्थानी, पूरब में ब्रजभाषा, और उस के आगे अवधी, भोजपुरी, मगही, वग़ैरा। जिस ज़माने में राजपूतों के बंस हिंदुस्तान में राज करते थे इन बोलियों का रिवाज बढ़ रहा था। पहले-पहल राजस्थानी का सितारा चमका, और बड़े-बड़े कवियों ने उस में कविताएं लिखीं। जब मुसलमानों ने हिंदुस्तान फ़तह किया और दिल्ली को राजधानी बनाया तो हिंदुस्तानी की क़िस्मत पलटी। दिल्ली की अनजान बोली हिंदुस्तान के हाकिमों के जबान

पर चढ़ी। यह इसे अपने साथ गुजरात और दकन ले गए। लश्करों, बाजारों और खानकाहों में इसी की धुन सुनाई पड़ने लगी। सिपाही, दूकानदार और सूफ़ी दरवेश इसी में बात-चीत करने लगे। जब इस में धर्म का प्रचार और शहर का कारोबार चलने लगा तो यह राजदरबारों में पहुँची, और दकन के सुलतानों के हाथों परवान चढ़ी। किस्से, कहानियां, ग़ज़लें, क़सीदे, मरसिये, मजहबी नज़्में सभी कुछ हिंदुस्तानी में लिखा जाने लगा। चारों तरफ़ इस का डंका बजा, तो दिल्ली वालों को भी अपनी भूली-बिसरी भाषा की सुध आई और मुगल बादशाहों और उन के दरबारियों ने बड़े चाव से इस की आवभगत की।

अब हिंदुस्तानी की दिन-दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी हुई। पर दिल्ली में आ कर मुगल दरबार की छटा में इस का रंग बदला। बादशाह, अमीर, और आलिम फ़ारसी या तुर्की बोलते थे। उन के कान हिंदुस्तानी की आवाजों से आश्ना न थे, और उन की जबानों से इस के लफ़्जों का ठीक-ठीक अदा होना कठिन था। उन्हों ने दकन में बनी हिंदुस्तानी की काट-छाँट शुरू की, और उसे फ़ारसी से मिलाने में कोई कसर न छोड़ी।

इस बीच में उत्तरी हिंदुस्तान में राजस्थानी की जगह ब्रजभाषा और अवधी ने ली। सूर, तुलसी, बिहारी, रहीम जैसे महाकवियों ने इन बोलियों को धरती से आसमान पर पहुँचाया, और इन के खजानों को अनमोल रत्नों से भर दिया। अठारवीं सदी के अंत तक यह हालत रही कि ब्रज और अवधी जैसी भाषाओं में एक तरफ़, और फ़ारसी मिली हिंदुस्तानी या उर्दू में दूसरी तरफ़, कविता होती रही। फ़ारसी दरबार और कचहरी की और अरबी, फ़ारसी, या संस्कृत मदरसों और पाठशालाओं की जबान बनी रही।

जब अठारवीं सदी हिंदुस्तान से बिदा ले रही थी, तो अंग्रेजों का देस पर क़ब्ज़ा हुआ। यह कैसे हो सकता था कि अंग्रेज फ़ारसी को सरकारी जबान मान लेते? उन्हों ने फ़ारसी को सिंहासन से उतार अंग्रेजी को इस की जगह बिठाया। अरबी, फ़ारसी और संस्कृत को पुराने ढर्रों पर चलने वालों के लिए छोड़ हिंदुस्तानी से नई पौध के पढ़ाने-लिखाने का काम लेने का इरादा किया। इस में कठिनाई यह थी कि उर्दू, ब्रज और अवधी में कविता तो बहुत थी, पर पढ़ाई की किताबें कम। फ़ोर्ट विलियम कालिज के प्रिंसिपल जान गिल-क्राइस्ट ने इस कमी को इस तरह पूरा किया कि हिंदुस्तान से मीर अम्मन, अफ़सोस, हैदरी, काज़िम अली जवां, विलो जैसे उर्दू के अच्छे-अच्छे लिखने वालों को कलकत्ते में बुलवाया और उन से नस्र में किताबें लिखवाईं। इन्हों ने पुरानी किताबों को सामने रख 'बाग़ोबहार',

आराइश महफिल तोता कहानी बारहमासा बतालपचीसी वगैरा लिखी हिंदुओं के लिए लल्लू जी लाल सदल मिश्र बनी नारायण वगैरा को हुक्म मिला कि नस्र (गद्य) की किताबें तैयार करें। इन्हें और भी जियादा मुश्किलों का सामना करना पड़ा। अदब या साहित्य की भाषा तो ब्रज थी, लेकिन इस मे गद्य या नस्र नाम के लिए ही था। क्या करते, उन्हों ने यह रास्ता निकाला कि मीर अम्मन, अफ़सोस वगैरह की ज़बान को अपनाया, पर इस में से फ़ारसी अरबी के लफ़्ज छाँट दिए, और सस्कृत और हिंदी के रख दिए, और 'प्रेमसागर', 'नासिकेतोपाख्यान' जैसी पोथिया तैयार की।

इस तरह दस बरस से भी कम की मुद्दत में दो नई ज़बानें असली गहवारे से सैकड़ो कोस की दूरी पर, बिदेसियों के इशारे से बन-सँवर रंग-मंच पर आ खड़ी हुई। दोनो की सूरत-मूरत एक थी, क्योंकि दोनो एक ही मां की बेटी थी। पर दोनों के सिंगार, कपडे, और जेवर में कुछ फ़र्क़ था, और दोनों के मुखड़े कुछ एक-दूसरे से फिरे हुए थे। इस जरा सी बेरुखी ने देस को दुविधा मे डाल दिया, और उस दिन से आज तक हम अलग-अलग दो राहों पर भटक रहे है।

सौ बरस गुज़र गए। हमारे जीवन के आकाश में आँधियाँ आईं, बादल गरजे, बिजलियां चमकीं। हिंदुस्तान को बलाओं का सामना करना पड़ा, मुसीबतें झेलनी पडी। गरीबी, भूख, बीमारी, जहालत के दुखों से कुढ़ना पड़ा। आख़िर इस डरावनी रात के गहरे सन्नाटे में देस ने करवट बदली। कौम की आत्मा जागी। मुद्दतों के बिछुड़ों में मिलने की ख़ाहिश हुई। जी की सूनी बस्ती को आबाद करने का ख़याल उपजा। दिल्ली में गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ने, बेबसी और लाचारी की हथकड़ियों को काटने का हौसला उठा। कुछ मनचले दूर देखने वालों ने अब देखा हिंदुस्तान हमारा घर है। इस में बहुत से कुनबे रहते हैं। इन में अभी तक आपस में अनमनापन है, कही-कही बैर है। जरूरत इस बात की है कि सब कुनबों को मिला कर एक बड़ा खानदान बनाएं। सब को एक छत्र की छाया मे इकट्ठा करें।

कुनबों की अपनी-अपनी चाल है, बोलियां हैं। यह सब अच्छी है। यह बढ़ें, फले-फूले। पर सारे खानदान की एक बोली होनी चाहिए, जिस में सब एक-दूसरे के साथ बात-चीत कर सकें, अपने दिलों का हाल बता सकें। भाषाओं की खोज करने वालों का कहना है कि भाव ही से आदमी की बोली का जन्म हुआ है। आदमी के दिल को प्रेम ने

बदल हमारी हिंदुस्तानी बोली में नहीं। हिंदी के लिखने वाले संस्कृत से और उर्दू के लिखने वाले इन के लिए अरबी से लफ्ज उधार ले रहे हैं, और नतीजा यह है कि हिंदी उर्दू में इतना फासला बढ़ रहा है कि एक के लिए दूसरे की बात समझना कठिन है। अगर रवैया यही रहा तो स्कूलों, कालिजों, यूनिवर्सिटियों, सभाओं, समाजों, दफ्तरों, कचहरियों में ऐसी दोरंगी फैलेगी कि सारा काम चौपट हो जायगा। क्योंकि जब तक देसी भाषा नीचे दर्जों में पढ़ाई का जरिया है, और बाक़ी काम अंग्रेजी से निकलता है, तब तक तो झगड़ा कम है, लेकिन जहां इस ने अंग्रेजी की जगह लेनी शुरू की और ऊँची तालीम और कानूनी बहसों का काम उठाया, वहीं संस्कृत भरी हिंदी और अरबी भरी उर्दू के पुजारियों में गुत्थमगुत्था शुरू हुई। इस का नतीजा अच्छा नहीं। यह देस को ऐसी भयानक कशमकश में फँसा देगा कि जिस से छुटकारा पाना नामुमकिन है।

इस दुखदाई झगड़े को मिटाने का एक ही उपाय है। हिंदी और उर्दू के लिखने वाले उन खास लफ्जों के लिए, जिन्हें पारिभाषिक शब्द या इस्तलाहें कहते हैं, एक ही लफ्ज़ मान लें। हिसाब, साइंस, फ़लसफ़ा, कला की किताबों में दोनो ज़बानों में चाहे वह नागरी लिपि में छपें, चाहे अरबी हरफ़ो में यह ख़ास लफ़्ज एक ही हों। बच्चो और नौजवानों, लड़कों और लड़कियों की पढ़ाई के लिए विद्याओं की परिभाषाएं एक ही होनी ज़रूरी है। यों हिंदी-उर्दू का क़जिया बहुत हद तक मिट जायगा, और आइंदा के समझौते की राह निकल आयेगी। अब रही अदब की जबान, शेर-शायरी, कविता-कहानी, नाविल-क़िस्से, तारीख़-इतिहास वग़ैरह की ज़बान, तो मेरी राय में इस में पूरी आजादी होनी चाहिए, जो चाहें जिस ढंग में लिखे। सभी जबानों में लिखने के कितने ही ढंग होते है। अंग्रेजी को लीजिए। कोई लिखने वाला ऐंग्लो सैक्सन लफ़्ज़ पसंद करता है तो कोई लैटिन। कोई आसान इबारत लिखता है, जो ज़ियादा से ज़ियादा आदमियों की समझ मे आ जाती है, और कोई कठिन जिसे इने-गिने ही सराहते हैं। इस तरह हमारी भाषा मे भी लिखने वालों की कई पाँतें हो जायगी। एक में वह होगे जो फ़ारसी की तरफ़ झुकते हैं, दूसरी मे वह जो संस्कृत का सहारा लेते हैं, और तीसरी में वह जो बीच की राह चलते है। इस ज़बान को उर्दू कहिए या हिंदी या हिंदुस्तानी, असल चीज़ एक ही है।

मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि इल्म और अदब, विद्या और साहित्य को एक ही लाठी से नही हाँकना चाहिए। इल्म या विद्या के खास लफ़्ज दुनिया भर में बनावटी

और मनमाने होते हैं हिंदी और उर्दू में भी ऐसा ही है नागरी प्रचारिणी सभा और अंजुमने उर्दू की डिक्शनरियां इस की गवाह हैं। लेकिन सवाल यह है कि इस की क्या जरूरत है कि एक हिंदुस्तान के लिए दो तरह की डिक्शनरियां हों। हम देखते हैं कि जर्मन और फ़रांसीसी एक-दूसरे के जानी दुश्मन हैं मगर उन की जबानों में इस्तलाहें या परिभाषाएं एक हैं। यही नहीं, सारे यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और यूरोप की नौआबादियों में दुनिया भर में एक इस्तलाहें हैं।

मेरी समझ में परिभाषाओं की बहुतायत हिंदुस्तान के लिए अच्छी नहीं। इस से हमारी कठिनाइयां बढ़ेंगी। मैं तो यह चाहता हूं कि हिंदुस्तान की सभी जबानों—बंगला, मराठी, गुजराती, तामिल, तैलगू—में एक ही इस्तलाहें हों। ताकि पढ़े-लिखों, साइंस-दानों और खोज करने वालों को एक-दूसरे की इल्मी बातें समझने में आसानी हो। उर्दू और हिंदी में तो ऐसा होना बहुत ही जरूरी है। इस्तलाहों की एकसानियत के बिना हमारा तो काम चल ही नहीं सकता।

इस में शक नहीं कि इल्म और अदब, विद्या और साहित्य में गहरा संबंध है, और विद्या की भाषा का साहित्य की भाषा पर लाजमी असर पड़ता है। इस लिए अगर हम न विद्याओं की परिभाषाएं हिंदी और उर्दू में एक-सा कर दीं तो आगे चल कर यह नतीजा होगा कि इन के साहित्यों की जबान भी एक-सी हो जायगी। मेरी राय में यह नतीजा किसी तरह बुरा नहीं।

कुछ लोगों को जरूर यह डर है कि उर्दू हिंदी के मेल से एक खिचड़ी भाषा पैदा होगी जो साहित्य या अदब के लायक नहीं हो सकती। यह सरासर भूल है। भाषाएं तो सभी खिचड़ी हैं, किसी में बाहरी लफ़्ज ज़ियादा हैं किसी में कम। मिसाल के तौर पर संस्कृत को लीजिए। इसे बहुत शुद्ध भाषा माना जाता है, लेकिन सच यह है कि संस्कृत में अनार्य लफ़्ज भरे हैं। अरबी का भी ऐसा हाल है। इस ने न जाने कितने यूनानी, फ़ारसी, इब्रानी लफ़्ज ले लिए, और आज कल न जाने कितने फ़्रांसीसी, अंग्रेजी लफ़्ज ले रही है। ब्रज और अवधी में बहुतेरे अरबी, फ़ारसी, द्रविड़, मुंडा, शब्द घुसे हैं। उर्दू तो है ही खिचड़ी। हिंदी भी कितनी ही भाषाओं के लफ़्जों को अपनाए बैठी है। दूसरी जबानों के लफ़्जों से कोई जबान बिगड़ती नहीं, धनवान होती है, बलवान होती है। उधार लिए शब्दों को निकाल डालें तो जबानें फीकी, कमजोर और नंगी हो जायें। साहित्य में भद्दा-

पन जब ही आता है, जब लिखन वाला अनमिल, बेजोड़ लफ़्ज़ो को मिलाता है। मेल वही कानों को अच्छा लगता है, जिस में लफ़्ज़ों की आवाज़ों मे जोड़ हो, आवाजों से ऐसे सुर निकले जो लिखने वाले के मतलब और मानों की तरफ़ इशारा करें, लफ़्ज भाव-भरे जँचे-तुले और साफ़ समझ मे आने वाले हों। जो लोग अपनी लियाक़त जताने के लिए मोटे-मोटे अनजान लफ़्ज़ लिखते हैं, वह साहित्य को ज़ियादा भद्दा बनाते है, वह नही जो रोज-मर्रा के जाने-पहचाने लफ़्ज़ों को इस्तेमाल करते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी है जो हिंदी को संस्कृत से और उर्दू को अरबी के साथ-साथ गूँथ देना चाहते है। उन के निकट लफ़्ज़ों का सवाल सभ्यता या तहज़ीब का सवाल है। वह समझते हैं कि हिंदू तहज़ीब के लिए संस्कृत और मुस्लिम सभ्यता के लिए अरबी मे डूबी हुई भाषा होनी निहायत ज़रूरी है। मेरी राय में यह बडी नादानी की बात है। इस मे पहली भूल तो यह है कि तहजीव को जबान और लफ़्ज से मिला दिया है। तहज़ीब की असलियत भाव और विचार है, वह भाव जिन मे आदमी अपने जीवन का अर्थ समझते है, जो उन्हें सुख के रास्ते और आनंद की मंजिल का पता देते है, वह विचार जिन की चौडी और मजबूत नीव पर समाज का ऊँचा महल खड़ा होता है। भाव और विचार वह असली सोना है, जिस की साख पर लफ़्ज़ों और ज़बानो के काग़जी नोट और नुमाइशी सिक्के चलते है। लफ़्ज़ों की महत्ता को बढ़ाना सोने को छोड, ठाप पर जी लगाना है।

दूसरी भूल यह है कि यह लोग तहज़ीब को अटल और अमर समझते हैं। लेकिन तारीख़ हमे बताती है कि कोई सभ्यता सदा एकसां नहीं रहती। आदमियों के विचार बराबर बदलते रहते हैं, समाज की बनावट और इस के मेंबरों के आपस के रिश्ते कभी एक ढग पर क़ायम नहीं रहते। सौ बरस से हिंदुस्तान के जीवन में जो उथल-पुथल हो रही है, उसे कौन नहीं जानता। पुरानी विद्याओं की जगह यूरोप की नई साइंसें ले रही है। पुराने कारोबार, धंधे और हिरफ़े मिट गए। नई मिले, कले, और व्योहार जारी हो रहे है। पुराने ज़ात, बिरादरी, क़बीले, फ़िरक्के जिन से आदमियों के रिश्ते बँधे थे टूट रहे है, नए सगठन और नई जमायतें बन रही हैं। हमें न पुराने राजों की नीति भाती है, न सुल-तानी, न बादशाहत। हमे प्रजा-राज और स्वराज की चाह सताती है। हमारे दिलो से फिर्क़ेबंदी दूर हो रही है और उस की जगह कौम की मुहब्बत ले रही है। हमारे खाने-पीने रहने-सहने, उठने-बैठने के ढंग कुछ से कुछ हो रहे है। हमारी कलाएं, विद्याएं, साइंस

फलसफा पुरानी लकीरों का दौर खत्म हो गया और ताजा के साथ कदम आगे बढ़ा रहे हैं। हमारी जिंदगी में इन्कलाब है। लेकिन अब भी यह लोग पुरानी तहजीब की नशीली नींद से उठना नहीं चाहते।

पर यह लोग उठें या न उठें। हमें हिंदुस्तान के बिखरे मोतियों को एक माला में गूंथना है। पैंतीस करोड़ टुकड़ों को जोड़ कर एक ऐसा जबरदस्त संगठन बनाना है जिसे दुनिया की कोई ताकत हिला न सके। हमारा दिल उस दिन की राह देख रहा है जब हिंदुस्तान भर में एक समाज, एक कौम होगी, बैर की निर्मली गाँठें टूट जायेंगी, और सब हिंदुस्तानी एक देश-प्रेम के नाते में बंधे होंगे। हिंदुस्तानी उसी एकता की जीती-जागती बोलती निशानी है।[1]

---

[1] दिल्ली रेडियो स्टेशन से दिया हुआ भाषण।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

[लेखक—श्रीरामचंद्र टंडन, एम्०ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की मृत्यु[१] द्वारा हिंदी साहित्य ने अपना एक महारथी खो दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं उत्पन्न हुआ था जिस ने हिंदी जगत पर, विविध दिशाओं मे इतना प्रभाव डाला हो। यह सच है कि आचार्य द्विवेदी मे रचनात्मक प्रतिभा उच्च कोटि की नहीं थी। फिर भी उन में एक सुदृढ़ व्यावहारिक बुद्धि थी, और था हिंदी के लिए उत्कट प्रेम, और इन गुणों ने मिल कर उन के व्यक्तित्व को बड़ा बल दिया था। यहां तक कि लगभग बीस वर्षो तक, जिस बीच उन का 'सरस्वती' पत्रिका से सक्रिय संबंध रहा, हिंदी संसार उन का लोहा मानता रहा, और यह काल उचित रूप से ही, हिंदी साहित्य के इतिहास मे 'द्विवेदी युग' कहलाया। इस बात से विशेष सांत्वना नही मिल सकती कि वह परिपक्व अवस्था मे दिवंगत हुए, अथवा वह अवकाश ग्रहण करके बहुत दिनों से अपने गाँव में रहते हुए समय-यापन कर रहे थे। क्योंकि अपने अंतिम समय तक वह हिंदी साहित्य की उन्नति मे दिलचस्पी लेते रहे, और साहित्य-सृजन की जो नींव उन्हों ने डाली थी, उस पर एक विशाल भवन का निर्माण होते देख कर उन्हे बड़ी प्रसन्नता होती थी। आचार्य द्विवदी वास्तव में आधुनिक हिंदी के निर्माताओं में एक गौरव का स्थान रखते थे। आज का शायद ही कोई बयस्क हिंदी लेखक हो, जिस ने किसी न किसी समय आचार्य द्विवेदी से प्रभाव न ग्रहण किया हो। आचार्य एक धुन के पक्के साहित्य-सेवी थे, और उन का भाषा तथा साहित्य-प्रेम गहरा ही नहीं वरन् विवेक-पूर्ण था।

---

[१] २१ दिसम्बर, १९३८

(४)

द्विवेदी जी का जन्म रायबरेली (अवध) के दौलतपुर नाम के गंगा-तटस्थ गाँव में सन् १८६४ में हुआ था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि उन के जन्म के आध घंटे के भीतर, किसी ज्योतिषी ने, जो वहाँ पर उपस्थित था, इन की जिह्वा पर सरस्वती का बीजमंत्र अंकित किया। यह संस्कार एक प्रकार से लाक्षणिक सिद्ध हुआ, क्योंकि यह कहा जा सकता है कि सरस्वती ने उन पर विशेष रूप से कृपा की।

अपने गाँव के खेतों और आम के बागों से आचार्य द्विवेदी को बड़ा ममत्व था। उसी वातावरण में बालक महावीरप्रसाद खेल-कूद कर बड़े हुए और अपने गाँव के मदरसे में ही उर्दू-फ़ारसी से उन्हों ने विद्यारम्भ किया। घर पर पुरानी परिपाटी से 'शीघ्रबोध' से आरंभ कर के थोड़ा-सा संस्कृत का अभ्यास किया। अपने आरंभिक जीवन के संबंध में आचार्य द्विवेदी ने बड़ी सरलता से यह लिखा था—

"मैं एक ऐसे देहाती का आत्मज हूँ, जिस का मासिक वेतन १०) था। अपने गाँव के देहाती मदरसे में थोड़ी-सी उर्दू और घर पर थोड़ी संस्कृत पढ़ कर १३ वर्ष की उम्र में मैं ३६ मील दूर, रायबरेली के जिला स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने गया। आटा-दाल घर से पीठ पर लाद कर ले जाता था। दो आने महीना फ़ीस देता। दाल ही में आटे के पेड़े या टिकियाएँ पका कर पेटपूजा करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था। .. एक वर्ष किसी तरह वहाँ कटा। फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुंबिक दुरवस्था के कारण मैं उस से आगे नहीं पढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।"

उन दिनों किसी देहाती बालक के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा रखना एक साहस की बात थी, और जिस परिश्रम से, कठिनाइयों का सामना करते हुए, द्विवेदी जी ने इस के लिए प्रयत्न किया, वह उन के दृढ़ व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। जिस समय उन की स्कूली शिक्षा का यह क्रम टूटा, द्विवेदी जी की अवस्था केवल १७ वर्ष की थी। सच बात तो यह है कि द्विवेदी जी ने जो ज्ञानोपार्जन किया, निजी अध्यवसाय से। वह शिक्षा जो उन्हों ने अपने आप को दी, स्कूली शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् थी।

(३)

एक साल अजमेर में १५) पर नौकरी करके पंडित महावीरप्रसाद पिता के पास

बंबई पहुँचे, और तार का काम सीख कर जी० आई० पी० रेलवे में २०) महीने पर तार बाबू बने। तार-बाबू हो कर भी उन्हों ने टिकट-बाबू, माल-बाबू, स्टेशन-मास्टर, यहा तक कि रेल की पटरियां बिछाने और उस की सड़क की निगरानी करने वाले तक का काम सीख लिया। फल अच्छा ही हुआ, उन की तरक़्क़ी होती गई। अवकाश के समय का भी उन्हों ने अच्छा उपयोग किया। बंबई में रहते हुए उन्हों ने मराठी और गुजराती भाषा का अच्छा ज्ञान कर लिया। अपनी अंग्रेज़ी की योग्यता भी बढ़ाई। उन्हें अपने काम के सिल-सिले में हरदा, खँडवा, होशंगाबाद और इटारसी भी रहना पड़ा। अपने काम से इन्हो ने अफसरों को प्रसन्न किया। इंडियन मिडलैंड रेलवे (जो अब नहीं रही है) के ट्रैफ़िक मैने-जर कोई मिस्टर डब्ल्यू० बी० राइट थे। वह द्विवेदी जी से इतने खुश हुए कि उन्हें तार का इन्सपेक्टर बना दिया, और झाँसी में उन की नियुक्ति कर दी। इस पद पर भी द्विवेदी जी ने योग्यता दिखाई। उन्हो ने तार के लिए एक नए 'लाइन क्लिअर' की ईजाद की, और अंग्रेज़ी में तार-विद्या सीखने वालो के लिए एक गाइड-बुक भी तैयार की। झाँसी में रहते हुए उन्हों ने अपने अवकाश का और भी उपयोग किया। यहां कुछ बंगाली बाबू रहा करते थे, जो उन्ही के दफ़्तर में काम करते थे। उन की सहायता से द्विवेदी जी ने बँगला का भी अच्छा अभ्यास कर लिया। इस प्रकार से भारतीय भाषाओं का उन का ज्ञान बढ़ता ही रहा। कुछ लिखने का भी शौक़ हो गया था। सरस्वती की सेवा में जैसा इन का मन लगता था, और धंधों मे नहीं, और यद्यपि नौकरी में इन की तरक़्क़ी होती गई, और आगे के लिए भी उम्मीद थी, वह नौकरी से ऊब से रहे थे। इसी बीच उन्हें एक बहाना भी मिल गया। कहा जाता है कि किसी ट्रैफ़िक सुपरिंटेंडेंट ने इन के साथ रुखाई का व्यवहार किया। उन्हों ने नौकरी से तुरंत इस्तीफ़ा दे दिया और अपनी बीस साल की नौकरी छोड़ दी। उन्हो ने अपने इस कार्य पर कभी खेद न प्रकट किया। उन के इस कार्य ने, उन के जीवन को तो एक नई प्रवृत्ति दी ही, हिंदी-जगत का जो इस से उपकार हुआ, वह बहुत बड़ा है, और ऐसा है जो कभी भुलाया नहीं जा सकता।

(४)

सन् १९०३ में, ४० वर्ष की अवस्था में, जब आचार्य द्विवेदी हिंदी साहित्य की सेवा की ओर प्रवृत्त हुए तब वह कोई नौसिखिए न थे। इस क्षेत्र में अन्य काम करने वालों की

अपेक्षा उन की कल्पना विस्तृत थी। मराठी, गुजराती और बंगला भाषाओं की उन के कार्य में बड़ी सहायक हुई। इन भाषाओं के साहित्य की प्रगति से परिचित होने हुए, उन्हें इस बात की उत्कट इच्छा हुई कि हिंदी इन में से किसी से भी पीछे न रहे, बल्कि सब से आगे उन्नति के क्षेत्र में निकल जाय। यह स्वप्न आप ही नहीं देख रहे थे। पहले से भी वह तत्कालीन प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने लगे थे, विशेष कर 'हिंदोस्थान', 'भारत-मित्र', 'हिंदी बंगवासी', 'रसिकवाटिका', और 'सरस्वती' में। इन्हों ने संस्कृत रचनाएं भी की थीं, जो 'संस्कृत-चंद्रिका' में निकली थीं।

'सरस्वती' को इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिंतामणि घोष ने सन् १९०० में निकाला था। उस समय यह नागरी-प्रचारिणी सभा के निरीक्षण में, और सभा के ही कतिपय सदस्यों के संपादकत्व में प्रकाशित होती थी। बाबू चिंतामणि घोष की परख और दूरदर्शिता ने ही उन्हें पत्रिका का भार पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी को सौंपने के लिए प्रेरित किया। जिस समय द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का संपादकत्व स्वीकार किया उस की ग्राहक-संख्या गिर रही थी। इसे उन्हों ने सँभाला। 'सरस्वती' के नए संपादक और संचालक का आपस में कैसे परिचय हुआ, इस की कहानी रोचक है। कुछ वर्ष पहले बाबू चिंतामणि घोष ने हिंदी की कुछ रीडरें प्रकाशित की थीं। वह द्विवेदी जी के हाथों में पड़ीं तो द्विवेदी जी ने तीखी और कड़ी समालोचना कर के उन की खूब खबर ली। इस समालोचना से चिंतामणि बाबू अप्रसन्न न हुए। वरन् उन्हों ने द्विवेदी जी को यथार्थ रूप में पहचाना। द्विवेदी जी से उन्हों ने नई रीडरें तैयार कराईं, और अब जब अवसर आया तो 'सरस्वती' का संपादन-भार उन्हें सौंप दिया। संचालक महोदय ने द्विवेदी जी पर पूरा भरोसा किया, और द्विवेदी जी ने उन के इस विश्वास को पूरी तरह से निबाहा।

(५)

वह बीस वर्ष, जिन में आचार्य द्विवेदी का 'सरस्वती' से संपादक के रूप में संबंध रहा आधुनिक हिंदी-साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। यह पत्रिका अन्य सामयिक पत्रिकाओं के लिए आदर्श-रूप रही। अनेक हिंदी लेखकों की यह चरम लालसा रहती थी कि उन के लेख इस पत्रिका के पृष्ठों में स्थान पा सकें। यह प्रतिष्ठा 'सरस्वती' को सहज में न प्राप्त हुई थी। इस के लिए उस के संपादक को बहुत प्रयत्नशील होना पड़ा था। आचार्य

द्विवेदी 'सरस्वती' को न केवल हिंदी की सब से प्रतिष्ठित पत्रिका बनाना चाहते थे, वरन् अन्य भारतीय भाषाओं की सम्मानित पत्रिकाओं में उसे उचित स्थान दिलाना चाहते थे। अन्य भारतीय भाषाओं, तथा संस्कृत, फ़ारसी, और अंग्रेज़ी की जानकारी के कारण वह विषयों का सुंदर चयन कर पाते थे। चुने हुए विषयों पर वह ख़ास तौर से लेख लिखवाते, और जहा तक भाषा का प्रश्न था, वह यह चाहते थे कि हिंदी गद्य ऐसा रूप धारण करे कि वह आधुनिक विचारों को जनता तक सुगमता से पहुँचा सके।

यह कहना अनुचित न होगा कि हिंदी-भाषी जनता को अच्छी कोटि की साधारण शिक्षा दे सकने के उद्देश्य को 'सरस्वती' ने अपनाया, और काल और परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जायगा कि इस प्रकार की शिक्षा प्रस्तुत करने में जैसा यह पत्रिका समर्थ हुई वैसे अन्य कोई साधन न हुए। संपादक के रूप में आचार्य द्विवेदी ने कुछ मंतव्य निर्धारित कर लिए थे, और इन से वह टलते न थे। उन की सफलता का रहस्य इस बात में निहित है कि न केवल उन्हें इस बात का ज्ञान था कि उन के पाठक क्या चाहते हैं, वरन् वह यह भी जानते थे कि पाठकों के लिए क्या वस्तुतः श्रेयस्कर होगा। प्रत्येक विषय पर---पक्ष मे हो अथवा विपक्ष मे---वह तीव्र और दृढ़ सम्मति रखते थे। फिर भी वह निष्पक्ष थे। उन की निष्पक्षता इस बात में थी कि उन्हें कोई निजी इष्ट साधन करना न होता। उन के संपादन-काल में कितने ही साहित्यिक विवाद उठे। इन में उन्हों ने उत्साह से भाग लिया। जिस पक्ष पर उन की आस्था रही, उस के दृढ़ समर्थन से वह कभी विचलित न हुए, और ऐसा शायद ही हुआ हो कि उन्हें नीचा देखना पड़ा हो। वह बनावटीपन के कट्टर दुश्मन थे। स्वयं स्पष्टवादी थे, और स्पष्टवादिता के गुण का औरों में आदर करते थे। वह कड़ा आघात कर सकते थे, परंतु इस का विचार बराबर रखते थे कि न्याय की सीमाओं का उल्लंघन न हो।

आचार्य द्विवेदी की सेवाओं में, एक मूल्यवान् सेवा यह रही है कि उन्हों ने लेखकों का एक दल उत्पन्न किया; कितनों को लिखना सिखाया या लिखने के प्रति प्रोत्साहित किया। उन्हों ने यह अनुभव किया कि हिंदी में नवीन विचार उन्हीं लोगों के उद्योग से आ सकते हैं, जिन्हों ने उच्च शिक्षा प्राप्त की हो। इस शिक्षा का माध्यम अब भी अधिकांश अंग्रेज़ी है, और उस समय तो विशेष रूप से वही था। आचार्य द्विवेदी ने यह भी देखा कि उच्च शिक्षा प्राप्त हिंदुस्तानियों का, हिंदी के प्रति अधिकांश अन्यमनस्कता और उपेक्षा

का भाव है। आग्रह और आलोचना दोनों ही ढंग से उन्हों ने अधिकाधिक पढ़े लिखों की रुचि हिंदी की ओर फेरने का प्रयत्न किया। उन के लेखों को बहुत कुछ सुधार कर वह उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्साहित करते; उन्हें बराबर परामर्श भी देते, और उन से पत्र-व्यवहार द्वारा संपर्क बनाए रखते। जिस समय आचार्य ने अपनी संपादकीय लेखनी अलग रक्खी, उस समय वह उचित रूप से इस बात का गर्व कर सकते थे कि उन्हों ने अपने श्रम, और अध्यवसाय से अपनी भाषा को उन्नत और शक्तिशाली बना कर और भी उन्नति के पथ पर अग्रसर किया है। इस का श्रेय उन्हें थोड़ा नहीं मिलना चाहिए।

(६)

आचार्य द्विवेदी ने अपने संपादकीय कर्तव्य का इस तत्परता और लगन से निर्वाह किया कि उन्हें रचनात्मक साहित्यिक कार्यों के लिए अवकाश न मिला। फिर भी गद्य और पद्य दोनों में ही, उन्हों ने जो रचनाएं प्रकाशित कीं, यह देखते हुए कि वह आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माण-काल की वस्तु हैं, एक ऊंचे दर्जे की हैं। सब से पहले उन्हों ने कदाचित् पद्य-रचनाएं ही प्रकाशित कीं। उन की प्रारंभिक कविताएं पुरानी परंपरा और शैली के अनुसार ब्रजभाषा में हैं। कुछ संस्कृत में भी हैं। परंतु शीघ्र ही उन्हों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि गद्य और पद्य की भाषाएं अलग-अलग रास्तों पर नहीं चल सकतीं; और अगर हिंदी को दौड़ में पिछड़ना नहीं है, तो उसे पद्य की भाषा को ब्रजभाषा से बदल कर खड़ी बोली करना होगा। ज्यों ही यह विचार उन के मन में दृढ़ हो गया, फिर तो आचार्य द्विवेदी ने अपनी पूर्ण शक्ति से खड़ी बोली की कविता का समर्थन किया। 'सरस्वती' में खड़ी बोली की कविताओं को ही अधिकतर स्थान मिलता। ब्रजभाषा या अन्य हिंदी की बोलियों को भूले-भटके ही स्थान मिला हो। 'सरस्वती' की इस नीति का उस काल घोर विरोध भी हुआ था। 'ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली' का विवाद वर्षों तक चला है। अंत में द्विवेदी जी के ही पक्ष ने बल पकड़ा, क्योंकि वही स्वाभाविक था। आज भी इने-गिने ब्रजभाषा के समर्थक मिलेंगे। लेकिन खड़ी बोली की प्रधानता को अब किसी तरह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उस की पूर्ण-रूप से विजय हुई।

आचार्य द्विवेदी की कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'काव्य-मंजूषा' और 'सुमन'। उन की कुछ कविताएं अन्य कवियों की रचनाओं के साथ 'कविता-कलाप' में भी

संग्रहीत हुई हैं। हमें यह न भुलाना चाहिए कि यह कविताएं वास्तव में प्रयोगात्मक हैं खड़ी बोली की भाषा सुथरी नहीं हो पाई है। बीच-बीच में ब्रजभाषा का रूप रखने वाले शब्द आ गए हैं। न भाषा इतनी प्रांजल और समर्थ हो पाई है कि कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान प्रकट कर सके। फिर भी यह प्रारंभिक प्रयास इतने सफल अवश्य रहे कि औरों के लिए, जिन के पास कविता के अभ्यास के लिए अधिक समय था, मार्ग-प्रदर्शन कर सके। और फल यह हुआ कि अनेक हिंदी कवि खड़ी बोली का माध्यम अपने विचारों और कल्पनाओं को प्रकट करने के लिए ग्रहण करने लगे। 'कुमारसंभवसार' में आचार्य द्विवेदी ने कालिदास के इसी नाम के महाकाव्य के पाँच सर्गों का संक्षेप प्रस्तुत किया है। इस में उन की खड़ी बोली में विशेष प्रवाह है। कविता के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी के प्रयास का मूल्य इस बात में है कि उन्हों ने खड़ी बोली कविता को प्रचार दिया और साथ ही उस का नैतिक समर्थन किया। हम लोग उन कवियों के नामों से खूब परिचित हैं जिन्हों ने खड़ी बोली कविता के विकास में साहाय्य दिया। यह कहना अनुचित न होगा कि इन में से अधिकांश ऐसे हैं जिन्हों ने सब से पहले अपनी प्रेरणा आचार्य द्विवेदी द्वारा ही प्राप्त की थी।

(७)

आचार्य द्विवेदी ने गद्य में जो ग्रंथ प्रकाशित किए उन में से अधिकांश या तो अनुवाद हैं, या अन्य भाषाओं की पुस्तकों का आश्रय ग्रहण कर के लिखे गए हैं। मिल की 'लिबर्टी', स्पेंसर के 'एडूकेशन' तथा बेकन के निबंधों के सफल अनुवाद उन्हों ने 'स्वाधीनता', 'शिक्षा' और 'बेकन-विचार-रत्नावली' शीर्षक निकाले। इन से पता चला कि आचार्य अंग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथों के अनुवाद की क्षमता रखते थे। उन का "संपत्ति-शास्त्र" जो आधुनिक अर्थ-शास्त्र का विषय ले कर एक अंग्रेज़ी ग्रंथ के आधार पर लिखी हुई रचना है, अपने विषय पर हिंदी में पहली पुस्तक है। उन का लिखा हुआ 'महाभारत' एक बँगला ग्रंथ के आधार पर प्रस्तुत हुआ है और इस का प्रचार अच्छा हुआ है। उन की अन्य पुस्तकों में कालिदास के 'रघुवंश' का गद्यानुवाद, 'चरित्रचित्रण', 'भामिनी-विलास' का भाषानुवाद, 'नैषधचरितचर्चा', 'हिंदी कालिदास', 'नाट्यशास्त्र', 'विक्रमांकदेवचरितचर्चा', 'कालिदास की निरकुशता', 'हिंदी भाषा की उत्पत्ति', 'जल-चिकित्सा' आदि हैं।' 'जल-चिकित्सा' में आचार्य के अपने प्रयोगों और अनुभवों का वर्णन

इन के अतिरिक्त कुछ और भी संग्रह ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जिन में कि आचार्य के 'सरस्वती' में समय-समय पर छपे हुए लेख और टिप्पणियां एकत्र की गई हैं। 'विचार-विमर्श', 'रसज्ञ-रंजन', 'प्राचीन पंडित और कवि', 'अद्भुत आलाप', 'साहित्य-संदर्भ', 'आध्यात्मिकी', 'प्राचीन चिह्न', 'समालोचना-समुच्चय', 'साहित्य-सीकर' का इन में विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जहां तक इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी है, आचार्य द्विवेदी के बहुत से निबंध, जो विभिन्न वाद-विवादों के संबंध में लिखे गए थे, पुस्तक-रूप में नहीं आ सके हैं। वास्तव में द्विवेदी जी की शैली का चमत्कार इन्हीं में दिखाई पड़ता है, और उन की शैली के यह सब से अच्छे नमूनों के रूप में पेश किए जा सकते हैं। इन का संकलन आवश्यक है, इन में तर्कों और युक्तियों के विस्तार के साथ हम द्विवेदी जी के व्यंग्यों का भी आस्वादन पावेंगे। आचार्य द्विवेदी की संपूर्ण कृतियों के एक संगृहीत संस्करण की बड़ी आवश्यकता है।

आचार्य द्विवेदी की दिलचस्पी अनेक विषयों में थी, जैसा कि 'सरस्वती' से उद्धृत लेखों के शीर्षकों से ज्ञात हो सकता है, लेकिन उन के विशेष प्रिय विषय संस्कृत साहित्य तथा भारतीय पुरातत्व थे, और इन पर हम उन के लेख बहुधा पावेंगे। परन्तु समालोचक के रूप में उन का जो कार्य है उसे हम सब से अधिक स्मरण रक्खेंगे। आचार्य द्विवेदी ने, अपने समय में, आलोचना की शैली को एक नया रूप प्रदान करने में जितना प्रयत्न किया उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं। इसे उन्हों ने रूढ़ियों और परंपरा के गर्त से उबारा। यह सत्य है कि आचार्य द्विवेदी सदा स्वयं पुराने प्रभावों से मुक्त नहीं जान पड़ते। फिर भी समालोचना के क्षेत्र में उन्हों ने नवीन मार्ग प्रदर्शन किया और जिस मार्ग पर इसे उन्हों ने चलाया, उस मार्ग पर यह प्रायः चल रही है।

यदि हम आचार्य द्विवेदी को एक शैलीकार की दृष्टि से देखते हैं तो हम उन्हें ऊंचे आसन का अधिकारी पाते हैं। यह अक्सर कहा गया है कि आचार्य द्विवेदी की कोई एक शैली नहीं थी, वरन् कई शैलियां थीं। वस्तुतः आचार्य जी की शैली स्वयं विकास पाती रही है, इस लिए उस में किन्हीं अंशों में हम समता का अभाव पाते हैं। लेकिन उस की प्रगति आरंभ से ही स्पष्ट और लक्षित रही है। वह शब्दाडंबर से घृणा करते थे। भाषा के विषय में वह 'विशुद्धता' के हामी न थे। वह निरंतर उसे सरल बनाने के प्रयत्नशील रहे, जिस से वह अधिक से अधिक लोगों की समझ में आ सके। यदि उन की शैली में

कोई विषमताएं मिलेंगी, तो उस का कारण यह है कि उन्हों ने विभिन्न विषयों पर लेखनी चलाई है, और विषयों के साथ ही भाषा की शैली थोड़ी-बहुत बदलेगी ही। परंतु जान-बूझ कर उन्हों ने अपने विषय को क्लिष्ट बनाने का प्रयत्न किया, ऐसा उन के संबंध में नहीं कहा जा सकता। उन की शैली का अनुकरण करने वाले बहुत उपजे, और यह कहना गलत न होगा कि किसी न किसी अंश में उस का समस्त समसामयिक लेखकों पर प्रभाव पड़ा।

(८)

आचार्य द्विवेदी की साहित्यिक सेवाएं विविध और विभिन्न रही हैं, परंतु अंततः उन की ख्याति 'सरस्वती' के संपादक के रूप में रहेगी। हम ने देखा है कि किस प्रकार, तीस वर्षों तक, अपने लेखों और मतों द्वारा उन्हों ने हिंदी साहित्य-संसार पर प्रभाव डाला है। लेकिन यह बात कुछ पीछे पड़ जाती है कि उन का बहुत-सा समय और लोगों की रचनाओं को सुधार कर छापने योग्य बनाने में लग गया है। नागरी-प्रचारिणी सभा बनारस में सुरक्षित उन के बहुत से काग़ज-पत्रों से इस का हम कुछ अनुमान कर सकेंगे। आज दिन एक हिंदी पत्रिका के संपादक के पास इतने लेख आते हैं कि वह बहुतों को अस्वीकृत कर सकता है। उस समय लेखकों को उत्पन्न करने का प्रश्न था। आचार्य द्विवेदी के पास जो लेख आते, उन में अधिकांश कट-छँट सुधर कर ऐसा रूप ग्रहण कर लेते कि लेखकों को स्वय आश्चर्य होता और इस से बड़ी शिक्षा ग्रहण करते। इसी से द्विवेदी जी का आचार्यत्व सार्थक होता है। फिर भी इस काम में जितना समय लग जाता वह तो, जैसा बता चुके हैं उन के रचनात्मक कार्य में बाधक होता। अतएव 'सरस्वती' के उन के संपादकत्व में निकले अकों को ही हम उन का सब से अच्छा स्मारक समझ सकते है। यदि आचार्य द्विवेदी के अनेक विचार और मंतव्य आज स्वभावतः स्वीकृत दिखाई देते है, तो हमें ऐसा न ख़याल कर लेना चाहिए कि उन को मान्य बनाने के कार्य में उन्हें कठिन उद्योग नही करना पड़ा। लेकिन अब उन के बहुत से विचार ऐसे मान्य हो गए है कि उन के विषय में संशयात्मक प्रश्न नहीं उठते। हिंदी साहित्य आज बहुत उन्नत और जागरूक है। उसे इस परिस्थिति पर पहुँचाने में, यदि किसी एक व्यक्ति का हाथ, अन्य लोगों के साहाय्य की अपेक्षा अधिक है, तो हमें कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करना चाहिए कि वह व्यक्ति आचार्य द्विवेदी है। उन के वर्षों के निरंतर और कठिन श्रम का फल है कि हिंदी साहित्य आज इतना जागृत है।

(६)

ओझा जी के व्यक्तित्व के विषय में क्या कहा जाय? इस संबंध में अन्य लोग जो उन के संपर्क में रहे हैं, कहने के विशेष अधिकारी हैं। वह सीधे-सादे हिंदू गृहस्थ और सच्चे ब्राह्मण थे। उन का आजन्म विद्या-प्रेम, उन की अत्यंत विनम्रता, उन का संतोष— यह ऐसे गुण हैं जिन की प्रशंसा उचित ही है, और जिन्हों ने उन्हें उन सभी लोगों की दृष्टि में आदर का पात्र बनाया जो उन के संपर्क में आए। वह बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। अपने जीवन के अंतिम तीस वर्षों में वह विधुर रहे। उन की ४६ वर्ष की अवस्था में उन की धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया था। शेष जीवन भर उन्हों ने अपनी पत्नी की स्मृति की पवित्रता से रक्षा की और एक मंदिर बनवा कर उन की प्रतिमा की स्थापना की। उन की दिनचर्या बड़ी नियमित थी; अंत तक स्वाध्याय में बहुत-सा समय लगाते रहे। उन्हें बाग लगाने का शौक था और आम के कई बाग़ उन्हों ने लगाए। खेती का भी शौक था। मजदूरों को उन्हों ने कुटुंबियों के समान जाना। उन के अंतिम दिन ग्राम-सुधार में व्यतीत हुए। अपने गाँव की पंचायत के वह सरपंच रहे, और गाँव में शिक्षा-प्रचार का काम भी उन्हों ने बड़ी लगन से किया। स्वयं बड़े मितव्यय से रहते; लेकिन अपनी संपूर्ण शक्ति भर वह दान-धर्म करते रहते।

स्वभाव के वह अत्यंत सरल थे। यद्यपि वह तीव्र आलोचना करने में कभी भी न हिचकते, परंतु अपने मन में तनिक भी मालिन्य दूसरे आदमी के प्रति न रखते। वह एक मात्रा में विनोदी भी थे। लोभ उन्हें छू नहीं गया था। अपनी कमाई का बहुत-सा धन उन्हों ने हिंदू विश्व-विद्यालय को दान कर दिया था। अपना बड़ा और सुंदर पुस्तकालय उन्हों ने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दिया था। साथ ही उन्हों ने अपने बहुत से कागज़ पत्र भी सभा को प्रदान किए थे। कुछ ऐसे भी पत्र उन में हैं जिन के संबंध में कहा जाता है कि उन का आदेश था कि उन की मृत्यु के अनंतर ही खुलें। प्रतिष्ठा के भूखे वह कभी नहीं थे। कई यूनिवर्सिटियों की ओर से उन्हें डाक्टर की उपाधि प्रदान करने की चर्चा उठी, लेकिन वह इस के प्रति विरक्त रहे। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने सभापतित्व प्रदान कर के उन्हें सम्मानित करना चाहा, परंतु उन्हों ने अपनी असमर्थता प्रदर्शित कर दी। इसी प्रकार हिंदुस्तानी एकेडेमी की फेलोशिप भी उन्हों ने न चाही। केवल नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से उन्हों ने अपने ७० वें जन्मदिवस के अवसर पर सन् १९३३ में एक

अभिनदन-ग्रथ स्वीकार किया उसी वष इलाहाबाद में उन के नाम पर एक साहित्यिक मेला हुआ जो कि अपने ढंग का पहला समारोह था। इलाहाबाद से जो उन का घनिष्ट संबंध रहा था, उसे देखते हुए उन्हों ने इस मेले मे सम्मिलित होना स्वीकार किया। यह बात सत्य है कि उन का कार्य समाप्त हो चुका था; लेकिन उन की उपस्थिति सभी हिंदी साहित्यसंबंधी नए उद्योगों के लिए आशीर्वाद-रूप थी।

हिंदी साहित्य के इतिहास में उन का नाम उस के निर्माताओं के रूप में अमिट रहेगा।

यूरोप में विदेशी, विशेष कर भारतीय भाषाओं की शिक्षा

[लेखक—डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्०ए०, डी०लिट्० (पेरिस)]

आरंभ में ही यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जिन परिस्थितियों में हिंदी, अथवा किसी भी विदेशी भाषा—चाहे वह यूरोपीय भाषा क्यों न हो—की शिक्षा यूरोप के किसी देश में दी जाती है वह उन परिस्थितियों से बिल्कुल भिन्न है, जिन से हम भारतीय अपने देश में परिचित हैं।

सदा किसी विशेष उद्देश्य से ही कोई सरकार एक विदेशी भाषा की शिक्षा का प्रबंध करेगी। जिस उद्देश्य अथवा जिन उद्देश्यों से यूरोपीय सरकारों ने अपने-अपने देशों में भारतीय भाषाओं की शिक्षा का प्रबंध संचालित किया उन्हें ठीक-ठीक जान लेना आवश्यक है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में, जब यूरोपीय जातियां, मुख्यतया व्यापारिक संबंध के कारण भारतवर्ष से संपर्क में आईं, तब उन्हें कुछ ऐसे दुभाषियों की आवश्यकता हुई जो उन के धंधों में सहायता दे सकें। अतएव उस समय भारतीय भाषाओं के अध्ययन और शिक्षा का विशेष-रूप से संगठन करने की आवश्यकता न हुई। यह बात भी थी कि समकालीन जीवित भारतीय भाषाओं का अध्ययन भाषा-शास्त्र और साहित्य की दृष्टि से बहुत महत्व का न समझा जाता था। अठारहवीं शताब्दी के अंत में हमारे देश की सब से प्राचीन भाषा संस्कृत से यूरोपीयों का परिचय हुआ। इस से यूरोपीय विद्वानों की आँखे खुल गई। इस में उन्हें स्वयं अपनी भाषाओं का प्राचीन इतिहास प्रतिबिंबित जान पड़ा। इस अति प्राचीन भारतीय भाषा के साहित्य ने उन के अपने सांस्कृतिक इतिहास के प्राक्-ऐतिहासिक युग पर नया प्रकाश डाला। यह इतिहास उन्हों ने समझ रक्खा था कि सदा के लिए लुप्त हो गया है। यूरोप के एक प्रख्यात संस्कृतज्ञ के शब्दों में "संस्कृत का अध्ययन एक स्थायी आकर्षण इस लिए रखता था कि भारत की इस प्राचीन भाषा का घनिष्ट संबंध

यूरोप की पुरानी (क्लासिकल) भाषाओं में प्रमाणित हुआ, और इस से भाषा के इतिहास के लिए सामान्यतः नई निधि एवं सामग्री प्राप्त हुई। यदि न विद्वानों के एक बड़े वर्ग का ध्यान आर्यों और उन की जातियों पर होता, यदि इस प्राचीन साहित्यिक अवशेष द्वारा अधिकांश प्रमुख प्राचीन जातियों के अंधकार-पूर्ण युगों पर अभावात्मक प्रकाश न पड़ा होता।[1]

क्रमशः यूरोपीय राष्ट्रों में से एक, अर्थात् ब्रिटेन का हिंदुस्तान से गहरा राजनैतिक संबंध हो गया, और अब व्यापारिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त उसे नई नीति के निर्धारण में, शासन-क्षेत्र में, और ईसाई धर्म-प्रचार के कार्य में भी उद्योग करना पड़ा। अतएव अंग्रेजों में से कुछ के लिए संस्कृत का ज्ञान उपार्जन तथा अभ्यास करना व्यावहारिक दृष्टि से बहुत आवश्यक हो गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि उस समय तक हिंदुस्तानियों में अंग्रेजी जानने वाले संस्कृत के विद्वान् नहीं उत्पन्न हुए थे। उपर्युक्त विचार के समर्थन में एक उद्धरण मनोरंजक होगा। यह उद्धरण 'कास्ट' या वर्णधर्म शीर्षक निबंध से लिया गया है, जो कि जर्मन संस्कृतज्ञ मैक्समूलर ने १८५८ में लिखा था। चूंकि उस समय कोई बड़ा संस्कृत का विद्वान् इंग्लिस्तान में मौजूद न था, इस लिए अंग्रेजों ने जर्मन विद्वान् मैक्स-मूलर की सहायता ली। सायणाचार्य की टीका सहित ऋग्वेद के पहले छपे संस्करण के प्रकाशन के लिए हिंदू 'मोक्षमूलर' के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने में नहीं थकते। उस बृहत्कार्य के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने धन दिया था। कंपनी बहादुर और उस के जर्मन कर्मचारी ने जो इस संबंध में अद्भुत दिलचस्पी दिखाई उस का रहस्य कदाचित् बहुत से हिंदुस्तानियों को न ज्ञात हो। उस बृहद् ग्रंथ का संपादक मैक्समूलर स्वयं इस प्रकार लिखता है—

"मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ करने में, और इधर हाल में पादरियों के साथ विवाद करने में भी, ब्राह्मण लोग दबाए जाने पर निरपवाद रूप से वेद का प्रमाण देते। मनुस्मृति और अन्य स्मृतियां छप चुकी थीं और उन के अनुवाद भी हो चुके थे। उन के कुछ पुराणों के अनुवाद भी अंग्रेजी और फ़ारसी में हो चुके थे। इन के संबंध में पादरी उन से अध्याय और श्लोक के हवाले मांग सकते थे। परन्तु वेद दोनों पक्षों के लिए अज्ञात थे और ब्राह्मणों का यह आग्रह था, जिसे कि पादरियों को मानना पड़ता, कि वेदों में वह सब

---

[1] मैक्समूलर, 'ऋग्वेद संहिता की भूमिका', जिल्द २ (१८५६)

कुछ है जो दूसरी जगह नहीं है। पुरानी इंजील की कोई भी ऐसी आज्ञा न थी जो ब्राह्मणों के अनुसार वेदों में न मिल जावे ईसाइयों के कोई ऐसे सिद्धांत न थे जिन्हें वेदों ने पहले से ही न वर्णित किया है। यदि पादरी इसे विश्वास न करके वेदों की हस्तलिखित प्रतियां देखना चाहते, तो उन से कह दिया जाता कि यह पवित्र पुस्तकें हैं और नास्तिकों को नहीं दिखाई जा सकतीं। बात यहीं पर समाप्त हो जाती।

"इस परिस्थिति में यह अनुभव किया गया कि वेद के एक संस्करण से ही पादरियों को सब से अधिक सहायता मिल सकती है। संस्कृत का जो कोई विद्वान् इस पुस्तक का संपादन करे उस के लिए पुरस्कार की विज्ञप्ति हुई, परंतु प्रथम खंड के अनंतर जिस का कि संपादन डाक्टर रोजेन ने १८३८ में किया था, यह कार्य अग्रसर न हो सका। ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों ने, जो पादरियों की सभी न्याय्य रीतियों से सहायता करने के लिए सदा तत्पर रहते थे, ऐशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की मारफ़त पंडितों को निमंत्रित किया, कि वह इस कार्य को उठावें और अपनी पवित्र पुस्तकों का एक संपूर्ण और प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करें। उन के उत्तरों से यह सिद्ध हुआ, जो पहले से ही ज्ञात था, कि समस्त बंगाल में एक भी ऐसा ब्राह्मण नहीं है जो वेद का संपादन कर सके। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी, वेद अब इस देश में ईस्ट इंडिया कंपनी के संरक्षण में प्रकाशित हो रहा है। पादरियों ने अभी ही वेद के इस संस्करण और उस के भाष्य से बहुत सहायता प्राप्त की है और बराबर भिन्न धर्म-प्रचारक सोसाइटियों से मूल ग्रंथ तथा उस के अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए प्रार्थना-पत्र आ रहे हैं। यद्यपि ब्राह्मणों ने अपने पवित्र ग्रंथों का एक म्लेच्छ द्वारा प्रकाशन पसंद नहीं किया; फिर भी वह इतने ईमानदार हैं कि इसे स्वीकार करते हैं कि संस्करण प्रामाणिक और पूर्ण है।"[1]

संस्कृत का अध्ययन हिंदुस्तान के शासन-कार्य में किस प्रकार सहायक हो सकता था, यह बात उस लेख को साद्यंत पढ़ने से स्पष्ट हो जायगी, जिस से कि उपर्युक्त उद्धरण लिया गया है। यहां पर उदाहरण के लिए केवल एक बात लिखना पर्याप्त होगा। तथा-कथित भारतीय विद्रोह (१८५७) का एक कारण सिपाहियों की वर्णव्यवस्था में हस्तक्षेप कहा जाता है। अतएव ब्रिटिश शासक भारतीय वर्णव्यवस्था का इतिहास जानने के लिए

---

[1] 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप', जिल्द २, पृ० ३०९–३११

उत्सुक थे, जिस से भविष्य में वह ... में, जिस का लगाव इस प्रश्न से हो, उचित नीति ग्रहण कर सकें। यह लेख सन् १८५८ में लिखा गया और अंग्रेजी सरकार के कहने पर इंग्लिस्तान के संस्कृतज्ञों की जिज्ञासा का परिणाम है। म्योर साहब के 'संस्कृत पाठ' की एक जिल्द भी इसी दिशा में शोध का एक दूसरा परिणाम है। संस्कृत मूलपाठों के फलस्वरूप, मैक्समूलर के, ब्रिटिश और ईसाई हितों की दृष्टि से निकाले गए निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

"वर्तमान परिस्थिति में, यदि सरकार यह घोषित कर दे कि वह वर्ण-व्यवस्था को हिंदू धर्म का अंग नहीं मानती तो उस का कार्य पूर्णतया न्याय्य होगा। वर्ण-व्यवस्था, जैसा कि उस का आधुनिक अर्थ लगाया जाता है, एक धार्मिक संस्था नहीं है। ब्राह्मणों के पवित्र ग्रंथों में इस का कोई प्रमाण नहीं मिलता, और हिंदुस्तान के निवासियों के धर्म का आदर करने के लिए सरकार ने जो भी वचन दे रक्खा हो, वह इस बात से भंग न होगा कि वह वर्ण-व्यवस्था के पालन पर लोगों को दंड दे। यह बात भिन्न होगी कि ऐसा कार्य उचित या नीतियुक्त भी है। क्योंकि यद्यपि वर्ण-व्यवस्था एक धार्मिक संस्था नहीं है, फिर भी यह एक सामाजिक संस्था है और देश के विधान पर आश्रित है। यह शताब्दियों से विकास पाती रही है और समस्त हिंदू समाज इसी के ढाँचे में ढला हुआ है। इन कारणों से वर्ण-व्यवस्था के प्रश्न को अधिक सतर्कता से देखना पड़ेगा। ठीक तो यह है कि इस प्रश्न पर स्वतन्त्र-रूप से विचार किया जाय और धर्म-विषयक तर्क इस में मिला कर विषय को और भी उलझाया न जाय। यदि वर्ण-व्यवस्था को हिंदुस्तान में माना जाता है तो दोनों पक्षों को यह स्पष्ट रूप से समझ-बूझ लेना चाहिए कि ऐसा धार्मिक आधार पर नहीं किया जाता। यदि वर्ण-व्यवस्था को दबाया जाता है तो यह कार्य नीति और पुलिस के आधार पर होना चाहिए।"[१]

मैक्समूलर की पादरियों के प्रति सलाह इस से भिन्न है—"पादरियों को उतनी उग्रता का व्यवहार करने पर विवश न होना चाहिए। उन का, देश के निवासियों से, विशेष कर उन लोगों से जिन्हों ने उन का (ईसाई) मत स्वीकार कर लिया है, संबंध व्यक्तिगत है। उन की बहुत कुछ सफलता देशवासियों के विश्वासों के प्रति समझदारी से काम लेने

[१] मैक्समूलर, 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप', जिल्द २, पृ० ३२२–२३

मे है।"[1] उसी लेख में एक दूसरे स्थल पर लेखक कहता है—"वर्णव्यवस्था जो अब तक हिंदुओं में (ईसाई) धर्म-प्रचार के काम में बाधक रही है, भविष्य में इस प्रचार के पक्ष में न केवल व्यक्तियों के वरन् भारतीय समाज के पूरे वर्गों के मत-परिवर्तन में प्रबल साधन बन सकती है।"

संक्षेप में ऊपर बताए गए विभिन्न उद्देश्यों से यूरोपीय विद्वान् और सरकारें, विशेष कर ब्रिटिश विद्वान् और सरकार, प्राचीन भारतीय भाषाओं, साहित्यों और सांस्कृतिक संस्थाओं के अध्ययन में दिलचस्पी लेने लगे और इस का परिणाम यह हुआ कि क्रमशः पिछले १०० वर्षों के भीतर प्रायः सभी ब्रिटिश यूनिवर्सिटियों में इन विषयों के अध्यापन का प्रबंध हो गया है। इंग्लिस्तान से बाहर यूरोपीय देशों मे भी ऐसे कई केंद्रों में—जैसे पेरिस, बर्लिन, प्राहा, सेंट पीटर्सबर्ग में—भारतीय भाषाओं के अध्ययन का प्रबंध किया गया। हिंदुस्तान के विषय में ठीक-ठीक जानकारी ब्रिटेन के लिए बड़ी उपयोगी है। इस बात को भुलाना न चाहिए कि यही जानकारी कुछ हद तक उस के मित्रों और शत्रुओं के लिए भी उपयोगी हो सकती है। एक बात और भी स्मरण रखने की है। वह यह कि यूरोपीय राष्ट्रों में आपस में शासन और व्यापार के क्षेत्रों में हिंदुस्तान को लेकर मतभेद हो सकता है, लेकिन धर्म-प्रचार के क्षेत्र में सभी एक हो जाते हैं।

यूरोप में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन का इतिहास प्रायः वैसा ही है जैसा कि प्राचीन भाषाओं के अध्ययन का। केवल एक अंतर रहा है, वह यह है कि प्राचीन भाषाओं की ओर ध्यान बहुत पहले गया था, इस लिए दौड़ में वह आगे है। यूरोप मे आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन का सब से अच्छा प्रबंध स्वभावतः लंदन में है, यद्यपि यहां पर भी इस का नियमित प्रबंध हुए बहुत समय नहीं हुआ। यह प्रबंध ठीक-ठीक विगत महायुद्ध के बाद ही हो पाया है। इस संबंध में कुछ विवरण अप्रासंगिक न होगा।

प्रायः एक सौ वर्ष के व्यक्तिगत तथा निजी संस्थाओं के असफल प्रयत्नों के बाद, सन् १९०७ में एक सरकारी कमेटी बैठी जिस का कि उद्देश्य लंदन में प्राच्य विषयों की शिक्षा के संगठन पर विचार करना था। इस कमेटी के निर्णयों में से कुछ यहां पर ज्ञातव्य है—

---

[1] मैक्समूलर 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप' पृ० ३५७

(७) पूर्वीय देशों और अफ्रीका में शासन संबंधी अथवा व्यापारिक पदों को ग्रहण करने के लिए जो लोग जाने वाले होते हैं, उन की उचित शिक्षा के लिए लंदन में प्रबंध होने की बड़ी आवश्यकता है। जिन देशों में कार्य करने के लिए उन की नियुक्ति होती है, उन देशों की भाषा का ज्ञान और कुछ प्रारंभिक ज्ञान उन देशों के इतिहास और धार्मिक तथा सामाजिक रिवाजों का उन लोगों के लिए होना अनिवार्य है।

"(८) कमेटी विशेष कर इस बात पर ध्यान दिलाना चाहती है कि इस संबंध में जो व्यवस्था पेरिस, बर्लिन, और सेंट पीटर्सबर्ग में है, उसे देखते हुए, लंदन घाटे में है। चूँकि इंग्लैंड ऐसा देश है, जिस का अन्य देशों की अपेक्षा पूर्वीय देशों से संबंध महत्वपूर्ण है, इस लिए उस की राजधानी में प्राच्य विषयों के एक स्कूल का अभाव राष्ट्र के लिए लांछन की बात है।"[1]

यह उद्देश्य उस प्रस्ताव से और भी स्पष्ट हो जाता है जो कि लंदन की एक सार्वजनिक सभा में सन् १९१४ में स्वीकृत हुआ था। इस सभा का उद्देश्य उपर्युक्त कार्य के लिए धन एकत्र करना था। लार्ड कर्जन ने निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया था—

"इस बात को ध्यान में रखते हुए कि महान् साम्राज्यकीय और व्यापारिक हित प्राच्य और अफ्रीका के देशों की भाषाओं, साहित्यों और सामाजिक रीति-रिवाजों के अध्ययन की सुविधाएं उपस्थित करने पर आश्रित हैं, यह सभा लंदन नगर में स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज की स्थापना की योजना का हार्दिक समर्थन करती है।"

इसी सभा में एक और प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जो इस प्रकार है—

"यह सभा लंदन नगर के व्यापारी-वर्ग और सर्वसाधारण के समक्ष उस अपील का अनुमोदन करती है जो स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज को १९१५ में सुचारु रूप से चलाने और उस की आर्थिक नीव को दृढ़ करने के हित धन के लिए की गई है।"

सन् १९०७ में नियुक्त की गई कमेटी की सिफारिशें बाद में १९१६ में संस्थापन-पत्र (चैप्टर अव् इन्कारपोरेशन) में इन शब्दों में ग्रहण की गईं—

[1] लंदन के स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज का कैलेंडर, पृष्ठ २३

"इस स्कूल का उद्देश्य, लंदन यूनिवर्सिटी की अवधानता में प्राच्य शिक्षा का एक ऐसा विद्यालय उपस्थित करना है जो पूर्वीय और अफ़्रीका के लोगों की प्राचीन तथा आधुनिक भाषाओं का और इन लोगों के साहित्य, इतिहास, धर्म, विधान, रीति-रिवाज और कला के अध्ययन, शोध और शिक्षा का प्रबंध करे, विशेष कर उन लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, जो कि पूर्वीय देशों अथवा अफ़्रीका में सरकारी नौकरी, व्यापार, या अन्य धंधों या पेशों के संबंध में जाते हैं. . . ."

स्कूल के कैलेंडर[1] में यह भी लिखा है कि "यह व्याख्यान और दर्जे उन लोगों के लिए भी खुले रहेंगे जिन्हों ने प्रवेशिका (मैट्रिकुलेशन) परीक्षा नहीं पास की है, और यूनिवर्सिटी का पूरा पाठ्यक्रम नहीं लेना चाहते—विशेष कर उन लोगों के लिए जो पूर्वीय देशो मे या अफ़्रीका में किसी धंधे से जाना चाहते हों, चाहे वह धंधा सरकारी नौकरी हो, चाहे धर्मप्रचार या व्यापार या अन्य कोई, और उन लोगों के लिए जो कि पूर्वीय देशों से लौटे हो और इंग्लिस्तान में रह कर अपने विषय का आगे अध्ययन करना चाहते हों।" "जहाज़ी बेड़ो के, फ़ौजी, और हवाई सेना के अफ़सरों के लिए; सूदान या औपनिवेशिक नौकरियो वालो के लिए; पादरियों के लिए; और बंक वालों तथा अन्य व्यापारियों के लिए खास दर्जे लगते है।"

स्कूल की प्रबंधकारिणी समिति के संगठन में भी उस के उद्देश्य का ध्यान रक्खा गया है, और अन्य प्रतिनिधियों के अतिरिक्त उन में निम्न सदस्य हैं—विदेशी राजनीति तथा उपनिवेशों के प्रमुख मंत्रियों की ओर से निर्वाचित एक-एक सदस्य; लंदन चेंबर अव् कामर्स (व्यापार-संघ) की ओर से निर्वाचित एक सदस्य; भारत-मंत्री की ओर से नियुक्त दो सदस्य; प्रबंधकारिणी की ओर से निर्वाचित तीन ऐसे सदस्य जो व्यापारिक हितों को ध्यान में रख कर चुने गए हों।

इस स्कूल का उद्घाटन उपयुक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए १८ जनवरी, सन् १९१७ मे हुआ। इस का आरंभ ९ छात्रों से हुआ था। अब इस में ५५० विद्यार्थियों की साधारणतः उपस्थिति रहती है।

निम्न-लिखित भाषाओं में शिक्षा का प्रबंध है—अफ़्रीका की भाषाएं, जिन मे

---

[1] पृ० ३५

२० भिन्न बोलियां सम्मिलित हैं; अरबी, तुर्की, ज्यार्जियन, आर्मीनियन, ईरानी, संस्कृत, पाली, प्राकृत और हिंदुस्तान की प्रायः सभी आधुनिक भाषाएं, तिब्बती या भोट; बर्मी, थाई; चीनी वर्ग की भाषाएं जिन में मान्-ख्मेर, आस्ट्रोनीसियन, पैगुअन, जापानी और मंगोल भाषाएं हैं। स्कूल की शिक्षा में ध्वनिविज्ञान, संस्कृति, इतिहास और भाषाविज्ञान की शिक्षाएं सम्मिलित हैं।

स्कूल अपने उद्देश्य का उचित रीति से पालन कर रहा है, यह बात १९२०–२५ के कुछ आंकड़ों से ज्ञात हो सकती है। यह आंकड़े उन विद्यार्थियों की संख्या के हैं जिन्हों ने कि स्कूल में शिक्षा प्राप्त की है। विद्यार्थी विभिन्न वर्गों के होते हैं, कुछ पूरा समय देते हैं, कुछ थोड़ा समय, और कुछ अनिश्चित समय लगाते हैं। उन का विवरण इस प्रकार है—

शोध और उपाधि के लिए पढ़ने वाले . .	५५
इंडियन सिविल सर्विस में नियुक्ति-प्राप्त विद्यार्थी .	११
सरकारी सैनिक	२३
उपनिवेशों की सर्विस वाले विद्यार्थी . . .	४१
पादरी	७१
बैंकों या व्यापारिक संस्थाओं से संबद्ध . .	५२
इतर	१७०
जोड़ .	४२३

इस संबंध में एक दूसरी तालिका भी मनोरंजक होगी। स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर के ब्रिटिश युवक जो विभिन्न देशों में इस वर्ग व्यापार, धर्म-प्रचार, अथवा शासन-कार्य के निमित्त गए इस प्रकार हैं—

अफ़ग़ानिस्तान	१
अफ़्रीका के उपनिवेश	७७
अरब	३
बर्मा	१९
सीलोन (लंका)	६

चीन	२६
ईस्ट इंडीज़	१
ईजिप्ट (मिश्र)	१२
हिंदुस्तान	१०३
ईराक़	५
जापान	६
मलय	२७
फ़िलिस्तीन	१२
ईरान	१६
सूदान	१३
ट्यूनिस	१
टर्की	५

हमारे देशवासियों, विशेष कर यूनिवर्सिटियों से संबद्ध लोगों की सूझ की इस संबंध में प्रशंसा होनी चाहिए। न हमारे उपनिवेश हैं, न धर्म-प्रचारक हैं, न विदेशों में हमारे बैंक या व्यवसाय ही हैं। फिर भी हम ने एक ऐसी संस्था को जिस की स्थापना ब्रिटिश लोगों ने अपने हित के व्यावहारिक उद्देश्यों से की थी ज्ञानोपार्जन का साधन बना लिया। एक अध्ययन-वर्ष, १९३४–३५, के भीतर हम ने ७४ अध्यापकों और प्रतिभावाले विद्यार्थियों को—जो हमारी यूनिवर्सिटियों के अच्छे से अच्छे लोग थे—भारतीय भाषाओं और साहित्य की शिक्षा के लिए इस स्कूल में भेजा। इन में से १० ने अपनी योग्यता के कारण पी-एच्० डी० की उपाधि प्राप्त की। जिन विषयों में शोध करने के लिए हमारे विद्यार्थी इस स्कूल में गए उन में से कुछ इस प्रकार हैं—

पंजाबी सूफ़ी कवि

साहु छत्रपति का शासन-काल

हाली—कवि, आलोचक और जीवनीकार के रूप में—और उस का उर्दू साहित्य पर प्रभाव

बीजापुर राज्य

पंजाब के कुहरों की बोली तथा रीति-रिवाज

गौड़ीय वैष्णवों का साहित्य तथा इतिहास और उन का इतर मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों से संबंध।

आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा के संबंध में यहां पर कुछ और बातों का जान लेना भी उचित होगा। लंदन के स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज़ में हमारे देश की १८ जीवित भाषाओं की शिक्षा का प्रबंध है जिन में आसामी; बंगला; गुजराती; हिंदी, हिंदुस्तानी, सिंधी; उर्दू; सिंहली; शिना; कन्नड़; मलयालम; तमिल; और तेलुगू है। यह सूची प्रभाव डालने वाली है, विशेष कर जब हम अपनी यूनिवर्सिटियों की ओर ध्यान देते हैं, जहां कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा का बहुत थोड़ा प्रबंध है। उदाहरण के लिए इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को ही ले लीजिए जहां केवल दो भारतीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था है, अर्थात् हिंदी और उर्दू की। हिंदुस्तानी तक ने, जो कि अधिकारियों, हुक्कामों और अब कांग्रेस की भी कृपापात्री हो रही है—यूनिवर्सिटी के अधिकारियों का ध्यान अपनी ओर नहीं आकृष्ट किया। परंतु लंदन स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज़ की शिक्षा-व्यवस्था के विस्तृत पड़ताल के बिना वास्तविक स्थिति नहीं जानी जा सकती, और यूरोपीय संस्थाओं में जो विस्तृत प्रबंध हुआ जान पड़ता है, उस का रहस्य नहीं समझ में आता। लंदन में इन १८ भारतीय भाषाओं की शिक्षा के लिए केवल तीन शिक्षक नियुक्त हैं। इस के अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं समझा गया है कि सभी भाषाओं की शिक्षा का प्रबंध हो ही। व्यवहार में देखा गया है कि प्रतिवर्ष तीन या चार भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था हो जाती है। किसी एक भाषा पर सप्ताह में दो या तीन व्याख्यान दिए जायेंगे। शिक्षा का क्रम प्रायः सभी यूरोपीय शिक्षा-केंद्रों में दो वर्ष का होता है। प्रति वर्ष के अंत में सफल शिक्षार्थियों को एक प्रमाणपत्र देता है। विशेष योग्यता रखने वाले जो विद्यार्थी एक वर्ष तक अतिरिक्त अध्ययन करें उन्हें डिप्लोमा या उपाधि प्रदान की जाती है। पहले वर्ष में जो शिक्षा वहां शिक्षार्थियों को दी जाती है वह हमारे यहां के प्रारंभिक स्कूलों की श्रेणी ले कर पहली कक्षा तक की योग्यता की होती है। दूसरे वर्ष में यही योग्यता कक्षा दो या तीन तक की हो जाती है। पहले या दूसरे साल की पढ़ाई का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए जो परीक्षा होती है उस में दो या तीन लिखित परीक्षा-पत्र होते हैं, जिन में निर्दिष्ट या अनिर्दिष्ट पुस्तकों से शिक्षार्थी की अपनी भाषा में, तथा शिक्षार्थी की अपनी भाषा से चुनी हुई भारतीय भाषा में अनुवाद करने को दिया जाता है,

तथा कुछ व्याकरण के प्रश्न भी पूछे जाते हैं, और जो भाषा सीखने के लिए शिक्षार्थी चुनते हैं, उस के बोलने वालों की संस्कृति के संबंध में भी प्रश्न होते हैं। मौखिक परीक्षा कुछ तो अंग्रेज़ी में होती है, कुछ उस भाषा में जिस का शिक्षार्थी अभ्यास करता होता है। इस में इमला होता है, भाषा-संबंधी प्रश्न किए जाते हैं, और अन्य प्रश्न भी, जैसे किसी ऐसे चित्र का वर्णन करना जिसे कि शिक्षार्थी ने पहले न देखा हो, किसी तत्काल कही गई कहानी का दुहराना, किसी अनिर्दिष्ट पुस्तक से पढ़वाना, वार्तालाप आदि।

यदि यह जानना हो कि इन दो वर्षों में कितनी योग्यता भारतीय भाषाओं में यह विद्यार्थी प्राप्त कर लेते हैं, तो किसी नए विलायत से आए ज्वाइंट मजिस्ट्रेट और उस के बेयरा की बातचीत सुन लीजिए। अपने अनुभव से एक उदाहरण देता हूं। जब मैं पेरिस में था, तो मैं अकसर वहां के 'इकोल नेशनल दि लांग्विस ओरियंतेल विवाती' (जो कि फ्रांसीसियों का पूर्वीय भाषाओं का स्कूल है) के कुछ विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ा दिया करता था। इन में से अधिकांश विद्यार्थी फ़्रांसीसी नवयुवक थे, परंतु चूंकि पेरिस यूरोप में पूर्वीय विषयों के अध्ययन का सब से विख्यात केंद्र है, इस लिए अन्य यूरोपीय राष्ट्रों के विद्यार्थी भी यहां आते हैं। इन विद्यार्थियों में से एक, एक दिन मेरे पास आया और किंचित् उल्लास के साथ कहने लगा कि उस ने अनुवाद के लिए दिए गए मेरे एक हिंदी वाक्य में ग़लती पाई है। इस के बाद उस ने अपनी कापी खोल कर जो वाक्य दिखाया, वह था "घोड़ा ज़मीन पर लोटा।" नवयुवक विद्यार्थी ने बताया कि क्रिया न होने के कारण यह वाक्य अपूर्ण है। मैं समझ न सका, और आश्चर्य में था। पूछने पर पता चला कि चिरंजीव कोष की सहायता से 'लोटा' का अर्थ 'एक भारतीय जलपात्र' लगा रहे थे, और इस लिए उन के नेत्रों में विजय की किरण थी।

यह जान कर कदाचित् बहुतों को आश्चर्य हो कि लंदन यूनिवर्सिटी की मैट्रिकु-लेशन, इंटरमीडिएट, और बी० ए० (पास) परीक्षाओं के लिए आधुनिक भारतीय भाषाएं, जिन में हिंदी भी है, वैकल्पिक विषय हैं। स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज़ में ही उच्च परीक्षाओं के लिए शिक्षा का प्रबंध होता है। साधारणतः स्कूल की प्रमाणपत्र और उपाधिपत्र वाली परीक्षाओं के पाठक्रम में ही थोड़ा-बहुत हेर-फेर करने से काम चल जाता है। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं की व्यवस्था स्कूल की परीक्षाओं की व्यवस्था के समान ही है। उदाहरण के लिए लंदन यूनिवर्सिटी की बी० ए० की परीक्षा के लिए पाठ्यक्रम इस प्रकार है—

१. निर्दिष्ट पाठों से अनुवाद तथा उन पाठों की भाषा तथा विषय पर प्रश्न।

२. अनिर्दिष्ट पाठों से अंग्रेजी में और अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद।

३. भाषा, साहित्य और व्याकरण-संबंधी प्रश्न।

यूरोपीय विद्यार्थियों के लिए निर्दिष्ट पाठ्य-ग्रंथ दो हैं, अर्थात् तुलसीदास का 'रामचरितमानस' अयोध्याकांड और प्रेमचन्द की 'प्रेमपूर्णिमा'।[1]

इस संबंध में अंक नहीं प्राप्त हो सके कि कितने अंग्रेज विद्यार्थियों ने लंदन यूनिवर्सिटी की बी० ए० की परीक्षा में हिंदी को अपना वैकल्पिक विषय चुना था। फिर भी यह निश्चित है कि यदि उन में से किसी एक को भी ऐसा दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ होता, तो कोई भी भारतीय यूनिवर्सिटी उसे हिंदी भाषा और साहित्य का प्रोफ़ेसर बना कर गर्व का अनुभव करती!

पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा का इतिहास तथा व्यवस्था अन्य यूरोपीय केंद्रों में लंदन से भिन्न नहीं है। मुख्य भेद यह है कि लंदन में इंग्लिस्तान के उपनिवेशों की भाषा और संस्कृति के ज्ञान पर जोर दिया जाता है और अन्य देशों में उन के अपने उपनिवेशों की भाषा और संस्कृति के ज्ञान पर। उदाहरण के लिए इतना बस होगा कि लंदन के स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज़ में आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा के लिए तीन शिक्षक हैं, पेरिस में केवल एक शिक्षक है। परन्तु पेरिस में अरबी और चीनी भाषाओं की शिक्षा के लिए अधिक प्रबंध है क्योंकि यह फ्रांस के उपनिवेशों की प्रमुख सरकारी भाषाएं हैं। प्राचीन पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा के विषय में इसी प्रकार का भेद दिखाई पड़ता है। इंडो-चीन में फ़्रांस के उपनिवेश होने के कारण हम देखते हैं कि वहां पाली और बौद्ध-धर्म के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है; इंग्लिस्तान में संस्कृत के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

स्पष्ट बात यह है कि यूरोपीयों का दृष्टिकोण अत्यंत व्यावहारिक है। वह उन पूर्वीय भाषाओं, साहित्यों, तथा जनता की संस्कृतियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं जिन से उन का अनेक कारणों से संबंध रहता है। यह ज्ञान बहुधा प्रारंभिक मात्र होता है। इस ज्ञान की पूर्ति प्रायः उपनिवेशों के शिक्षित निवासियों द्वारा होती है। यह अपने

---

[1] स्कूल अव् ओरियंटल स्टडीज़ का कैलेंडर, पृ० १४१

ों को अपने-अपने प्रदेशों की भाषाओं से भी अधिक परिचित करते हैं, तथा साम्राज्य
ा के माध्यम से औपनिवेशिक समस्याओं तथा प्रश्नों को समझाते रहते हैं। यदि
शों के निवासी अंग्रेजी अथवा फ़्रांसीसी अच्छी तरह लिख तथा बोल लेते हैं तो
था फ़्रांसीसियों के उन की भाषाओं के जानने की आवश्यकता कम हो जाती है।

इस बात को अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि—कुछ परिस्थितियों के कारण, र यूरोपीय देशों के पूर्वीय देशों के साथ राजनैतिक संबंध के कारण—यूरोपीय पूर्वीय भाषाओं के अध्ययन के लिए कुछ विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं—

(१) उदाहरण के लिए, एक सुविधा तो यह है कि यूरोपीय विद्वानों ने अपनी भाषाओं तथा साहित्य के संबंध में बहुत-सा काम कर रक्खा है। उस से हमें अपनी भाषाओं तथा साहित्य के संबंध में शोध का काम करने के लिए परिपाटी का ज्ञान हो सकता है, और काम के विभिन्न नमूने प्राप्त हो सकते हैं।

(२) यह बात आश्चर्यजनक होते हुए भी सत्य है कि भारतीय भाषाओं के संबंध में शोध का कार्य करने के लिए जैसे पुस्तकालयों की आवश्यकता है, वह हिंदुस्तान मे नहीं है, वरन् इंग्लिस्तान में मिलेंगे। यह एक क़ानून द्वारा लगाया गया नियम है कि हिंदुस्तान में छपी प्रत्येक पुस्तक की तीन प्रतियां सरकार में दाखिल करनी होती हैं। इन में से एक या दो हिंदुस्तान में कदाचित् सेक्रेटरियट अथवा अन्य स्थानीय दफ़्तरों मे रह जाती हैं—कम से कम जनता या विद्यार्थियों के लिए सुलभ नहीं होतीं—और तीसरी प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में रक्खी जाती है। इस तरह वहा हिंदी की प्रत्येक छपी पुस्तक अध्ययन के लिए मिल सकती है, जो इलाहाबाद, बनारस, दिल्ली, कलकत्ता या हमारे देश में अन्यत्र कहीं भी असंभव है।

(३) संस्कृत और हिंदी की हस्तलिखित पुस्तकों के जैसे बड़े संग्रह यूरोप में है यहां नही। हमारी अन्य ऐतिहासिक अथवा इतर वस्तुओं के साथ हस्तलिखित पुस्तकें भी वहा पहुँच गई हैं। परिणाम यह होता है कि हम लंदन में इंडिया आफ़िस के ——— में बैठ कर प्रसिद्ध हिंदी ग्रंथों के मूल का

जैसा सम्पादन कर सकते हैं वैसा वर्षों हिंदुस्तान के हिन्दी पुस्तकालयों में घूम कर भी नहीं कर सकते। बनारस की नागरी-प्रचारिणी सभा और इलाहाबाद की हिंदुस्तानी एकेडेमी जैसी सुस्थापित संस्थाओं में भी हस्तलिखित पुस्तकों के प्रायः नगण्य संग्रह हैं।

यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि यूरोप में अपेक्षाकृत गिनती में विद्वान् अध्यापक अधिक हैं। भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक ज्ञान कराने के लिए नियुक्त किए गए इन शिक्षकों में बहुधा अपने विषय के लिए बड़ी ही लगन हो आती है। वह अपने विषय के क्षेत्र की सभी छोटी से छोटी जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं। यह ठीक है कि उन की कठिनाइयां बड़ी हैं, क्योंकि जिन भाषाओं को वह पढ़ाते हैं उन पर उन का वास्तविक अधिकार थोड़ा ही, और बहुत सीमित रहता है। फिर भी उत्साह, स्वतन्त्र विचार, और मनन के गुण उन में उन की साधारण शिक्षा के परिणाम-स्वरूप होते हैं, और इन गुणों का पूरा उपयोग वह करते हैं; और इन में से बहुत से ऐसे होते हैं जिन से संपर्क में आ कर सच्ची प्रेरणा प्राप्त होती है।

इस प्रकार की साधारण सुविधाओं की सूची बढ़ाई जा सकती है, परन्तु किसी एक शाखा पर विस्तृत अध्ययन करने की आवश्यकता होती है तो अनेक कठिनाइयां होती हैं जिन में से कुछ का संकेत इस लेख में किया जा चुका है।

सत्रहवीं सदी ईस्वी के 'हिंदुस्तानी' गद्य का नमूना

[लेखक—श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

अब तक की खोज से यद्यपि यह सिद्ध था कि 'हिंदुस्तानी' नाम हमारी इस भाषा के लिए जिसे हम आज राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं ईसा की सोलहवीं शताब्दी से ही प्रयोग में आता रहा है,[1] किंतु अभी तक हमारे पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं था कि इस नाम का प्रयोग विदेशीय लोगों के अतिरिक्त स्वदेशवासी भी करते थे। हर्ष की बात है कि अब हमें एक ऐसा प्रमाण प्राप्त हो गया है, जिस से यह सिद्ध होता है कि 'हिंदुस्तानी' नाम का प्रयोग स्वदेशवासी भी, यदि और पहले नहीं तो, ईसा की सत्रहवीं शताब्दी में करते थे, और यह उस समय भी 'हिंद की बोली' थी और बहुत 'प्यारी' मानी जाती थी।

क़ैसरबाग़, लखनऊ, में अमीरुद्दौला प्रॉविंशियल लाइब्रेरी नाम का जो पुस्तकालय है, उस में देवनागरी लिपि में लिखी हुई एक विशालकाय हस्तलिखित प्रति है। इस का आकार अनुमान से १५″ × १०″ है, और इस में ४४७ पन्ने या ८९४ सफ़हे हैं, और प्रत्येक सफहे पर पंक्ति-संख्या २७ है, और प्रत्येक पंक्ति में शब्द-संख्या औसतन् लगभग १५ है। इसी से इस के विशालकाय होने का अनुमान किया जा सकता है। कागज मोटा, चिमड़ा, बादामी, हाथ का बनाया, देसी है, और स्याही देसी काली है। प्रति प्राचीन ज्ञात होती है।

इस बृहत्काय पुस्तक में इस्लाम धर्म से संबंध रखने वाली एक दर्जन से अधिक छोटी-बड़ी पुस्तकों का संग्रह है। इन में से एक भी पुस्तक किसी विदेशी भाषा, अर्थात् अरबी या फ़ारसी में नहीं है। सभी उत्तर भारत की भाषाओं में लिखी गई हैं। 'हिंदुस्तानी'

[1] देखिए 'हिंदुस्तानी', अप्रैल १९३८, पृष्ठ २१३ पर डाक्टर ताराचंद का 'हिंदुस्तानी' शीर्षक लेख।

भाषा में भी कुछ पुस्तकें हैं और तीन पुस्तकों के प्रारंभ और अंत में यह स्पष्ट निर्देश है कि वे हिंदुस्तानी में हैं

श्री प्रकास हिंदुस्तांनी किताब जंबूर शुरू हुई। (पृ० २४)

श्री प्रकास हिंदुस्तांनी भाषा में तमांम। (पृ० ५६)

श्री कलस हिंदुस्तांनी किताब तोरेत शुरू। (पृ० ६४)

श्री कलस हिंदुस्तांनी किताब तोरेत तमांम। (पृ० ८१)

सिंधी की हिंदुस्तांनी भाषा करी हे सो लिषी हे। (पृ० ३९९)

श्री किताब सिंधी की हिंदुस्तांनी सुधां तमांम। (पृ० ४०१)

यह सभी पुस्तकें पद्य में हैं, और इन से हमारी भाषा के व्याकरण का पूरा ढांचा नहीं मिलता। हमारे मध्यकालीन पद्य में शब्दों के रूपों को विकृत करने का अभ्यास सर्वत्र दिखाई पड़ता है, और यह पुस्तकें भी उस का प्रतिवाद नहीं हैं। इस के अतिरिक्त हिंदुस्तानी के पद्य के उदाहरण हमारे मध्यकालीन साहित्य में सर्वथा दुर्लभ नहीं हैं, इस लिए प्रस्तुत निबंध में उन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जो कुछ अलभ्य है वह है ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व का 'हिंदुस्तानी' गद्य। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व के 'हिंदुस्तानी' गद्य का कोई भी प्रामाणिक उदाहरण अभी तक हमारे सामने कदाचित् नहीं था। फलतः यह हमारे लिए और भी प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत प्रति हमारे सम्मुख ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के 'हिंदुस्तानी' गद्य का एक प्रामाणिक उदाहरण उपस्थित करती है। खेद इतना ही है कि यह अधिक नहीं है। फिर भी, जो कुछ है वह पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है। इस संग्रह में एक पुस्तक 'मारफत सागर' नाम की है। नीचे के दो गद्यांश क्रमशः उस के प्रारंभ और अंत के हैं। उन्हें मैं ज्यों का त्यों प्रति से ले कर उद्धृत करता हूं। उन का विषय इस्लाम से संबंध रखता है, इस लिए यह स्वाभाविक है कि उन में फ़ारसी, और विशेष कर के अरबी के, शब्दों का प्रयोग बहुतायत में हो, क्योंकि इस्लाम धर्म का दर्शनशास्त्र इन्हीं भाषाओं में है, फिर भी भाषा अर्थात् उस के व्याकरण का ढांचा शुद्ध 'हिंदुस्तानी' है। इस के समझने में शायद कठिनाई न होगी। इन गद्यांशों को यथेष्ट रूप से समझने के लिए इन का आशय भी हिंदी में दे दिया गया है, और असाधारण अरबी-फ़ारसी के शब्दों का तत्सम रूप फ़ुटनोट में दे कर उन का अर्थ भी फ़ुटनोट में दिया गया है। विश्वास है कि इस से पाठकों को

सहायता मिलेगी। दोनों गद्यांश क्रमशः नीचे दिए जाते हैं—

प्रारंभ—श्री किताब मारफत[१] सागर ।। जो हक ताला[२] के हुकुम से पैदा हुई ।। हादी[३] के दिल पर आप बेठ कें बिगर हिजाब बारीक बातें चोपाईयां मोहों सें केहेवाई सो कलाम ज्यूं आवते गए त्यूं यारों नें लिषे और हादी फेर प्यार सों सुनते गए सो सुनके हुकम सें हाल[४] अपनें पर अरस बका लाहूती[५] का लेते गए और जामाना नाजुक होता गया सो ईहा ताई के आषर इस आलम नासूत[६] सेती कूच करके अपने रूहांनी आलम बका[७] वतन हमेसगी असली मिलाप के आराम पकड़ा और ए जो चोपाई जो नाजल[८] होती गई थी सो मसोदे ज्यूं के त्यूं ही रहे सो अब हक हादी के हुकम सें मोमिनों[९] ने इस के बाब बांधे हे माफक अपनी अकल के एपर जो चोपाई हादी नें फुरमाई थी तिनमें एक हरफ जादा या कम नहीं कीया अब मोमिन इस चोपाईयों के हरफ् हरफ् के माएनें मगज जाहिर के और बातुन के लेय् कें हक के हुकम सें हादी के कदमों कदम धरेंगे किस वास्तें के मोमिन हादी के अंग नूर हें और नूर बिलंद से उतरे हें तो चढ़ना इनों को जरूर हे और अरस बका के पट हादी नें ईलम लुंदनी[१०] से षोल दिए हैं आप हक नें नाजी[११] फिरके कों हिदाइत करकें निसबत मोमिन असल्तंन[१२] जो बीच अरस के हक हादी के कदम तले बेठे हैं सो दिषाए दई रूह की नजर सों जिनसों हक

---

१ معرفت ज्ञान (ब्रह्मज्ञान)
२ حق تعالی परम सत्य-स्वरूप परमात्मा
३ هادی हिदायत करने वाला (हज़रत मुहम्मद)
४ حال प्रभाव, रंग
५ عرش بقا لاهوتی کا सत्य अथवा शून्य-लोक का, अर्थात् परमात्मा की ज्योति का
६ عالم ناسوت मृत्युलोक
७ عالم بقا सत्यलोक
८ نازل هونا उतरना (प्रकट होना)
९ مومن इमान लाने वाले (मुसलमान)
१० علم لدنی प्राकृतिक विद्या, (ब्रह्मविद्या)
११ ناجی निजात पाने का हक़दार (मुसलमान) (मोमिन)
१२ اصالتاً सशरीर

तालान बका खिलवत बीच कोल अलस्तरबकुम का कीया[1] तब काल बला[2] भी रूह मोमिनों का न कह्या है और कलाम अल्ला और हदीसो और क्या किताबो के आनुगी मगज माएनें हादी ने वास्ते मोमिनों को रूह की नजर खोल के दिल हकीकी पर साहिबीयां सेती नकश कीया है और दिल (को) अरस कह्या है और ए दुनीयां मुरदार भी नजीक मोमिनों के है तिस वास्ते जो हादी तुमको बुलावन आए थे सो पट बका का खोल के आगे से केतेक यारों को ले पधारे है तब मोमिनों को जरूर कदमों पर कदम धरना है ॥

प्रारंभ—श्री ज्ञानसागर, जो परमात्मा की आज्ञा से निर्मित हुआ। हादी (हजरत मुहम्मद) के दिल पर (परमात्मा ने) आगे बैठ कर बिना कोई भेद रक्खे (ज्ञान की) गहन बातें नीगाहों (वाक्यों) के रूप में (उन के) मुंह से कहलाई। वे वाक्य जिस प्रकार आते (प्रकट होते) रहे उसी प्रकार (हादी के) संगियों ने लिखे, और उन्हें हादी फिर प्यार से सुनते गए, और उन्हें सुन कर (परमात्मा की) आज्ञा से अपने ऊपर परमात्मा की ज्योति का प्रभाव लेते गए। और जमाना नाजुक (बुरा) होता गया। यहां तक कि अंत में उस मृत्युलोक से कूच करके उन्हो ने अपनी आत्मा के लोक सत्यलोक में जा कर (अनंत के) वास्तविक मिलन का सुख प्राप्त किया, और जो ये वाक्य उतरने (प्रकट होने) गए थे वे सब मसाहिदो के रूप में ज्यों के त्यों रहे। उन्हें अब सच्चे हादी की आज्ञा से मोमिनों (मुसलमानो) ने अपनी बुद्धि के अनुसार अध्यायों मे विभक्त कर लिया है, किन्तु जो वाक्य हादी ने कहे थे उन में एक अक्षर भी कम या अधिक नहीं किया है। अब मोमिन इन वाक्यो के प्रत्येक अक्षर के प्रकट तथा अप्रकट आशय ले कर परमात्मा की आज्ञा से हादी के मार्ग का अनुसरण करेंगे, क्योंकि मोमिन हादी (परमात्मा) के अंग और उस के नूर (ज्योति) है, और ज्योति आकाश से उतरी है, इस लिए उस का (आकाश तक) चढ़ना भी निश्चित है,

---

[1] خلوت एकांत
[1] قول الست بربکم کا کیا कहा, 'क्या मैं तुम्हारा खुदा नहीं हूँ' ?
[2] قالو بلی कहा 'बेशक'
[3] كلام الله ईश्वर-वाक्य (क़ुरआन)
[4] حديث हज़रत मुहम्मद के वाक्य
[5] तत्सम और आशय स्पष्ट नहीं हैं।

और सत्यलोक के परदे हादी ने ब्रह्मविद्या से खोल दिए हैं। स्वयं परमात्मा ने मोमिनो को हिदायत (उपदेश) कर के आत्मा की दृष्टि से ऐसे मोमिनों का संबंध दिखा दिया है, जो दिव्यलोक में परमात्मा के चरणों में सशरीर बैठे हैं। जिन से परमात्मा ने सत्यलोक के एकांत में कहा था, "क्या मैं तुम्हारा खुदा नहीं हूँ", जिस का उत्तर मोमिनों की आत्माओ ने 'बेशक' कह कर दिया था, और क़ुरआन तथा हदीसों और कई एक पुस्तकों के आशय उत्तराधिकारी मोमिनों को उन की आत्मा की दृष्टि खोल कर उन के असली दिल पर शाहिदियों (?) से नक़्श कर दिया है, और उन के दिल को ही अपना (परमात्मा का) तख़्त कहा है। और मुसलमानों के नज़दीक़ यह दुनिया बेकार भी है, इस लिए, जो हादी तुम (मुसलमानों) को बुलाने आए थे वे सत्यलोक का परदा खोल कर कितने ही संगियों को ले कर पधारे हैं, इस लिए मोमिनो को उन के मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक है।

अंत---श्री श्री किताब मारफत सागर तमाम संपूरन ।। बिनती ।। जो हादी नें जुबान मुबारक सेती चोपाई एक हजार चोतीस फुरमाई थी सो यार मोमिनों ने इसके बाब चोदे माफक अकल अपनी के गम्म दिल सें बांध कर किताब तमांम करी अब भाई मोमिन इस चोपाइयों के हरफ् हरफ् के माएनें मगज जाहिर के ओर बातुन के रूह की नजर खोल कें लेएगें दिल अरस में ओर हक के बेसक ईलम लुंदनी सें विचारेंगे ओर फेल में ल्या-वेंगे तब ही हाल लें हादी के कदमों कदम धरेंगे किस वास्तें के आषर के मोमिन आकल हें ओर हिदाइत हक की लई हे सब बिधों कामिल हें जिनके दिल अरस में सुरत षुदाए की उगी हे ओर (कई) एक कलांम भी हादी ने मोमिनों को कहे हें तो हुकम से मोमिनो को जरूर सिर लें नालें तिस वास्तें जो कोई अरवाह[1] अरस अजीम[2] की होए ओर ईलम लुंदनी से जाग्रत हुई होए ओर हुकम मदत करे ओर हक हादी हिंमत देवें तो सुरत हक हादी के कदमों बांध के इस फांनी वजूद को उड़ावे ओर बीच अरस अजीम के उठ षड़ी होए ओर मिलाप हमेसगी का सुख लेवे हादी नें दरवाजा बका का षोल्या केतेक यारों को लेके आप अरस सिधारे ओर अपने जो तन हें तिनकों बुलावत हें ताकी साख चोपाई क्यामत-

---

[1] ارواح आत्माएं

[2] عرش عظیم बड़ा तख़्त (परमात्मा)

नामें[1] की ॥ सुनत बिछोह हादी का साबित राय पिंड । धिक धिक पाडो तिन अकलें यह नाही वतली अखंड ॥१॥ और आज हमारे हादी कों बीच परदे के हूए दो महीने और दस रोज हूए सो आज हमारे मेहेबूब[2] की सालगिरह का दिन हे याने जनम ओछव छहंतर मां तमाम हुआ पचहत्तर बरस और नो महीनें और बीस रोज इस फानी के बीच हम गिरोर बानी के वास्ते कै कमाले सेहे गुजरान कीया और कै न्यामतें बका की इन रूहों के वास्तें जाहिर करी सो कहां लों लिखों बानी में जाहिर लिख्या हे जो देखेगा तिनकी निसां[3] होएगी ॥ सदी महमद सलिला अलेहवसलंम[4] की अघारे से और छे महीना मोहोरंम तारीष सताईसमी पेहेर दिन चढते और हिंदुई तारीष संवत १७५१ बरखे भादरवा बदि चोदस ॥१४॥ वार गुरुउ पेहेर दिन चढते किताब मारफतसागर तमांम हूई हुकम हक हादी के सें चोपाई एक हजार चोतीस ॥१०३४॥ मुकांम पटना लिषतं गिरोर बानी की पाउषाक हमेसां चाहत केसवदास को परनाम कोटानकोट दंडवत साथ सब कों अवि-धार[5] जो जी प्रीति की रीति से झाझां सनेह प्यार से अविधार जो जी ॥

अंत—श्री ज्ञानसागर संपूर्ण। निवेदन। हादी ने अपने मुख से जो एक हजार चोतीस चौपाइयां (वाक्य) कही थी उन्हें उन के संगी मोमिनों ने अपनी बुद्धि के अनुसार ध्यानपूर्वक चौदह अध्यायों में विभक्त कर पुस्तक समाप्त की। अब हमारे भाई मोमिन इन वाक्यों के प्रत्येक शब्द का प्रकट और अप्रकट आशय आत्मा की दृष्टि खोल कर लेंगे, और अपना हृदय परमात्मा में रखते हुए ब्रह्मविद्या के (नियमों के) अनुसार उन पर विचार करेंगे, और उन के अनुसार आचरण करेंगे, तभी (वस्तुतः परमात्मा के) प्रभाव में हादी के मार्ग का अनुसरण करेंगे, क्योंकि अनंत मोमिन बुद्धिमान् हैं, और उन्हों ने परमात्मा का उपदेश ग्रहण किया है, और सब प्रकार से योग्य हैं, जिन के हृदय पट में परमात्मा की स्मृति उगी हुई है। और (इस आशय के) (कई) एक वाक्य भी हादी ने मोमिनों

[1] قیامت نامہ   वह पुस्तक जिस में (आने वाले) प्रलय के संबंध में लिखा गया हो

[2] محبوب   प्यारे

[3] نشان   समर्थन

[4] صلے اللہ علیہ وسلم

[5] तरसम और आशय स्पष्ट नहीं है।

को कहे हैं, तो उन की आज्ञा से मोमिनों का यह कर्तव्य है, वे चाहे इसे अपना कर्तव्य समझे या न समझें। इस लिए जो कोई भी रूह परमात्मा की (उत्पन्न की हुई) हो, और ब्रह्मविद्या से जाग्रत हुई हो, और (परमात्मा की) आज्ञा उस के साथ हो, और परमात्मा उस को हिम्मत दे, वह अपनी स्मृति को परमात्मा के चरणों में लगा कर इस नाशवान् सत्ता को उडावे, और स्वतः परमात्मा के सम्मुख जा खड़ी हो, और अनंत मिलन का सुख लेवे। हादी ने सत्यलोक का दरवाजा खोला, और कितने ही संगियों को ले कर वे स्वतः सत्य-लोक को सिधारे, और अपने अंगों (अनुयायियों) को बुला रहे हैं, उस का साक्षी क़यामतनामे की यह चौपाई है, "सुनत विछोह हादी का सावित राखे पिंड। धिक धिक पाड़ो तिन अकले वह नाहीं वतनी अखंड॥" और आज हमारे हादी को अंतर्धान हुए दो महीन और दस दिन हुए, आज हमारे प्यारे (हजरत मुहम्मद) की वर्षगांठ का दिन है, अर्थात् उन का जन्मोत्सव संसार भर में मनाया गया। पचहत्तर वर्ष नौ मास और बीस दिन (की अवस्था) तक इस मृत्युलोक में हम ने गुरु के उपदेशों (को बोलचाल की भाषा में करने ?) के लिए कितने कष्ट उठाए, दिन काटे, और कितनी ही न्यामतें (अच्छाइयां) परमात्मा की इन आत्माओं के लिए प्रकट की, वह कहां तक लिखू, 'बानी' में स्पष्ट लिखा है, उसे जो भी देखेगा वही मेरी इस बात का समर्थन करेगा। (हज़रत मुहम्मद) की ग्यारहवीं शताब्दी, छठां महीना, अर्थात् मुहर्रम, और सत्ताईसवी तारीख़, पहर दिन चढ़ते, और हिंदुओ की मिती भाद्रपद वदि १४, संवत् १७५१, गुरुवार, पहर दिन चढ़ते, परमात्मा की आज्ञा से ज्ञानसागर नाम की यह पुस्तक समाप्त हुई। चौपाई १०३४। मुक़ाम पटना में यह पुस्तक लिखी गई। गुरु की बानी की चरणधूल मैं सदा चाहता हूं। केवशदास का प्रणाम करोड़ो दंडवत के साथ सब को दीजिएगा। प्रीति की रीति से तथा अनेक स्नेह तथा प्यार से दीजिएगा।

इन गद्यांशों की 'हिंदुस्तानी' में अरबी-फ़ारसी की शब्दावली का बाहुल्य तो प्रकट है, किंतु यह कम ध्यान देने योग्य नहीं है कि ठेठ हिंदी शब्दो का प्रयोग भी पर्याप्त हुआ है। नीचे लिखे हुए शब्द उदाहरण के लिए दिए जाते हैं—

श्री, सागर, पट, पधारे, संपूरन, बिनती, बिचारेंगे, धरेंगे, जाग्रत, सुरत, सिधारे, साख, बिछोह, पिंड, धिक-धिक पाड़ो, तिन, अखंड, जनम ओछव (जन्मोत्सव), छहंतर, कसाले भादरवा (भाद्रपद) परनाम कोटान कोट दंडवत- प्रीति की रीति- और सनेह।

लख को समाप्त करते हुए केवल एक बात पर पाठकों का ध्यान मैं और आकर्षित करना चाहता हूं : 'हिंदुस्तानी' भाषा में इन पुस्तकों को लिखने का उद्देश्य बताते हुए लेखक लिखता है कि 'हिंद की बोली जादा प्यारी' (प्रति का पृ० ८२) होने के कारण तथा 'पातर हिंद के मुसलिमों के' (प्रति का पृ० ८२) लिखे जाने के कारण उस ने 'हिंदुस्तानी' का माध्यम ग्रहण किया है, किंतु क्या यह खेद का विषय नहीं है कि आज के हमारे मुसलमान भाई ठेठ हिंदी की शब्दावली और नागरी-लिपि से सर्वथा दूर रहने की चेष्टा करते हैं ? विश्वास है कि वे उस सत्रहवीं सदी के लेखक का अनुकरण कर हिंदी की शब्दावली तथा देवनागरी लिपि को अधिकाधिक अपनावेंगे ।

भौतिक संस्कृति में एशिया का स्थान

[लेखक—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम्०ए०, डी० एस्-सी० (लंदन)]

राष्ट्रीय इतिहास के पक्ष में जो हठ है; संसार के इतिहास का शीर्षक दे कर जो एकांगी रचनाएं की गई हैं; इतिहास के दर्शन का नाम दे कर जो कल्पनाएं प्रस्तुत की गई है, और इतिहास-निर्माण के लिए जिन कठिन शास्त्रीय और वैज्ञानिक उपादानों की आवश्यकता है—इन सभी बातों ने मिल कर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि शिक्षित और सस्कृत मनुष्यों के लिए भी यह दुर्लभ हो गया है कि सभी जातियों और लोगो ने सभ्यता को अग्रसर करने में जो भाग लिया है उस का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकें। सभ्यता किसी एक जाति या कुछ विशेष जातियों की देन नही है। यह सभी जातियों और लोगों के युग युग के सम्मिलित प्रयत्नों का परिणाम हैं। इन जातियों मे एक सिरे पर आदिम मनुष्य और बर्बर कहलाने वाले लोग हैं, और दूसरी छोर पर यूरोप-अमरीका वाले।

सभ्यता की जड़ मनुष्य के इतिहास के धूमिल अतीत में मिलेगी। हमारी जानकारी जितनी ही बढ़ती है, उतना ही हमें मालूम होता है कि मानवी सभ्यता का प्रवाह एक शृंखलित और क्रमागत धारा की भाँति है, जिस का उद्गम हम प्राय: उस समय के निकट पाते हैं, जब मनुष्य बंदरों से बहुत भिन्न न था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के और विशेष कर बीसवीं सदी के विद्वानों की शोधों के परिणाम-स्वरूप यह जाना गया है कि हम अपनी सभ्यता के सभी मुख्य अंशों के लिए उन प्राचीनों के आभारी हैं जिन्हें आधुनिक पुरुष कृतघ्नता-पूर्वक "बर्बर" कह कर निर्दिष्ट करता है।

"बर्बर" आदमियों की देन को प्रस्तर-युग के लोगों ने आगे बढ़ाया, ऐसी खोजे की जिन्हों ने सभ्यता को अद्भुत रूप से अग्रसर किया। इस युग में लोगों ने अग्नि उत्पन्न करना जाना, बहुत से अस्त्र-शस्त्र बनाए, और उन कारीगरियों तथा आर्थिक संगठन की नींव डाली जो आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति (इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन) के समय तक

चलते रहे। उस पुराने युग में हमारी सभ्यता के दो मूल्यवान् अंगों—चित्रकला और मूर्तिकला—की सृष्टि हो चुकी थी। उस युग के इन दोनों कलाओं के अवशेषों ने अनेक विद्वानों को आश्चर्य में डाल दिया है, और इतिहास निरंतर उन्नतिगामी है, इस विषय पर संदेह तक उत्पन्न कर दिया है। इस युग के उत्तरार्ध में खेती, पशुपालन, वास्तुकला, यातायात साधन, मिट्टी के बर्तन बनाना, बुनाई और औषध-विद्या इन सब का ज्ञान पाया जाता है।

यहाँ तक कि इतिहास और संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले एक विद्वान् ने कहा है कि आदिम संस्कृति में "हमें सभ्यता के सभी अंग प्राप्त होते हैं, सिवाय लेखन-कला और राष्ट्र-संगठन के।" आर्थिक जीवन के अनेक प्रकार; राजनैतिक जीवन के समग्र नियोग; नीतिशास्त्र के मूलतत्त्व; धर्मों के आधार, भाषा; साहित्य; कलाएं; विज्ञान यह सब हजारों वर्षों के कष्ट और प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप प्रतिष्ठित हुए हैं। धातुओं, लेखन-कला, और राष्ट्र को छोड़ कर ऐतिहासिक सभ्यता के सभी आधार उस दूर अतीत के युग में निर्मित हो चुके थे।

प्रस्तर-युग के बाद एक परिवर्तन काल आया जिस में मनुष्यों ने ताँबा, काँसा और लोहा जैसी धातुओं की उपलब्धि की। इन उपलब्धियों के लिए किसी विशेष समूह को श्रेय नहीं दिया जा सकता, क्योंकि इस युग के अवशेष एशिया, यूरोप और अमरीका, के दूर-दूर स्थित प्रदेशों में पाए गए हैं। सभ्यता के एक मुख्य अंग अर्थात् लेखन-कला का सृजन हो चुका था। भूमध्य सागर की चिह्न-लिपि से आरंभ हो कर इस ने इलाम, सुमेर और मिस्र में चित्र-लिपि के रूप में विकास पाया; और अन्ततः यह २४ व्यंजनों की वर्ण-माला के रूप में लगभग ३००० ई० पू० में आई। इस का सब से पुराना उदाहरण सिनाई में सेराबित-एल-खादिम में मिलता है; जिस का काल-निर्णय सर विलियम फ्लिंडर्स पेट्री ने लगभग २५०० ई० पू० किया है। लेखन-कला के विकास और धातुओं के उपयोग ने संस्कृति की गति को तेज किया।

पुरातत्व और इतिहास ने कुछ ऐसी संस्कृतियों को खोज निकाला है, जो लोप हो चुकी थीं, परंतु ऐसी और बहुत-सी संस्कृतियां हो सकती हैं, जो उन के क्षेत्र में आकर प्रकाश पाने से रह गईं। कौन बता सकता है कि धरती के कठोर तल के नीचे या समुद्र के भीतर कैसे-कैसे खजाने छिपे हुए हैं, और क्रीट, सुमेर, यूकातन, मोहेंजो दड़ो आदि जैसी

कितनी खोजें भविष्य में हों। [illegible] से ले कर श्लीमन तक 'ऐटलांटिस' की सुधि जागृत रही है, और पोलिनीशिया की परंपरा अभी मनुष्य की स्मृति से विलग नहीं हुई है।

जब कि "वर्बर" कहलाने वाली जातियों और प्रस्तर तथा ताम्र युगों के लोगों ने संस्कृति के क्षेत्र में ऐसी खासी वृद्धि की, तो यह आश्चर्य की बात नहीं, कि सब से बड़े महाद्वीप एशिया ने, मानवी सभ्यता को, जितनी कि हमारी जानकारी है, उस से अधिक समृद्धिशाली बनाया हो। सच बात तो यह है कि अब इस का अनुभव होने लगा है कि यूनान और रोम की संस्कृतियां, जिन्हें भ्रम से सर हेनरी मेन ने "आधुनिक विचारों का स्रोत" मान रक्खा था, स्वयं एशियायी सभ्यता पर आश्रित थीं, और मोटे ढंग से कहा जा सकता है कि एशियायी सभ्यता का प्रस्तार मात्र थीं। यद्यपि एशिया की प्राचीन सभ्यता का हमारा ज्ञान अपूर्ण बल्कि बहुत ही थोड़ा है, फिर भी वह इतना है कि हम उस के आधार पर अपने महाद्वीप की गौरवपूर्ण कृतियों का, कल्पना में एक ढांचा बना सकते हैं, और मानवी संस्कृति तथा सभ्यता में उस के विशद भाग का अनुमान कर सकते हैं।

यह भली भाँति ज्ञात है कि संसार के चारों बड़े धर्म—बौद्धधर्म, हिंदूधर्म, ईसाईधर्म और इस्लाम—एशिया में ही उपजे हैं। उन की शक्ति और उपयोगिता को समय ने अच्छी तरह जाँच लिया है, और अरबों जनों की आस्था ने सिद्ध किया है। ईसा से पहले या बाद के यूरोप के इतिहास में इस वस्तुस्थिति का साम्य नहीं मिल सकता। इन धर्मों द्वारा एशिया ने, इतिहास के अंधतम युगों में, मानवता को, आशा का संदेश पहुँचाया है। इन धर्मों में चाहे जो त्रुटियां रही हों, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इन्हों ने मानव-चरित्र को प्रतिष्ठित करने और उठाने में बड़ा भाग लिया है, और साथ ही सामाजिक भावना और व्यवस्था को उत्पन्न और दृढ़ करने में, और मनुष्य की बर्बरता को वश में रखने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। इन्हों ने मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय के उच्चतम और महत्तम गुणों को विकसित किया है, और अगणित लोगों में भ्रातृभाव, सेवा और त्याग की भावनाएं उत्पन्न की हैं।

धर्म के साथ-साथ दर्शन, आचारशास्त्र तथा आख्यानों और कविता का चलन रहा। इन में से कुछ तो धर्मों के अंग थे, और कुछ उन से स्वतंत्र भी थे। इस दूसरे प्रकार के अंतर्गत में बुद्ध, कन्फ़्यूसियस, और अन्य चीनी विचारकों के आचार-संबंधी सिद्धांत गिनाए

जा सकते है उचित और अनुचित की भावना व्यवस्था और सयम सामाजिक न्याय सदाचार, दया, दान और नैतिक सतर्कता के विचार यूनान और रोम मे समाज के आरभ होने से पहले ही उत्पन्न और पोषित हो चुके थे। आख्यानों ने मनुष्य की कल्पना को सपन्न बनाया था और कविता के लिए ऐसी प्रेरणा प्रदान की थी, जिस की बराबरी केवल प्रेम का भाव कर सकता था।

आर्थिक संगठन के क्षेत्र मे और राजनीति मे भी एशिया की देन महत्वपूर्ण रही है। सब से प्रमुख कार्य इस दिशा मे हलों और पाटों का खेती के लिए उपयोग रहा है। मिस्र के इतिहास के ब्रेस्टेड और ईलियट स्मिथ जैसे विशेषज्ञों का कहना था कि हलों द्वारा खेती मिस्रवालों के यहां आरभ हुई, लेकिन रवीनफ़र्थ तथा अन्य आधुनिक लेखकों और शोधकों ने माना है कि यद्यपि खेती नवीन प्रस्तर-युग में आरभ हो गई थी, परतु बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उपयोग मिस्र से पहले सुमेर में हुआ, और मिस्र में इस ने उन्नति की। सुमेर वालों ने ८००० ई० पू० के लगभग अपनी प्रसिद्ध नहरो द्वारा खेती की और भी उन्नति की। पहियों वाली सब से प्राचीन गाड़ी का पता किश से लगा है, जिस से इस बात का अनुमान होता है कि स्थल-सबधी यातायात का आरभ सुमेर मे ही हुआ। जल-मार्गों द्वारा यातायात उन्हें इस से पूर्व से ही ज्ञात था। सुमेरी सभ्यता को प्रेरणा सिधु सभ्यता से प्राप्त हुई और संभव है कि इस का विशेष अध्ययन हजारो आश्चर्य प्रस्तुत करे और मेसोपोटामिया और मिस्र से उन अनेक बातों का श्रेय छीन ले जो उन्हें मिल रहा है।

सुमेर ने मूल्य के मान के रूप में सोने और चादी का व्यवहार आरंभ किया, पण या मुद्रानिर्माण की प्रथा चलाई, और उधार तथा साख का प्रचलन किया। इन तीन बातों ने मानव-समाज के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित किए, और उसे विकास की ओर अग्रसर किया। वस्तुतः आधुनिक आर्थिक संगठन प्रायः इन्हीं तीनों पर आश्रित है। इस के बाद बैबिलोनिया वाले आते है, जिन्हों ने यूनानियों द्वारा यूरोप को मौल और मानों से परिचित कराया, और आय-संबंधी एक व्यवस्था का विकास किया। सरकारी सिक्के का सब से प्राचीन उदाहरण हमें असीरिया में ७०० ई० पू० में मिलता है। सोने और चाँदी के अतिरिक्त वहां सीसा और तांबा मुद्रा गढ़ने के काम में लाया जाता था। ईसा से पूर्व छठी सदी में. एशिया माइनर में लीडिया के राजा क्रोइसस ने बहुत सुंदर शैली

के सिक्के ढलवाए और उन के मूल्य के संबंध में सरकारी साख दी. यह जातीय मुद्रा-प्रथा का प्रथम नियमित उदाहरण है। फ़ारस के राजा दारा ने उस प्रथा का आरंभ किया जो आज कल द्विधातु-अनुपात ('बाइमेटलिज़्म') के नाम से ज्ञात है। फ़ारस ने ही बड़ी सड़कें बनवा कर और नदियों पर पुल बना कर यातायात साधन प्रस्तुत करने की दिशा में मौलिक योजनाएं कीं। हिंदुस्तान ने जो भाग लिया उस का यथार्थ अनुमान उस समय हो सकेगा जब कि सिंधु घाटी की सभ्यता के गौरव का पूरा-पूरा हाल हम जान लेंगे। मोहेंजो दड़ो में प्राप्त सिक्के अब तक ज्ञात सिक्कों में सब से पुराने हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है। ऐसा विचार करने के कारण है कि पश्चिमी हिंदुस्तान और दक्षिणी फ़ारस में खुदाई हो तो अनेक अद्‌भुत परिणाम निकलेंगे और प्राचीन सभ्यता, संस्थाओं, और रहन-सहन के संबध के अनेक सिद्धांतों में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी। मौर्य-काल से पहले के और मौर्य-काल के प्राचीन भारतीयों ने व्यापारिक साख को बहुत उच्च कोटि तक पहुंचाया था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि हिंदुस्तान में ही पहले-पहल सोना खान से निकाला गया था। रुई की खेती हिंदुस्तान में ही सब से पहले आरंभ हुई। इस अद्‌भुत उपज ने आगे चल कर न केवल बुनने के व्यापार में वरन् आधुनिक संसार के समस्त व्यापारिक जीवन मे आश्चर्यजनक परिवर्तन उपस्थित किए। हिंदुस्तान कला-कौशल के प्रायः प्रत्येक विभाग में—जैसे लकड़ी का काम, हाथीदाँत का काम, धातु का काम, धुलाई, रंगसाजी, चमड़े का काम, साबुन बनाना, काँच फूँकना, बारूद, आतशबाजी, सिमेंट आदि के काम मे—समस्त एशिया का अग्रणी रहा है। उस की व्यापारिक वस्तुओं की बड़ी प्रशंसा हुई है। अकेला रोम एक करोड़ ७० लाख रुपए मूल्य की वस्तुएं हिंदुस्तान से लेता था। यहा की वस्तुओं की माँग, अफ़्रीका, दक्षिणी एशिया और चीन तक थी।

अठारहवी सदी से पूर्व संसार का कोई देश ऐसा न था जहां कि व्यवसाय इतनी उन्नत दशा में रहा हो जैसा कि चीन का था। ईसा से कई शताब्दियों पहले रेशम का व्यवसाय वहां स्थिर रूप से चल रहा था। वहीं से सन् ५५२ ईस्वी मे नेस्टोरियन लोग रेशम के कीड़ों के पालने की कला यूरोप मे ले गए। विभिन्न व्यवसायों के अपने अलग-अलग संघ या श्रेणियां हिंदुस्तान की प्रथा के ही अनुकूल हुआ करती थीं। यह श्रेणियां व्यावसायिक संगठन की दृष्टि से स्वायत्त होती थी। यह अपने नियम आप बनातीं, अपने अधिकार से इन नियमों को लागू करतीं, मालिक और मजदूर के बीच न्याय करतीं, और यह न्याय

एक ऐसी समिति द्वारा शासित होगा जिस के आधे सदस्य एक वर्ग के और आधे दूसरे वर्ग के होंगे

सम्राट् हीन सुंग ने ९वीं सदी के आरंभ में ऋण के प्रमाणपत्रों का प्रचलन किया। १०वीं सदी के अंत तक इस ने जातीय कागजी मुद्रा का रूप ग्रहण कर लिया। यह नोट ब्लाक के छापे द्वारा बनाए जाते रहे। फारस वालों ने १३वीं सदी के अंत तक चीनियों से कागजी मुद्रा का चलन ग्रहण कर लिया था। यूरोप में सन् १६५६ से पहले कागजी मुद्रा का प्रचार न हुआ। बारूद का व्यवहार जानने वाले सब से पहले लोगों में चीनी आते हैं। बारूद और कुतुबनुमा के व्यवहार ने (जो चीनियों को १२वीं सदी में भी ज्ञात था) युद्ध की कला, राजनीति, खोज और व्यापार के क्षेत्रों में क्रांति उपस्थित कर दी है। इसी प्रकार कोयले की प्राप्ति ने भी सभ्यता के विकास-क्रम में बड़ा साहाय्य दिया है। ईसा से दो शताब्दी पहले चीनियों ने कोयले को खान से निकाला और ईंधन के रूप में उस का व्यवहार किया।

यद्यपि मिश्र के लोग कागज और रोशनाई का व्यवहार जानते थे, फिर भी इस बात का श्रेय चीन के त्साई-लुन को है कि उस ने (१०५ ईस्वी में) वृक्ष की छाल, चिथड़ों और सन से हलका और सस्ता कागज बनाने की रीति निकाली। चीनियों ने इस कला को प्रायः पूर्णता तक पहुँचा दिया था। उन से यह कला अरबों ने आठवीं सदी में सीखी, और वहां से यह तेरहवीं सदी में यूरोप में पहुंच पाई। कागज के अतिरिक्त रोशनाई भी चीनियों ने काजली से तैयार की। ईसा से पूर्व तीसरी सदी में वह लाख रोशनाई का उपयोग करते थे। चीनियों ने ही मुद्रण-कला का भी आविष्कार किया, और इस प्रकार उन्हों ने कागज, रोशनाई, और छापे का प्रेस प्रस्तुत करके मानो आधुनिक सभ्यता को उस का सब से बलशाली शस्त्र प्रदान करने का काम पूरा किया। उन्हों ने छपाई पहले पत्थरों से आरंभ की और छठी सदी में इस कार्य में लकड़ी का उपयोग किया।

राजनैतिक विचार तथा संगठन के क्षेत्र में एशिया की कृति ने उतनी ख्याति नहीं लाभ की है जितनी कि उसे औचित्य के साथ करनी चाहिए थी। एशिया की प्राचीन सभ्यताओं के संबंध में विशेषतः चीनी सभ्यता के संबंध में आधुनिक खोजों ने कुछ ऐसी बातों पर प्रकाश डाला है, जिन से यह सिद्ध होता है कि राजनैतिक विचार तथा संस्थाएं एशिया में विकास की उच्च अवस्था को पहुँच चुकी थीं, और यहां पर यूरोपीय राजनैतिक

दर्शन की पेशबंदी हो चुकी थी। वास्तव में अफ़लातून से ले कर रूसो तक, कदाचित् ही को' ऐसा राजनैतिक विचार प्रस्तुत किया गया हो, जिस की पूर्वरेखा एशियायी विचारको के यहां नही मिलती। क्या कुटुंब, क्या ग्राम और क्या बड़ा साम्राज्य, ऐसी शायद ही को' संस्था हो जिस के विषय मे यहां प्रयोग न किए गए हों। सुमेरी सभ्यता ने जो ईसा से २५०० वर्ष पूर्व भी पुरानी सभ्यता समझी जाती थी, पहला क़ानून का संग्रह प्रस्तुत किया था और पहले राज्य, बल्कि साम्राज्य स्थापित किए थे। बैबिलोनिया वालों को इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्हों ने सुलैमान के जन्म और रोम की प्रसिद्ध "दस पट्टिकाओं" (टेन टैबलेट्स) से पूर्व ही विधान-संबंधी अपना महान् संग्रह प्रस्तुत किया था। हामूराबी (२१२३–२०८४ ई० पू०) ने अपने विधान-संग्रह की प्रस्तावना में आने वाले युगो के लिए यह अंकित कर दिया था कि शासन का उद्देश्य "बलशालियों द्वारा बलहीनों के दमन को रोकना, देश में ज्ञान-ज्योति फैलाना, और जनता के क्षेम के प्रयत्न करना" है। प्रांतीय तथा स्थानीय शासन की जो प्रथा असीरिया वालों ने चलाई वह फ़ारस होते हुए मैसिडोनिया तथा रोम में पहुँची। प्राचीन फ़ारस ने आनेवाली पीढ़ियो के लिए साम्राज्य-संगठन की दिशा में मार्ग-प्रदर्शन किया, और यह संगठन इतिहास के पृष्ठों मे अत्यंत अद्भुत और सुयोग्य माना गया है। राजा; कुलीन मंत्रियों का मंडल; सात न्यायाधीशों का विशाल न्यायालय; स्थानीय न्यायालयों की श्रृंखला; कानूनी कार्य-संचालन के नियम, विधान का प्रवचन करने वाले वकील; सुव्यवस्थित प्रांतीय शासन-संगठन—यह सब देन फारस वालों की, मैसिडोनिया तथा रोमवालों को रही है। इन लोगो ने धार्मिक सहिष्णुता के गुणों को भी जाना था। यह अपनी विस्तृत प्रजा के धर्म, आचरण, विधान, रीति-रिवाज, भाषा और मुद्रा तक की रक्षा किया करते थे। कितने ही विजित लोग अपने जातीय शासनों की अपेक्षा साम्राज्यकीय शासन को अधिक पसंद करते थे।

मेसोपोटामिया की राज्य-व्यवस्था में व्यक्ति-विशेष को राष्ट्र के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं प्राप्त थे। राष्ट्र-विषयक चिंतन में इस का समावेश नहीं हुआ था। परंतु जूडिया ने एक नया स्वर उठाया। अमास और इसाया ने धनवानों के विरुद्ध ग़रीबों का पक्ष लेकर घोर आंदोलन उठाया; यह समाजवाद का श्रीगणेश जैसा था। यहां पर सामाजिक चेतना एक निश्चित रूप ग्रहण करती है और ऐसी व्यवस्था की कल्पना करती है जब कि युद्ध अथवा ग़रीबी संसार की शांति और भ्रातृभाव को भंग न करेंगे।

हिंदुस्तान भी पिछड़ा हुआ नहीं था। उस का कार्य शासन-क्षेत्र में विविध श्रेणी बद्ध विभागों का संस्थापन और स्थानीय शासन का विकास रहा है। इस पर प्राचीन यूनानी लेखक और आधुनिक इतिहासज्ञ समान-रूप से आश्चर्य में हैं। विंसेंट स्मिथ महोदय तक को संदेह है कि यूनान के प्राचीन नगरों में इतनी सुंदर व्यवस्था रही हो। साम्राज्य-शासन का केंद्रीय संगठन, तथा नगरों और ग्रामों का संगठन पूर्ण और सफल था। फारसियों की धार्मिक सहिष्णुता नीति का अंग थी; इसे अशोक ने धर्म का अंग माना और राजनीतिक सिद्धांत के रूप में प्रस्थापित किया। अशोक की शासक और सम्राट् के रूप में प्रतिष्ठा संसार के इतिहास में अद्वितीय है। हिंदुस्तान ने ब्राह्मणों की जन्म और संस्कृति के आधार पर प्रतिष्ठा कर के एक ऐसी कुलीन-सत्ता स्थापित की जिस के बराबरी की सत्ता इतिहास में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती, कारण यह कि इस सत्ता का आधार संपत्ति, सैनिक अथवा राजनैतिक बल न था। यह सत्ता जितनी स्थायी सिद्ध हुई है उस का हमारा इतिहास साक्षी है।

राजनैतिक चिंतन में चीन का जितना बड़ा भाग रहा है, उतना कदाचित् किसी दूसरे एशियायी देश का नहीं रहा है। व्यावहारिक तथा राजनैतिक सदाचार के प्रश्न पर जितना विस्तृत और गहरा विचार इस "जीवित सभ्यताओं में से सब से प्राचीन और समृद्ध सभ्यता" ने किया है, उतना अन्यत्र नहीं हुआ। उस ने जो शासन-व्यवस्था, सामाजिक संगठन, और सामाजिक नीतिशास्त्र विकसित किए वह इतिहास में अद्वितीय है। इसी नाते से चीनियों को सामाजिक व्यवस्था के महान् निर्माण-कर्ताओं में समझना चाहिए। यों तो अवश्य ही, किसी भी—चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक हो—पूर्णता का दावा नहीं हो सकता, फिर भी प्रामाणिक आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि चीन ने एक आदर्श शासन-व्यवस्था का विकास किया था, जिस में कि जनतावाद और राजसत्ता का मधुर सम्मिश्रण था, जिस में शासन सत्ता भार शासितों पर कम से कम पड़ता था, और जिस के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति के लिए, वह चाहे जिस वर्ग अथवा श्रेणी का हो, उन्नति के समान अवसर प्राप्त थे। इस व्यवस्था के भीतर प्रत्येक जिले को राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से अपने क्षेत्र में स्वयं शासन के अधिकार प्राप्त थे। यह बात स्वीकृत है कि चाऊ-काल (११२२–२५५ ई० पू०) में चीन ने ऐसी सभ्यता संस्थापित कर ली थी, जिस की बराबरी संसार का कोई भी प्राचीन और संभवतः अर्वाचीन देश भी नहीं कर सकता।

चीनी लोग परमार्थ विद्या, धर्म, और अध्यात्म के चक्कर में नहीं थे। उन्हो ने अपने मस्तिष्क को उत्तम प्रकार के सामाजिक जीवन के लिए व्यवस्था उत्पन्न करने में और तर्कपूर्ण ढंग से सामाजिक और राजनैतिक सदाचार के निर्णय में लगाया। कन्फ्यूसियस ने यह बताया था कि व्यक्तियों के गुणविशेष में कुटुंब की, और अंततः राष्ट्र और साम्राज्य की दृढ़ता निहित है। उस ने संसार की एक विराट् जनसत्ता के रूप में कल्पना की थी, जिस का उद्देश्य जगद्-व्यापी शांति की स्थापना था, और जिस में शक्ति जनता के चुने हुए "गुणी, धार्मिक और योग्यता वाले" प्रतिनिधियों के हाथों में थी। उस की कल्पना के राज्य मे बच्चों की यत्नपूर्ण और कोमल देखरेख का, युवकों तथा प्रौढ़ों के लिए धधों का, और बद्धो के उचित संरक्षण का प्रयत्न था। मो-ती भी इसी परिणाम पर पहुँचा था कि सामाजिक (जिस मे राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों ही अंग सम्मिलित है) समस्या का हल एकमात्र विश्वव्यापक प्रेम में है। यह एक ऐसी योजना थी जो चीनियों के विचारों मे हून-वंश के उदयकाल (३री सदी ई० पू०) से बराबर मौजूद थी, और जिस ने सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं पर अद्वितीय प्रभाव डाला था।

कन्फ्यूमियस के मत का आधार लेकर चीनियों ने अपने विचारों का प्रचार किया। यह विचार उस समय प्रायः वही काम करते थे, जो आधुनिक जगत में समाजवादी विचार। कन्फ्यूसियस के विचारों का विरोध हुआ, उन पर आपत्ति की गई, परंतु यदि अपने मौलिक रूप में नहीं तो साररूप में वह विजयी सिद्ध हुए। मेन्सियस (३७२–२८६ ई० पू०) ने बताया कि जनतावाद की सफलता की कुंजी व्यापक शिक्षा में है और अशिक्षितों की प्रजा-सत्ता एक दुर्भाग्य की वस्तु होगी। यद्यपि उस ने प्रजा के क्रांति के अधिकार को स्वीकार किया, परंतु जब सी-सिंग ने यह दावा किया कि प्रजावर्ग का शासन होना चाहिए तो उस ने इस का विरोध किया।

हॉब्स और रूसो द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों पर ईसा से प्रायः चार सदी पहले ही चीनी विचारकों ने विचार कर लिया था। मेन्सियस (३७२–२८६ ई० पू०) का विश्वास था कि मनुष्य-प्रकृति अपने साररूप में भली है, इस के विपक्ष में हीन-जी (मृत्यु २७५ ई० पू०) ने दृढता-पूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मनुष्य-प्रकृति स्वभावत. दुष्ट है। चीनी दार्शनिकों ने प्रकृति के नियमों पर गहरा चिंतन किया था, और धर्मस्वरूप ताओ पर आस्था लाए थे। फिर तो "प्रकृति की ओर लौटो" इस का स्वर चीनी विचार-प्रवाह

में आया, और चुंग-जी (जन्म ६०० ई० पू०) ने स्त्री, सम्पत्ति और सोना तथा मोतियों पर अधिकार के विरुद्ध शांतिपूर्ण प्रचार-कार्य किया।

सब से बड़े हन-वंशी सम्राट् वू-ती (१४०—८७ ई० पू०) ने समाजवाद के पक्ष में साहसी प्रयोग किए, और प्राकृतिक सम्पत्ति पर राष्ट्रीय अधिकार, और राष्ट्र-नियमित यातायात तथा विनिमय स्थापित किए, व्यापार पर नियंत्रण लगाए और वस्तुओं के मूल्य निर्धारित किए. इस प्रकार दलालों या बीचवालों के नफे को उस ने काट दिया, साथ ही उस ने बेकारों को धंधे बताए। यह साहसी प्रयोग ठीक-ठीक जड़ पकड़े इस से पहले ही कुछ दैवी बाधाओं, जैसे बाढ़ और अनावृष्टि के कारण यह टूट गया। फिर भी जो विचार और कल्पनाएं प्रसारित हुई वह बनी रह गई। सुंग-वंश ने उन्हें ग्रहण किया और उस वंश का सेवा करने वाले एक बड़े मंत्री वंग-आन् शिए (१०२०—८६ ई०) ने वाणिज्य-व्यापार तथा खेती का प्रबंध राष्ट्र के नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया। उस ने बुड्ढों, बेकारों तथा गरीबों के लिए गुजारे बांध दिए। इस बार भी अनेक कारणों से प्रयोग सफल न हो सका।

चीनी व्यवस्था का एक मुख्य कार्य सरकारी नौकरियों के लिए परीक्षा-प्रथा का प्रचलन करना भी था। परीक्षा-प्रथा और अधिकारियों का चुनाव चीनी युक्ति और सूझ-बूझ के उदाहरण हैं। यह क्रम हन-वंश (३री सदी ई० पू०) में आरंभ हुआ, और तांग-वंश (६१८—९०५ ई०) के समय में पूर्णतया स्थापित हुआ। इस परीक्षा-प्रथा का उद्देश्य ज्ञान की जांच करना नहीं था, वरन् परीक्षार्थी के विवेक और चरित्र की जांच करना। धर्म अथवा राजकीय समर्थन से यह प्रथा स्वतंत्र थी।

सब से अंत में यह भी जान लेना चाहिए कि राजनैतिक संगठन और विकास में जापान की क्या देन रही है। यह देन किसी प्रकार हेय नहीं ठहराई जा सकती। चीनियों जैसी जापान की राज्य-व्यवस्था नहीं थी। जापान में सामंतशाही का विकास हुआ था। सोलहवीं सदी में ईएयासु नाम के [illegible] ने जापान में सामंतशाही व्यवस्था को ऐसा संगठित किया कि यह संसार की सब से व्यवस्थित सामंतशाही कहलाई है। जापानी सामंत-शासित समाज का मूल आधार इस बात पर था कि "प्रत्येक भद्र पुरुष सैनिक था, और प्रत्येक सैनिक भद्र पुरुष।" "सामुराइ" खड्गधारी जापानी सामंत-प्रथा के सब से मनोरंजक अंग थे। उन की आन के नियम (बुशिदो), उन का आर्थिक लाभ का तिरस्कार,

तथा कठिन और मितव्ययी जीवन उन की सहन शक्ति उन की दृढ़ राजभक्ति और दृढ़ प्रतिज्ञा-पूर्ति, उन की निर्भीकता—इन बातों ने मिल कर राज्य के हितैषी ऐसे सेवक उत्पन्न किए जिन की बराबरी बैबिलन, स्पार्टा, और रोम के तथा राजपूत सैनिक भी नहीं कर सकते थे। इस जीवट के लोगों ने सामंतकालीन युग में जापान को सुदृढ़ बनाया, और हमारे समय मे भी, उन के द्वारा ही जापान उन्नत हो कर एशियायी महाद्वीप के देशों में अग्रणी बना है।

जिस वेग से जापान ने अपने को आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए तैयार किया है, और संगठन की योग्यता राजनैतिक, सैनिक, और आर्थिक क्षेत्रों में समान-रूप से दिखाई है, उसे देख कर आश्चर्य होता है, और सारे संसार के लिए नीतिपाठ प्रस्तुत करता है। जब कि जापान ऐसे छोटे राष्ट्र ने इतने थोड़े समय में यूरोप के मुक़ाबले में अपना सिक्का पूर्व में जमा लिया, तब चीन और हिंदुस्तान के जाग्रत होने पर सहज मे अनुमान किया जा सकता है कि आधुनिक सभ्यता की सारी रूपरेखा बदल सकती है—उसी प्रकार जिस प्रकार कि इंडस्ट्रियल क्रांति ने यूरोप की रूपरेखा बदल दी थी।

महायान संप्रदाय का क्रमिक विकास

[लेखक---पंडित परशुराम चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

विषय-प्रवेश

बौद्ध धर्म, संसार के लिए, भारतवर्ष की एक बहुत बड़ी देन है, और उस का उदय भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। उस के प्रवर्त्तक ने, सर्वप्रथम, कदाचित्, प्रचलित वैदिक धर्म की कतिपय विकृत रूढ़ियों को दूर कर, उस के शुद्ध व सुधरे रूप को ही प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया था, और उस का उपदेश भी, वास्तव मे, औपनिषदिक सिद्धांतों का ही परिणाम-स्वरूप था। अतएव, आत्मा व परमात्मा को एक समझने वाले उपनिषत्कार, वासनाक्षयपूर्वक मन को निर्विषय कर अटल शांति लाभ करने की जिस अवस्था को 'ब्रह्मनिर्वाण' की आधार-दर्शक संज्ञा देते थे, उसे ही गौतमबुद्ध ने, अनात्मवादी हो कर भी, केवल 'निर्वाण' के क्रिया-दर्शक नाम से अभिहित किया था;[१] और पवित्र नैतिक जीवन को, देवताओं तक के समाज के लिए आदर्श निश्चित कर दिया था। उस के अनुयायियों का समूह, इसी कारण, उस के नाम शाक्यसिंह के अनुसार, आरंभ में, 'शाक्यपुत्रीय श्रमण' मात्र कहला कर ही प्रचलित हुआ[२]। किंतु, आगे चल कर, इस आंदोलन ने धार्मिक विप्लव का रूप धारण कर लिया और भारतीय समाज में एक प्रकार की नवीन स्फूर्ति संचारित कर दी। फिर तो समय-समय पर सहायता पाकर धीरे-धीरे यह दूर-दूर के देशों मे भी फैलने लगा और इस की विचारधारा का एक प्रमुख अंश, परिस्थितियों के बहुमुखी प्रवाह में पड़ कर क्रमशः विकसित होता हुआ, महायान संप्रदाय के रूप में परिणत हो गया। फलतः बौद्धधर्मी लोगो की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई, और प्रायः आठ नव सौ वर्षों के ही भीतर, उस के

---

[१] तिलक, 'गीतारहस्य', प्रथम हिंदी संस्करण, पृ० ५७५

[२] रमेशचंद्र दत्त, 'सिविलिजेशन इन एंश्येंट इंडिया', भाग १, पृ० ३०८

मानने वालों में भूमंडल के आधे से अधिक मनुष्य सम्मिलित हो गए। किंतु महायान संप्रदाय, उस समय तक, मूल बौद्ध धर्म को हीनयान ठहरा कर, उसे अपने जन्मस्थान से अलग कर चुका था, और स्वयं अपने सिद्धांतों को अधिक से अधिक व्यापक बनाता हुआ, सब कहीं लोकप्रिय होने का भी प्रयत्न कर रहा था। अतएव, अपने मूल स्थान पर प्रचलित हिंदू धर्म में धीरे-धीरे अंतर्लीन होते जाने के कारण, अंत में, उसे भी विदेशों में ही गौरव का स्थान मिला। महायान संप्रदाय की उत्पत्ति और उस के क्रमिक विकास की कहानी, इस प्रकार, हमारे धार्मिक इतिहास का एक मनोरंजक व शिक्षाप्रद अध्याय है, जिस का, नीचे की कुछ पंक्तियों द्वारा, केवल सारांश मात्र देने की चेष्टा की जायगी।

आज से बहुत दिनों पहले, नेपाल राज्य की दक्षिणी सीमा पर, एक शाक्यवंशी जनपद बसा हुआ था, जिस के शासक शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु नगरी थी।

गौतम बुद्ध—गृहत्याग व बुद्धत्व प्राप्ति

शुद्धोदन की आयु के ४५ वें वर्ष में, उन की रानी मायादेवी के गर्भ से, जब वह प्रसव-काल को समीप जान कर प्रथानुसार अपने मायके देवदह जा रही थी, तो मार्गस्थ लुंबिनी वन के शालवृक्षों की छाया में, एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसे सिद्धार्थ नाम दिया गया। माता, प्रसवपीड़ा के कारण, एक सप्ताह के भीतर ही मर गई और बच्चे का लालन-पालन उस की विमाता प्रजापति गौतमी ने किया। सिद्धार्थ बचपन में ही एक चिंताशील व एकांत-प्रेमी बालक था, इस कारण, उस की उदासीनता से भयभीत हो, राजा शुद्धोदन ने उस का विवाह यशोधरा नाम की किसी कौलिय कुमारी के साथ करा दिया और दोनों की विलासिता के लिए, सभी भाँति के सामान भी सजा दिए। किंतु उस युवक को किसी प्रकार की विलासप्रियता न बदल सकी और भ्रमण करते समय दिखाई पड़ने वाले किन्हीं वृद्ध, रोगी, मृतक व प्रसन्न-मुख संन्यासी की विविध अवस्थाओं पर पुनरपर विचार करने के कारण, वह और भी विरक्त हो गया, तथा एक दिन, २८ वर्ष की युवावस्था में, केवल एक सप्ताह के दुधमुँहे बच्चे राहुल को गोद में लेकर सोई हुई अपनी पत्नी तथा एक समृद्ध राजसी जीवन का परित्याग कर, वह रात को अचानक चल निकला। उस समय उस का हृदय अत्यंत क्षुब्ध था और अनेक प्रकार के गंभीर विचार उस के मस्तिष्क में उठ रहे थे, अतएव, वैभव का सताया राजकुमार, एक अकिंचन की भाँति, इधर-उधर भटकने लगा, और मल्लों के देश मगध की राजधानी राजगृह आदि में घूमते हुए अनेक प्रकांड विद्वान् व

कर्मकांडी पंडितों से भेंट कर, उस ने अपनी गहरी प्यास बुझानी चाही; तथा कुछ काल तक आराड़ कालाम व उद्दक जैसे नामी सांख्य के आचार्य एवं राजगृह के रुद्रक जैसे नास्तिकों से वह शिक्षा भी ग्रहण करता रहा। किंतु अभीष्ट सफलता उसे कहीं भी न मिली। इस कारण, गया के पहाड़ी जंगलों में नैरंजरा नदी के किनारे जाकर, उस ने उरुवेल नामक स्थान पर प्रायः छः वर्षों तक घोर तपस्या की, जिस से उस का शरीर अत्यंत दुर्बल हो गया, और क्षुत्पिपासा द्वारा निर्बल हो कुछ अवसर तक बेसुध हो जाने पर, उसे अपने साथियों तक ने त्याग दिया। परंतु उस का निश्चय दृढ़ था और उस की प्रबल आशा-वादिता, अंत में, उसे अमरबोधि के नीचे बुद्धत्व प्राप्त कराने में समर्थ हो गई, और उसे, प्रकाश के एक ही आलोक में, अचल शांति का साम्राज्य मिल गया।

मत-प्रचार व परिनिर्वाण

महात्मा बुद्ध ने, अपने लक्ष्य में सिद्धि प्राप्त कर, काशी की ओर प्रस्थान किया, और वहां मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) में जा कर, सर्वप्रथम अपने 'धम्म-चक्क-पवत्तन' की शिक्षा कौडिण्य, वप्प, भद्दिय, महानामन व अस्सजि नामी पाँच शिष्यों को दे कर, उन्हे प्रचारार्थ इधर-उधर भेज दिया, तथा स्वयं भी उपदेश देते हुए वे पुनः उरुवेल चले गए। इस समय तक उन के शिष्यो की संख्या ६० तक हो चली थी और, उरुवेल पहुँच कर, उन्हों ने काश्यप नामी प्रसिद्ध कर्मकांडी विद्वान् को भी दीक्षित कर लिया, तथा उसे साथ ले, मगध की राजधानी राज-गृह जा कर, वहां के महाराज बिबसार एवं सारिपुत्त, मोग्गलान आदि को भी अपने अनु-यायियो में सम्मिलित किया। इसी प्रकार, कोशल की राजधानी श्रावस्ती पहुँच कर उन्हो ने महाराज प्रसेनजित् को भी उपदेश दिए और उन के जेतवन में वे बहुत दिनों तक ठहरे भी रहे। फिर तो, अपने बुद्धत्व के बारहवे वर्ष तक, उन्हों ने अपने पिता शुद्धोदन, पुत्र राहुल, एवं आनद, आदि जैसे स्वजन तथा अनिरुद्ध, उपलि आदिक अन्य लोगों को भी अपने धर्म में सन्निविष्ट कर लिया, जिस से उन की ख्याति और भी बढ़ चली और शिष्यों की सख्या सैकड़ों तक पहुँच गई। इस कारण उन का प्रचारकार्य अब अधिकतर तीन मुख्य केंद्र अर्थात् राजगृह, काशी और श्रावस्ती से ही होने लगा, और अन्य कई स्थानों पर, उन के तथा उन के अनुयायियों के वर्षावास के लिए, वासगृह निश्चित हो गए जहां वे, सब के साथ एक समान पैदल घूमते हुए पहुँचते और एकत्रित जनता की ज्ञान-पिपासा दूर करने का प्रयत्न किया करते। उन के इस कार्य में जैनों, ब्राह्मणों एवं देवदत्त जैसे कतिपय

स्वजनों तक ने भी कई बार बाधा पहुंचानी चाही किंतु इस से वे कभी विचलित नहीं हुए, और उन का संदेश धीरे-धीरे कम से कम, शाक्यवंशियों के लिए तो, अपना जातीय धर्म ही बन चला। उन के अनुयायियों में अंगुलिमाल डाकू जैसे निम्न श्रेणी के लोग तथा पुरुषों के ही समान, प्रजापति गोतमी, यशोधरा, आदि स्त्रियां भी सम्मिलित होती रहीं। अतएव, एक बार, पाटलिग्राम, कोटिग्राम, नादिकाग्राम होते हुए, जिस समय वे वज्जियों की राजधानी वैशाली पहुंचे, और वहां के एक आम्रवन में ठहरे तो, उस की मालकिन अंबापाली वेश्या तक, उन के प्रभाव में आ कर, उन की शिष्या हो गई। अंत में, पावाग्राम-निवासी चुंद सुनार के घर तैयार किए गए, 'सूकर मद्दव' नामी कोई भोज्य पदार्थ खा लेने पर, उन्हें प्राणघातक रोग ने आ घेरा और कुशीनगर के निकटवर्ती मल्लों के शालवन में उन का, ८० वर्ष की अवस्था में, परिनिर्वाण हो गया।

प्रमाण-ग्रंथ, काल-निर्णय व उपदेश-प्रणाली

महात्मा गौतमबुद्ध के जीवनकाल व चरित की घटनाओं के आधारस्वरूप ग्रंथों में 'ललितविस्तर', 'बुद्धचरित', 'परिनिब्बाणसुत्त', एवं 'महावग्ग' आदि मुख्य समझे जाते हैं, और इन में से भी पहले में, उन के तुषित स्वर्ग की पूर्व-कथाओं से ले कर, केवल धम्म-चक्क-पवत्तन-काल तक तथा दूसरे में, बुद्धत्व प्राप्ति के अनंतर आठवें वर्ष में उन के कपिलवस्तु की ओर लौटने तक के ही वृत्तांत दिए हैं। इसी प्रकार तीसरे में उन के अंतिम समय के प्रायः तीन महीनों की घटनाएं वर्णित हैं तथा चौथे में उन के विषय की बहुत सी फुटकर बातें संगृहीत हैं। इस के सिवाय सिंहल के प्रसिद्ध 'महावंश' ग्रंथ से पता चलता है कि उन का 'परिनिब्बाण' ईसा से ५४३ वर्ष पूर्व हुआ था, जिस के अनुसार उन का जन्म-काल ८० वर्ष और भी पहले, अर्थात् ६२३ ई० पू० में मानना चाहिए। परंतु कुछ पाश्चात्य विद्वानों के पंडितों ने, उस की गणना-पद्धति में किन्हीं अशुद्धियों का अनुमान कर, परिनिर्वाण-काल को ६६ वर्ष इधर अर्थात् ४७७ ई० पू० तक हटा दिया, और चीन देश के कैंटन में पाए गए किसी प्रमाण के आधार पर, वे लोग अब उस का ४८६ ई० पू० में ही होना निश्चित करते हैं।[१] महात्मा बुद्ध का जन्म, इस प्रकार अंतिम निर्णय के अनुसार, ५६६ वर्ष ई० पू० में हुआ था। २८ वें वर्ष में उन्हों ने घर छोड़ा था। छः वर्षों तक शांतिप्राप्ति के लिए कई

---

[१] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० १९

प्रयत्न किए थे, तथा ३५ वर्ष की अवस्था में बुद्धत्व प्राप्त कर, उस के अनंतर ४५ वर्षों तक वे अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। इस के सिवाय, प्राप्त प्रमाणों के आधार पर, यह भी पता चलता है कि उन की नित्यचर्या में उषःकाल का उठना, ध्यान का अभ्यास करना, अपने शिष्यों के साथ धर्मचर्चा करना, करवा हाथ में लिए घर-घर घूम कर मौन वेश मे भिक्षा माँगना, सब के साथ व एक ही समान केवल एक बार भोजन करना, आदि बाते सम्मिलित थी, और उन के उपदेश का क्रम यह था कि वे उपस्थित जनता के सामने, सर्व-प्रथम, लोगों में प्रचलित विचार-परपरा की आलोचना करते, उस की भिन्न-भिन्न त्रुटिया दिखलाते हुए, उसे वास्तविक समस्याओं के सुलझाने में असमर्थ ठहराते, और अंत मे, अनेक युक्तियों द्वारा, अपने मुख्य-मुख्य सिद्धांतों का दिग्दर्शन करा कर उन्हें हृदयंगम करा देने की चेष्टा किया करते। अपने शिष्यों के साथ गंभीर विषयो पर विचार करने के साथ ही वे उन के दैनिक व्यवहार की छोटी-छोटी बातों तक में भी बहुधा परामर्श दिया करते थे, और इस प्रकार, उन की दैनिक कार्यपद्धति, मानव-जीवन की पूर्णता को लक्ष्य कर, बराबर चला करती थी।

'बुद्धचरित' के रचयिता आचार्य अश्वघोष ने लिखा है कि आराड़ कालाम व उद्दक ने अपने शिष्य शाक्यसिंह गौतम को, कापिल-सांख्य के अनुसार, अष्ट प्रकृति, षोड़श विकार एवं 'पुरुष' के विषय में शिक्षा दी थी और आत्मा का, निम्नतम प्राणियों से लेकर कामधातु वा इच्छा-जगत एव रूपधातु वा मूर्तिमान् जगत द्वारा होते हुए, अरूपधातु वा प्रकाश जगत की ओर क्रमश विकसित होता जाना दर्शाया था। आराड़ कालाम ने, इस के साथ ही, यह भी बतलाया था कि अरूप वा प्रकाश जगत में निराकार आत्मा की अवस्था दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों की होती है, जिन्हे क्रमशः 'आकाशांत्यायतन' वा आकाशवत् असीम, एवं 'अकिंचन्या-त्यायतन' वा ज्ञानवत् असीम कह सकते है, और इसी प्रकार, उद्दक ने भी इन्हें इन दोनो से ऊपर की एक तीसरी श्रेणी की अवस्था का भी परिचय दिया था, जहां पहुँच कर निराकार आत्मा 'नैवसंज्ञा न संज्ञानतायतन' अथवा पूर्ण अनामी की स्थिति प्राप्त कर लेती है और उस दशा में नाम असीमता तक का भी नही लिया जा सकता। इस अंतिम श्रेणी तक जा कर ही आत्मा 'केवली' वा पूर्ण निरपेक्ष कहलाने योग्य होती है, और इस दशा में ही उस का, सापेक्ष्य संसार के साथ, कोई संबंध नहीं रह जाता। परंतु जिज्ञासु गौतम को इन बातों से पूर्ण

क्षणिकवाद

संतोष नहीं हुआ, और उन्हों ने सोचा कि यदि आत्मा का अस्तित्व मान लिया जाय तो उसे किसी न किसी वस्तु द्वारा अपेक्षित भी समझना ही पड़ेगा। वह निरपेक्ष नहीं रह सकती। अतएव उन्हों ने गुरुओं की शिक्षा में अभीष्टप्राप्ति की आशा छोड़ दी और स्वावलंबन पर ही विश्वास किया। सांख्यदर्शन के आधारस्वरूप 'सत्कार्यवाद' के अनुसार, इसी प्रकार कार्य का कारण के अंतर्गत बीजरूप में विद्यमान रहना आवश्यक है, अतएव कार्य व कारण अर्थात् दोनों का स्थायी होना भी अनिवार्य है। परंतु बुद्धत्व प्राप्त कर लेने पर, गौतम बुद्ध को किसी भी स्थायी कारण वा कार्य का अस्तित्व मान्य न हुआ और वे सभी पदार्थ, यहां तक कि आत्मा को भी क्षणिक ही समझने लगे। इस कारण, सत्कार्यवाद के स्थान पर, उन्हों ने अपने 'क्षणिकवाद' का प्रचार आरंभ किया, जिस के अनुसार आत्मा की अंतिम अवस्था में, न तो कोई 'संज्ञा' वा नाम रहता है, और न किसी 'संज्ञि' वा नामधारी का ही अस्तित्व माना जा सकता है। महात्मा गौतम बुद्ध की दृष्टि में, इस प्रकार, सारा जगत (अन्तर्जगत व बहिर्जगत इन दोनों रूपों में ही) एक अनंत प्रवाह की दशा में सदा बदलता रहता है, और वैसी स्थिति में, आत्मा को निरपेक्ष मानना भी असंगत नहीं।[1]

अंतिम ध्येय

वैदिक धर्म, आरंभ में, अधिकतर यज्ञादि के अनुष्ठानों द्वारा देवताओं को प्रसन्न-कर, उन की सहायता से, एक सुखमय जीवन व्यतीत करने तक ही सीमित था, किन्तु उपनिषदों में, दार्शनिक विवेचन की पद्धति से जीवात्मा को परमात्मा से प्रकट हुआ मान कर, यह विचार किया गया था कि कर्मों के प्रभाव में आकर जब इसे आत्मा के नियमानुसार, जन्मान्तर ग्रहण करना पड़ता है, तो यह निश्चय है कि उन दोनों की अभिन्नता के ज्ञान द्वारा ही पार्थिव जीवन से छुटकारा मिलेगा। महात्मा गौतम बुद्ध ने इन में से वैदिक देवताओं, उन के स्वर्ग नरकादि तथा विविध कथाओं तक को तो एक प्रकार से मान लिया और अपने ढंग से, कर्म-वाद व जन्मान्तर को भी स्वीकार कर लिया, किन्तु आत्मा के अनादित्व में अविश्वास प्रकट कर उन्हों ने परमात्मा के विषय को भी संदिग्ध ही छोड़ दिया। उन के सामने जो समस्या थी उस के सुलझाने के लिए दार्शनिक विवेचन अनावश्यक जँचता था, और अपने

[1] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० १५–१६

शिष्य मलंख के तत्वज्ञान-संबंधी प्रश्न छेड़ने पर, उन्हों ने, इसी कारण, स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि जो व्यक्ति अग्नि की ज्वाला से दग्ध हो रहा हो, उस का पहले अग्निकुंड से बाहर आना और विषैले वाणों से विद्ध व्यक्ति के शरीर से पहले तीरों का निकाला जाना अत्यंत आवश्यक है, और ऐसे अवसरों पर इस का निर्णय करने लगना निरी मूर्खता है कि पहला आग से कैसी दशा में निकलेगा अथवा दूसरे के शरीर में घुसे हुए वाणों की रचना किस प्रकार की होगी।[1] उन्हों ने, वास्तव में, संसार के जीवन को दुःखमय पाया था और वे पहले इसी विचार में अधिक संलग्न थे कि किस प्रकार प्राणिमात्र के कष्ट दूर किए जायँ। अतएव, अपने शिष्यों को उपदेश देते समय, उन्हों ने उस समय केवल इतना ही कहा कि तुम केवल चार 'आर्यसत्यों' को भलीभाँति समझ लो और आठ 'आर्य अष्टांगिक मार्गो' का अनुसरण करो क्योंकि, पहले द्वारा, उन की समस्या का पूर्णतः ज्ञान हो जाना संभव था, और दूसरे द्वारा, भोग-विलास तथा तपस्या, दोनों की सीमाओं को त्याग कर, उसे दूर करने की चेष्टा की जा सकती थी। उन का ध्येय मनुष्य एवं परमेश्वर के बीच संबंध का निर्णय कर दार्शनिकता के फेर में पड़ना नहीं था, बल्कि वे चाहते थे कि, सर्वप्रथम, मानव-समाज में ही पारस्परिक संबध निर्धारित कर शुद्ध नैतिक जीवन का आदर्श स्थापित किया जाय। अतएव अपने अंतिम सिद्धांत निश्चित करते समय उन्हो ने वर्तमान परिस्थिति वा देश-काल पर ही अधिक जोर दिया।

मुख्य सिद्धांत

महात्मा गौतम बुद्ध के मुख्य सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है——उन्हों ने यह स्थिर कर लिया था कि चार बातें अर्थात् (१) दुःख, (२) दुःख-समुदय, (३) दुःख-निरोध, व (४) दुःख-निरोध-मार्ग निश्चित हैं; जिस का तात्पर्य यह है कि हमारा जीवन दुःखमय है, और जीवन वा उस के आनंद की इच्छा करना ही दुःख का कारण है, इस लिए उस इच्छा वा तृष्णा के क्षय द्वारा दुःख की भी निवृत्ति हो सकती है, और तृष्णा का क्षय पवित्र जीवन से प्राप्त किया जा सकता है। इन चारो बातों (चत्वारि आर्यसत्यानि) मे से प्रथम के अस्तित्व का प्रमाण वे यह कह कर देते थे कि संसार में सब कुछ नाशमान् वा क्षणस्थायी जान पड़ता है (सर्वं क्षणिकं क्षणिकमिति) और सब कही जरामरणादि के रूप में दुःख ही

---

[1] रुईकन कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज़्म', पृ० ५४

दुःख दिखाई पड़ता है (सर्वं दुःखं दुःखमिति), तथा आत्मा का अस्तित्व कहीं भी सिद्ध नहीं होता (सर्वमनात्ममनात्ममिति) और इसी भाँति, दूसरे के संबंध में भी उन्हों ने, कार्य-कारण के नियमानुसार, दिखलाया था कि किस प्रकार, वास्तव में, तृष्णा ही सारे दुःखों का मूल कारण है। उन के इस दूसरे प्रमाण को 'द्वादशप्रतीत्यसमुत्पाद' कहते हैं और वह यों बतलाया जा सकता है कि भविष्य में जरामरणादि का दुःख तभी संभव है, जब 'जाति' या जन्म हो और वर्तमान जन्म, 'भव' अथवा आती हुई परंपरा के कारण हुआ है जो स्वयं 'उपादान' या आसक्ति पर अवलंबित है, और आसक्ति बिना तृष्णा के नहीं हो सकती। इसी प्रकार तृष्णा भी, वास्तव में, 'वेदना' का फलस्वरूप है, जो स्वयं 'स्पर्श' पर निर्भर है और स्पर्श 'षडायतन' या छहों इंद्रियों के समूह द्वारा उत्पन्न हुआ करता है। फिर षडायतन के मूल में भी 'नामरूप' है, जो 'विज्ञान' वा चेतना से बनता है, और विज्ञान का भी कारण 'संस्कार' है, जो मन में 'अविद्या' द्वारा उत्पन्न होता है[1]। यह भवचक्र निरंतर चलता रहता है और इस का टूटना तभी संभव है जब तीसरे सिद्धांत के अनुसार, वह अवस्था प्राप्त हो जाय जिसे उन्हों ने निर्वाण का नाम दिया था और जिस का अधिक स्पष्टीकरण आगे चल कर हुआ। निर्वाण की पूर्णावस्था प्राप्त करने के लिए भी, इसी प्रकार, उन्हों ने चौथे सत्य के रूप में, 'अट्ठांगिको' अथवा आर्य अष्टांगिक मार्ग के नियम निश्चित किए थे। यह मार्ग एक ओर भोगविलास-मय जीवन के विरुद्ध था, तो दूसरी ओर, शरीर को व्यर्थ कष्ट पहुँचाने वाली तपश्चर्यादि से भी भिन्न था और इसी कारण, इस में (१) सम्यक् वा उचित 'विचार', (२) सम्यक् वा उचित 'संकल्प', (३) सम्यक् वा उचित 'वाणी', (४) सम्यक् वा शुद्ध 'कर्म', (५) सम्यक् वा शुद्ध आजीविका, (६) सम्यक् वा ठीक 'व्यायाम' वा उद्योग, (७) सम्यक् वा ठीक 'स्मृति' वा चित्तवृत्ति, एवं (८) सम्यक् वा पूर्ण 'समाधि' सम्मिलित थे।

विशेषता

महात्मा गौतम बुद्ध की जीवनचर्या एवं उन की सिद्धांत-प्रणाली के उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि उन का मुख्य उद्देश्य सारे प्राणियों का दुःख-निवारण था, और इस के लिए ही वे, सर्वप्रथम, आत्मसंयम के अभ्यास की भी आवश्यकता समझते थे। वैदिक धर्म के आत्मज्ञान की

[1] हरिसिंह गौड़, 'दि स्पिरिट अव् बुद्धिज़्म', पृ० १०७

जगह उन्हों ने नैतिक जीवन का आदर्श सब के सामने रक्खा था। वैदिक धर्म का नैतिक आदर्श शुद्ध आत्मज्ञान द्वारा अपने को आत्मविलीन करने तक ही सीमित था, और उस के स्थान पर इन्हों ने आत्मप्रत्यय एवं आत्मसंयम-पूर्वक जनता की सेवा करने का मार्ग भी ढूँढ निकाला। महात्मा गौतम बुद्ध मोक्ष को ईश्वरीय दया पर निर्भर नहीं मानते थे। उन के लिए नियमों की निश्चलता ही सब कुछ थी, और सदाचार का अनुशीलन सभी धर्मों से बढ कर था। उन के अनुसार शुद्ध व पवित्र जीवन, न कि कर्मकांडों का विधान, हमें अमरत्व प्रदान करा सकता है। उन के उपदेश, इसी लिए, शुद्ध व्यावहारिक जीवन को लक्ष्य कर के ही दिए जाते थे, और उन का ढंग भी प्रत्यक्षवाद की ही पद्धति से मिलता-जुलता था। उन्हों ने समानता, स्वतंत्रता व विश्वबंधुता का पाठ सर्वप्रथम पढ़ाने के प्रयत्न किए थे, क्योंकि उन के विचार से प्राणिमात्र अखंड ब्रह्मांड के अंशरूप हैं, और वैदिक धर्मानुसार, नानात्व में एकत्व का भाव आरोपित करने की जगह उन्हें सारी सत्तामात्र की एकता में पूर्ण व दृढ़ विश्वास था। इस के सिवाय वैदिक धर्म यदि सभी गतियों में सत्ता का अनुभव करना बतलाता था, तो बौद्ध धर्म ने, उस के विरुद्ध, संपूर्ण दृश्यमान सत्ता में ही गति का आधिपत्य होना दिखलाया, क्योंकि, पहले के अनुसार, पदार्थों में ही कारणत्व का आभास होता है, किंतु, दूसरे सिद्धांत को मानने वालों के लिए, कारणत्व का विषय ही सब कुछ है, पदार्थ वा द्रव्य का कोई अस्तित्व नहीं। वैदिक धर्म आत्मा को एकमात्र सत्य समझता था, किंतु बौद्ध धर्म ने बतलाया कि, वास्तव में, हमारी वेदना मात्र ही ज्ञेय वस्तु है, और कुछ भी नहीं। महात्मा गौतम बुद्ध के सिद्धांत, इसी कारण, हेतुवाद के अनुसार निश्चित किए गए थे। उन के लिए किसी प्रकार की शास्त्रीय पद्धति का सहारा लेना भी आवश्यक न था, क्योंकि वे स्वावलंबन पर अधिक श्रद्धा रखते थे। वे योगाभ्यास का महत्व भी मन को भिन्न-भिन्न भौतिक विकारों के प्रभाव से हटा कर, उसे शुद्ध व निर्मल रूप प्रदान करने तक में ही परिमित मानते थे। वे संज्ञा वा चेतना को ही चित्त मान कर चलते थे[१] और उन का विश्वास था कि जिस प्रकार वह स्वप्नावस्था के पहले और पीछे दोनों समय वर्तमान रहता है, उसी भाँति उस का जन्म के प्रथम एवं मरण के उपरांत भी विद्यमान होना समझना चाहिए। मृत्यु एक प्रासंगिक घटना मात्र है।

---

[१] **'दीघनिकाय', १-२१३—'चित्तं इति पि इति पि विज्ञानम्।'**

(२)

प्रचार, संघ व प्रथम 'संगीति'

यों तो "महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन काल में ही उन के शिष्य गांधार, गुजरात (सूनापरांत) व पैठन (हैदराबाद राज्य) तक पहुंच चुके थे[1]," किंतु बौद्ध धर्म का पूर्ण-प्रचार, उन के परिनिर्वाण के समय तक, पूर्व की ओर केवल वैशाली तथा राजगृह से लेकर पश्चिम की ओर प्रयाग तथा श्रावस्ती तक ही हुआ था, और वहां के राजे-महाराजों से ले कर साधारण जनता तक, इस में सम्मिलित हो कर, अपने नव-निर्धारित जीवन व्यतीत करने में संलग्न थे। महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों द्वारा बतलाया था कि निर्वाण के लिए अर्हत्व या स्थविरता प्राप्त करना उपासक वा गृहस्थ तथा भिक्खु, दोनों के लिए संभव है, और इसी लिए, परिस्थितियों पर विचार कर दोनों के अनुकूल, उन्हों ने अलग-अलग नियमों की भी रचना कर दी थी, किंतु उन के निकटवर्ती शिष्यों में अधिक भाग भिक्खुओं का ही था, और उन का भी संघ वा समाज, एक प्रकार से, धार्मिक प्रजातंत्र के समान बन गया था। इस संघ के लिए नियम बनाते समय, प्रवर्तक ने, व्यक्ति-विशेष की श्रेष्ठता व कनिष्ठता के विषय में, इस प्रकार निर्णय किया था कि संघ में जो पहले से प्रव्रजित हुआ है, वह बड़ा है और जो पीछे से प्रव्रजित हुआ है, वह छोटा है[2] और, इस 'सांघिक बुद्धपन' के अनुसार, उन के श्रेष्ठ शिष्य वा 'अग्रश्रावक' संख्या में ८० के लगभग समझे जाते थे। इन अग्रश्रावकों में से भी काश्यप, सारिपुत्र, मोग्गलान, आनंद, अनिरुद्ध, उपालि आदि सोलह शिष्यों की पदवी 'महाश्रावक' वा 'महास्थविर' की थी। 'चुल्ल-वग्ग' से पता चलता है कि परिनिर्वाण के अनंतर, थोड़े ही दिनों पीछे, महास्थविर काश्यप के प्रस्ताव पर, आनंद द्वारा उपदिष्ट वचनों को एकत्रित रूप में स्मरण रखने के उद्देश्य से, राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में, ४९९ अर्हतों की एक सभा निमंत्रित की गई जिस के संरक्षक, महाराज बिंबसार के पुत्र, अजातशत्रु थे। उस बैठक में महात्मा गौतम बुद्ध के सभी उपदेश, एक-एक करके, गाए गए जिस कारण सभा का नाम भी, आगे चलकर, 'संगीति' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। गाते समय विनय के बुद्ध-कथित १० नियमों की व्याख्या में, अभि-

[1] राहुल सांकृत्यायन, 'गंगा' का पुरातत्वांक, पृ० २०८
[2] आनंद कौसल्यायन, 'महात्मा बुद्ध और उन के अनुचर', पृ० ३१

धम्म को काश्यप ने, और सुत्तभाग को आनंद ने उपस्थित किया था, और उन्ही के प्रमाण पर, उन का वर्गीकरण, सर्वप्रथम, क्रमशः 'विनय', 'अभिधम्म' एवं 'सुत्त' के नाम से हुआ था।

विचार-स्वातंत्र्य व द्वितीय 'संगीति'

महात्मा गौतम बुद्ध ने, एक बार, किन्ही कालामागोत्रीय लोगों द्वारा प्रश्न करने पर, बतलाया था कि संदेह का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किसी बात में केवल इस लिए विश्वास मत करो कि वह तुम्हारे आचार्यों की कही हुई है। इस लिए मत विश्वास करो कि वह तुम्हारे धर्म-ग्रंथों में लिखी हुई है। बल्कि प्रत्येक बात को अपने व्यक्तिगत अनुभव की कसौटी पर जाँचो, यदि तुम्हें वह अपने तथा औरों के लिए हितकर जान पड़े तो उसे मान लो, न जान पड़े तो मत मानो।'[1] कारण यह था कि स्वयं उन के भी सिद्धांत, किसी ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा व्यक्त न हो कर बुद्धिवाद के अनुसार निश्चित किए गए थे और अंतिम निर्णय के लिए, किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा न कर, कोई भी जिज्ञासु उन्हे, अपनी तर्क-पद्धति के सहारे स्वयं जाँच सकता था। अतएव उन के जीवन-काल में ही, उन के सिद्धांतो के विषय में, भिन्न-भिन्न शिष्य अपने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट करने लग गए थे, और परिणामस्वरूप, उन में पारस्परिक संघर्ष भी उत्पन्न होता आ रहा था। परंतु उस समय इस प्रकार की बातें व्यक्तिगत मात्र समझी जाती थी।[2] उन के परिनिर्वाण के लगभग १०० वर्ष पीछे, अर्थात् सन् ३८६ ई० पू० में, वैशाली के वज्जी भिक्खुओं ने १० ऐसे नियमों का प्रचार करना आरंभ किया जिन में ताड़ी का व्यवहार करने तथा भिक्खुओ द्वारा सोना, चाँदी आदि ग्रहण किए जाने के संबंध में भी व्यवस्था दी गई थी। अतएव यश नामक किसी वृद्ध भिक्खु ने इन बातों का घोर विरोध किया, और इस के विरुद्ध निर्णय कराने के उद्देश्य से, उस ने वैशाली में एक दूसरी 'संगीति' का आयोजन कराया। इधर वज्जियों को जब यह समाचार मिला कि वह अपने पक्ष में मत एकत्रित कर रहा है तो उन्हो ने भी संगठन किया, और साधारण मतभेद ने, इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते क्रमशः पूर्वदेशीय युवकों तथा पश्चिमदेशीय महास्थविरों के झगड़े का एक बृहत् रूप धारण कर लिया।

---

[1] आनंद कौशल्यायन, 'महात्मा बुद्ध और उन के अनुचर', पृ० ८-९

[2] कोमुरा 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज्म' पृ० ११४

इस कारण बैठक में, जो प्रायः आठ महीनों तक जारी रही, लगभग ७०० भिक्षुओं ने भाग लिया, और सुभीते के साथ निर्णय की कार्रवाही संपन्न करने के विचार से, एक समिति भी नियुक्त की गई जिस में चार व्यक्ति पूर्व के व चार पश्चिम के सम्मिलित थे। अंत में समिति के सामने दसों नियम, एक-एक कर के रक्खे जाकर, सभा द्वारा अविहित और अनुचित ठहरा दिए गए, और पश्चिमी महास्थविरों की जीत हो गई[1], जिस कारण, उन्हों ने पूर्वी युवकों को 'अधर्मवादी' तथा 'पापभिक्षु' तक कह डाला। फलतः उस संगीति ने भिक्षुओं के बीच एक व्यापक संघर्ष की नींव डाल दी, और किसी भद्र नामी भिक्षु के सूत्र-सार्थी पाँच अन्य प्रश्नों पर भी विरोध उठ खड़े होने के कारण, अंत में, उस के दो भिन्न दल स्पष्ट हो गए।[2]

तृतीय 'संगीति' व प्रचार-कार्य

वैशाली की उपर्युक्त द्वितीय संगीति को बौद्ध धर्म के इतिहास में बड़ा महत्व दिया जाता है, क्योंकि सर्वप्रथम, इस बैठक में ही यह प्रकट हुआ था कि उस के प्रचलित सिद्धांतों को, मूलरूप में, मानने के लिए सभी अनुयायी एक समान तैयार नहीं हैं, और विचार-स्वातंत्र्य के कारण, भिन्न-भिन्न दलों का बनता जाना भी अनिवार्य है। इस के सिवाय परिनिर्वाण के अनंतर, सौ वर्षों तक, जो क्रान्तिकारी विचार वाले महासांघिक आदि, व्यवहारतः अज्ञात-रूप में कार्य करते आ रहे थे वे भी, पहले-पहल, इसी समय प्रकाश में आए। फिर तो ऐसे वर्गों या निकायों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, और सम्राट् अशोक के समय तक, सिद्धांतों के प्रचार में अधिक विस्तार आने लगने के कारण, इस ओर प्रवृत्ति और भी प्रौढ़-तर होती गई। सम्राट् अशोक ने, विशेष-रूप से इस बाढ़ को रोक कर एकता लाने के ही उद्देश्य से सन् २४२ ई० पू० के लगभग, अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में, एक तीसरी संगीति या सभा निमंत्रित की जिस में प्रायः १००० भिक्षु सम्मिलित हुए। यह सभा राजगुरु तिस्स मोग्गलि के सभापतित्व में नव महीनों तक कार्य करती रही और उस के सभासदों ने, 'कथावत्थु' नाम की एक पुस्तक तैयार कर, उस के द्वारा अनेक प्रचलित मतभेदों की समीक्षा करने का प्रयत्न किया। 'कथावत्थु' में प्रायः बीस निकायों या मतों का उल्लेख है और

[1] रमेशचंद्र दत्त, 'सिविलिज़ेशन इन एंश्येंट इंडिया', पृ० ३६८—९

[2] कीमुरा- 'ओरिजिन अव महायान बुधिज़्म'- पृ० ११५

इन में से अधिकतर महासांघिक वर्ग से ही मिलते-जुलते जान पड़ते है।[१] इस तृतीय संगीति मे सदाचार-संबंधी नियमों के पालन पर बहुत कुछ कहा गया था, और पूर्वकथित बुद्ध-वचनों के सुत्त, विनय, एवं अभिधम्म नामक तीनों विभागों को, त्रिपिटक नाम के सग्रह का, अंतिम रूप दिया गया था। परंतु मतभेदो का अस्तित्व नही मिटाया जा सका, और यह सगीति भी, वास्तव में, स्थविरों वा थेरवाद की ही सभा बन कर रह गई। सम्राट् अशोक ने, धर्मप्रचार के उद्देश्य से, अनेक स्थलों पर स्तूपादि का भी निर्माण कराया, और अपने सदेश भारतीय प्रदेशों के अतिरिक्त सीरिया, मिश्र व मैसिडन तक भेजे, तथा सिंहल द्वीप, मे इस के लिए, अपने पुत्र महेंद्र को नियुक्त किया। सिंहल द्वीप के राजा तिस्स ने, स्वय बौद्ध धर्म स्वीकार कर, उस के प्रचार में हाथ बँटाया और यही पर, अंत में सन् ८८ ई० पू० के लगभग त्रिपिटक पहले-पहल लिपिबद्ध हुए। यही पाली त्रिपिटक आज तक भी थेरवाद के सब से प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं।[२]

संबंध-विच्छेद

तृतीय संगीत में यद्यपि थेरवाद की ही प्रधानता दिखाई पड़ी और अंत में उसी के अनुसार कार्य भी हुए, किंतु तात्कालिक लक्षणों से यह स्पष्ट हो गया कि महासांघिक दल वालों की अब अधिक उपेक्षा नही की जा सकती और संगीतियों की कार्यवाही पर कोई महत्वपूर्ण छाप न डाल सकने पर भी, उन के बल का क्रमशः बढ़ता जाना निश्चित सा है। तदनुसार, पता चलता है कि, इस बैठक के अनंतर, जब पाटलिपुत्र में, कुक्कुटाराम स्थान पर, बौद्ध धर्मावलंबियो की विशेष चहल-पहल होने लगी तो उस मे महासांघिकों का ही प्रभाव अधिक दिखाई पडता था।[३] इतना ही नही, बल्कि परस्पर-विरोधी स्थविरों और महासांघिकों के बीच एकता स्थापित करने का उक्त प्रयत्न निष्फल हो जाने पर दोनों दलों का एक स्थान पर रहना तक कठिन हो गया और अत मे, स्थविरों को सामूहिक रूप से मगध का परित्याग कर देना पड़ा। परतु वहां से चलते समय, विनयपिटक एवं सूत्रपिटक में से किसी एक को विशेष महत्व देने के विषय मे, मतभेद उपस्थित हो जाने के कारण, स्वयं उन के भी दो

---

[१] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० २०

[२] रमेशचंद्र दत्त, 'सिविलिजेशन इन एंश्येंट इंडिया,' पृ० ३७२ व ३१४

[३] कीमुरा, 'ओरिजिन अव महायान बुधिज्म', पृ० ५

पूर्ण जान पडता था, किंतु साथ ही, वह कही 'दुर्दर्श' व 'दुर्बोध्य' भी था और, गूढ एव अनतर्क्य होने के कारण, केवल मनीषियो द्वारा ही बोधगम्य था।[१] परिणामस्वरूप, सर्व-साधारण की तात्कालिक आवश्यकताओं के विचार से उन्हों ने, पहले के अनुसार, अपने व्यक्तोपदेश निश्चित किए और उन की तात्विक वा दार्शनिक रहस्य-संबंधी दूसरी अनुभूत बातें उस समय केवल गुह्योपदेश के रूप में ही रह गई, अर्थात् व्यक्तोपदेश को तो उन्हो ने जनता के सामने प्रकट कर दिया, किंतु गुह्योपदेश का प्रचार उस समय उन्हों ने केवल निकटवर्ती शिष्यों तक ही परिमित रक्खा। इस कारण, पहला उन के जीवन काल से ही प्रचलित हो चला और दूसरे को उन के परनिर्वाण के अनंतर उन के शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा समय पा कर प्रचारित होना पड़ा। अतएव, ऐतिहासिक दृष्टि से, पहला मूल बौद्ध धर्म के नाम से व दूसरा विकसित बौद्ध धर्म कहला कर प्रसिद्ध हुए और, आगे चल कर, इन्ही दोनों को क्रमशः हीनयान और महायान के नाम भी दिए गए जैसा कि इन के प्रामाणिक ग्रथो द्वारा भी प्रकट हो जाता है।

बौद्ध धर्म के प्राप्त प्राचीन ग्रंथों के आधार पर, यह अनुमान किया जा सकता है कि, महात्मा बुद्ध के जीवन-काल मे, उन के तर्क-वितर्क वा वाद-विवाद करने वाले शिष्यो को, उन की विवेचनात्मक विश्लेषण-पद्धति के कारण, बहुधा 'विभज्यवादी' नाम दिया जाता रहा,[२] और आगे चल कर, कदाचित् उन्हीं अथवा उन के अनुयायियों में से ही वे लोग भी निकले जो अपने को महासांघिक कहने लगे। इन महासांघिकों ने, अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियता के कारण महास्थविरो के विरुद्ध आंदोलन रच कर, उन्हें वैशाली की उक्त द्वितीय सगीति के उपरांत, मगध छोड़ने पर विवश कर दिया, और उन के द्वारा 'अधर्मवादी' अथवा 'पापभिक्षु' कहे जाने के कारण क्षुब्ध हो कर, इस के बदले में, उन के मत को 'हीनयान' तथा अपने मत को 'महायान' कहना आरंभ किया। फिर भी बहुतों की धारणा रही है कि महायान संप्रदाय के मूल प्रवर्तक प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन थे, जो ईसा के पश्चात

महासांघिक दल व महायान का आरंभ

---

[१] 'महावग्ग', १, ५, २-३—'अधिगतो खो मे अयं धम्मो गंभीरो, दुद्दशो, दुरनुबोधो संतो पणितो अतक्कावचरो निपुणो पंडितवेदनीयो'।

[२] कीमुरा 'ओरिजिन अव महायान बुधिस्म', पृ० १५२

दूसरी व तीसरी शताब्दियों के बीच के समझे जाते हैं किंतु यह अनुमान उक्त आचार्य के 'प्रज्ञापारमिताशास्त्र' व 'दशभूमिविभाषाशास्त्र' को देखने से निराधार सिद्ध हो जाता है, क्योंकि, वास्तव में ये ग्रंथ क्रमशः 'प्रज्ञापारमितासूत्र' एवं 'अवतंसकसूत्र' वाले दसभूमि नामी प्रथम दो अध्यायों के बृहद् भाष्यमात्र हैं, और उन के रचयिता ने इन में अनेक अन्य महायान सूत्रों के भी मूल अवतरण दिए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वसुमित्र के 'निकाय-अवलंबन-शास्त्र' की परमार्थ-लिखित भूमिका से, यह भी पता चल जाता है कि बुद्धपरिनिर्वाण के अनंतर की दो अर्थात् चौथी व पांचवीं शताब्दियों में भी महायानसूत्र किसी न किसी रूप में विद्यमान थे; और उन्हें महासांघिक लोग अपने व्यवहार में लाया करते थे।[1] चीनी बौद्ध विद्वानों का तो यह निश्चय है कि महात्मा गौतम बुद्ध ने, बुद्धत्व प्राप्त करने के अनंतर तीन सप्ताहों में, सर्वप्रथम, अपने दार्शनिक उपदेश ही देना आरंभ किया था जो इस समय अवतंसक सूत्रों में संगृहीत हैं, और जब उन्हें, परिस्थिति का परिचय प्राप्त कर लेने पर जान पड़ा कि वैसे विचार सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न होंगे तो, उन्हों ने अपनी पूर्व-धारणा बदल दी और तब वे केवल उन धार्मिक उपदेशों को ही देने लगे जो चार आगमों वा पाली निकायों के अंतर्गत आते हैं। फिर लोगों की बुद्धि में कुछ अधिक प्रौढ़ता आने पर उन्हों ने, अंत में, उन दार्शनिक विचारों को भी प्रकट किया जो 'प्रज्ञा-पारमितासूत्र', 'महावैपुल्यसूत्र', 'सद्धर्मपुंडरीकसूत्र' और 'महापरिनिर्वाणसूत्र' में पाए जाते हैं।[2] जो हो, सभी बातों पर विचार करने से, वास्तविकता यह जान पड़ती है कि महात्मा गौतम बुद्ध के वास्तविक एवं गंभीरदर्शी अनुयायियों ने ही, उन के निर्वाण के अनंतर, उन के समय-समय पर प्रकट किए गए उक्त गूढ़ोपदेशों पर गवेषणापूर्वक मनन कर के उन्हें अपनी टीका टिप्पणियों से समन्वित व विवर्धित किया, और इस प्रकार, काल-क्रमानुसार, उन्हें महायान सूत्रों वा उस प्रकार के अन्य ग्रंथों के रूप दिए।

भीतरी प्रमाण

परंतु उपर्युक्त परिणाम निकालने के लिए भी पर्याप्त बाहरी प्रमाणों का अभाव दिखाई पड़ता है। अतएव, टोकियो के जापानी प्रोफ़ेसर कीमुरा ने, बौद्ध ग्रंथों व सिद्धांतों की अंतरंग परीक्षा द्वारा, भीतरी

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज़्म,' पृ० १०—११

[2] वही. पृ० ६४

बातों के आधार पर, इस विषय को और भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन का कहना है कि प्रत्येक बौद्ध संप्रदाय के सिद्धांत मुख्यतः तीन बातों से संबंध रखते है, अर्थात् जगत्तत्त्व ('कास्मिक एग्जिस्टेंस'), बुद्धतत्व ('बुद्धालोजी') और मानवजीवन-तत्व ('कंसेप्शन अव् ह्यूमन लाइफ़'), और प्रामाणिक बौद्ध ग्रथों के अध्ययन से पता चलता है, कि, इन तीनों के विषय मे, महायान सूत्रों, महासाधिकों तथा, अंत में, महात्मा गौतम बुद्ध के मौलिक सिद्धांतों में भी आश्चर्यजनक समता वा एकता है।[1] प्रो० कीमुरा की युक्तियो का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है:—

जगत्तत्वसंबंधी मत-साम्य

(क) महात्मा गौतम बुद्ध के मूल बौद्ध धर्म, और थेरवाद के अनुसार भी, सभी कुछ 'अनित्य' एवं 'अनात्म' हैं जिस का तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी दिखाई पड़ता है वह परमाणुओं के सामूहिक संघटन के सिवाय और कुछ नही, और, चूकि ये समुदाय भी हेतु व प्रत्ययों अर्थात् कार्यकारणो से ही उत्पन्न होते रहते हैं, और इन के नियामक भी केवल परिवर्तन एवं कार्यकारण के निश्चित नियम मात्र है, अतएव, उन के लिए सर्वगत संज्ञा, सृष्टि के रचयिता वा नियता के रूप मे कोई भी आधार नहीं हो सकता। थेरवादियों की सर्वास्तिवादी शाखा वाले इतना और भी कहते थे कि यद्यपि संघटित वस्तुएं अनित्य हैं, किंतु जिन पदार्थों द्वारा उन का संघटन हुआ है वे वास्तव में नित्य हैं; और इन का मत, इसी कारण, 'अनात्मा-सर्वास्तिवाद' कहलाता था। किंतु प्रारंभिक महासांघिक दल विश्व के परमाणुओं का अस्तित्व न तो भूत मे मानता था और न उन की कल्पना भविष्य के लिए ही करता था। बल्कि कहता था कि वह केवल वर्तमान में ही अवस्थित है और, उस की एकव्यवहारिक शाखा के अनुसार, इह लोक एवं उत्तर लोक इन दोनों के अस्तित्व की कल्पना केवल व्यावहारिक रूप से ही की जाती है। अतएव, वास्तव में, कोई भी सत्ता नहीं हो सकती। दूसरे शब्दो में इस दल के लोग परमाणुओ का अस्तित्व वर्तमान मे भी नहीं मानते थे, और इसी कारण, इन के लिए महासांघिकों का 'अनात्मा-अधर्मवादी' शब्द सर्वथा उपयुक्त था। महासांघिको का एक तीसरा दल लोकोत्तरवादी कहलाता था, और परमार्थ ने उन के सिद्धांतों का 'शून्यात्मा-शून्यधर्मवाद' द्वारा नामकरण किया है, जिस से जान पड़ता

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुद्धिज्म' पृ० ७३

है कि महासांघिकों की प्रथम शाखा को महायान मतों की सर्वशून्यता किसी न किसी रूप में, अवश्य मान्य रही होगी। महासांघिकों का 'अनात्मा-अधर्म' सिद्धान्त ही प्रज्ञापारमिता सूत्रों द्वारा पल्लवित व परिष्कृत कर के 'शून्यपुद्गल-शून्यधर्म' के रूप में परिणत कर दिया गया है, और यही सर्वशून्यता का सिद्धांत भी कहलाता है। इस के सिवाय यदि हम इन केवल निषेधात्मक विचार-बिंदुओं को छोड़ कर, दूसरी दृष्टि से भी देखें तो पता चलेगा कि महासांघिकों का लोकोत्तरवादी दल संसार की सत्ता या 'लौकिक धर्म' को, वास्तव में, 'विपर्यासमूलम्' अथवा विपरीत भाव से उत्पन्न हुआ समझता था, और इसी कारण, वह क्लेश, कर्म, संस्कार और कार्य को, एक को दूसरे का कारण मान कर, उन सब को, मिथ्या बतलाता था। इस के अनुसार, केवल 'उत्तरलौकिक धर्म' सत्य था और, प्रायः ठीक इसी आधार से प्रेरित हो कर, 'प्रज्ञापारमिता' आदि सूत्रों के रचयिताओं ने भी, 'निराकार-शून्यता' एवं 'सर्वधर्माणां शून्यता न वा शक्याभिलपितुम्' जैसे पदवाक्यों का प्रयोग करते हुए भी, साथ ही 'धर्मस्वभावनित्यम्' के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया था। इस का अभिप्राय यह है कि ये लोग शून्यवादी हो कर भी, एक भिन्न दृष्टि से, सत्ता को, मूलरूप में, नित्य समझते थे और कदाचित् इसी बात को, आगे चल कर आचार्य नागार्जुन ने भी अपने 'संवृतिसत्य' एवं 'परमार्थसत्य' संबंधी सिद्धांत द्वारा और भी स्पष्ट किया था। अतएव जगत्तत्त्व-संबंधी सिद्धांत महात्मा गौतम बुद्ध के मूल बौद्ध धर्म से लेकर महायान सूत्रों तक प्रायः एक ही प्रकार के हैं।

(ख) इसी प्रकार बुद्धतत्त्व-संबंधी मतों के मिलान करने पर भी ऐसा ही परिणाम निकलता है। महात्मा गौतम बुद्ध का प्रथम नाम सिद्धार्थ वा शाक्यसिंह था और 'गौतम बुद्ध' वे बुद्धत्व प्राप्त कर लेने पर ही कहलाने लगे

बुद्धतत्त्व की परंपरा

जिस का फल यह हुआ कि यद्यपि उन के जीवन-काल में सर्वसाधारण उन्हें एक जीते-जागते शक्तिशाली मनुष्य के रूप में ही देखते रहे हों, फिर भी उन के परिनिर्वाण के अनंतर, जितना ही समय बीतता गया उतना ही लोग उन्हें एक अलौकिक व्यक्ति के रूप में मानने लगे और जैसे-जैसे ऐतिहासिक बुद्ध लुप्त होते गए वैसे-वैसे उन के अनेक अलौकिक गुणों में वृद्धि भी होती गई और उन के स्थान पर एक ईश्वरीय महापुरुष की सृष्टि का उपक्रम भी होता गया। फिर तो धीरे-धीरे ऐसी बातें भी स्वयं उन्हीं के मुख से निकली हुई, समझी जाने लगीं कि 'मैं सर्व शक्तिमान

सर्वज्ञ हूं, मैं सभी कारणों से परे और सर्वत्यागी हूं, और मैं सभी तृष्णाओं से भी विमुक्त हू अथवा जो धम्म को भलीभाँति समझता है वही मुझे भी जान सकता है, और जो मुझे जानता है वही, वास्तव मे, धम्म को भी जानता है', और इस प्रकार उन का व्यक्तित्व, धर्म के साथ एकीकरण किए जाने के कारण, 'धर्मकाय बुद्ध' के रूप में लक्षित होने लगा और ऐतिहासिक बुद्ध केवल 'निर्माणकाय बुद्ध' हो कर ही रह गए। इस भावना को और भी पूर्ण करने की दृष्टि से, एक 'संभोगकाय' की भी सृष्टि कर, अंत में 'त्रिकायवाद' चलाया गया। परतु इस प्रकार की धारणाएं, सर्वप्रथम, महासांघिको के ही दल मे उत्पन्न हुई थीं, और वसुमित्र के ग्रंथ 'महावसु' की रचना के समय तक, महात्मा गौतम बुद्ध एक ऐसे महापुरुष समझे जाने लगे थे जो, मानव-समाज के ऊपर अनुग्रह कर, 'लोकानुवर्तन' के उद्देश्य से ही, मानव-शरीर धारण कर लेते है, अन्यथा वे वास्तव मे लोकोत्तर हैं। प्राय: इसी प्रकार की बाते महायान सूत्रो मे से 'अवतसकसूत्र' एवं, उस से भी विस्तार के साथ, 'सद्धर्मपुडरीक-सूत्र' के 'तथागतायुप-प्रमाण-परिवर्त' नामक भाग मे भी, अनेक स्थलों पर, बतलाई गई है, जिन के आधार पर, आगे चल कर, मुख्यत. नागार्जुन, मैत्रेयनाथ, असंग एवं वसुबंधु का त्रिकायवाद रचा गया था। दूसरे शब्दो में महायानियों की, बुद्धतत्त्व-संबधी त्रिकायवाद की भावना वास्तव में महासांघिकों से ही आरभ हुई थी, और इस कारण, उस का अंतिम रूप भी उन्हीं के तद्विषयक विचारों का एक विकसित और विस्तृत एवं पल्लवित संस्करण मात्र था।

(ग) महात्मा गौतम बुद्ध के मानव-जीवन-तत्त्व विषयक सिद्धांतो पर विचार करने पर भी हम देखते है कि उन मे भी महायान के तत्संबंधी अंतिम मत का बहुत कुछ अंश बीजरूप से विद्यमान था, और वही धीरे-धीरे समयानुसार विकसित होता गया था।

मानवजीवन-तत्त्व-संबंधी एकता

महात्मा गौतम बुद्ध ने, महायानियों के अनुसार, अपने को नित्य, अनादि व अनत मानते हुए भी, यह स्वीकार किया था कि सभी मनुष्य बुद्धत्व प्राप्त करने की शक्ति रखते है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे स्वयं भी सिद्धार्थ या शाक्यसिंह से बुद्ध नही बन सकते थे, और न उन के लिए कोई ऐसा मार्ग ही निकल सकता था। यदि बुद्धत्व सभी मनुष्यों मे बीज-रूप से वर्तमान नहीं है, तो उन के उपदेशों का कोई महत्व भी नहीं समझना चाहिए। अतएव उन के तात्विक अनुभवों के अनुसार सभी मनुष्यों मे

[illegible] जैसा 'संयुक्तनिकाय' में प्रकट किए विचारों में भी पाया जाता है। उधर वसुमित्र के 'निकायभेदधर्म-मतिचक्रशास्त्र' से विदित होता है कि महासांघिकों की चारों शाखाओं (अर्थात् मूल महासांघिक, एकव्यवहारिक, लोकोत्तरवाद एवं कौक्कुटिक दलों) के अनुयायी इस विषय में सहमत थे कि मनुष्य मात्र का चित्त, मूलरूप में, शुद्ध व निर्मल हुआ करता है और ठीक यही विचार, महायान सम्प्रदाय द्वारा बहुधा प्रयुक्त किए जाने वाले 'बुद्धस्वभाव' शब्द से भी व्यक्त होता है, जिस का तात्पर्य यह है कि सभी मनुष्य प्राणी बुद्ध-स्वभाव-सम्पन्न होते हैं। इसी प्रकार 'अवतंसक' सूत्र से प्रकट होता है कि विश्वात्मक चित्त, बुद्ध और मानव-जीवन, ये तीनों वस्तुतः एक और अभिन्न हैं, तथा 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' में भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि सभी मानवजीवनधर्म, आप से संबद्ध हुआ करते हैं, अथवा उन सभी का अंतिम आश्रय वा आधार एकमात्र धर्मकाय बुद्ध ही हैं। 'सद्धर्मपुण्डरीक' के कतिपय अन्य स्थलों से भी यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि सभी मनुष्यों के भीतर बुद्ध-स्वभाव मूलरूप में विद्यमान रहता है, और सब किसी में बुद्धत्व का बीज भी वर्तमान है। अतएव मानव-जीवन के विषय में स्वयं महात्मा बुद्ध, महासांघिक दल एवं महायान सूत्रों की विचार-परंपरा एक समान दिखाई पड़ती है।

सारांश यह कि जगत्तत्त्व, बुद्धतत्त्व एवं मानवजीवनतत्त्व, इन तीनों की दृष्टियों से ही महात्मा गौतम बुद्ध, महासांघिक दल एवं महायान सूत्रों का विचारसाम्य, स्पष्टरूप से, लक्षित होता है और परिणामस्वरूप हम कह सकते हैं कि, महात्मा बुद्ध के ही दार्शनिक सिद्धान्त वास्तव में, महासांघिकों द्वारा महायान सूत्रों में प्रकट किए जा कर, अंत में, महायान सम्प्रदाय के विविध मतों के रूप में परिणत हुए थे।

परिणाम

महायान सूत्रों के रचयिता महासांघिकों वा उन की पिछली पीढ़ी वालों के सिवाय और दूसरे कोई नहीं थे, और महासांघिकों को ही हमें महायान संप्रदाय के अगुआ या पूर्वपुरुष मानना चाहिए। इस प्रकार महायान सम्प्रदाय की उत्पत्ति, ऐतिहासिक दृष्टि से, नागार्जुन के समय में न हो कर, वास्तव में, उस के बहुत पहले, महासांघिकों के समृद्धि-काल में ही, हो चुकी थी, और मूल सिद्धांतों के अनुसार उस की विचारधारा के स्रोत स्वयं महात्मा गौतमबुद्ध के ही अनुभवों में निहित थे। इसी कारण बौद्ध धर्म के चीनी एवं जापानी अनुयायी सदा से इस बात पर

विश्वास रखते आए हैं कि 'प्रज्ञापारमिता' सूत्रों में मुख्य कर महात्मा बुद्ध के ही आत्म-दर्शन व मूलसंज्ञा-संबंधी अनुभव जगत्तत्त्व के विषय में संगृहीत है, और उन्हीं के इस प्रकार के विचार, बुद्धतत्त्व एवं मानवजीवन-तत्त्व के विषय में, 'अवतंसक' सूत्रों मे भी दिए गए हैं, तथा इन तीनों अर्थात् जगत्तत्त्व, बुद्धतत्त्व एवं मानवजीवन-तत्त्व, के विषय में उन के द्वारा उसी प्रकार व्यक्त किए गए विचार और भी प्रौढ़ता और पूर्णता के साथ, इन सब से महत्वपूर्ण, 'सद्धर्मपुंडरीक' सूत्रों के अंतर्गत सन्निविष्ट है।[1]

(३)

परिस्थिति व चतुर्थ संगीति

ईसा के पहले की दूसरी शताब्दी बौद्ध धर्म (विशेष कर अशोक-स्वीकृत बौद्ध धर्म) के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई क्योंकि उत्तरी भारत में, इसी समय, तीन ब्राह्मण कुलों ने राज्य किया, और प्राय. इन तीनो ने ही उसे, किसी न किसी प्रकार, नष्ट व निर्मूल करना चाहा। शुंग-वंशी पुष्यमित्र ने तो अपने समय में बौद्धो का तीन वार दमन किया, और उन के अनेक भिक्खुओ को मरवा तक डाला, जिस कारण बहुत से बौद्ध भाग-भाग कर पंजाब, दक्षिणी भारत वा विदेशों तक चले गए। चीन देश के बौद्ध पुष्यमित्र को आज भी, इसी लिए, कोसते है।[2] जो हो, पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र के समय यूनानियों ने भारत पर चढ़ाई कर मिलिंद (मेनांडर) के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर ली और इस प्रकार पश्चिमोत्तर भारत में विदेशियों का आधिपत्य हो गया। किंतु बौद्ध धर्म पर उस का कोई बुरा प्रभाव न पड़ा। पता चलता है कि उस समय तक उत्तरदेशीय बौद्ध धर्म पश्चिमोत्तर भारत में भली-भाँति फैल चुका था, और उस के आचार्य, नागसेन ने मिलिंद के साथ धार्मिक विषयों पर चर्चा कर उसे बौद्धधर्मानुयायी बना लिया। इस धार्मिक चर्चा का विवरण हमें प्रसिद्ध पालिग्रंथ 'मिलिंदपण्हो' से मिलता है जिस में संगृहीत बहुत सी बातें महासांघिक सिद्धांतों से भी उन्नत जान पड़ती हैं। ईसा के अनंतर की प्रथम शताब्दी मे फिर कुषाण-वंशी युइच्चियों ने पश्चिमोत्तर भारत के कुछ भाग जीत लिए और कुछ दिनो मे ही उन के राजा कनिष्क का राज्य, उधर काबुल व खोकन से लेकर दूसरी ओर क्रमश

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज्म', पृ० ११२–३
[2] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० २०–१

के वर्तमान रहने और उन के प्रभावशाली होने का पता हमें कार्ली तथा नासिक के गुहा-लेखों और अमरावती के शिला-लेखों से चलता है। इन की चैत्यवादी शाखा धान्यकटक महाचैत्य के ही नाम पर प्रसिद्ध थी, और उस नगर के पूर्व एवं पश्चिम की ओर वर्तमान दो पहाड़ों के अनुसार क्रमशः उन की 'पूर्व-शैलीय' तथा 'अपर-शैलीय' नामक दो उपशाखाओं का भी जन्म हुआ था, और महासांघिकों से निकली हुई ये तथा कतिपय अन्य शाखाएं भी, आगे चल कर, एक साथ 'अंधकनिकाय' कहलाई थीं। 'अंधकनिकाय' के ही अंतर्गत एक वैपुल्यवादी निकाय भी वर्तमान था जिस के संघ, बुद्ध एवं मैथुन-संबंधी क्रांतिकारी विचारों ने, समयानुसार, महायान-संप्रदाय का अंतिम रूप निर्दिष्ट किया; तथा तांत्रिक बौद्ध धर्म वा वज्रयान के आरंभ की सूचना भी दे दी थी।[1] सातवाहन के समय में प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन का भी होना बतलाया जाता है और अनुमान किया जाता है कि वे इन्हें अपना 'सुहृद्' वा मित्र समझा करते थे। नागार्जुन माध्यमिक दर्शन के रचयिता, शून्यवाद के आचार्य एवं महायान संप्रदाय के प्रमुख प्रवर्त्तक माने जाते हैं और कम से कम उत्तरदेशीय बौद्ध धर्म वालों में उन की बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है। वास्तव में, बौद्ध धर्म व दर्शन के ये बहुत ही बड़े आप्तपुरुष थे और, उस का सच्चा अभिभावक होने के नाते, इन्हों ने ही, सर्वप्रथम, महायान-संप्रदाय को एक स्पष्ट व सुव्यवस्थित रूप दिया था, तथा इन के ही समय से मूल व विकसित बौद्ध धर्म (अर्थात् हीनयान एवं महायान संप्रदायों) अथवा महायान की भिन्न-भिन्न शाखाओं में भी वादविवाद व समीक्षा की परिपाटी, पहल-पहल, चल निकली थी। इन का 'प्रज्ञापारमिता-शास्त्र' महायान संप्रदाय का ज्ञानभांडार माना जाता है। महायान संप्रदाय की एक परंपरा के अनुसार सभी मुख्य महायान सूत्र पहले किसी नागराज के महल में रक्खे हुए थे, जहां से लाकर नागार्जुन ने उन्हें, सर्वप्रथम, सर्वसाधारण में प्रकाशित किया और इस प्रकार महायान संप्रदाय की नींव डाली। जो हो, इतना निश्चित है कि इन्हों ने अपने 'प्रज्ञापारमिताशास्त्र' व 'दसभूमिविभाषाशास्त्र' नामक ग्रंथों को, क्रमशः 'प्रज्ञापारमिता सूत्र' एवं 'अवतंसकसूत्र' के कुछ अध्यायों पर, भाष्यरूप में रचा था, और जैसा पहले भी कहा जा चुका है, उन में 'सद्धर्मपुंडरीकसूत्र', 'अमितायुषसूत्र', 'विमलकीर्तिसूत्र' आदि

---

[1] राहुल 'गंगा' का पृ० २१०-४

अन्य महायान ग्रंथों का भी स्पष्ट उल्लेख है जिस से सिद्ध है कि नागार्जुन के पहले भी महायान संप्रदाय का अस्तित्व था, और उस के अनुसार कई सूत्र ग्रंथों की रचना हो चुकी थी।

मैत्रेयनाथ, असंग, व वसुबंधु

आंध्र व कुषाण वंशी राजाओं के अनंतर गुप्तों का साम्राज्य बढ़ते समय, बौद्ध धर्म को किसी प्रकार की विशेष सहायता नहीं मिल पाती। इस काल में हिंदू धर्म व संस्कृति का अधिक बोलबाला था और उस के पहले से भी बौद्ध धर्म के अनुयायी, परिस्थितियों के अनुसार चल कर, उन से लाभ उठाने की चेष्टा करते आ रहे थे। फिर भी आंध्र व कुषाण काल की भांति इस समय भी बौद्धदर्शन की बड़ी उन्नति हुई। आचार्य मैत्रेय-नाथ का आविर्भाव गुप्त साम्राज्य के आदिकाल में ही बतलाया जाता है। बहुत दिनों तक वे एक काल्पनिक व्यक्ति ही समझे जाते थे, किंतु बड़ी खोज के पश्चात् जापानी प्रोफेसर उई ने उन का समय सन् २७० ई० से ले कर ३५० ई० के भीतर निश्चित किया है।[1] मैत्रेयनाथ योगाचार दर्शन के आचार्य, विज्ञानवाद के प्रमुख प्रचारक एवं प्रसिद्ध असंग के भी गुरु थे और इन्हों ने कई ग्रंथों की रचना की थी। योगाचार को इन्हों ने अयोध्या के निकट प्रचलित किया था। इन के शिष्य असंग गांधार प्रदेश (अर्थात् वर्तमान पेशावर, रावलपिंडी जिले) के रहने वाले थे और पहले-पहल उन्हें 'सर्वास्तिवाद' व वैभाषिक दर्शन की शिक्षा मिली थी, किंतु अयोध्या के निकट आकर वे मैत्रेयनाथ से प्रभावित हो गए और नागार्जुन के माध्यमिक दर्शन की भांति, इन्हों ने भी योगाचार को सुव्यवस्थित किया। असंग के छोटे भाई वसुबंधु भी पहले सर्वास्तिवादी थे, किंतु अपने बड़े भाई द्वारा शिक्षित हो कर ये भी योगाचार के प्रधान आचार्य बन गए। गुप्त सम्राट् बालादित्य या कुमार-गुप्त प्रथम और उस की माता ध्रुवा के वसुबंधु बड़े प्रिय थे,[2] और इन्हों ने कई ग्रंथों की रचना कर योगाचार दर्शन का और भी स्पष्टीकरण किया। अयोध्या उस समय योगाचार दर्शन के लिए केंद्र हो रही थी और इस मत के आचार्य यहां महायान सूत्रों को भी महात्मा गौतम बुद्ध के ही वचनों की प्रामाणिकता देने की जी-जान से कोशिश कर रहे थे। परिणामस्वरूप हीनयान एवं महायान के बीच उन दिनों पहले से भी घोरतर संघर्ष मचने लगा, और उन

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज्म', पृ० १६९–१७०

[2] वही पृ० १७५

के पारस्परिक वाद-विवाद के कारण इन दोनों शब्दो का अभिप्राय और भी खुलने लगा। प्रो० कीमुरा ने इस काल के कुछ ही अनंतर, अर्थात् पाँचवी ईस्वी शताब्दी के लगभग, किसी अश्वघोष का भी होना बतलाया है, जिस की कुषाण-कालीन प्रसिद्ध आचार्य अश्वघोष से भिन्नता दर्शाने के लिए वे एक 'अश्वघोष द्वितीय' नाम की रचना करते है। उन का कहना है कि पहला अश्वघोष 'बुद्धचरित', 'सौंदरानंद' आदि काव्यों एव नाटकों का रचयिता व केवल महाकवि था, किंतु दूसरे ने 'महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र' जैसे दार्शनिक ग्रथो की रचना की थी, और वह 'भूततथताप्रतीत्यसमुत्पाद' जैसे गूढ़ सिद्धांतों का प्रवर्तक था, अतएव, अतरंग परीक्षा के आधार पर दोनों को एक ही मान लेना उचित नहीं जान पडता[1]। कुषाण-कालीन वसुमित्र व अश्वघोष से ले कर पाँचवी-छठी ईस्वी शताब्दी तक का काल महायान धर्म के प्रसिद्ध आचार्यो का प्रधान युग रहा, और उन दिनो अधिकतर महायान धर्म के ही सिद्धांतों का प्रचार विदेशों तक मे होता रहा।

सम्राट् अशोक के काल से ही, दूर-दूर तक के देशो मे भी बौद्ध धर्म के फैलते जाने से, उस के अंतर्गत भिन्न-भिन्न मत व परिस्थति के लोग सम्मिलित होते गए, इस कारण, उस बुद्धिवादी समाज के सिद्धांतों में, समयानुसार, नवीन विचारधाराओ का भी सम्मिश्रित होता जाना स्वाभाविक था। इस के सिवाय स्वयं भारतवर्ष में भी, उक्त समय के पहले से ही, दार्शनिक और धार्मिक विचार-पद्धतियों में अनेक परिवर्तन होते आ रहे थे, जिस कारण, धीरे-धीरे छः हिंदू दर्शनों की प्रधानता स्वीकृत होने लगी, और भक्तिप्रधान भागवत-सम्प्रदाय सब को प्रभावित करने लगा। अतएव, ऐसी दशा में, बौद्ध धर्म के लिए, नवीन हिंदू धर्म के वातावरण में, अपनी स्थिति को सँभालना आवश्यक हो गया, और परिणाम-स्वरूप नागार्जुन, वसुबधु, आदि प्रमुख बौद्ध आचार्यो ने, विपक्ष का खंडन करते हुए भी अपने सिद्धातों के अंतर्गत, किसी न किसी प्रकार, नवीन अपरिहार्य बातों को भी मिला लेन की नीति को अधिक पसद किया। इस कारण हम देखते हैं कि पुराने महासाघिकों की विचारधाराएं जो, महात्मा गौतम के ही कुछ आध्यात्मिक सिद्धांतों को मूलस्रोत मान कर, कई शाखाओ तथा महायान सूत्रों के विकसित विचारो के साँचे मे ढलती आ रही थीं, अंत

सिद्धांतों का विकास व दार्शनिक मत

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव महायान बुधिज्म' पृ० १८०

मे, महायान संप्रदाय के स्पष्ट व सुव्यवस्थित रूप में परिणत हो गई, और यह धार्मिक समाज पुरानी बातों से, आगे चल कर, इतना पृथक् हो गया कि, इस के अनुसार मार्ग दिखाने वाले महासांघिक लोग भी अब हीनयानियों की श्रेणी में गिने जाने लगे। बौद्ध धर्म के इस समय चार दार्शनिक मत प्रधान थे, जिन्हें वैभाषिक, सौत्रांतिक, माध्यमिक व योगाचार कहा जाता था। वैभाषिकों का कहना था कि, पदार्थ और उस का ज्ञान, इन दोनों का अस्तित्व है, किंतु सौत्रांतिक इन में से केवल ज्ञान को ही सत्य मान कर ज्ञेय को उस का स्पष्टीकरण मात्र समझते थे। तौ भी उन के प्रकृति-विषयक वर्णन से स्पष्ट था कि वे ज्ञेय के बिना ज्ञान के अस्तित्व को, एक प्रकार से, असंभव सा मानते थे, और इस लिए, प्रकृति के विषय में भी उन की अर्ध-स्वीकृति लक्षित होने लगती थी। योगाचार वालों ने इस के विपरीत, एक सच्चे विज्ञानवादी की भाँति, ज्ञेय के अस्तित्व को एकदम अस्वीकार कर दिया और, इस कारण, बाह्यजगत के अधिक से अधिक केवल मिथ्या एवं बुद्धिमय सिद्ध होने से, उन का मत 'निरालंबवाद' भी कहलाने लगा। किंतु मूल बौद्ध धर्म के क्षणिकवाद को पूर्णता तक पहुँचाने में अभी कदाचित् कुछ कमी पड़ रही थी, अतएव, माध्यमिकों ने ज्ञेय की ही भाँति ज्ञान के अस्तित्व को भी स्वीकार कर 'शून्यवाद' को जन्म दिया। परंपरानुसार इन चारों में से पहले दो को हीनयान तथा शेष दो को महायान के अंतर्गत समझा जाता है।

शून्यवाद

'प्रज्ञापारमिता' सूत्रों के अनुसार, जिन किन्हीं वस्तुओं का अस्तित्व समझा जाता है वे सभी शून्यता रूप है, जिस का वर्णन भी नहीं किया जा सकता (सर्वधर्माणां शून्यता न सा शक्याभिलपितुम्) और, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह सिद्धांत महासांघिकों के 'अनात्मा-अधर्मवाद' संबंधी कुछ विचारों का, एक प्रकार से, रूपांतर मात्र था। आचार्य नागार्जुन ने, 'प्रज्ञापारमिता' सूत्रों पर अपने 'शास्त्र' की रचना करते समय, इस विषय को और भी स्पष्ट किया, और विशद रूप दिया। उन का कहना था कि शून्यता को हम 'पुरुषशून्यता' एवं 'धर्मशून्यता' के दो भिन्न-भिन्न रूपों में समझ सकते हैं, जिन में से हीनयान में केवल पहली अथवा 'पुरुषशून्यता' पर ही विचार किया गया है, और महायान में ये दोनों ही अभीष्ट है; तथा इन में से 'धर्मशून्यता' की ही प्रधानता भी है। दूसरे शब्दों में हीनयान में पहले पुरुषशून्यता वा थेरवाद के 'अनात्मवाद' का ही प्रचार हुआ, और पीछे उस में धर्मशून्यता वा महासांघिकों का अधर्मवाद भी मिलाया गया, किंतु महायान में, आरंभ

से ही, धर्मशून्यता बतलाई जाने लगी थी। 'प्रज्ञापारमिता' सूत्रों की असंस्कृत शून्यता (अर्थात् वास्तविक जगत संबंधी शून्यता) संस्कृत शून्यता (अर्थात् दृश्यमान जगत सबधी शून्यता) तथा अत्यंत शून्यता को भी उन्हो ने अपने 'अष्टादश-शून्यता-शास्त्र' द्वारा अठारह भेदों में विवृत व विस्तृत किया, और शून्यता के विषय मात्र का संवृति-सत्य और परमार्थ-सत्य नामी दो भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विवेचन किया।[1] अतएव इतने बड़े विषय का यहा सारांश मात्र देना भी एक दुःसाध्य कल्पना है। संक्षेप में हम यह कह सकते है—जो कुछ दिखाई देता है वह क्षणिक है, अतएव, जो कुछ उस का ज्ञान हमें भासित हुआ करता है, वह भी वास्तव में 'प्रज्ञप्ति' मात्र है, क्योंकि पिछले क्षण में जो दृश्यमान वस्तु की अवस्था थी, सो इस क्षण में नही है और न इस क्षण की ही अगले क्षण मे रहेगी। अतएव न किसी वस्तु का हमें ज्ञान प्राप्त हो सकता है, न कोई ज्ञान प्राप्त कर सकता है, और न कोई ज्ञान ही हो सकता है। उदाहरणस्वरूप गति को ही लीजिए। एक ही क्षण मे कोई भी पदार्थ दो स्थानो में नही हो सकता, और न जिस मार्ग को हम तय कर चुके है उस पर इस समय वर्तमान है अथवा आगे हो सकते है। इस लिए मार्ग भी या तो केवल तय किए हुए को मान सकते है अथवा उसे जो अभी पार करना है; तीसरे की तो कल्पना तक असंभव है। इस से सिद्ध है कि गति कोई गुण नही और न, इसी कारण, गंता वा मार्ग ही कोई वस्तु हो सकते हैं। 'स्थिति' व 'काल' को भी हम, इसी प्रकार, दिखला सकते हैं। अतएव आचार्य नागार्जुन ने सभी धर्म को शून्य ही माना है, जिसे उन के अनुसार, न तो सत् कह सकते है और न असत् ही मान सकने है, और इसी कारण, उनका सिद्धांत 'माध्यमिक' कहला कर प्रसिद्ध है। माध्यमिक सिद्धातों के ही आधार पर, आगे चल कर, बुद्ध पालित ने अपने 'प्रसंगवाद' तथा भावविवेक ने अपने 'स्वतत्रवाद' के मत भी निर्धारित किए थे।

विज्ञानवाद

इसी प्रकार, मैत्रेयनाथ के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अभिसमयालंकार' और उस पर की गई हरिभद्र की टीका आदि योगाचार-संबंधी रचनाओं द्वारा हमे उन के 'विज्ञानवाद' का भी परिचय मिलता है। 'अभिसमय'

---

[1] 'माध्यमिक शास्त्र,' अध्याय २४, कारिका—जैसे,

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः॥

शब्द से अभिप्राय अंतिम सिद्धि की ओर किसी रहस्यमयी साधना द्वारा अग्रसर होना वा आरोहण करना है, और यह क्रिया, क्रमश अभ्यस्त होने के साथ ही, 'आनुपूर्वी' भी हुआ करती है। इसी भाँति, 'अलंकार' शब्द का अर्थ भी यहां, किसी अन्य ग्रंथ पर पद्यमयी टीका कर के, उस के बिखरे हुए विषयों वा विचारों मे व्यवस्था वा सामंजस्य लाना है। अतएव 'अभिसमयालंकार' ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य भी, भिन्न-भिन्न महायानी ग्रथो द्वारा उपदिष्ट चर्याओं का समन्वय कर, उस के आधार पर, एक सुव्यवस्थित सिद्धात निर्धारित करना जान पडता है[1]। परंतु प्रसंगवश इस में योगाचार मत के विज्ञानवाद का दार्शनिक विवेचन भी आ जाता है जिस का अत्यत संक्षेप रूप हम, इस प्रकार, व्यक्त कर सकते है—अभिसमय का अभ्यास करते समय, जिस जगत का हमे अनुभव होता रहता है वह सत्य नहीं है, बल्कि आरोपित मात्र है, क्योकि प्रत्येक विषयस्थिति, वास्तव में, हमारी सवेदना के सूक्ष्म क्षणों के अतिरिक्त और कुछ भी नही। इस के सिवाय ये क्षण भी वस्तुत किसी पंक्ति वा क्रमिक परंपरा मे ही आया करते है, और प्रत्येक बीतने वाला क्षण, आगे आने वाले के लिए, एक प्रकार का आधार वा अल्पकालिक आलंबन बन जाया करता है। आलंबन भी वह भाव है जो, किसी समय, हमारे मस्तिष्क में, बिना किसी स्वतत्र वस्तु की अपेक्षा किए ही, स्वय मस्तिष्क द्वारा ही विकसित होता रहता है, और इसी को 'आकार' भी कहते है (आलंबन प्रकार एवाकारः सन्निविष्टा च विषयस्थिति.)। अतएव कोई भी वस्तु, किसी एक क्षण में, अनुभव होते समय तक ही, सत्य कही जा सकती है अगले क्षण में नहीं, क्योंकि, चितन-क्रम मे, पहले का स्थान एक नवीन आकार ग्रहण कर लेता है और ऐसी दशा में किसी 'अभिनिवेश' वा संबध की कल्पना तक भी करना भ्रम-मात्र है[2]। विज्ञानवादी, इसी लिए, बाह्यजगत को मिथ्या मानते है, और उन के अनुसार, सारा जगत अधिक से अधिक बुद्धिमय मात्र है, और चूंकि विज्ञानवाद की दृष्टि से बुद्धि को किसी आश्रय की आवश्यकता नही, इस लिए, यह सिद्धांत कभी-कभी 'निरालंबवाद' भी कहलाता है। 'विज्ञानवाद' नाम, अनुभूत मानसिक क्षणों वा निमेषों की परंपरा के आधार

---

[1] तुशी, 'जर्नल एंड प्रोसीडिंग्स अव् एसियाटिक सोसायटी अव् बंगाल,' १९३०, नं० १, पृ० १२७

[2] तुशी, 'डाक्ट्रिन्स अव् मैत्रेयनाथ ऐंड असंग,' पृ० २३–४

पर रक्खा गया है, क्योंकि उसे ही विज्ञानवादी 'विज्ञान' की संज्ञा दिया करते हैं, और उसी के अनुसार व्यक्तिगत अनुभव संबंधी उक्त सिद्धांत के भेद को 'स्कंधविज्ञान' तथा उस के व्यापक समष्टि-रूप को 'आलयविज्ञान' कहा जाता है। विज्ञानवाद का सर्वविज्ञान, वास्तव मे, एक प्रकार से, मूल महासांघिकों के, 'अनादि-अनंत-विमलचित्त' वाले, सिद्धांतों पर ही बहुत कुछ आश्रित है और उसी का एक सुव्यवस्थित रूप भी है।[1]

माध्यमिक और योगाचार के मुख्य आचार्यों ने महायान-सबंधी दार्शनिक विचारो को एक प्रकार से, अंतिम रूप दे दिया, क्योंकि जो कुछ भी आगे विकसित व परिवर्धित हुआ वह अधिकतर इन्हीं के सिद्धांतो पर आश्रित रहा।

दोनों में भेद व 'अभिसमय' का रहस्य

किंतु, जैसा ऊपर दिए गए सारांशों से पता चलेगा, इन दोनो के भी ध्येय मे बहुत कुछ अतर था। माध्यमिकों के अनुसार 'धर्म' का रूप उस के 'प्रतीत्य समुत्पन्न' होने के कारण, वास्तव मे, न सत् है न असत् है। इसी लिए, उन की 'मध्यमा-प्रतिपत्' भी न तो स्वीकृति और न अस्वीकृति ही कही जा सकती है। किंतु योगाचारी उसे एक भिन्न प्रकार से स्वीकार कर लेते थे। योगाचार के अनुसार, 'शून्यता', धर्मानुभव का अंतिम ध्येय होने के कारण, 'धर्मता' के रूप मे सत् कही जा सकती है। किंतु, इस से हमारे आपेक्षिक अनुभव मे सदा पाए जाने वाले ग्राह्य-ग्राहक ('सब्जेक्ट' और 'आब्जेक्ट') के द्वंद्व का अभाव भी अपेक्षित है, इस लिए, इसे असत् भी मानना चाहिए। मैत्रेयनाथ के 'मध्यांतविभंग' नामक ग्रंथ की एक कारिका[2] के आधार पर इसे यों भी कह सकते है कि पदार्थों वा उन के सारतत्व की वास्तविक सत्ता न होने, अथवा उन के विज्ञानाभास मात्र होने के कारण, उन का ज्ञान भी 'अभूत-परिकल्प' मात्र है, जो वस्तुत हमारी मानसिक स्थितियों की एक आदि-रहित संतान वा परपरा के रूप में आया करता है। इस अभूत परिकल्प में, विशेष रूप से द्रष्टा व दृश्य अथवा ग्राहक व ग्राह्य का द्वैतभाव लक्षित होते रहने पर भी, किसी प्रकार के आधार का अभाव है, और यह वस्तुमात्र है (ग्राह्यग्राहकरहितं वस्तुमात्रम्)। अतएव शून्यता भी इस अभूत-

---

[1] तुशी, 'डाक्ट्रिन्स अव् मैत्रेयनाथ ऐंड असंग,' पृ० २३-४

[2] 'मध्यांतविभंग', कारिका २—

अभूत परिकल्पोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते।
शून्यता विद्यते तत्र तस्यामपि स विद्यते॥

परिकल्प की भावना में ही अनुभव की जा सकती है। वास्तव में अभूत परिकल्प शून्यता वा धर्मता को, किसी आवरण के समान, आवृत किए रहता है, इस लिए, वह लक्षित नहीं हो पाती, और अभिसमय वा योगाचारी-चर्या का उद्देश्य उसी को व्यवदान वा शुद्धि द्वारा प्रकट करना समझा जाता है। आचार्य मैत्रेय के अनुसार अभूत-परिकल्प व शून्यता वा धर्मता, ये दोनों ही सत् हैं, और इन दोनों में घनिष्ठ संबंध भी है। नागार्जुन की दृष्टि में धर्मों की शून्यता वा असिद्धि का महत्व उस के तर्कसिद्ध वा युक्तिसंगत होने पर ही अधिक निर्भर है, किंतु मैत्रेय के लिए उस का एक दार्शनिक मूल्य भी है। स्थिरमति ने इस बात को इस प्रकार समझाया है कि रज्जु वा रस्सी, परिस्थिति विशेष के कारण सर्प के रूप में आभासित होने से ही शून्य कही जा सकती है। वह वास्तव में शून्य नहीं (रज्जुः शून्या सर्पत्वभावेन, तत्स्वभावत्वाभावात् सर्वकालं शून्या न तु रज्जु स्वभावेन)। दूसरे शब्दों में धर्मता स्वयं नित्य एवं अपरिवर्तनशील है, किंतु वह अभूत-परिकल्प से ढकी हुई है, और अभूत-परिकल्प के दब जाने पर वह अपने शुद्ध रूप में प्रकट हो जाती है। परन्तु दबाए जाने योग्य होने पर भी अभूत-परिकल्प सत् है, क्योंकि वह अनादि भी है और शून्यता वा धर्मता का अनुभव भी इसी के द्वारा संभव है।[1] धर्मता व अभूत-परिकल्प 'महायान श्रद्धोत्पादशास्त्र' के क्रमशः चित्त व अविद्या के समानार्थक शब्द हैं।

शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन ने, अपने 'माध्यमिक शास्त्र' के अनुसार, सर्व-शून्यता को, निषेध की दृष्टि से, (अनिरोध, अनुत्पाद आदि विशेषण द्वारा) एक प्रकार की, अनिर्वचनीयता प्रदान की थी, किंतु उन्हों ने, अपने 'धर्म-धातुशास्त्र' नामक ग्रंथ में, उसी वस्तु को मूलतः शुद्ध व नित्य भी ठहराया था। इस दूसरे प्रकार के सिद्धांत, मूल महासाघिकों के ही समय से, किसी न किसी रूप में प्रकट होते आ रहे थे, और नागार्जुन ने इस विषय को भी औरों की ही भाँति, केवल स्पष्ट व निश्चित मात्र कर दिया था। मूल महासांघिकों का कहना था कि मानव चित्त अपने मलरूप में स्वभावतः शुद्ध है; इस में दुःख वा क्लेश आदि की अशुद्धियां पीछे से जगने लग जाती हैं। उन के इसी सिद्धांत को 'विमलचित्त स्वभाव' कहा जाता

त्रिकायवाद व बोधिसत्व

---

[1] तुशी, 'दि डाक्ट्रिन्स अव् मैत्रेयनाथ ऐंड असंग,' पृ० ३२–५

है जिस के विषय में प्रसंगवश हम ने कुछ उल्लेख ऊपर भी किया है। यह धारणा, आरंभ मे, व्यक्तिगत चित्त के संबंध में ही की जाती रही, किंतु, आगे चल कर, यह समष्टि चित्त का भी बोधक हो गई और लोकोत्तरवादी महासंघिकों ने इसे, अंत में, उत्तरलौकिक धर्म का रूप दे दिया। पारमार्थिक दृष्टि से वे यों कहने लगे कि सब धर्म, वास्तव मे, अनादि व अनंत है। 'प्रज्ञापारमिता' एवं 'सद्धर्मपुंडरीक' आदि महायान सूत्रों मे भी फिर यही भावना क्रमश. 'स्वभावनिर्वाण' 'धर्मतथता' वा 'धर्मस्वभावनित्यम्' एवं 'धर्म स्थिति' व 'धर्मनियामता' कहला कर व्यक्त हुई, और नागार्जुन ने इसे ही 'धर्मधातु' नाम से अभिहित किया।[1] इस विमलचित्त स्वभाव की ही कल्पना से मिलता-जुलता विज्ञान-वादियों का 'आलय-विज्ञान' माना जाता है और यह भी अनुमान किया जाता है, कि इसी के आधार पर 'त्रिकायवाद' की सृष्टि की गई थी। महात्मा गौतम बुद्ध की वाणी पहले धर्मकाय के रूप में समझी जाती थी, परंतु महायानी पीछे धर्मकाय को स्वयं बुद्ध का स्वरूप मानने लगे। उन का कहना था कि बुद्ध स्वयं मूर्तिमान धर्म है, जो तुषित स्वर्ग मे निवास करता है, और वह अपने अलौकिक गुणों द्वारा, स्वयं जन्म न ले कर भी, जगत के हितार्थ अपना रूपकाय वा निर्माणकाय भेजा करता है, और, इस प्रकार, उस के ही संभोगकाय वा पार्थिव शरीर द्वारा सब का कल्याण हुआ करता है। भक्तिवाद वा उस प्रकार के अन्य सिद्धातों का अधिक प्रचार हो जाने पर बौद्ध लोग धीरे-धीरे महात्मा गौतम बुद्ध की मूर्तिया बना कर उन की पूजा भी करने लगे। फिर तो बुद्ध के जीवन से संबद्ध पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा व उन की प्रतिमाओं का जुलूस भी बौद्धों के धार्मिक कर्तव्यों का एक महत्वपूर्ण अग बन गया। वह बौद्ध धर्म जो, कई बातों में, औपनिषदिक सिद्धातों का अनुसरण कर, आरभ मे, प्रत्येक व्यक्ति को संपूर्ण तृष्णाओ से उन्मुक्त कर उसे निर्वाण के लिए अर्हत्व प्रदान करने का ही आदर्श रखता था, उक्त नवीन वातावरण के अनुसार, अब क्रमशः उसे करुणकांत भगवान् की भाँति दु.ख निवारण वा लोकसेवा के लिए भी योग्य बना कर अपने सामने बोधिसत्व का आदर्श रखने लगा। बोधिसत्व का आदर्श मानव-जीवन का अंतिम व सर्वोच्च आदर्श था, इस लिए, स्वभावतः उस में सभी उच्च से उच्च व श्रेष्ठ गुणों का आरोप किया गया, और उस की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुसार श्रेणियां बना कर,

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज्म', पृ० ८२-३

तदनुसार अंत में सर्वश्रेष्ठ बोधिसत्वों में अमिताभ एवं वज्रपाणि आदि की कल्पना की गई तथा उन्हें देवतुल्य व अलौकिक गुणसंपन्न मान कर उन की पूजा भी की जाने लगी।

'निर्वाण' का रूप

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, महात्मा गौतम बुद्ध ने जिन चार 'आर्यसत्यानि' के ज्ञान का महत्व अपने समय के लोगों को बतलाया था उन में 'दुःखनिरोध' वा 'निब्बाण' नामक सत्य कदाचित् सब से बढ़ कर था क्योंकि वही, बुद्ध के अनुसार, सब का अंतिम ध्येय है और उसी के लिए सब को प्रयत्न भी करना चाहिए। परंतु, परिस्थिति के उपयुक्त न होने के कारण, उन्हों ने, अन्य दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या न करने की ही भाँति, इस के रहस्य का भी उद्घाटन उस समय रोक रक्खा। फलतः 'निर्वाण' शब्द अथवा उस स्थिति का वास्तविक अभिप्राय भी महायान-संप्रदाय द्वारा दार्शनिक विवेचन की पद्धति के निकाले जाने पर ही खुलने लगा। फिर भी निर्वाण की वास्तविकता का ज्ञान आज भी भिन्न-भिन्न प्रकार का हुआ करता है, और इसी लिए, इस विषय में अनेक विद्वानों में बहुत कुछ मतभेद है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ उच्छिन्न, अवसन्न वा नष्ट होना समझा जाता है और सर्वसाधारण की धारणा है कि बुद्ध का ध्येय भी वास्तव में निषेधार्थक ही रहा होगा। परंतु मैक्समूलर इसे, सत्ता की निर्मूलता की जगह, उस की निर्वृत्ति वा परिपाक समझते हैं, और चाइल्डस का कहना है कि यह एक पूर्ण संत की अवस्था का नाम है, जिस में, पंच स्कंधों के वर्तमान रहते हुए भी, सत्ता में आबद्ध रखने वाली तृष्णा का उच्छेद हो जाता है। इसी प्रकार, राइज़ डेविड्ज़ के मत से, निर्वाण उस मानसिक स्थिति को कहते हैं जो नितांत निष्पाप व शांत होती है, और जो बौद्ध धर्म की दृष्टि से, पूर्ण शांति, कल्याण एवं विवेक का द्योतक है। कीथ के अनुसार निर्वाण की व्याख्या 'चत्वारि आर्यसत्यानि' के सहज ज्ञान द्वारा ही की जानी चाहिए, क्योंकि उसी के अनुसार पुनर्जन्म का भय दूर किया जा सकता है और ओल्डनबर्ग का विचार है, कि वास्तव में, 'निर्वाण' अंतिम नाश के लिए ही, सर्वप्रथम, प्रयुक्त हुआ था। इस में नित्यता का भाव जोड़ने का प्रयत्न पीछे से किया गया है। 'धम्मपद' ने निर्वाण का तीन प्रकार से वर्णन किया है, अर्थात् एक स्थान पर उसे इस जन्म में ही अनुभूत मानसिक अवस्था माना गया है, तो दूसरी जगह कहा गया है कि यह मृत्यु के होने पर ही प्राप्त होती है, और तीसरे प्रकार से इसे किसी स्वर्गतुल्य देश के रूप में भी समझा गया

है।[1] परंतु महात्मा गौतम बुद्ध ने, जान पड़ता है, इसे, सर्वप्रथम, तृष्णा के अंतिम उच्छेद की उस अवस्था को माना था जिस में पुनर्जन्म का अंकुर तक नही रह जाता। निर्वाण का अभिप्राय, इसी लिए, बहुत कुछ निषेधार्थक रूप में ही पहले समझा जाता रहा और इस का वर्णन भी अधिकतर वैसे ही शब्दों द्वारा हुआ। जैसे, एक स्थल पर कहा गया है कि वह स्थिति "न तो गति है न अगति है न स्थिति है न च्युति है, बल्कि दुःखो का वह अत अप्रतिष्ठ अपरिवर्तनशील एवं अवलंब रहित है।[2]" वैसे ही वहां "न तो कोई जन्म ग्रहण करता है न वृद्ध होता है और न, एक स्थान के लिए, दूसरा स्थान छोड़ कर जाया करता है[3]" और "वहां न तो जल है न पृथ्वी है न ताप है न वायु है; वहां न तो तारे चमकते है न सूर्य प्रकाशमान है, न चंद्रमा है और न अंधकार है[4]" आदि वर्णनों के भी उल्लेख है। परतु धीरे-धीरे इस की परिभाषा में प्रत्यक्ष अंश भी सम्मिलित होने लगे, और इस प्रकार, निर्वाण, व्यक्तिगत मानसिक अपवर्ग वा परमानंद से हो कर, क्रमशः, उच्चतम ज्ञान वा विश्वात्मक चेतना तक पहुँचा; और अंत में, उस का व्यवहार उस स्वर्गीय देश वा पद के लिए भी होने लगा जहां पहुँच कर भिक्खुगण, अपने पूर्वजीवन की पुण्य-राशि के अनुसार, आनंद का अनुभव किया करेंगे।[5] साधारण प्रकार से, इसे अब भी हम लोग उस मानसिक आनंद की दशा के ही अर्थ में प्रयुक्त करते है, जो कुत्सित वासनाओ पर विजय प्राप्त कर लेने पर उत्पन्न होती है, जो वर्तमान जीवन में ही उपलभ्य है, और जिस का अंत मृत्यु के आने पर भी नही होता।[6]

---

[1] 'धम्मपद' (महाबोधि-ग्रंथमाला संस्करण) गाथा संख्या २३, ३२, ७५, १३४, १८४, २०३, २२६, २८३, २८५, २८९, ३४४, २६९ व २७२

[2] 'उदान', ८, १--'न एव अगतिं वदामि न गतिं न थितिं न चुतिं न उपपत्तिं, अप्पतिट्ठं अप्पवत्तं अनारम्मणं एव तं, एस एव अंतो दुक्खस्साति।'

[3] 'संयुक्तनिकाय,' १६, ५३---यत्थ . . . न जायति न जीयति न मीयति न चवति, आदि।

[4] 'उदान', १, ९---यत्थ आपोच पठवी वायो न गाधति, न तत्थ सुक्का जोतंति, आदिच्चो नप्पकासति, न तत्थ चंडिमा भाति, तमो तत्थ न विज्जति।' (इस अवतरण की तुलना में उपनिषदों के 'न तत्र सूर्यो भाति, न चंद्रतारकं, नेमा विद्युतो भान्ति, कुतोऽयमग्निः' आदि का भी उल्लेख किया जा सकता है।

[5] हरिसिंह गौड़, 'दि स्पिरिट अव् बुधिज़्म', पृ० ३२०-१

[6] वही, पृ० ३३३

(४

महायान संप्रदाय के मुख्य सिद्धांतों का मूल, महात्मा गौतम बुद्ध के प्रारंभिक उपदेशों से ले कर उन के द्वारा की गई धर्मचर्चा आदि तक में सफलता-पूर्वक ढूँढा जा सकता है, किंतु जैसा ऊपर दिए गए विवरणों से प्रकट होगा, उन के समय में इस के अंकुरित वा विकसित होने के लिए परिस्थिति उपयुक्त न थी, और उन के परिनिर्वाण के अनंतर, सम्राट् अशोक द्वारा निमंत्रित तृतीय संगीति के समय तक यह महासांघिकों जैसे सुधारवादी भिक्खुओं के ही सीमित वर्ग में अधिकतर अप्रत्यक्ष रूप से पनपता व सींचा जाता रहा। इस काल के अंतर्गत इस के प्रवर्तक व अनुयायी प्रचारकों को न केवल मूल थेरवादी लोगों का ही सामना करना पड़ता था, बल्कि अपने विचारों के पूर्णरूप से परिष्कृत न होने के कारण, उन की मंडली में भी बहुधा विचार-विभिन्नता उत्पन्न हो जाती थी, और उप-शाखाएं बना करती थी। फिर भी इसी समय के भीतर उन की भिन्न-भिन्न रचनाओं की परंपरा मे महायान सूत्रों का आरंभ हो गया और वैशाली की संगीति के अनंतर, थेरवादियों द्वारा मगध का परित्याग कर देने के कारण, उन के मुख्य प्रतिद्वंद्वियों की संख्या क्रमशः घटने लगी और भीतरी सघर्ष एक प्रकार से उत्कर्ष का कारण बन गया। सम्राट् अशोक की तृतीय संगीति थेरवादी सिद्धांतो के स्पष्टीकरण की अंतिम सीमा समझी जाती है, पर वास्तव मे, वह नवीन विकसित बौद्ध संप्रदाय के लिए भी उपक्रम का एक महत्वपूर्ण अवसर सिद्ध हुई। उस काल के अनंतर अश्वघोष, अथवा निश्चित रूप से नागार्जुन के समय तक, अर्थात् मोटे तौर से दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व से लेकर तीसरी शताब्दी ईस्वी पीछे तक के समय में, महायान संप्रदाय अपने प्रारंभिक रूप में बहुत कुछ स्पष्ट हो गया, और उस के मुख्य-मुख्य महायान सूत्रों की भी रचना पूर्ण हो गई। परंतु इस महायान-सूत्रकाल तक उस मत के प्रचारक अभी अपने विचारों को प्रकाश में लाकर उन्हें स्पष्ट कर रहे थे। इसी कारण, 'महायान' शब्द का तात्पर्य भी उस काल तक, उन के वास्तविक सिद्धांतो के प्रारंभिक विकास के रूप में ही समझना चाहिए। नागार्जुन के समय के पहले यह शब्द विपक्षियो के मत का निराकरण करने मे प्रयुक्त नहीं होता था। यह भाव, सर्वप्रथम, इस आचार्य द्वारा अन्य सिद्धांतों की समीक्षा करने की पद्धति चलाए जाने पर ही, व्यक्त हुआ, और तब से मुख्य-मुख्य आचार्यों

महायान का क्रमिक विकास

का काल समाप्त होते-होते, मोटे तौर पर सातवीं ईस्वी शताब्दी तक, इस की बड़ी धूम रही। सातवीं शताब्दी के पीछे, नालंदा विश्वविद्यालय के अत्यंत प्रसिद्ध हो जाने पर आचार्यों के व्यक्तिगत महत्व में कमी पड़ने लगी और महायान संप्रदाय वाले अब, अपने मत को स्पष्ट करने वा विपक्षियों के सिद्धांतों की समीक्षा करने तक ही चुप न रह कर, अपनी बातों को महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा प्रचलित व प्रचारित धर्म का एकमात्र प्रतिरूप बतलाने लगे। प्रो० कीमुरा ने इस काल को 'नालंदा-काल' कहा है और इस की अवधि सातवीं शताब्दी से ले कर ग्यारहवी शताब्दी ईस्वी तक माना है।[1]

महायान बनाम हीनयान

महायान के सिद्धांतों का सारांश समझ लेने पर हम उन की तुलना हीनयान के मुख्य-मुख्य विचारों के साथ सफलता-पूर्वक कर सकते हैं। हीनयान वालो का ध्यान पहले-पहल विशेष कर सर्वसाधारण के भोजन, सदाचार एव भिक्खुओं के जीवन-यापन-संबधी नियमों के निश्चित करने की ओर ही आकृष्ट रहता था, और उन का अंतिम ध्येय भी जरा-मरण व जन्म से मुक्त होने की योग्यता वा अर्हत्व प्राप्त करना था। इस अर्हत्व की तीन अंतिम श्रेणियां वा अवस्थाएं क्रमशः 'स्रोतापत्ति,' 'सकृदागामी' व 'अनागामी' कहलाती थीं, और इन के अनतर अर्हत् हो जाने पर, सभी प्रकार के दुःखों का निवारण हो जाना भी समझा जाता था। हीनयानी बुद्ध की कोई पूजा नहीं करते थे। वे केवल बोधिवृक्ष को ही मानते थे, और 'धम्मचक्कपवत्तन' के लिए एक ऐसा चिह्न बनाते थे जिस में, विपरीत दिशाओं की ओर मुंह फेर कर बैठे हुए, दो मृगों की पीठ पर एक चक्र रक्खा रहता था। इसी प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन से संबंध रखने वाली भिन्न-भिन्न घटनाओं के चित्रों द्वारा वे अपने मठों को अलकृत भी करते थे।[2] फिर भी उन की दृष्टि में, बुद्ध का बुद्धत्व एक व्यक्तिगत वस्तु था, जिसे, उन की सहायता के बिना ही, कोई मनुष्य, उन के आदर्श का अनुसरण मात्र कर के, विनय के नियमों का पालन करता हुआ, स्वयं भी प्राप्त कर सकता है। उस के लिए पूर्ण वासनाक्षय और त्याग व वैराग्य होना चाहिए, जो कठिन व्रत और नियमित साधना द्वारा ही संभव हैं। इस के विपरीत महायान संप्रदाय का ध्येय स्वयं पुरुषार्थ कर के सारे संसार

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज्म', पृ० १८३

[2] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० १७

से बुद्धत्व प्राप्त कराना है। यह एक महान् आयोजन है, जिस के द्वारा सभी का कल्याण अभीष्ट है। 'जिस प्रकार आकाश में असंख्य व अपरिमित वस्तुओं के लिए स्थान रहता है, उसी प्रकार महायान में भी अगणित प्राणियों के लिए अवकाश बना हुआ है।'[१] इस में निर्वाण के लिए केवल अर्हत्व प्राप्त कर लेने से ही काम नहीं चलता इस के लिए बोधिसत्व भी होना आवश्यक है, जो दसभूमियों द्वारा साधना करता हुआ, स्वयं बुद्ध के प्राय समान ही पूर्णता प्राप्त कर, प्राणियों का कल्याण करने पर कटिबद्ध रहा करता है। महायानी, महात्मा गौतम बुद्ध को साधारण ऐतिहासिक मनुष्य मात्र न मान कर, उन्हें ईश्वरत्व भी प्रदान करते थे और उन का अनुग्रह लाभ करने के निमित्त, उन की मूर्तियों की पूजा तथा उन के नाम का स्मरण भी किया करते थे। उन में, हिंदुओं के समान, देवी-देवता तुल्य बोधिसत्वों का पूजोपचार भी बहुत लोकप्रिय था, और ऐसी बातों को वे हीनयानियों के कष्टसाध्य व्रतों व साधनाओं से बहुत सुगम व स्वाभाविक समझते थे। हीनयान की कोरी ज्ञान-प्रधानता व संकीर्णता महायानियों को पसंद न थी, और वे भक्ति एव सामाजिक उदारता को सब से बड़ा महत्व दिया करते थे। हीनयानी, तपस्वी हो कर भी, निष्क्रिय व निश्चेष्ट था, किंतु महायानी शरणागत-परायण रह कर भी लोकोपकार के लिए सन्नद्ध रहता था। हीनयान में महात्मा गौतम बुद्ध के वचनों का प्रायः अक्षरशः पालन करना आवश्यक था, परंतु महायान उन के भावार्थ पर ही अधिक विश्वास करता था।

बौद्ध धर्म का विस्तार व परिणाम

कहा जाता है कि महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने मत के लिए केवल पाँच सौ वर्षों तक ही स्थायी रूप से प्रचलित रहना बतलाया था।[२] किंतु बात ऐसी न हुई, और बौद्ध धर्म किसी न किसी रूप में अनेक देशों के मानव समाज में आज भी जीवित है। चीन देश में बौद्ध धर्म का प्रवेश लगभग २०० ई० पू० में हुआ था, जब कि कुछ बौद्ध ग्रंथ, पहले-पहल, कदाचित् काश्मीर के मार्ग से चीन सम्राट् के पास पहुँचे थे। उस के अनंतर किसी दूसरे सम्राट् ने ६२ ई० में कुछ और भी ग्रंथ मँगवाए और, उस समय से प्रचलित होता हुआ,

---

[१] 'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र,' बिब्लिओथिका इंडिका संस्करण, पृ० २४—'यथाकाशे अप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामवकाशः एवमेव भगवन्नस्मिन् याने अप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामवकाशः।'

[२] हरिसिंह गौड़, 'दि स्पिरिट अव् बुधिज़्म', पृ० ४५२

बौद्ध धर्म चौथी ईस्वी शताब्दी तक वहां का राजधर्म बन गया। चीन देश से यह धर्म कोरिया की ओर सन् ३७२ ई० में बढ़ गया और वहां से जापान सन् ५३२ ई० में गया। जावा कोचीन चाइना, फ़ारमोसा, मंगोलिया, आदि देशों में यह चौथी से लेकर पाँचवी ईस्वी शताब्दी तक फैला था और काबुल से हो कर यह यारकंद, बलख़, बुखारा तथा अन्य उधर के देशों में पहुँचा था। नेपाल में भी इस का प्रवेश काफ़ी पहले हुआ था, किंतु पूर्णरूप से इसे वहां के लोगों ने छठी ईस्वी शताब्दी में अपनाया, और तिब्बत के सर्वप्रथम बौद्ध महाराजा ने ६३२ ईस्वी में भारत से धर्मग्रंथ मंगाए[1], इसी समय के लगभग, प्रायः ६३८ ईस्वी में, यह धर्म स्याम देश भी पहुँचा था, और उस के पहले ही लंका से ब्रह्मा तक भी जा चुका था। परंतु इन सभी देशों में बौद्ध धर्म एक ही रूप में नहीं प्रचलित हुआ। उत्तर के देशों, अर्थात् चीन, जापान आदि में इस के महायान सम्प्रदाय का प्रचार हुआ और दक्षिण के जावा, सुमात्रा आदि के टापुओं में भी यह उसी रूप में पहुँचा, किंतु अन्य दक्षिण के देशों में इस के हीनयानी रूप का ही संदेश जा सका और आज भी उपर्युक्त सभी स्थानों में इस का प्रचार व प्रभाव इसी नियम के अनुसार है। पाश्चात्य विद्वान् इसी लिए बहुधा महायान को 'उत्तरदेशीय' बौद्ध धर्म और हीनयान को 'दक्षिणदेशीय' बौद्ध धर्म भी कहते आए है।

भारत में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने तथा यहां के बौद्ध तीर्थों में भ्रमण करने के उद्देश्य से यहां पर समय-समय पर अनेक विदेशी आया करते थे, जिन में से फ़ाहियान (सन् ३९९–४१३ ई०) तथा हुएनसांग (सन् ६२९–६४५ ई०) नामक चीनी यात्रियों के उल्लेख अनेक इतिहास ग्रंथों में पाए जाते है। विदेशों में क्रमशः फैलते जाने पर भी बौद्ध-धर्म अपने मूलस्थान अर्थात् भारतवर्ष में, समयानुसार, बराबर क्षीण व निर्बल होता गया और सातवीं-आठवीं ईस्वी शताब्दी तक उसे कई प्रकार के विपक्षियों ने हतोत्साह सा बना दिया। प्रायः इसी समय इस के अंतर्गत, तंत्रवाद के प्रभावानुसार, मंत्रयान, वज्रयान, आदि की भी सृष्टि होने लगी और इस के अनुयायियों की ओर सर्वसाधारण संदेह एवं घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

सातवीं ईस्वी शताब्दी और उस के पीछे आने वाले दिन, भारत में, संपूर्ण बौद्ध

---

[1] रमेशचंद्र दत्त, 'सिविलिज़ेशन इन ऐंश्येंट इंडिया,' भाग १, पृ० ३७४

धम के लिए अशुभ-सूचक सिद्ध हुए इस कारण महायान का इस के आगे विकास न हो कर, यहां पर, सदा ह्रास ही होता गया और यह, परिस्थिति के अनुसार, अपना रंग बदलता हुआ, अंत में, हिंदू धर्म के नए रूप में बहुत कुछ अंतर्लीन हो गया। इस के अवशेष अंश में इतने विकार भर गए जिन का पहचानना भी कठिन हो गया। उदाहरण के लिए, आचार्य नागार्जुन ने, अपने समय के प्रचलित भागवत धर्म से प्रभावित हो कर, बौद्ध धर्म को, साधना की दृष्टि से, दो भिन्न मार्गों में विभक्त कर, उन के नाम 'कठिनमार्ग' और 'सहजमार्ग' रक्खे थे। पहले के अंतर्गत बौद्धों द्वारा स्वीकृत सभी मार्ग थे। दूसरे में, बुद्ध के केवल नाम स्मरण करने को ही स्थान दिया था। उन का कहना था कि अपने मन में पूर्ण शांति लाने के लिए, श्रद्धा के साथ बुद्धों की पूजा करना तथा उन के नामों का स्मरण करना नितांत आवश्यक है।[1] इस क्रिया को वे गुह्योपदेश का अंश मानते थे, और सर्वसाधारण के लिए, उन की दृष्टि से, इस का बहुत बड़ा महत्व था। समय पाकर इस 'सहजमार्ग' या 'सहजयान' का प्रचार बढ़ने लगा और असंग एवं वसुबंधु के समय, अर्थात् चौथी शताब्दी के अंत तक, सर्व साधारण, तथा सुशिक्षित लोगों में भी, यह 'नामवाद' के रूप में अत्यंत लोकप्रिय हो चला। गौतम बुद्ध के नाम का स्मरण करने का अभ्यास कम कर के लोगों ने किसी भी बुद्ध का, विशेष रूप से, अमिताभ बुद्ध का ही नाम जपना आरंभ कर दिया। इधर, अलौकिक शक्तिसंपन्न महात्मा बुद्ध के वचनों का पारायण भी किया जाता रहा, और लोगों का विश्वास रहा कि, उन के अनुसार व्यवहार करने के ही समान, उन का बहुधा स्मरण करते रहना भी पुण्यप्रद व श्रेयस्कर होगा। उन के नाम को जपते रहने से रोग, भय, अथवा भूतादि से भी रक्षा हो सकेगी। परंतु लंबे वाक्यों को कंठस्थ रखना कुछ असुविधा-जनक था, अतएव उन के अनुसार सूत्रों की रचना करना तथा आगे चल कर उन से भी छोटी धारणियों का बनाना आरंभ हुआ। अंत में, यह परंपरा यहां तक बढ़ गई कि भक्तों ने 'मंजुश्री नाम संगीति' के कहे अनुसार सभी स्वर और व्यंजन वर्णों को मंत्र क़रार दिया; और अब 'ओं' और 'स्वाहा' लगा कर चाहे जो भी मंत्र बनाया जा सकता था, बशर्ते कि उस के कुछ अनुयायी हो।[2]

ह्रास के लक्षण

---

[1] कीमुरा, 'ओरिजिन अव् महायान बुधिज़्म,' पृ० २०
[2] राहुल सांकृत्यायन, 'गंगा' का पुरातत्त्वांक,' पृ० २१५

किंतु मंत्र भी आखिर किसी भाव का केवल संकेत वा प्रतिरूप था, अतएव, समयानुसार, उसे और भी सूक्ष्मरूप देने के उद्देश्य से, उस के आदि अक्षर को ही बीजरूप समझने की परिपाटी चल निकली और, पंच स्कंधों के भावों को वैरोचन, अक्षोभ्य, रत्नसंभव, अमिताभ एव अमोघ सिद्धि के रूपों में पूजने की प्रथा के अनुसार, अनेक देवी-देवताओं की भी सृष्टि हो गई, और बौद्ध धर्म के मूल प्रवर्तक गौतम बुद्ध, क्रमशः विस्तृत होने लगे।[1] मंत्रयान अथवा सहजयान के अंतिम रूप, अध-विश्वासों के बढ़ जाने से, पीछे इतने विकृत व विचित्र हो गए कि उन्हें मूल बौद्ध धर्म से विकसित हुआ समझना अन्याय कहा जा सकता है। फिर भी चीन, जापान, तिब्बत, आदि के बौद्धों ने उन्हें, कदाचित् आवश्यकता से भी अधिक महत्व दिया और उन के कुछ प्रदेशो में तो ऐसे मत ही शुद्ध बौद्ध धर्म के रूप में माने गए।

उपसंहार

'नालंदा-काल' के आरंभ में ही योगाचारी मत अयोध्या से उत्पन्न हो कर क्रमशः दक्षिण-पूर्व की ओर फैलता आ रहा था और, इसी प्रकार, माध्यमिक मत भी आंध्र देश मे उदय हो कर उत्तरी एवं मध्य-भारत की ओर बढ़ता आ रहा था और इन दोनों का समागम नालंदा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में हुआ, और परिणाम-स्वरूप बौद्ध साहित्य व बौद्ध संस्कृति का वह स्थान केंद्र-सा बन गया। योगाचार व माध्यमिक सिद्धातों के अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त वहा पर एक ही साथ, अश्वघोष द्वितीय के 'भूततथतावाद' एवं नागाबोधि के मंत्रयान तथा हीनयान की भी पूरी चर्चा हुआ करती थी, और बहुत से बौद्ध धर्म के, प्रसिद्ध विद्वान् वहा आकर एक साथ रहा करते थे। ये लोग अपने-अपने विचारो की विभिन्नता के कारण, मतभेद रखते हुए भी अधिकतर महायान संप्रदाय की अभिवृद्धि की ओर ही दत्तचित्त थे और विपक्षियों का सामना करते समय ये सभी सहमत हो जाया करते थे। इन विद्वानो मे नागार्जुन के अनुयायी भावविवेक व शांतिदेव तथा योगाचारी दिङ्नाग, शीलभद्र व धर्मकीर्ति के नाम विशेष-रूप से उल्लेख-योग्य हैं। इस नालंदा-काल से ही अतर्गत हम उन प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों का भी पता चलता है जिन में से कुछ की संस्कृत व अपभ्रंश रचनाएं आज भी उपलब्ध हैं, और जिन की रचना पद्धति एवं बहुत कुछ सिद्धांतों तक मे भी हमें हिंदी साहित्य की संत-परंपरा के मूल स्रोत का आभास मिलता है। परंतु सिद्धो

[1] हरप्रसाद शास्त्री, 'अद्वयवज्रसंग्रह', भूमिका, पृ० २९

अथवा इस दृष्टि से उन के अनुयायी तुल्य नाथपंथियो की प्राप्त रचनाओ और उन के भिन्न भिन्न सिद्धांतों की चर्चा के लिए एक अलग लेख आवश्यक होगा। यहा यही कहा जा सकता है कि नालंदा विश्वविद्यालय के समय में बहुत कुछ शक्ति व सहायता प्राप्त करते रहने पर भी बौद्ध धर्म उस समय की परिस्थिति का सामना सफलतापूर्वक नही कर सका और अंत मे भारत के तुर्कों के हाथ मे जाने के समय से, अर्थात् १२वी शताब्दी की समाप्ति के लगभग, इस की घोर अवनति आरंभ हुई और बंगाल, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत में, किसी न किसी प्रकार कुछ काल तक ठहरते रहने पर भी तेरहवी चौदहवी ईस्वी शताब्दियों तक यह विलुप्त व रूपातरित हो गया। वर्तमान काल में इस के पुनरुत्थान के शुभ लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं किंतु इस के भावी रूप वा शक्ति का निरूपण करना अभी कल्पना-मात्र होगा।

स्फुट प्रसंग

मधुमालती नामक दो अन्य रचनाएं

[लेखक—श्रीयुत अगरचंद्र नाहटा]

हिंदुस्तानी के गत अप्रैल के अंक में श्रीयुत ब्रजरत्नदास जी का 'मंझन-कृत मधुमालती' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उस में सुकवि मझन कृत 'मधुमालती' का रचना-काल वि० सं० १६५ के लगभग बतलाया गया है (जो कि विचारणीय है)। अतः सहज ही मे यह शंका उठती है कि जायसी के सुप्रसिद्ध 'पद्मावत' में उल्लिखित 'मधुमालती' यह न होकर अन्य किसी की रचना होनी चाहिए। फलतः इस विषय मे विशेष अन्वेषण करने पर हमें इसी नाम के दो अन्य ग्रथों का पता लगा है; उन्हीं का संक्षिप्त परिचय इस लेख मे दिया जाता है।

इन दो ग्रंथों में से पहला है चतुर्भुजदास कृत। इस का प्रथम परिचय मुझे बबई निवासी श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई से प्राप्त हुआ। पीछे उन के प्रशस्ति-सग्रह में मुझे उस की आदि तथा अंत की प्रशस्ति भी मिल गई।

दूसरे ग्रंथ का कवि अज्ञात है। इस का प्रथम परिचय मुझे गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी द्वारा प्रकाशित "कवीश्वर दलपतराय हस्तलिखित पुस्तक संग्रहनी सूची" मे मिला।

मुझे खेद है कि वर्नाक्यूलर सोसाइटी वाली प्रति प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न हो सकी। किंतु अन्य स्थानों से मुझे प्रतियां देखने को मिल गई। फलतः उन्हीं के आधार पर इन दो ग्रंथों का परिचय दिया जा रहा है।

(१) चतुरभुजदास कृत 'मधुमालती' चौपाई

ये कवि कायस्थ जाति के निगम कुल में उत्पन्न हुए थे। नाथा के पुत्र भैयाराम इन के पिता थे, ऐसा इन्हों ने स्वयं अपने ग्रंथ की प्रशस्ति में लिखा है। इस कृति में शृंगार

ानता है। इस की अब तक जितनी प्रतियां हमारे जानने में आई है वे इस प्र

—श्रीजिन कृपाचंद्र सूरि ज्ञानभंडार (बीकानेर) की प्रति। यह प्रति
। अंतिम पत्र कटा हुआ होने के कारण ८५० वीं से ८६३ तक की गाथाए ख
। आदि और अंत का उपयोगी अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

आदि।

श्री गणेशायनमः॥ अथ मधुमालती री चौपाई लिख्यते॥

ोहा॥ अलख निरंजन चित धरूं, समरी शारद माय।
कथा कहुं मधुमालती, निज गुरु तणै पसाय॥१॥

ौपाई॥ विधि विरचि ताके वर पाउं। शंकर सुत गणेश मनाउं।
चातुर सहचरि सहित रीझाउं। मधुमालती मनोहर गाउं॥२॥
लीलावती ललित इक देशा। चन्द्रसेन तिहां सुभट नरेशा।
सुभग धाम धज गगन प्रवेशा। गढ मढ मन्दिर रचे महेशा॥३॥
मंत्री बुद्धि पराक्रम तांम। तारणसाह तास को नाम।
निश दिन सांमि धरम सुं काम। नृप न तजे घड़ी पल जाम॥७॥
नृप के गृह अंतेउरि नारी। संतति इक मालती कुमारी।
वरणुं कहा ज रूप अपछरा। मानु उर्व्वशी लियो अवतरा॥८॥
तारण साह सुघड़ गुण सारा। इक त्रीया तसु इक कुमारा।
ताकौ नाम मनोहर धर्यौ। मानु काम दूजो अवतर्यौ॥१३
मधु मधु कहै खिलावै तात। बढै कला मानु दिन रात।

अंत।

दूहा॥ कायथ नैगम कुल इहैं, नाथा सुत भइयांराम।
तनय चतुर्भुज तास के, कथा प्रकाशी ताम॥८३॥
अलप बुद्धि धैठो दई, काम प्रबंध प्रकाश।
कवियन सुं कर जोड़ि कैं, कहै चतुरभुज दास॥८४॥
वनसपति में अंब फल, रस में उतपति संत।
कथा मांहि मधुमालती, षट रितु मांहि वसंत॥८५॥

लता मांहि पनगलता, सूंघा कै घणसार।
कथा मांहि मधुमालती, आभूषण में हार ॥८६॥

पाई॥ राजनीति की यामें साखी। पंचाख्यान वुधि ए भाखी।
चाणाइक चातुरी बताई। थोरी थोरी सबही आई ॥८७॥
पुनि वसंत राज रस गावै। जामें ईश्वर काम दभावें।
ताकी यह लीला विस्तारी। रसिकन श्रवणन कुं सुखकारी ॥८८॥
रसिक होय सु नवरस चाहै। अध्यातम आतम औगाहै।
चातुर पुरुष होइ है कोई। इहै रस कला समझि है कोई ॥८९॥
कृष्णदेव कौ पुत्र कहावै। प्रदुम्न काम अंश मधु गावै।
पुत्र कलत्र सबै सुख पावै। दुख दारिद्र न नैरौ आवै ॥९०॥

लोक। कामार्थी लभ्यते काम, निर्धनी लभते धनम्।
अपुत्री लभते पुत्रं, व्याधि तस्य न पीड़िते ॥९२॥
राजा पढै ताहिं राजगति, मंत्री पढै तिहि बुद्धि।
कामी काम विलास रस, ज्ञानी ज्ञान सुसिद्धि ॥९३॥
इति श्री मधुमालती री बात संपूर्णम्॥ लि० श्रीबाकरौदमध्ये पं० दुर्गदास गणि शिष्य जगरूप थानसिंघ सहिताः॥ सं० १७९१ बैशाख बदि ९॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥

—दानसागर भंडार की प्रति। यह प्रति २३ पत्र की है। इस में ९१० गाथाएं ाथा न हो कर दूसरी से प्रारंभ होती है। पुष्पिका इस प्रकार है:—

इति मधुमालती री चोपाई संपूर्णः॥ संवत् १७८५ वर्षे मिति आसोज बदि १३ शुक्रे लिखितं ऋषि विरधमान वृद्धे कुंडचां ग्रामे लिखितं।

—अनंतनाथ जी के भंडार (बंबई) की प्रति। इस प्रति में भी प्रथम गाथा नहीं ःह गाथाएं हैं। देसाई महोदय ने हमें इसी की प्रशस्ति भेजी है।

दोनों प्रतियों में प्रशस्ति के बाद यह दोहा है:—

संपूरण मधुमालती, कलश चढे संपूर।
श्रोता वक्ता सबन कुं, सुखदायक दुख दूरि ॥८८९।९१०॥

—श्री राजेंद्र जैन वृहद् ज्ञानभंडार (आहोर) में बं० नं० ६६ पत्र २–७३ की

एक प्रति है इस में १४९७ गाथाएं हैं सं० १८१९ मा० सु० १२ के दिन मनरूप द्वारा लिखी हुई है

५—आहोर के इसी भंडार में बं० नं० १६६ में ४६ पत्र की एक प्रति है। इस में ९६३ गाथाएं हैं। सं० १८३७ वै० व० २ को राघवसागर लिखित है।

६—विजयधर्म लक्ष्मी ज्ञानमंदिर (आगरा) में नं० १६६९ में पत्र ५५ की एक प्रति है। नं० ४ प्रति की भाँति इस में भी १४९७ गाथाएं हैं। यह प्रति सं० १८६६ की लिखी हुई है।

७—खरतर गच्छ की भावहर्षीय शाखा के ज्ञानभंडार (बालोतरा) में १९ वीं शताब्दी की लिखी हुई एक प्रति है। यह प्रति कुछ अपूर्ण है किंतु संबंध देखते हुए ९०० से ऊपर गाथाएं नहीं होंगी।

८—गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी की नं० ७६२ में एक खंडित प्रति है।

९—'मधुमालती नी वार्त्ता' नाम से गुजराती में सं० १९३४ (ई० स० १८७८) में यह ग्रंथ छप चुका है। इस में ९८० गाथाएं है। "मुंबई, बारकोट मारकेट—सखाराम मलिक सेठ खातुं, एओए पोताना छापाखाना मां छापी प्रसिद्ध करी छे।"

हिंदी साहित्य के इस ग्रंथ का पूर्वकाल में पर्याप्त प्रचार था। गुजराती में आज से ६१ वर्ष पूर्व ही यह ग्रंथ प्रकाशित हो गया था, किंतु हिंदी में 'मिश्रबंधुविनोद' जैसे सुप्रसिद्ध ग्रंथ में भी इस के कर्ता का परिचय भ्रांतिपूर्ण है। ग्रंथ प्रकाशित होना तो दूर रहा। पाठकों के जानने के लिए 'मिश्रबंधुविनोद' भाग १, पृ० २७९ से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है:—

"चतुर्भुजदास (अष्टछाप)—ये महाशय स्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य और कुंभनदास के पुत्र थे। इन का वर्णन १५२ वैष्णवों की वार्ता में है। आपकी कविता में शृंगार-रस का प्राधान्य है—इन्हों ने मधुमालती री कथा एवं भक्तिप्रताप नामक ग्रंथ भी बनाए हैं। आप का समय १६२५ के लगभग था।"

यह परिचय भ्रमपूर्ण है। वस्तुतः अष्टछाप वाले चतुर्भुजदास भिन्न हैं। "हस्त-लिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण" सं० १९०२ की रिपोर्ट के पृ० ४३ में कवि का परिचय इस प्रकार दिया है:—

"चतुरभुजदास—ये जाति के कायस्थ थे, और ग्रंथ से राजपूताना-निवासी जान

पड़ते है।"

पृ० ११५ में कृति का परिचय दिया है:—

"मधुमालती री कथा—चतुर्भुजदास कृत, लि० का० सं० १८३७ वि० मधु-मालती की प्रेमरस की कथा का वर्णन।"

सुकवि मंझन और चतुरभुजदास कृत मधुमालती में केवल मनोहर और मालती के नाम मिलते है, बाक़ी सारी कथावस्तु एवं पात्रों के नाम आदि सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। पृथक्-पृथक् कथाओं का वैषम्य यहां नहीं दिखलाया जा सकता। हम यहा केवल चतुरभुजदास कृत 'मधुमालती' का कथावस्तु संक्षेप से पाठकों की जानकारी के लिए लिखते है। मालूम होता है कि यह मनोरजक कथा पौराणिक न होकर कल्पित उपाख्यान है।

कथा-सार

लीलावती देश के राजा चंद्रसेन की कनकमाला नामक रानी व मालती नामक पुत्री थी। राजा के प्रधान-मंत्री तारणसाह के एक पुत्र था, जिस का नाम मनोहर था और 'मधु' नाम से उसे पुकारते थे। लावण्यवान मधु कामदेव का अवतार ही था, उस के रूप से मुग्ध हो कर नगर-नारियां बेसुध होकर पीछे-पीछे डोलती थी। मधु प्राय रामसरोवर जाता, वहां उस के सौंदर्य से मोहित पनिहारिनें माथा धुनते हुए अकस्मात् घड़ा फोड़ डालती। जब यह हाल मालती ने सुना तो वह भी उसे देखने के लिए सप्रेम उत्कंठित हो गई।

मधु के पिता ने शुभ मुहूर्त में उसे नंद नामक पुरोहित के पास पठनार्थ भेजा। राजा ने भी रानी और मंत्री की अनुमति से उसी पंडित के पास मालती का अध्ययन प्रारभ कर दिया। परदे की ओट में मालती पढ़ती थी। एक बार गुरु की अनुपस्थिति में मौका पाकर परदा उठा कर मालती ने मधु को देखा तो उसे साक्षात् मदन का अवतार पाया। परस्पर प्रेमसंचार हो जाने पर भी मधु संकोचवश नीचे देखने लगा। वह जानता था कि राजकन्या से प्रेम करने पर आखिर दु:ख उठाना पड़ेगा। अत: उस ने मृग-सिंहनी संबध का दृष्टांत देकर समझाया और राजकन्या से प्रेम न करने को कहा। उस ने कन्नौज के राजा करण और सौरठ के सूरसेन की पुत्री पद्मावती का दृष्टांत कह कर प्रेम-याचना की। मधु ने भविष्य का विचार कर पंडित के पास पढ़ना छोड़ दिया, और रामसरोवर पर जा कर क्रीडा करने लगा। वहां पूर्ववत् पनिहारिनें मोहित होने लगीं, सखी ने मालती से जाकर

इस की सूचना दी   वह उस के विरह से व्याकुल हो रही थी अतः सखियों के साथ खेलन का बहाना कर के रामसरोवर पर जा पहुची   अपनी विरह व्यथा का हाल उस ने प्रिय सखी जैतमाला से कहा। उस ने उस का अनुसंधान कर मालती को पुष्प-वृक्ष के नीचे खडी किया और, स्वयं मधु के पास गई, और उसे मीठी-मीठी मनोरंजक बातों से प्रसन्न कर मालती से मिलाया। मधु ने एक बार तो वणिक्-पुत्र और राजकन्या का संबंध अनुचित बता कर विवाह के लिए आनाकानी की; आखिर जैतमाला के चातुर्यपूर्ण वचनो से विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार न कर सका। उसी स्थान पर जैतमाला ने दोनो का हाथ मिला कर विवाह कर दिया। वे दोनों रामसरोवर के पास सुख-विलास करने लगे।

माली ने उन का सारा वृत्तांत राजा को सुनाया। राजा ने क्रुद्ध होकर उन्हें मारने के लिए सैनिक भेजे। रानी ने चुपके से दासी के द्वारा उन्हें सूचित कर दिया कि 'प्राण बचा कर अन्यत्र चले जाओ!' मालती के भयभीत होने पर मधु ने समझा कर कहा कि 'धैर्य रक्खो! मुझे परमात्मा ने गिलोल दी है, अभी मलयंद-सुत की भाँति कोई आपदा नही पडी है, समय पर देखेंगे।' मालती के पूछने पर उस ने मलयंद सुत का इस प्रकार दृष्टात सुनाया:—

'चंपावती के मलयंदा के चंद नामक २०—२२ वर्ष का पुत्र था। वाटिका मे क्रीडार्थ आई हुई १८ वर्षीया मंत्री-कन्या की रूपरेखा को देख कर चंद्रकुमार कामातुर हो गया। द्रव्य द्वारा मालिन को वश में करके उस से बगीचे में संबंध कर लिया। एक दिन कामक्रीड़ा करते समय सिंह आ गया। उसे देख कर रूपरेखा भयभीत हुई। चंद्रकुमार ने साहस कर के तीरो से सिंह का फाड़ा हुआ मुँह भर दिया, जिस से सिंह मर गया और उन दोनों ने सुख से क्रीड़ा की। उद्यम और साहस से आई हुई विपदा चली जाती है।' मालती ने कहा 'आप गिलोल से क्या कर सकेंगे यह तो खेलने की है, संभव है ५—७ व्यक्तियों का सामना कर लें। आखिर बिना शस्त्रों के राज-सेना का सामना कैसे करेंगे? मधु ने कहा 'तुम इस की शक्ति नही जानती, अर्जुन ने जो विद्या द्रोणाचार्य से पाई थी, वही मैंने सीखी है, इस के सामने असंख्य योद्धा भी नहीं ठहर सकते।' उस ने उसी क्षण वृक्ष पर गिलोल का वार किया तो डाल, पत्ते धड़ आदि सब गिर पड़े। इधर पैदल सेना भी आ पहुँची। मधु ने युद्ध कर के सब को भगा दिया। राजा ने १००० सामंत घुड़सवार भेजे, उन्हें भी हरा दिया। तब राजा ने ५००० सैनिक भेजे। मालती ने वन को विस्तार कर मधुकरों को

बुलाया, जैतमाला ने पवन-देव की आराधना की। वायु के झकोरो से क्रुद्ध होकर भौरे सैनिक और घोड़ों को काटने लगे। भौंरों के विष से पीड़ित होकर सेना भाग गई। राजा स्वय ससैन्य आया। उस ने पहले दूत भेजा। मालती ने उसे अपमानित कर निकाल दिया। परस्पर घमासान युद्ध हुआ। भौरो का दल वस्त्राच्छादित सैनिकों का विशेष अनिष्ट न कर सका। मधु स्वयं गिलोल ले कर लड़ने लगा। कंकरों की मार से सैनिकों के दाँत तोड डाले, शरीर छिद्र-छिद्र कर दिया। इस प्रकार भयानक परिस्थिति देख कर अकेले मधु की प्राणरक्षा में संदेह समझ कर मालती भयभीत होने लगी। जैतमाला ने कहा 'मधु को मारने वाला कोई नहीं है, वह स्वयं कामदेव का अंश और अवतारी पुरुष है।' ऐसा सुन कर मालती श्री केशव जी का ध्यान करने लगी। उस की स्तुति सुन कर हरि ने गरुड़ को आज्ञा दी। गरुड़ ने दो भारंड पक्षी भेजे, वे आकर सेना का भक्षण करने लगे, शिवशकर का प्रेषित त्रिशूल आ गया। केसरी सिंह भी गरज कर हाथियों को भगाने लगे। मधु की गिलोल के कंकर, त्रिशूल की मार, भारंड और केसरी सिंह के आक्रमण से राजा अपनी बची-खुची सेना को लेकर भाग गया। एक योजन दूर पर जाकर ठहरा।

राजा ने परामर्श के लिए सब मंत्रि-मंडल को एकत्र किया, उन्हों ने कहा 'आप ने बुद्धिमान् मंत्री तारणसाह को क्यो छोड़ा, हम तो सब उसी के आज्ञाकारी हैं।' तब राजा ने तारणसाह को बुलाया। उस ने गौरीशंकर की दुहाई से उपद्रव मिटाया। गौरी ने प्रकट हो कर कहा 'मधु, मालती और जैतमाला तीनों एक ही शरीर समझो! मधु को तुम ने वणिक् समझ कर भूल की, वह तो अवतारी पुरुष है!' राजा ने कहा, 'लोक-व्यवहार में बनिए को राजकन्या देने से अपकीर्ति होती है।' मंत्री ने दो 'उलगाणा' साँपो का दृष्टांत सुना कर राजा को समझाया। अंत में राजा ने रानी से परामर्श कर के मधु के साथ मालती और जैतमाला का समारोह के साथ विवाह कर दिया। इस के बाद राजा ने अपना राज्य भी उसे दे दिया, जिस से वह बड़े आनंद से जीवन व्यतीत करने लगा।

(२) मधुमालती कथा (अपूर्ण)

गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी से प्रकाशित 'कवीश्वर दलपतराम हस्तलिखित पुस्तक संग्रह नी सूची' नामक ग्रंथ में मंझन एवं चतुरभुजदास कृत मधुमालती से भिन्न जिस अज्ञात कवि की 'मधुमालती' कथा का पता चलता है। उस के संबंध में उस सूची के

पृ० १५३ में इस विषय म इस प्रकार लिखा गया है

४६२ (अ) मधुमालती नी कथा

आरंभ——रसिक मुकुटमणि श्री व्रजनाथ, प्रथम नमुं तोय पद धर माथ।
कौतुक कथा रचुं चित साह, जो जे काज पढे चित साह।
साम दाम बुद्धि भेद जो आई, बहतु रस समगार बनाई।

. . . .

नोंध [शरुआत मां नीचे प्रमाणे लखेलुं छेः—
अथ मधुमालती नी कथा लीख्यते॥ भाशा पूरबी॥ दोहा, सोरठा, श्लोक, चौपाई १६४१ दोहा चौपाई सुधी नो भाग बंचाय एवी स्थिति मां छे, छेवट ना पानां न थी]

प्रति देखे बिना इस की कथावस्तु के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, किंतु ग्रंथ-विस्तार के हिसाब से कथा बहुत बड़ी प्रतीत होती है। अन्यत्र कहीं पूर्ण प्रति मिलने से (या इस प्रति के मध्य में कहीं कर्ता का निर्देश हो तो) रचयिता एवं कथावस्तु आदि के विषय में भी समुचित प्रकाश पड़ सकता है।

जिन दो पुस्तकों के परिचय इस लेख में मैंने अंकित किए हैं वह सत्रहवीं शताब्दी से पहले के नहीं ज्ञात होते। अतएव जो शका मैंने आरंभ मे उठाई थी (अर्थात् यह कि मलिक मुहम्मद जायसी की निर्देश की हुई 'मधुमालती' कोई अन्य और प्राचीन रचना है) बनी रह जाती है। संभव है भविष्य की खोज उस पर कुछ प्रकाश डाले।

समालोचना

गोरखनाथ ऐंड मिडीवल हिंदू मिस्टिसिज्म—लेखक व प्रकाशक, डाक्टर मोहन सिंह, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०, ओरियंटल कालेज, लाहोर; पृष्ठ-संख्या, २२+१६+९४+४०=१७२; मूल्य, १५ रुपए।

इस पुस्तक में प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ के समय, जन्मस्थान, जीवनचरित व सिद्धांतों के विषय में इतिहास की दृष्टि से निर्णय करने का प्रयत्न किया गया है, और दिखलाया गया है कि मध्ययुग के रहस्यवादी कवि अपनी विचारपरंपरा तथा बहुत कुछ अपनी रचनाशैली के लिए भी नाथपंथ के कहां तक ऋणी रहे। लेखक ने अपने विचार मुख्य कर 'गोरख-बोध' नामी किसी हस्तलिखित ग्रंथ के आधार पर निश्चित किए हैं, और उस ने कई अन्य आवश्यक सामग्रियों की भी सहायता ली है। पुस्तक का विषय अत्यंत गहन है और मत-भेदों से भरा है, किंतु लेखक का कहना है कि मुझे इस का बचपन से ही परिचय है, और बड़े-बड़े विद्वान् जानकारों के साथ रह कर मैंने इसे गंभीरता के साथ अध्ययन भी किया है। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक, छोटी होने पर भी, इस संबंध की अनेक प्रचलित ग़लत-फ़हमियों को दूर कर देगी।

पुस्तक को देखने से ज्ञात पड़ता है कि इस के चार भाग वा अंश हैं। इन में से पहले में तीन प्रस्तावनाएं दी गई हैं जिन्हें सर फ़्रांसिस यंगहस्बैंड, प्रो० डाक्टर बेटी हैमन तथा राजा दलजीत सिंह ने अलग-अलग लिखा है। इस के साथ ही लेखक ने भी अपनी दो-तीन टिप्पणियां दी हैं जिन से कुछ प्रचलित मतभेदों का परिचय और उन पर निश्चित किए गए लेखक के विचारों का सारांश मिल जाता है। उदाहरण के लिए, तीसरी प्रस्तावना के अनुसार उठने वाले, तीन प्रश्नों, अर्थात् क्या गोरखनाथ एक से अधिक हो चुके हैं? क्या 'सहज', 'शून्य', 'सुरत' जैसे शब्दों का तात्पर्य नाथपंथ और मध्ययुगीन अथवा आधुनिक संत-संप्रदाय में भी एक ही प्रकार का समझना चाहिए? और, क्या नाथपंथ ईश्वर को नहीं मानता? के उत्तर लेखक ने क्रमशः 'नहीं', 'हां' और 'नहीं' कह कर दे दिए हैं। पुस्तक

के दूसरे अंश में केवल विषय-सूची संकेत-सूची आधार ग्रंथ सूची और अनुक्रमणी दी गई है

पुस्तक का मुख्य विषय इस के तीसरे अंश के पूर्वार्ध में आता है जो केवल ४४ पृष्ठों का है। इन पृष्ठों का शीर्षक 'भूमिका' है, और इन में पहले 'गोरखनाथ' शब्द, गोरखनाथ के विषय में अध्ययन का महत्व, उस के लिए सामग्री, प्रांतीय भाषाओं का साहित्य और जोगी-संप्रदाय पर विचार प्रकट किए गए है और, उस के अनंतर, गोरखनाथ के समय, जन्मस्थान, जीवनचरित, सिद्धांत और प्रभाव के विषय में निर्णय किया गया है। इन्हीं पृष्ठों में से अंत के १० में 'गोरखबोध' ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियों तथा 'बनारसी-विलास' और 'शबद शलोक' जैसी प्रकाशित पुस्तकों और 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' एवं 'कल्याण' के 'योगांक' के कुछ निबंधों की चर्चा की गई है, और गोरखनाथ तथा सिद्धो की भाषा के संबंध में तुलनात्मक आलोचना करने का भी प्रयत्न किया गया है। सामग्रियो में से लेखक ने स्वयं गोरखनाथ के रचे छंद और पद तथा 'गोरखबोध' में दिए गए गोरख-मछंदर-संवाद को स्वभावतः सब से अधिक महत्व दिया है। परंतु जिन विशेष रचनाओं वा उन के पाठों के आधार पर लेखक ने अपना अंतिम निर्णय दिया है उन की प्रामाणिकता क्या नितांत असंदिग्ध समझी जा सकती है? गोरखनाथ के समझे जाने वाले उक्त छंदो वा पदों के असली होने के क्या प्रमाण है? क्या 'बनारसीविलास' व 'शबद शलोक' ग्रंथ, वास्तव में, किन्ही प्रामाणिक मूल प्रतियों के आधार पर प्रकाशित किए गए हैं, अथवा क्या डाक्टर बड़थ्वाल के निबंधों के मूल आधार 'पौड़ी मैनुस्क्रिप्ट' की ही प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध की जा सकती है? इस के सिवाय, स्वयं लेखक के ही अनुसार, 'गोरखबोध' की केवल तीन उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में से पंजाब यूनिवर्सिटी लायब्रेरी की प्रति पर कोई तिथि नहीं है, और वह खंडित व अपूर्ण भी है, और जोधपुर की स्टेट लायब्रेरी वाली प्रति में भी केवल कुछ और पंक्तियां मिलती है। तीसरी प्रति का लेखक ने इस से अधिक विवरण नहीं दिया है कि वह पट्टी के जैन मंदिर में रक्खी हुई है। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'गोरख-बोध' का समय १४ वी ईस्वी शताब्दी निश्चित किया था, किंतु भाषा व शैली की विशेष-ताओं के आधार पर लेखक इसे ११ वीं ईस्वी शताब्दी का ठहराते हैं। इस परिणाम पर पहुँचने के लिए जिन युक्तियों का आश्रय लेखक ने लिया है, उन पर संदेह प्रकट करने की बहुत कुछ गुंजायश है, जो पुस्तक के चौथे अंश में उद्धृत 'गोरखबोध' के पाठ को ध्यान-

पूर्वक देखने से ही स्पष्ट हो जाती है, और फिर गोरखनाथ व मछंदर के बीच क्या सचमुच ऐसी बातें हुई होंगी ?

गोरखनाथ का समय, आदि निश्चित करते समय लेखक ने इस्माइल, चर्पट, बाबा रतन, आदि कुछ व्यक्तियों के संबध मे पाए जाने वाले उल्लेखो की चर्चा की है, और परपरा के अनुसार गोरख व मछदर के शिष्य-गुरु-संबंध को मान कर सामग्रियों पर बिना कोई युक्तिपूर्ण तर्क-वितर्क किए ही परिणाम निकाल लिए है। इस कारण इस संबंध में पुस्तक मे दिए गए सभी निर्णयों से संतोष नही होता, और न उन्हें सहसा स्वीकार कर लेने को जी चाहता है। गोरखनाथ के जन्मस्थान के विषय में लेखक ने, जान पड़ता है, केवल उन्ही प्रमाणो का उल्लेख किया है जो उस का पंजाब वा किसी दूसरे पश्चिमी प्रात के अंतर्गत होना बतलाते हैं। पूर्व ओर के गोरखपुर अथवा नेपाल की गोरखा जाति के विषय को यह कह कर टाल दिया है कि किसी दूसरे लेखक ने 'गोरखा' और 'गायकवाड' शब्दो को एक ही मूल से उत्पन्न माना है। अतएव, संभव है कि नेपाल में आने वाली किसी राजपूत जाति ने, उस प्रात को जीत कर आबाद किया हो; और 'गोरख' वा 'गोरखा' शब्द 'गायकवाड' का ही अपभ्रंश हो। किंतु यही तर्क पंजाब वाले गोरखपुर वा गोरख नामधारी किसी दूसरे स्थान के विषय में भी क्यों नही लागू हो सकता अथवा पूर्वी गोरखपुर की प्राचीनता वा उस के मंदिर आदि के महत्व को किस प्रकार सहसा उड़ा दिया जाय, तथा इस सबध की अनेक परंपराओं को भी किस प्रकार भुला दिया जाय, इस का कोई समाधान लेखक ने नही दिया है। गोरखनाथ व नाथपथ के मुख्य-मुख्य सिद्धांतों के विषय में भी, इसी प्रकार, लेखक के कुल विचारों से सभी सहमत नही हो सकते, किंतु उन की पूरी आलोचना के लिए अधिक स्थान अपेक्षित होगा। गुरु गोरखनाथ व नाथपंथ के प्रभाव संबंधी विचार बहुत अशों में ठीक कहे जा सकते है, और लेखक का यह कहना भी युक्ति-संगत है, कि वास्तव मे, कनफटा संप्रदाय गोरख के पहले का है।

अंत में पुस्तक की रचना-शैली के विषय में भी दो-एक बातें लिखना आवश्यक जान पड़ता है। पुस्तक, जैसा ऊपर कहा गया है, छोटी होने पर भी कई अंशो मे विभक्त है, परंतु फिर भी इस में कोई व्यवस्था स्पष्ट नही होती। लेखक ने इस के कई अंशो को, जहां चाहा है, स्थान दे दिया है। उदाहरण के लिए अनुक्रमणी और अशुद्धि पत्रों का बीच में आना बहुत खटकता है। इस के सिवाय लेखक ने जिस विषय को लिया है उसे पूरा

किए बिना ही-कहीं-कहीं वह बीच-बीच म अन्य प्रकार की बातें डाल देता है जो उचित नही जान पड़ता। सारी पुस्तक, एक प्रकार की नोट-कापी सी हो गई है, और इस का कारण कदाचित् लेखक की प्रकाशन-संबंधी शीघ्रता ही कही जा सके। फिर भी विषय की दृष्टि से पुस्तक अत्यंत उपादेय है, और आगे की खोज के लिए इस से पूरी सहायता मिल सकती है। पुस्तक का मूल्य, २५) से १५) रुपए कर देने पर भी, अभी बहुत अधिक है।

कात्यायन

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १॥)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १॥)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १॥)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक श्रीयुत पण्डित पद्मसिंह शर्मा मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १॥)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६); कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १॥)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥); कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट् (पेरिस)। मूल्य ॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अप्रैल, १९३६

हिंदुस्तानी एकेडेमी
संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अप्रैल, १९३९

संपादक—रामचंद्र टंडन

संपादक-मंडल

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ६ } अप्रैल, १६३६ { अंक २

महात्मा चरणदास जी

[लेखक—श्रीयुत ब्रजरत्न दास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

चरणदास जी के विषय में पहले-पहल 'भाषा-काव्य-संग्रह' तथा 'शिवसिंह-सरोज' में केवल इतना लिखा मिलता है कि यह फ़ैजाबाद ज़िले के अंतर्गत पंडितपुर ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे, तथा इन का समय सं० १५३७ था। इसी की सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में पुनरावृत्ति मात्र कर दी है। 'मिश्रबंधुविनोद' के नए सस्करण मे सं० ५२६, सं० ६५३ तथा सं० ८४२ पर चरणदास नाम के तीन व्यक्तियो के उल्लेख हैं। तीसरे चरणदास कोई ऐसे सज्जन हैं, जिन का रचना-काल उन्नीसवी शताब्दी का आरंभ है। प्रथम संख्या पर 'नेहप्रकाशिका' तथा 'बिहारी-सतसई' नामक दो रचनाएं, कवि का नाम, और सं० १७४६ रचना-काल मात्र दिया है। दूसरी संख्या पर अलवर के धूसर ब्राह्मण चरणदास का उल्लेख है, जिन के पूरे एक दर्जन ग्रंथों की सूची दी गई है। इन का जन्म-मृत्यु-काल क्रमशः सं० १७६० तथा १८३८ लिखा गया है। विवरण केवल इतना दिया है कि—"ये अलवर में पैदा हुए और देहली में मरे। ये व्यास-पुत्र शुकदेव जी के शिष्य थे। 'सरोज' ने इन का समय सं० १५३७ दिया है और केवल 'ज्ञानस्वरोदय' इन का रचित लिखा है। यहां खोज कर संवत् दिया गया है। द्वितीय

त्रैवार्षिक रिपोर्ट से इन के एक और ग्रंथ 'कुरुक्षेत्र की लीला' का पता चलता है तथा 'ब्रह्मज्ञान-सागर' तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में मिला है।[1]

तात्पर्य यह कि 'विनोद' का सारा साधन नागरी-प्रचारिणी-सभा की रिपोर्टें हैं। अतः अब उन पर भी एक सरसरी दृष्टि डाल लेना चाहिए। सन् १९०१ ई० की रिपोर्ट में चरणदास की केवल एक रचना 'ज्ञान-स्वरोदय' का विवरण दिया गया है।[2] इस में जन्म-मृत्यु-संवत् पूर्वोल्लिखित ही है पर चरणदास का पंडितपुर का ब्राह्मण होना अशुद्ध बतलाया गया है,[3] तथा इन की एक शिष्या सहजोबाई का भी उल्लेख है। सन् १९०५ की रिपोर्ट मे 'अष्टांगयोग', 'नासकेत' तथा 'संदेहसागर' नामक इन की तीन रचनाओं का उल्लेख है। इस में जन्म-मृत्यु-संवत् तक नहीं दिया गया है, न और विशेष कुछ लिखा है।[4] सन् १९०६-८ की प्रथम त्रैवार्षिक रिपोर्ट में इन की सात रचनाएं दी गई है।[5] इन्हें इस में अलवर का ढूसर बनिया लिखा है, तथा सहजोबाई नाम की इन की शिष्या का उल्लेख है। इसी रिपोर्ट में संख्या २२६ पर सहजोबाई का और संख्या ९ पर बालकृष्ण नायक का उल्लेख है, जो अपने को चरणदास का शिष्य बतलाते हैं। ये सब रिपोर्टें राय बहादुर बाबू श्यामसुंदरदास जी की तैयार की हुई हैं। द्वितीय तथा तृतीय-त्रैवार्षिक रिपोर्टें द्वितीय तथा तृतीय विनोदकारों ही द्वारा लिखी गई है। इन मे द्वितीय में संख्या ४५ पर 'कुरुक्षेत्र-लीला' नामक चरणदास जी की रचना की रिपोर्ट है। विशेष कुछ न लिख कर चरणदास का पंडितपुर का होना अशुद्ध बतलाया गया है। तृतीय में 'भक्तिसागर', 'अष्टांगयोग' और 'ब्रह्मज्ञानसागर' इन तीन रचनाओं की रिपोर्टें हैं। चरणदास के विषय में उक्त रिपोर्टों मे जो लिखा गया है उस का साराश यही है कि तीन चरणदास हो गए हैं, जिन में सुखदेव दयाल के शिष्य यह चरणदास स्वामी

---

[1] 'मिश्रबंधुविनोद', भाग २, पृ० ६०१—२

[2] सं० ७०

[3] मेवात के वर्तमान ढूसर अपने को वधूसर भार्गव ब्राह्मण कहते है और वधूसर का अपभ्रंश ढूसर बतलाते है। हेमू ढूसर था, और मुसलमान इतिहासकारों ने उसे बक्काल लिखा है। चरणदास, सहजोबाई आदि ने अपने को ढूसर मात्र लिखा है, वणिक् या ब्राह्मण का उल्लेख भी नहीं किया है।

[4] संख्या १७—१९

[5] संख्या १४७ ए से जी तक।

हरिदास जी के वैष्णव सम्प्रदाय के थे इन के ११ ग्रंथ पहले ज्ञात हो चुके थे, अब यह बारहवां 'ब्रह्मज्ञानसागर' नया मिला है। नहीं कहा जा सकता कि उक्त खोज के आधार पर होते हुए भी 'विनोद' का विवरण क्यों भिन्न हो गया है, और उस के लिए कोई कारण भी नहीं दिया हुआ है। खोज में इन्हें राधावल्लभीय क्यों लिखा है इस का भी उस में कोई कारण नहीं बतलाया गया है।

अब तक हिंदी साहित्य के इतिहास में चरणदास जी के विषय में जो कुछ लिखा मिला है, उस का सार ऊपर दे दिया गया है। इस से ज्ञात होता है कि इन की जीवनी तथा इन की रचनाओं पर विशेष प्रकाश डालने का अब तक कोई प्रयास नहीं किया गया, नहीं तो इतना साधन अवश्य प्राप्त है कि इन की संक्षिप्त जीवनी पूरी तैयार हो सकती है। अब इन्हीं साधनों पर विचार किया जायगा।

चरणदास जी की एक शिष्या सहजोबाई थीं, जो उन की स्वजातीय तथा उन्हीं की जन्मभूमि की निवासिनी थीं।[1]

हरि प्रसाद की सुता नाम है सहजो बाई।
ढूसर कुल में जन्म सदा गुरु-चरन्ह सहाई॥

इन्हों ने 'सहज-प्रकाश' नामक एक ग्रंथ लिखा है, जिस की रचना का समय उस में इस प्रकार दिया गया है—

फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संबत अठारे सै हुते, सहजो किया सिचार॥
दिल्ली सहर सुहावना, परीछित पुर में बास।
तहाँ समापत ही भई, नवका सहज प्रकास॥

उक्त उद्धरण से सहजोबाई का हरिप्रसाद ढूसर की पुत्री होना, तथा दिल्ली में सं० १८०० के फाल्गुन शुक्ल ८ बुधवार को 'सहज-प्रकाश' का समाप्त होना निश्चित हो जाता है। यह संसार-विरक्त हो कर अविवाहिता रह गई, और चरणदास जी की शिष्या हो कर उन की विशेष कृपापात्री हुईं। इन के जन्म-मरण के विषय में ठीक पता नहीं चलता।

---

[1] 'सहजोबाई की बानी', (संतबानी सीरीज, बेल्वीडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ० ४४–५

गुरु से अवस्था में छोटी थीं इस से इन का जन्म सं० १७६
न्हों ने अवस्था भी अधिक पाई थी। दयाबाई इन की स्व
और इन दोनों में बड़ी मित्रता थी। दोनों ही गुरु-सेवा मे
ी कविता गुरुभक्ति तथा ईश्वर-प्रेम से भरी है। इन्हीं सहजो
र कुछ पद[1] लिखे हैं, जिन के आवश्यक अंश यहां उद्धृत

१---सखी री आज जन्म लियो सुखदाई।
दूसर कुल में प्रगट हुए है बाजत अनंद बधाई॥
भादों तीज सुदी दिन मंगल सात घड़ी दिन आए।
संबत सत्रह साठ हुते तब सुभ समयो सब पाए॥
गुरु सुकदेव नांव धरि दीन्ह्यो चरनदास उपकारी।
सहजोबाई तन मन वारे नमो नमो बलिहारी॥

२---सखी री आज आनंद देव बधाई।
धन भादों धन तीज सुदी है जा दिन प्रगटे आई॥
धन धन कुंजो भाग तिहारे चरनदास सुत पाई।
श्री सुकदेव करी जब किरपा गावै सहजोबाई॥

३---सखी री आज धन धरती धन देसा।
धन डहरा मेवात मंझारे हरि आये जन भेसा॥
धन भादों धन तीज सुदी है धन दिन मंगलकारी।
धन दूसर कुल बालक जनम्यौ फुल्लित भये नर न
धन धन माई कुंजो रानी धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाये तिनकै सुत भयौ ज्ञाता॥
भरम नसावन भक्ति बढ़ावन बहु पारायन करता।
सब फलदायक सब कुछ लायक अघमोचन दुख हरत
अनगिन बरस बहुत चिरजीवौ गुरु सुकदेव सहाई।
सहजोबाई देत असीसै पावै दरस बधाई॥

---

[1] 'सहज-प्रकाश', संतबानी सीरीज, पृ० ५६–७, १–२

४—कर जोरूं परनाम करि धरूँ चरन पर सीस।
दादा गुरु सुकदेव जी पूरन बिस्वे बीस॥
५—नमो नमो सुकदेव गुसाईं। प्रगट करी भक्ती जग माहीं॥
श्रीमतभागवत् भानु प्रकासा। पढ़ि सुनि कटै तिमिर की फांसा॥
ज्ञान जोग की नौका कीन्ही। चरनदास केवट को दीन्ही॥

उक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि मेवात के अंतर्गत डेहरा में चरणदास जी का सं० १७६० के भाद्रपद शुक्ल ३ मंगलवार को सात घड़ी दिन चढ़ने पर जन्म हुआ था। इन के पिता मुरलीधर ढूसर जाति के थे, और इन की माता का नाम कुंजो था। इन के गुरु का नाम सुकदेव था और उन्हों ने इन का नाम चरणदास रक्खा था तथा इन्हे श्री मद्भागवत और ज्ञानयोग की शिक्षा दी थी।

चरणदास जी स्वयं भी अपनी रचनाओं में अपने विषय में यथास्थान कुछ लिख गए हैं।

१—डहरे में मेरा जनम नाम रंजीत बखानौ।
मुरली को सुत जान जात ढूसर पहचानौ॥
बाल अवस्था माहिं बहुरि दिल्ली में आयो।
रमत मिले सुखदेव नांव चूनदास धरायो॥
जोग जुगत हरि भक्ति कर ब्रह्म ज्ञान दृढ़ कर गह्यौ।
आतम तत्व विचार कैं अजपा में सन मन रह्यौ॥
('ज्ञानस्वरोदय')

२—ब्रह्मज्ञान पोथी कही चरनदास निरवार।
समझै जीवन मुक्त हो लहैं भेद ततसार॥
चरनदास रंजीत भए जब आनंद आनंद सूझा।
('शब्द')

३—संवत सत्रह सै इक्यासी। चैतसुदी तिथि पूरनमासी॥
सुकल पक्ष दिन सोमहि वारा। रचौं ग्रंथ यौं कियो विचारा॥
तब ही सूं अस्थापन धरिया। कुछ इक बानी वा दिन करिया॥
ऐसे ही पांच हजार बनाई। नाव गुरु के संग बहाई॥

फिर भई बानी पाच हजारा। हरि के नाव अगिन में जारा
तीजे गुरु आज्ञा सूं कीनी। सो आपन संतन के दीनी।।
जामे ज्ञान जोग वैरागा। प्रेमभक्ति जामै अनुरागा।।
निर्गुन सर्गुन सबही कहिया। फिर गुरु चरन कमल में रहिया।।

('भक्तिसागर') लिपिकाल सं० १८३९

पूर्वोक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि इन का नाम रंजीत था और डेहरे में इन का जन्म हुआ था। इन के पिता मुरली ढूसर जाति के थे। यह बाल्यावस्था ही में दिल्ली चले आए, जहां मार्ग मे घूमते-फिरते सुखदेव जी मिले। इन्हो ने इन का चरनदास नाम रख कर योग, हरिभक्ति तथा ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी। इन्हों ने सं० १७८१ के चैत्र शुक्ल १५ सोमवार को ग्रंथ-रचना आरंभ की और पांच-पांच हजार बानियों के तीन संग्रह बनाए। इन में प्रथम मे गुरु के नाम पर भक्ति की गंगा बहाई गई है, दूसरे में योग पर लिख कर भगवान् के नाम पर आहुतियां दी हैं, और तीसरे मे निर्गुन कथा, उपदेश आदि कह कर अपने शिष्य-संप्रदाय को दिया है। इस प्रकार सहजोबाई द्वारा लिखित चरण-दास की अति संक्षिप्त जीवनी का इस से पूर्णतया समर्थन होता है।

इन के जिन एक शिष्य बालकृष्ण नायक[1] का ऊपर और उल्लेख हो चुका है, उन के एक ग्रंथ 'ध्यानमंजरी' की रचना

सत्रह सै षडविंस बरषवर मास फालगुन।
सुकल पक्ष पंचमी अमल सुभ वार लगन पुन।।

है, जो चरणदास के जन्म के ४४ वर्ष पहले समाप्त हो चुका था। इन्हों ने अपने को ध्यान-दास तथा चरणदास का 'अनुग' कहा है—

श्री विनोदी श्री ध्यानदास जग जीव उद्धारक।
श्री चरणदास जन तोष करण भूजस विस्तारक।।
तिनके अनुग बनाय करी यह संत जननि हित।

अत. यह चरणदास अन्य तथा इन चरणदाम के पूर्वकालीन हैं।

अंग्रेजी में 'ट्राइब्ज ऐंड कास्ट्स' नामक एक बृहत् पुस्तक चार जिल्दों में है, जिसे

---

[1] सन् १९०६-८ की त्रैवार्षिक रिपोर्ट सं० ९ ए।

मिस्टर क्रुक्स ने लिखा है इस में चरणदासी मत के विषय में लिखते हुए उस के प्रवर्तक की जीवनी भी दी है, जिस का पूरा उद्धरण नीचे दिया जाता है।

"चरणदास ने अपना एक मत चलाया था, जो चरणदासी कहलाता है। इन का जन्म अलवर के अंतर्गत डेहरा में सन् १७०३ ई० में हुआ था। इन के पिता मुरलीधर जब मरे तब उस के पुत्र रंजीतसिंह की अवस्था पाँच वर्ष की थी। इन की बहन का नाम सहजोबाई था, जिन्हों ने 'सहज-प्रकाश' ग्रंथ लिखा है। यह बालक उसी समय दिल्ली चला आया, और अपने संबंधियों के यहां रहने लगा। यह उन्नीस वर्ष की अवस्था में मुज़फ़्फ़रनगर के पास शूकरताल में बाबा सुखदेवदास का शिष्य हुआ, जो प्रसिद्ध साधु थे, और जिन्हों ने इस का नाम रामचरणदास रक्खा। बाद को इन्हों ने अपना संप्रदाय अलग चलाया और बहुत से शिष्य बनाए। इन के प्रधान शिष्य स्वामी रामरूप तथा गोसाई जगपतन और शिष्या सहजोबाई थी। इन में से प्रत्येक ने अलग-अलग मठ स्थापित किए और उन के व्यय के लिए मुगल बादशाहों से भूमि प्राप्त की, जिन की सनदों को बृटिश सरकार ने भी मान लिया है।[1] इन की रचनाएं 'संदेह-सागर', 'नासकेत' तथा 'धर्म-जहाज' हैं। एक गुटका भी है, जो उपनिषदों पर लिखा गया है। इन की खास बहन सहजोबाई थीं चरणदास के जन्मस्थान डेहरा में इन की छतरी बनी है,[2] जहा इन की माला तथा वस्त्र अब तक सुरक्षित हैं।"[3]

इतना विवरण चरणदास जी के चलाए संप्रदाय के अनुयायियों तथा मठाधीशों से पूछ कर ही लिखा गया है, और पहले लिखे गए जीवन-वृत्त का समर्थन करते हुए उस पर बहुत कुछ नया प्रकाश भी डालता है। अतः चरणदास का इतना जीवन-वृत्त सब प्रकार से निश्चित तथा मान्य है।

अलवर के तहसीलदार शेख़ मुहम्मद मखदूम के लिखे हुए अलवर के इतिहास 'मुरक़्क़ए अलवर' के पृ० ८१ पर चरणदास का कुछ जीवन-वृत्त लिखा गया है, जिस का सारांश यह है, कि आलमगीर द्वितीय के समय में चरणदास नामक एक सिद्ध पुरुष

---

[1] मैकलेगन, 'पंजाब सेन्सस रिपोर्ट', १२० और बाद के पृष्ठ।
[2] राजपूताना गेज़ेटियर, जिल्द ३, पृ० २१५
[3] कुक्स 'ट्राइब्ज ऐंड कास्टस', जि० २, पृष्ठ २०१–५

हो गए हैं जो स्वरोदय ज्ञान में अद्वितीय थे अलवर के अंतर्गत डहरे में सं० १७६० मे इन का जन्म हुआ था, और माता का कुंजो तथा पिता का मुरलीधर नाम था। जाति के ढूसर थे। इन की माता पाँच वर्ष की अवस्था में इन्हे लेकर दिल्ली आई, जहां उस के पिता बहादुरगढ़ से आ कर बस गए थे। यहीं पढ़-लिख कर यह स्वरोदय ज्ञान में ऐसे सिद्ध हो गए कि लोग आकर इन का चरण पूजते थे। इन के बहुत से शिष्य भी हो गए थे। यह मगसर सुदी ४ सं० १८३९ को दिल्ली में मरे, जहां इन की समाधि है। डेहरे मे इन की छतरी है, जहां इन की माला और टोपी रक्खी है। हर साल उन के दर्शन को मेला लगता है।

चरणदास जी के समस्त ग्रथों का एक संग्रह श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है, जिस की मूल कापी अत्यंत प्राचीन हस्तलिखित बतलाई जाती है, और जो इन्ही के संप्रदाय के एक महंत द्वारा प्राप्त हुई है। इसी संप्रदाय के सज्जनों द्वारा लिखित इस मे भूमिका, जीवनी आदि भी दी गई है। चरणदास जी के शिष्य रामरूप जी कृत शुकदेव जी की जन्मलीला भी इस में सम्मिलित की गई है। इस संग्रह में ३ पृष्ठों मे चरणदास की जीवनी दी गई है पर उस में नाम आदि के सिवा जो कुछ अधिक है वह उन का माहात्म्य बढाने का चमत्कार-पूर्ण कथन मात्र है। उस पर विशेष आस्था रखना समय के अनुकूल नहीं है, तब भी उस का सारांश यहां दे दिया जाता है।

"चरणदास के आठ पीढ़ी पहले इन के वंश मे शोभनदास जी हो गए थे, जो श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इन पर प्रसन्न हो कर प्रत्यक्ष दर्शन देकर भगवान् ने वर दिया था कि तुम्हारी आठवी पीढी मे हमारा अंशावतार होगा। चरणदास जी के पिता मुरलीधर भी परम भक्त थे तथा वह सदेह वैकुंठ पधारे थे, और इन की माता च्यवन कुल की थी। चरणदास दीक्षित होने के अनतर बृंदावन गए और श्री राधाकृष्ण की रासलीला का उन्हे दर्शन हुआ। वहां से लौट कर यह दिल्ली में श्री जी का मंदिर स्थापित कर वहीं रहने लगे। इन के बहुत से शिष्य हुए। इन का संप्रदाय चरणदासी वैष्णव कहलाया। मुहम्मदशाह बादशाह इन का भक्त हो गया। इन्हें सहस्रों ग्राम भेंट किए। नादिरशाह की चढ़ाई का वृत्त इन्हों ने छः महीना पहले मुहम्मद शाह से कह दिया था। यह हाल सुन कर नादिरशाह भी इन से मिलने आया था। चरणदास जी अस्सी वर्ष तक इस लोक मे रह कर सं० १८३९ वि० में परलोक सिधारे।"

प्रोफ़ेसर विल्सन चरणदासी मत के विषय में लिखते हैं कि "इस संप्रदाय म सृष्टि-क्रम का सिद्धांत विशेषतः वेदांत ही के समान है, पर वैष्णव मतानुसार श्रीकृष्ण ही को ये भी परब्रह्म मानते हैं। इस मत में वैष्णवों के समान ही गुरु तथा हरिभक्ति को सर्वोपरि माना है। कहते हैं कि वे पहले ईश्वर के किसी चिह्न की पूजा करने में भिन्न मत रखते थे, और तुलसी तथा शालिग्राम की अर्चना नहीं करते थे, पर बाद को वे वैसा करने लगे क्योंकि रामानंदी संप्रदाय में वैसा होता था तथा ये उन से मित्रता रखते थे। ये सदाचार को महत्व देते हैं, और कर्म को महत्व देते हुए उस से अपने को स्वच्छंद नहीं मानते, क्योंकि उस का बुरा तथा अच्छा फल मिलता है। इन में माध्व-संप्रदाय के अनुसार दस निषेध आज्ञाएं हैं, जैसे असत्य न बोलना, किसी पर व्यंग्य न कसना, किसी से कठोर भाषण न करना, आलस्य में समय न बिताना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, किसी को कष्ट न पहुँचाना, किसी की बुराई न चेतना, किसी से घृणा न करना, तथा अहंकार न रखना। इसी के साथ विधेय आज्ञाएं हैं कि स्ववर्ण के अनुसार काम करना चाहिए, साधु-संतों का सत्संग रखना चाहिए, गुरु पर पूरी आस्था रखनी चाहिए और वृंदाबन के श्रीकृष्ण ही को सर्वस्व मानना चाहिए, जो अपनी माया से सृष्टि को चला रहे हैं। इन में संसार-विरक्त तथा संसारी दोनों ही होते हैं। प्रथम पीत वस्त्र पहनते हैं, गोपीचंदन का एक लंबा टीका मस्तक पर लगाते हैं और तुलसी की माला तथा सुमिरिनी रखते हैं। छोटी नुकीली टोपी पहिन कर पीला साफ़ा बाँधते हैं। रहन-सहन अच्छा होता है, पर साधु होते भी अमीर शिष्यों के कारण आराम से रहते हैं, गोकुलस्थ गोस्वामियों के प्रभुत्व को हटाने के लिए यह संप्रदाय चला है। 'भागवत' तथा 'गीता' के भाषानुवाद इन के प्रधान ग्रंथ हैं, जिस में प्रथम का बहुत अंश स्वयं चरणदास कृत है। इन की रचना 'संदेहसागर' तथा 'धर्म-जहाज' गुरु-शिष्य के संवाद-रूप में है। चरणदासियों के मत में इन के गुरु शुकदेव जी पुराण-लेखक व्यास जी के पुत्र थे। इन की खास बहिन सहजोबाई इन की प्रथम शिष्या थीं, जिन्होंने 'सहज-प्रकाश' तथा 'सोलह-तत्व-निर्णय' लिखा है। प्रधान स्थान दिल्ली में है, जहां इन की समाधि है।"[1]

---

[1] विल्सन, 'एसेज़', जिल्द १, पृ० १७५

(२)

इन की रचनाए बहुत ह और कई चरणदास के होन से कभी कभी भ्रम स एक की पुस्तकें दूसरे के नाम लिख दी जाती है। मेरे पुस्तकालय मे चरणदास की हस्तलिखित रचनाओं की दो जिल्दें हैं, जिन के ग्रंथों के नाम तथा विवरण नीचे दिए जाते हैं।

१—**अमरलोक अखंडधाम**—इस में दोहे-चौपाई में गोलोक, सखा-सखी तथा श्री राधाकृष्ण का अनुराग वर्णित है। इस में ९—९ पंक्ति के ३२ पृष्ठ है।

२—**ज्ञान-स्वरोदय**—इस मे दोहा, चौपाई, कुडलिया और छप्पय में योग के स्वॉस-भाग के माहात्म्य तथा तत्व का वर्णन है। ९-९ पंक्ति के ५८ पृष्ठ हैं।

३—**रागसंग्रह**—९—९ पंक्तियों के २८ पृष्ठों में १२ पद हैं।

४—**भक्ति-पदारथ** ३२० दोहे, चौपाई, कुंडलिया आदि में गुरु तथा हरिभक्ति और सत्सग का माहात्म्य इस में कहा गया है। दोहे अधिक हैं। १४—१४ पक्तियों के ५७ पृष्ठ हैं।

५—**ब्रह्मज्ञान-सागर**—इस में १९० दोहे, चौपाई, कवित्त आदि मे त्रिगुण, जीव, माया, इंद्रिय, नाड़ी, परमेश्वर की सभी मे व्याप्ति आदि का वर्णन है। १४—१४ पक्तियों के ३६ पृष्ठ है।

६—**नासिकेतु वर्णन**—इस में नासिकेतु-उपाख्यान १४—१४ पक्तियो के ७९ पृष्ठों मे, १८३ पदों मे, वर्णित है। दोहे, चौपाई ही अधिक हैं। नरक तथा स्वर्ग दोनो ही का अच्छा वर्णन है।

७—**शब्द**—यह १४—१४ पंक्तियों के ६६ पृष्ठों में है। गुरु के अंग, भक्तो के अग, एक पद में श्रीकृष्ण के १०८ नाम, सगुण उपासना के अंग, जोग, बैराग के अग आदि का ७१ पदों में वर्णन है। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस के छपे संग्रह में २४—२४ पंक्तियो के १२४ पृष्ठों में यह संग्रह है।

उक्त सात रचनाओं के सिवा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित चरणदास जी के 'भक्तिसागर-संग्रह' में जो ग्रंथ अधिक है, उन का विवरण नीचे दिया जाता है।

८—**ब्रज-चरित्र**—इस मे ब्रजमंडल तथा कृष्णलीला का संक्षेप में वर्णन है। चौपाई अधिक हैं, कहीं-कहीं दोहा, कवित्त भी है। छापे की २४ पंक्ति के १४ पृष्ठ हैं।

९—**धर्म-जहाज**—गुरु तथा शिष्य के संवाद-रूप मे धर्म की कुछ मोटी-मोटी

बातें कही गई हैं। दोहे, चौपाई ही में कुल कथन है। ३० पृष्ठ की पुस्तक है।

१०—अष्टांग-योग—गुरु शिष्य-संवाद में योग के आठों अंगों का वर्णन है चौपाई, दोहे ही अधिक हैं तथा ३७ पृष्ठ है।

११—षट्कर्म हठयोग वर्णन—इस में गुरु-शिष्य संवाद में हठयोग के ६ कर्म मुद्राएं, बंधन तथा अष्टसिद्धि का वर्णन है। यह भी दोहे, चौपाई में है, और १५ पृष्ठो का है।

१२—योग संदेह सागर—पाँच पृष्ठों की दोहे चौपाई में छोटी सी रचना है। इस में प्राणायाम, नाड़ी आदि का वर्णन है।

१३—पंच उपनिषद्—२५ पृष्ठों में पाँच उपनिषदों का तथ्य बतलाया है। दोहे तथा अष्टपदियों मे है।

१४—गुटका (मन विकृत करन)—श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में दत्तात्रेय द्वारा राजा यदु को जो ज्ञानोपदेश दिया गया है उसी का सार इस में ३० पृष्ठो मे वर्णित है। दोहे तथा अष्टपदियां ही हैं।

१५—भक्तिसागर—यह तेरह पृष्ठो का छोटा सा ग्रंथ है। इस में योग का निर्देश कर भक्ति का प्राधान्य दिखलाया गया है। यह आरंभिक ग्रंथ है और इसी नाम पर इन की सभी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित भी हुआ है।

इस प्रकार चरणदास जी की निश्चित १५ रचनाओं का ऊपर उल्लेख हो चुका है। इन के सिवा खोज के आधार पर मिश्रबंधुओं ने 'हरिप्रकाश टीका', 'दानलीला' तथा 'राममाला' तीन रचनाएं और लिखी हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्त-लिखित हिंदी पुस्तकों के खोज-विवरण में पृष्ठ ४३ पर 'कुरुक्षेत्र-लीला', 'दानलीला', 'राममाला' और 'चरणदास-सागर', पूर्वोल्लिखित १५ रचनाओं के अलावा अधिक हैं। इस में पहले अंतिम नाम पर विचार कीजिए। उक्त विवरण में इस नाम के आगे (ख ७०) लिखा हुआ है, और ख से सन् १९०१ ई० की वार्षिक रिपोर्ट से मतलब है। उस रिपोर्ट के देखने से ज्ञात होता है कि उक्त नं० पर 'ज्ञानस्वरोदय' का विवरण दिया हुआ है। परंतु विवरण के नोट के अंत में इतना अवश्य लिखा है कि 'इन का एक ग्रथ और भी सुना गया है, जिस का नाम 'चरणदास-सागर' है। बस यही सुनी बात खोज-विवरण में दर्ज हो गई। उक्त खोज-विवरण बहुत शुद्ध नही है। 'कुरुक्षेत्र-लीला' वास्तव

में चरणदास जी की है, क्योंकि द्वितीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में उस के जो अंश उद्धृत हैं वे उन्ही की कृति हैं। यह १३-१३ पंक्तियों के ७८ पृष्ठों में समाप्त हुआ है, और इस में कृष्ण-लीला वर्णित है। इस में अष्टपदियां अधिक ज्ञात होती हैं। अन्य दो नाम, 'माला' तथा 'दानलीला' के उद्धरण रिपोर्ट मे नहीं दिए गए हैं, अतः उन के विषय में कुछ नही कहा जा सकता।

(३)

चरणदास जी परम वैष्णव थे पर भक्ति के साथ योग का मेल भी इन में था और सामयिक संतों का प्रभाव भी इन पर कम न था। इन्होंने भी अपना एक पंथ चलाया है, जो वैष्णव माध्व संप्रदाय के अंतर्गत आ जाता है। यह भक्ति को सर्वोपरि धर्म मानते थे। लिखते हैं—

बृन्दाबन सब सो बड़ो, जैस दूध में घीव।
सब धर्मन में भक्ति ज्यों, यथा पिंड में जीव।।

'ब्रजचरित्र' मे वृंदाबन की बड़ी प्रशंसा करते हुए श्रीराधाकृष्ण तथा गोप-गोपियों की लीला का अच्छा वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के शृंगार का वर्णन करते हुए कहते हैं—

कुमकुम बिंदी दीपित भाल उदधि-जात द्युतिता हरनम्।
मकराकृत कुंडल असि राजत झुमक दामिनी छबि धरनम्।।
कटि किंकिनि पैंजनि पग बाजत मुक्तमाल सुर सुर बरनम्।
जन चरनदास चरनन को चेरो सदा रहै गिरिधर शरनम्।।

इन की श्रीकृष्ण पर परम निष्ठा रही है। जिस अखंडधाम अमरलोक का चित्र इन्होंने खीचा है, उस में इन्ही अपने इष्टदेव का प्रतिष्ठापन करते हुए कहा है कि—

आदि पुरुष परमात्मा, तुमहिं नवाऊं माथ।
चरनन पास निवास दै, कीजै मोहि सनाथ।।
तुम्हरी भक्ति न छाड़हूं, तन मन शिर क्युं न जाव।
तुम साहिब मैं दास हूं, भलो बनो है दाव।।

चरणदास ढोंगी संत साधुओं से चिढ़ते थे। जो कोरी बकवाद किया करते

हैं पर कार्य में संलग्न नहीं रहते, केवल साधु का भेष बना लेते है पर अंत.करण से स
नही रहते। वे

अंतर में करनी नहीं, मनही माँहि लजात।
दंभी उन को जानिए, जग में सिद्ध दिखात॥

प्रत्येक पुरुष को जीवन में यथाशक्ति कार्य अच्छे करने चाहिए क्योंकि कर्म, होनहार
भाग्य क्या है—

पिछली करनी अब की पावै, ताही को नर करम बतावै।
होनहार अरु भाग वही है, परालब्ध सोइ बड़ो कही है॥

इस लिए इन का उपदेश है कि सुकार्य ही धर्म है। 'धर्मजहाज' नामक रचना में उज्ज्व
तथा खोटे कर्मो का विस्तार से वर्णन किया है और अंत में कहा है कि ये सुकर्म ही धर्मरू
पोत हैं, जिस पर चढ़ कर जीव भवसागर पार हो जाते हैं।

करनी ही सों सिद्धि ह्वै जावै। अष्टसिद्धि करनी सों पावै॥
यह तौ धर्म जहाज है, मैं तोहि दई निहार।
भवसागर में डारियो, चढ़ै सो उतरै पार॥

'भक्ति-पदार्थ-वर्णन' में जहां भक्त तथा साधु के माहात्म्य का वर्णन किया है वह
विशेष कर उन के सुकार्यो ही पर दृष्टि रक्खी है—

दयावान दाता गुन पूरे। पैज धारणा बचनौं शूरे॥
मुक्ति कामना फल नहि चाहैं। ऋद्धि सिद्धि अरु त्यागैं लाहैं॥
हार जीत नहिं वाद विवादा। सदा पवित्र समझ अगाधा॥
हिंसा अकस भाव नहिं दूजा। सब जीवन की राखै पूजा॥

चरणदास जी ने इस ग्रंथ में भक्ति का विस्तार से वर्णन किया है और उस के अंग-प्रत्यंग
ार विचार किया है। किस प्रकार मोह, माया, दंभ आदि से भक्ति रक्षा करती
ओर दया, शील, दान आदि की ओर भक्तों को प्रेरित करती रहती है, इस की विवेचन
ी है। यद्यपि इन्हों ने योग के आठों अंगों पर, हठयोग के षट्कर्म, ब्रह्मज्ञान आदि प
भी विस्तार से लिखा है पर अंत में आ कर सब के फल-स्वरूप यही निष्कर्ष निकाल
है कि—

प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेमभक्ति बिन साधिबो, सब ही थोथा ध्यान ।।
प्रेम छुटावै जगत कूं, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति और ही, लै पहुंचै हरिधाम ।।

तात्पर्य यह कि चरणदास जी परम भक्त थे। 'अष्टादस अरु चार को काढ़ि लियौ ततसार।' उस सार को उन्होंने भक्ति ही माना है।

पालि खरपुत्तजातक का अवधी रूपांतर

[लेखक—डाक्टर बाबूराम सक्सेना, एम्० ए०, डी० लिट्०]

पालि की जातक कथाओं में भारतीय दंतकथाएं भरी पड़ी हैं। इन से पुराना कथा-साहित्य संसार की किसी भाषा में नही मिलता। अनुमान ऐसा है कि यह कथाए देश में प्रचलित थीं। बौद्ध भिक्षुओ ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए तथा बुद्ध भगवान की महत्ता दिखाने के लिए उन्हें बौद्ध रँग में रंग दिया। जो भी हो हम को जो रूप सब से पुराना इन कहानियों का प्राप्त है वह है यही बौद्ध रूप। यह कहानियां बराबर बुड्ढे बच्चों से कहते आए हैं और समय के फेर से इन मे अनायास हेरफेर भी होता रहा है।

नीचे मै अवधी भाषा की एक कहानी का खड़ी बोली में संस्करण देता हूं। यह कहानी मैंने बचपन में अपनी मां से सुनी थी। बाद को पालि जातक पढ़ने पर मुझे खरपुत्त-जातक की कथा से और इस से बहुत साम्य दिखाई पड़ा। नीचे इस जातक कथा का भी हिंदी अनुवाद दिया जाता है। पाठक दोनों को मिला कर देखेंगे तो उन्हें कई बातें साम्य की और कई भेद की दिखाई पड़ेंगी। अवधी कहानी पौराणिक वातावरण की चीज है—माया देवी, नाग देवता, छूत-छात, जात-पाँत, काशी-मरण आदि। पालि कथा में नाग-राज और राजा की दोस्ती है। नाग जाति सर्प से कोई भिन्न जाति है।

कथा-साहित्य के इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से हमारे समाज के इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश पड़ सकता है। मेरा विश्वास है कि यदि अपने गाँवों में प्रचलित कहा-नियों का संग्रह किया जाय तो इस प्रकार की बहुत सी रोचक बातें उन से मालूम हो सकती हैं। 'हिंदुस्तानी' के पाठकों के लिए नीचे दोनों कथाएं दी जाती हैं।

अवधी कथा

एक राजा थे। खूब राज की। जब उन की आयु पूरी होने आई तब नौकर चाकर सब छोड़ने लगे। जब नौकर चाकर कोई नही रहे तब राजा कमली ओढ़ कर पहरा देने

लगे। देखें क्या? माया निकली जायँ परनाले के रास्ते। राजा बोले—"तुम कहां जाती हो?" बोलीं कि "अब राजा की मृत्यु आगई है तो हम भी जा रहे हैं।" तो माया बहुत रो रही थी। राजा ने पूछा —"क्यों रोती हो?" कहने लगी—"राजा अच्छा था। हाय साँप आकर कल उन को डस लेगा। इसी लिए रो रही हूं।" तो राजा ने फिर पूछा—"किसी तरह से बचेंगे?" माया बोली—"किसी तरह से न बचेंगे। हां, एक बात है। जहा से बाँबी हो वहां से खूब फूल-फुलवाड़ी लगवाएं। रास्ता झड़वाएं और राजा के पलग के पास तक रुई के पहल बिछावें और इत्र गुलाब खूब छिड़कावें। नाँदें गड़वा कर दूध भरवा दें। और राजा के पलंग के पास चार खंभे केले के गड़वा दें। राजा के पलग पर बिछौना मखमल का करा दें और सुगंधें छिड़का दें। राजा उसी मकान मे एक कोने में चुपके बैठ जायँ।"

अब साँप राजा को काटने चले। तो इधर देखें फूल, उधर देखें फुलवाडी। सूँघे और मगन हो जायँ। दूध पिएं और मगन हो जायँ। लोटते-पोटते आए पलंग के पास। चारों खंभे देखें। लिपट जायँ, चढ़ें उतरें। बड़े खुश। पलंग पर चढ़े और लोट गए। बहुत ही मगन हो गए। इत्र से पास गए। तब बोले—"राजा को हम क्या काटें? राजा ने हमारे साथ बहुत अच्छा (सलूक) किया। अब राजा को हम अपनी आधी उम्र दे देंगे।" अब राजा को बुलाया। तो राजा आवें न। तो त्रिवाचक दिया और कहा—"आ जाओ। अब तुम्हे हम न काटेंगे।" राजा आए और पैरों पर गिर पड़े। साँप बोले—जिन्दगी तो दे चुके। अब जो (चीज़) माँगो सो दें।" तो (राजा) बोले—"हम माँगते है कि जितने जीव-जंतु धरती पर हों उन की बोली हम पहचान लें।" तो साँप बोले —"नही राजा, फिर पछताओगे। यह काम मत करो। इस में तुम धोका खा जाओगे। तुम से बिना पछताये रहा न जायगा और जिस क्षण बताओगे कि मर जाओगे।" तो राजा बोले कि "नही तुम हमें बता दो। हम किसी से नही बताएँगे।" साँप उन्हें बोली बता कर और अच्छी तरह खा पी कर अपनी बाँबी को चले गए। अब राजा अपनी राज करने लगे। बहुत दिन राज की।

कुछ दिन बाद राजा भोजन कर रहे थे। राजा की थाली से भात के सीथ गिर रहे थे। एक चीटी आकर ले ले जाय। चौके के बाहर एक चींटा था। चीटी जब चौके के बाहर जाय तो चीटा छीन छीन ले। तो उन्हों ने कहा "तू क्यों नहीं ले आता जा कर?

हम बार बार लाते हैं और बार बार तुम छीन लेते हो। तुम क्यों नही जा कर ले आते हो?" चीटा बोला कि "तुम हो जाति की ब्राह्मणी और हम हैं चमार। यदि तुम जाओगी तो राजा का चौका छूत न होगा और हम जायेंगे तो राजा का चौका छूत हो जायगा।" इतना सुन कर राजा ठहाका मार कर हँसे।" रानी समझीं "हमारे ऊपर हँसे।" हठ पड गईं—"हम को बता दो क्यों हँसे। क्या हम को उघाड़े देखा या कुछ भोजन पर हँसे?" राजा ने कहा—"हम तुम पर नहीं हँसे।" रानी बोली—"किस पर हँसे?" राजा ने ने कहा—"बताएँगे नही।" राजा की बात सुन कर रानी ने कहा कि "यदि नहीं बताओगे तो हम अन्न पानी न करेंगे।" और लंघन करने लगी। तब राजा बोले कि "हमने तो नाग बाबा को बचन दिया था कि नहीं बताएँगे। (उन्हों ने) कहा था कि 'बताओगे तो मर जाओगे।' अच्छा जो नहीं मानती हो तो चलो काशी में बताएं चल कर। लेकिन पछताओगी जुरूर।"

दोनों वहां से चले। चलते चलते जब एक मंजिल हो गई तो राजा बोले—"रानी यहा अन्न पानी कर लो। नहा धो लो।" यह कह कर राजा वहीं पर टहलने लगे। एक बकरा कुआं के ऊपर खड़ा था और अंदर एक बकरी थी। वह जब दूब नोच नोच कर ऊपर आवे तो बकरा छीन ले। तब बकरी बोली—"हम से बार बार छीन लेते हो। तुम भीतर जाकर क्यों नही ले आते?" बकरा बोला कि "जो हम भीतर जायँ तो कौन जाने गिर पड़ें। तू यदि गिर पड़ेगी तो हमारे लिए बकरियां बहुत हैं।" राजा सुन रहे थे "क्या हम को टाल-टूल कर राजा बनाया है जो औरत के पीछे जा रहे हैं काशी को मरने?" राजा खड़े खड़े सुन रहे थे। राजा ने सुन कर ली एक छड़ी और लेकर मारने लगे रानी को बुला कर कि "और हठ करोगी, और पूछोगी।" रानी गऊ बोलीं तब छोड़ा। दोनों जन घर को लौटे और राज करने लगे।

जैसे उन के दिन बहुरे वैसे सब के बहुरें।

पालि खरपुत्रजातक कथा

पूर्व समय में जब काशी मे राजा सेनक राज्य करते थे तब बोधिसत्व शक्र (इंद्र) थे। तब सेनक राजा की एक नागराज से मित्रता थी। (एक बार) वह नागराज नागलोक से निकल कर पथ्वी पर अपना भोजन ग्रहण करते हुए जा रहे थे। गाँव के लड़के

साँप साँप चिल्ला कर ढेलों से उन्हे मारने लगे। राजा उद्यान में क्रीड़ा करने जा रहे थे। देख कर पूछा कि "यह लड़के क्या कर रहे हैं।" "एक साँप को मार रहे हैं।" यह सुन कर आज्ञा की कि मारने मत दो इन (लड़को) को भगा दो।, नागराज जीवन पाकर नागलोक गए और बहुत से रत्न ले कर आधी रात के समय राजा के शयनगृह में जाकर उन रत्नों को राजा को समर्पण कर "आप की कृपा से मुझे जीवन मिला" यह कह कर मित्रता कर ली। बार बार आकर राजा से भेंट करते। अपनी नाग-कन्याओं में से एक काम-वासना से अतृप्त नागकन्या को रक्षा करने के निमित्त राजा के पास रख दिया और कहा "जब यह न दिखाई पड़े तो यह मंत्र दुहराना"। ऐसा कह कर एक मंत्र भी दे (बता) दिया। वह राजा (सेनक) एक दिन उद्यान में जाकर नागकन्या के साथ तालाब मे उदक-क्रीड़ा कर रहे थे। नागकन्या एक पानी के साँप को देख कर अपना स्वरूप त्याग कर उस सर्प के साथ व्यभिचार करने लगी। राजा ने जब उसे न देखा तो "कहा गई" यह सोच कर मंत्र दुहराया और तब उस अनाचार करती हुई को देख कर छड़ी से मारा। वह गुस्सा हो गई और नागलोक को चली गई। "क्यों चली आई ?" ऐसा पूछने पर "तुम्हारा मित्र उस की बात न मानने पर मुझे पीठ पर मारता है" ऐसा कह कर मार के निशान दिखाए।

नागराज ने सही बात न जान कर चार नागपुत्रों को बुलाया और कहा "जाओ सेनक के शयनागार में जाकर अपनी फुफकार से उसे भूसे की तरह जला डालो।" वे गए और जब राजा पलंग पर लेटे हुए थे तब शयनागार में घुसे। उन के प्रवेश करते समय ही राजा रानी से कह रहे थे —"रानी जानती हो वह नागकन्या कहां गई ?" रानी बोली "महाराज, नहीं जानती।" "आज वह मेरे तालाब मे क्रीडा करते समय अपना स्वरूप छोड़ कर एक पानी के साँप के साथ अनाचार कर रही थी। तब मैं ने 'ऐसा न कर' यह शिक्षा देने के लिए उसे छड़ी से मारा। मुझे भय है कि वह नागलोक में जाकर कुछ और कह कर मित्रभाव न बिगड़वा दे।" यह सुन कर नागपुत्र वहां से लौट पड़े और नागलोक में जाकर नागराज से यह बात कही।

नागराज को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसी क्षण राजा के शयन-गृह में आए और सारी बात कह कर क्षमा माँगी और "यह मेरी सज़ा है" यह कह कर सब प्राणियों की बोली के ज्ञान का मंत्र (राजा को) देकर बोले "महाराज यह बहुमूल्य मंत्र है। यदि इसे

किसी दूसरे को दीजिएगा तो आग में प्रवेश कर मरना होगा।" राजा ने "अच्छा" कह कर स्वीकार किया।

उस समय से राजा चींटियों की भी बोली समझने लगे। एक दिन जब महल मे बैठे हुए वह शहद और शीरे के साथ खाना खा रहे थे तब एक बूँद शहद और एक बूँद शीरा तथा एक टुकड़ा पूए का जमीन पर गिर पड़ा। एक चीटी उसे देख कर यह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी—"राजा के महल में शहद का हंडा फूट गया, शीरा की गाड़ी, पूओं की गाडी लोट पड़ी। आओ शीरा और पूआ खाओ।"राजा उस का शोर सुनकर हँस पड़े। राजा के समीप बैठी हुई रानी ने सोचा—"क्या देख कर राजा हँसे?" खाना खाकर स्नान करके पलंग पर राजा के लेट जाने पर एक मक्खी का पति अपनी पत्नी से बोला—"भद्रे, आओ, रति क्रीडा करें।" वह बोली—"स्वामी जरा, ठहरो। अभी राजा के पास (कर्मचारी) सुगंधित लेप ला रहे है। उन के लगाने पर उन के पैर के पास सुगंधित चूर्ण गिर पडेगा। उस में बस कर मैं खुशबूदार हो जाऊँगी। तब राजा की पीठ पर लेट कर हम लोग क्रीडा करेंगे।" राजा यह भी सुन कर हँस पड़े। देवी ने फिर सोचा—"राजा क्या देख कर हँसे?" फिर राजा के रात्रि भोजन करने पर एक सीथ जमीन पर गिर पडा। चीटिया चिल्लाई—"राजगृह में भात की गाड़ी टूट गई। भात खाने वाले हैं ही नहीं?" उसे सुन कर राजा फिर हँस पड़े। सोने की कलछुल से परोसती हुई रानी ने सोचा कि "मुझी को देख कर राजा हँसे।"

राजा के साथ पलंग पर लेटी हुई रानी ने पूछा—"देव, किस कारण से आप हँस रहे थे?" उन्हों ने कहा—"मेरे हँसने के कारण से तुम्हें क्या करना?" बार बार पूछने पर बता दिया। तब रानी ने कहा—"बोली के ज्ञान का मंत्र मुझे दो।" "नही दे सकता" इस प्रकार मना करने पर भी बार बार जिद की। राजा बोले—"यदि यह मत्र तुम्हे दूगा तो मर जाऊंगा।" "मरो तो भी मुझे दो।" स्त्री के वश हुआ राजा बोला—"अच्छा।" ऐसी प्रतिज्ञा कर—"इस (रानी) को मंत्र बता कर अग्नि में प्रवेश करूँगा' ऐसा सोच कर उद्यान की ओर रथ पर चला।

उसी समय शक्र देवराज ने संसार का अवलोकन करते हुए इस बात को देखा और कहा—"यह मूर्ख राजा स्त्री के कारण अग्नि में प्रवेश करने जाता है, इस को जीवन-दान दूँगा।" ऐसा सोच कर असुर कन्या सुजा को लेकर बनारस आए। उस (सुजा) को बकरी

बना कर और स्वयं बकरा बन कर "लोग मुझे न देखें" इस विचार से राजा के रथ के सामने खड़े हो गए। उन्हें केवल राजा और रथ में जुते हुए घोड़े ही दीखते थे और कोई नही। वह (शक्र) बात उठाने के लिए इस प्रकार खड़े हुए मानो बकरी के साथ मैथुन धर्म कर रहे हो। रथ में जुता एक घोड़ा उन्हें देख कर बोला—"सौम्य अज, मैंने पहले सुना था कि बकरे बेशर्म होते है पर कभी देखा न था। एकांत में गुप्त स्थान में करने योग्य अनाचार को तुम हम इतने लोगों के देखते हुए कर रहे हो और शर्माते नही। जो पहले सुना था वह अब ठीक उतरा।" ऐसा कह कर पहली गाथा बोला—

"पंडित लोग सच ही कहते थे कि बकरा बेवक़ूफ़ होता है। देखो! मूर्ख गुप्त कार्य को प्रकट करता हुआ भी नही समझता है॥१॥

यह सुन कर बकरा दो गाथाएं बोला—

"हे खरपुत्र (गदहे) तुम मूर्ख हो, समझो। रस्सी से बँधे हो, ओठ टेढे हो गए, मुँह नीचे है॥२॥ और सौम्य! एक और मूर्खता है कि तुम छूट जाने पर भाग नही जाते, और सौम्य! जिसे तुम लिए जा रहे हो वह तुम से भी अधिक बेवक़ूफ़ है॥३॥

राजा उन दोनों की बोली समझ रहे थे। इस लिए उसे सुनते हुए रथ धीरे धीरे चला रहे थे। घोड़ा भी उस (बकरे) की बात सुन कर चौथी गाथा बोला—

"सौम्य! मै मूर्ख हूं ऐसा ही समझ लो। पर मेरे पूछने पर यह तो बताओ कि सेनक किस प्रकार मूर्ख है?"॥४॥

उस को उत्तर देते हुए बकरे ने पाँचवीं गाथा कही—

"उत्तम वस्तु पाकर जो स्त्री को देगा। इसी से प्राण त्याग देगा और वह स्त्री भी उस की न होगी"॥५॥

राजा बोले—"अजराज, हमारा कल्याण तुम्ही करोगे। बोलो, मुझे अब क्या करना चाहिए?" अजराज उन से बोले—"महाराज! प्राणीमात्र को अपने से प्यारा और कोई नहीं। एक प्रिय वस्तु के लिए अपने को नष्ट कर देना और प्राप्त किए यश को त्याग देना उचित नही।" ऐसा कह कर छठी गाथा बोले—

"हे राजा, अपना निराकरण कर के तुम्हारे ऐसे को अपने प्रियों की सेवा नहीं करनी चाहिए आत्मा ही श्रेय है परम श्रेय है जीवन रहते बहुत से प्रिय मिल

जाते हैं" ॥ ६ ॥

महासत्व ने इस प्रकार राजा को शिक्षा दी। राजा ने प्रसन्न होकर पूछा—"अजराज, कहां से आए ?" "महाराज, मैं शक्र हूं। तुम पर दया कर तुम्हें मरने से बचाने आया हूं।" "देवराज, मैंने इस (रानी) से कहा था कि मंत्र बताऊंगा। अब क्या करूं ?" "तुम दोनों में से किसी के मरने की जरूरत नहीं। 'शिक्षा के लिए उपचार होता है' ऐसा कह कर इस (रानी) को दो चार प्रहार दिलाओ। इस उपाय से नहीं ग्रहण करेगी।" राजा "अच्छा" कह कर राजी हो गए। महासत्व राजा को उपदेश देकर अपने स्थान को चले गए। राजा ने उद्यान में आकर रानी को बुलवाया और बोले—"भद्रे, मंत्र लोगी ?" "हां, देव।" "तो, उपचार" (फ़ीस) दो। "क्या उपचार है ?" "पीठ पर सौ प्रहार पड़ने पर भी (मुंह से शब्द) न निकले।" वह मंत्र के लोभ से "अच्छा" कह कर राजी हो गई। राजा ने नौकरों को बुला कर उन्हें कोड़े ग्रहण करवा कर रानी को दोनों तरफ़ से पिटवाया। दो तीन प्रहारों को सह कर वह चीख पड़ी—"मुझे मंत्र नहीं चाहिए।" तब राजा बोले—"तुम तो मुझे मार कर मंत्र लेना चाहती थीं ?" ऐसा कह कर पीठ की चमड़ी उधड़वा डाली तब छोड़ा। तब से फिर कभी रानी को पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

श्रीमद् ज्ञानसार जी और उन का साहित्य

[लेखक—श्रीयुत अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा]

भारतीय साहित्य में जैन साहित्य अपना एक विशेष स्थान रखता है। साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र जैन विद्वानों के अनुपम एवं अनूठे अमृतसिंचन द्वारा विकसित एवं पल्लवित हुआ है। तत्वज्ञान, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, शिल्प-विज्ञान आदि प्रत्येक विषय और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, कन्नड, तामिल, आदि सभी प्रधान भारतीय भाषाओं के ग्रंथ जैन साहित्य रत्नाकर में समुपलब्ध हैं। जैन कवियों द्वारा रचित हिंदी साहित्य विपुल परिमाण में उपलब्ध है, जिस की संक्षिप्त रूपरेखा श्री नाथूराम जी प्रेमी ने आज से १५-२० वर्ष पूर्व सप्तम हिंदी साहित्य सम्मेलन जबलपुर में "हिंदी जैन साहित्य का इतिहास" नामक निबंध पढ कर उपस्थित की थी। इस से पूर्व लाहौर के बाबू ज्ञानचंद जी जैनी ने हिंदी जैन ग्रंथो की एक सूची[1] भी प्रकाशित की थी, जिस में लगभग १०० कवियों और ३०० से ऊपर हिंदी जैन ग्रंथों का निर्देश था। श्री नाथूराम जी प्रेमी आदि के प्रयत्न से बहुत से हिंदी जैन ग्रंथ अब प्रकाशित भी हो चुके हैं।

कविवर बनारसीदास जी की भाँति और भी बहुत से उत्तमोत्तम हिंदी जैन कवि हुए है, जिन्हों ने हिंदी साहित्य की अनमोल सेवा की है। हम उन में से एक महापुरुष श्रीमद् ज्ञानसार जी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत निबंध में देने का प्रयत्न करते हैं।

उन्नीसवी शताब्दी में श्रीमद् ज्ञानसार जी नाम के एक श्वेतांबर जैन यति प्रतिभा-

---

[1] इसी सूची को परिवर्द्धित कर संस्कृत-प्राकृत ग्रंथ-सूची सहित श्री नाथूराम जी प्रेमी ने "दिगंबर जैन ग्रंथकर्ता और उन के ग्रंथ" नाम से 'जैनहितैषी' में व स्वतंत्र रूप से भी छपाया था। हाल ही में मूलचंद जी वत्सल लिखित "हिंदी जैन कवियो का इतिहास" (बनारसीदास और भगवतीदास) एवं, भूधरदास का काव्यालोचना पर एक ग्रंथ छपा है।

सपन्न कवि, मस्त योगी एवं राजमान्य महापुरुष हो गए हैं। उन का जन्म सं० १८०१ मे बीकानेर राज्यातर्गत जांगलू के समीपवर्ती जैगलैवास मे हुआ था। उन के पिता का नाम उदयचंद जी सांड[1] और माता का जीवण देवि था। उन का जन्म-नाम 'नारायण' था, और इसी नाम से उन की सर्वत्र प्रसिद्धि हुई।

जन्म

सं० १८१२ में मारवाड़ में भीषण दुष्काल पड़ा था, उस समय से यह खरतर गच्छ के आचार्य श्री जिनलाभसूरि जी की सेवा मे रहने लगे थे, और उन्ही के तत्वावधान में इन का विद्याध्ययन हुआ। सं० १८२१ में इन्हे दीक्षा के योग्य जान कर पादरू ग्राम में मिती माह शुक्ला ८ को उक्त श्रीपूज्य जी ने यति-दीक्षा दी। दीक्षा के अनंतर इन का नाम 'ज्ञानसार' रक्खा और अपने शिष्य श्री रायचंद जी के शिष्य रूप से प्रसिद्ध किया। सं० १८३४ तक यह अपने गुरु जी के साथ श्री जिनलाभसूरि जी की सेवा में ही रहे। इसी बीच में (सं० १८२६-३४) इन के गुरु श्री रायचंद जी का स्वर्गवास हो गया। सं० १८३४ के आश्विन कृष्णा १० को गूढा मे श्रीपूज्य जी भी स्वर्ग सिधारे। इस के पश्चात् सं० १८३५ में सूरि जी के ७ शिष्य अलग-अलग हो गए। तब से श्री ज्ञानसार जी अपने गुरु के बड़े गुरुभ्राता श्री राजधर्म जी के साथ रहने लगे। प्रथम चातुर्मास उन के साथ ही पाली में किया, वहां से विहार कर राजधर्म जी नागौर आए और ज्ञानसार जी किशनगढ़ चले गए। किशनगढ़ जाकर राजधर्म जी के पास नागौर वापिस चले आए। उस के बाद सं० १८४५ तक आप अधिकांश उन्ही के साथ रहे थे। संवत् १८४५-४७ के चातुर्मास जयपुर में किए।

दीक्षा

सं० १८४८ में जब यह जयपुर[2] में थे, तत्कालीन आचार्य श्री जिनचंद सूरि जी ने इन्हे वहां से विहार कर महाजनटोली जाने का आदेश दिया। उन के आदेशानुसार इन्हो ने पूर्वदेश की ओर विहार कर सं० १८४६ का चातुर्मास महाजन-टोली में किया। वहां से संघ सहित विहार कर श्री सम्मेत-शिखर तीर्थ की यात्रा की। सं० १८५० - ५१ के चातुर्मास अजीमगंज आदि में कर के

पूर्व की ओर विहार

---

[1] ओसवाल जाति का एक गोत्र।
[2] सं० १८४८ में राजधर्म जी जयपुर से पुहकरण जाकर स्वर्गवासी हुए।

० १८५१ माघ सुदी ५ को द्वितीय वार श्री सम्मेतशिखर जी की यात्रा की। वहा से वापिस पश्चिम की ओर विहार करते हुए सं० १८५२ का चातुर्मास संभवतः दिल्ली मे किया, वहां से लौटते हुए सं० १८५३ में जयपुर पधारे। पूर्व देश के नाना अनुभवों का सजीव वर्णन आपने 'पूरब देश वर्णन' में किया है।

कहा जाता है कि जिस समय आप जयपुर पधारे थे उस समय वहां के महाराजा का पट्ट-हस्ति बीमारी के कारण दिनों-दिन सूख रहा था। रोग-प्रतिकार के अनेक उपचार

जयपुर में १० चातुर्मास

किए गए किंतु कोई फल न मिला, तब किसी राज्याधिकारी ने राजगुरु खरतर गच्छीय यतिश्री की याद दिलाई और यह भी कहा कि वे राज्य के दिए हुए कई गाँवों की उपज लेते हैं, अतः उन से हाथी की चिकित्सा के लिए अवश्य कहना चाहिए। महाराजा ने इस मत को पसंद कर यति जी को हाथी को स्वस्थ करने को कहलाया। यति जी को पशुचिकित्सा का समुचित ज्ञान न होने से वे चिंतित हो उठे और इस कार्य के उपयुक्त किसी चतुर व्यक्ति की खोज में हुए। उन्हें श्री ज्ञानसार जी का स्मरण हुआ और तुरंत अपनी चिंता का कारण बता कर गजराज की चिकित्सा का भार उन पर सौंपा। श्री ज्ञानसार जी ने हाथी के रोग का निदान करके अपने असाधारण बुद्धि-वैभव से हाथी के पेट में उगी हुई वेलि को निकाल कर उसे पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

इस घटना से महाराजा प्रतापसिंह जी चमत्कृत हो कर श्रीमद् के सद्गुणो के प्रति श्रद्धा रखने लग गए। श्रीमद् भी प्रायः राजसभा में जाया करते थे। राजकीय विद्वानों से विद्वद्-गोष्ठी कर अपनी विद्वत्ता से महाराजा को प्रभावित कर दिया, खास-खास प्रसंगों पर इन की उपस्थिति और आशीर्वाद परमावश्यक समझे जाते थे। इन आशीर्वादात्मक कवित्तों में से सं० १८५३ माघ बदि ८ को रचित 'समुद्रबद्ध प्रतापसिंह गुणवर्णन' पर 'स्वोपज्ञ-वचनिका' एवं 'कामोद्दीपन' ग्रंथ में दो सवैये उपलब्ध हैं।

राजाग्रह आदि कारणों से सं० १८५३ से सं० १८६२ तक, के १० चातुर्मास जयपुर में किए। वहां पर 'संबोध-अष्टोत्तरी' आदि ९ कृतियां रचीं। उस के बाद कृष्ण-

कृष्णगढ़ में ६ चातुर्मास

गढ़ गए। सं० १८६३ से १८६८ तक के ६ चातुर्मास कृष्णगढ़ में किए। कृष्णगढ़ के राजा भी इन का बहुत सम्मान करते थे। यहा श्रीमद् प्राय आध्यात्म-चिंतन किया करते थे इन का आध्यात्म-अनुभव बहुत

बढ़ा-चढ़ा था। वहां श्रीमद् ने आनंदघन जी के गूढ़ रहस्यमय २२ तीर्थकरों के स्तवनो पर विशद आलोचनात्मक 'बालावबोध' बना कर सं० १८६६ भाद्र व शुक्ला १४ को सपूर्ण किया। जिन स्तवनो पर वह सं० १८२९ से अब तक सतत मनन करते रहे थे उन पर अपने परिपक्व अनुभव का उपयोग करके उन्हों ने मुमुक्षु जनता का परम हित-साधन किया। प्रस्तुत 'बालावबोध' मे इन का आध्यात्म अनुभव पद-पद पर झलकता है। भाषा प्रौढ़ और जैन शैली की राजस्थानी है। कृष्णगढ में इन के उपदेश से श्री चितामणि पार्श्वनाथ जी के मंदिर का जीर्णोद्धार और दंड-ध्वजारोपण समारोह से हुआ।

सं० १८६९ में वहां से विहार कर शत्रुंजय तीर्थ पधारे। फाल्गुन कृष्णा १४ को यात्रा कर वापिस बीकानेर आए। वृद्धावस्था के कारण उन्हों ने शेष जीवन यहीं बिताया।

बीकानेर में शेष जीवन-यापन

बीकानेर मे उन का प्रभाव बढ़ता गया। उन का जीवन भी परम सात्विक और आध्यात्मिक था। अनेक लोक-प्रपंचो मे भाग लेते हुए भी वह उदासीन एवं निर्लेप रहते थे।

इन दिनों परिग्रह का उन्हों ने सर्वथा त्याग कर दिया था, और एकांतवास उन को विशेष प्रिय था। बीकानेर के गोगा दरवाजा के बाहर वाला स्मशान (टटों की शाल) ही उन की तपोभूमि थी। कहते हैं कि पार्श्वयक्ष (देवता) उन के प्रत्यक्ष थे। वे समय-समय पर रात्रि में प्रकट हो कर नानाविध ज्ञानगोष्ठी एवं भूत-भविष्य-संबंधी बातें किया करते थे।

महाराजा सूरतसिह जी की इन पर अत्यंत भक्ति थी। वे स्वयं इन के दर्शनार्थ अनेक बार पधारते, और पत्रव्यवहार बराबर होता रहता। महाराजा के लिखे २५ पत्र हमारे अन्वेषण मे आए है। उन खास रुक्को को पढ़ने से श्रीमद् के प्रति महाराजा क विनय, पूज्यभाव, अटल श्रद्धा, अविरल भक्ति, तलस्पर्शी हार्दिक भाव और अनेक ऐतिहासिक रहस्यों की जानकारी होती है। बीकानेर में रह कर उन्हों ने बहुत से ग्रंथों की रचना की। यहां की प्रवृत्तियों के बहुत से स्मारक अब भी विद्यमान हैं एवं आप से संबध रखने वाले अनेक चमत्कारी प्रसंग सुनने में आते हैं।

स्वर्गवास

सं० १८८९ में आश्विन और मार्गशीर्ष के बीच, ९८ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर श्री ज्ञानसार जी स्वर्ग सिधारे। स्वयं ही अपनी आयु के संबंध में 'पार्श्वनाथ-स्तवन' मे कहा है कि

साठी बुध नाठी सब कहि है, असिय खिसी लोकोक्ति कही।
मैं तो अठाणुं ऊपर भेलुं, मो में बुद्धि कहो कहां ते रही॥
गौड़ी राय कहो बड़ी बेर भई।

उन का अग्निसंस्कार वर्तमान संखेश्वर पार्श्वनाथ जी के मंदिर के पीछे हुआ था' उस स्थान पर आज भी एक समाधि-मंदिर विद्यमान है, उस मे प्रवेश करते ही सामने के एक आले में उन की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित हैं जिन पर निम्नोक्त लेख उत्कीर्ण है —

सं० १९०२ वर्षे माघ सुदि ६ पं० प्र० ज्ञानसार जी पादु......

श्री ज्ञानसार जी के हरसुख (हर्षनंदन), खूबचंद (क्षमानंदन), सदासुख (सुखसागर) नामक तीन शिष्य थे जिन में प्रथम दोनों की दीक्षा सं० १८५६ से पूर्व और तृतीय की सं० १८६७ से पूर्व हो चुकी थी। इन मे से क्षमानंदन और सदासुख सं० १८९८ तक विद्यमान थे। एक वार खूबचद की मरणांत अवस्था में श्री गौड़ी पार्श्व प्रभु की कृपा से शांति हुई थी, जिस का उल्लेख श्रीमद् ने स्वयं अपने 'गौड़ी पार्श्वनाथ-स्तवन' में किया है।

शिष्य-परिवार

इन तीन शिष्यों के अतिरिक्त इन के शिष्य-प्रशिष्यों में से चतुर्भुज, भैर जी, किरपाचद, लछमन आदि का भी उल्लेख पाया जाता है। इन में से चतुर्भुज जी के शिष्य जोर जी थे जिन का देहात सं० १९५५ में हुआ था। बस यहीं से उन की संतति विच्छिन्न हुई।

श्रीमद् का एक चित्र हमारे 'ऐतिहासिक जैनकाव्य-संग्रह' में प्रकाशित है; और भी कितने ही चित्र उपलब्ध हैं। श्रीमद् के वाह्य वेष-मुद्रा के संबंध में एक तत्कालीन पत्र महत्वपूर्ण है, अतः उस पत्र का आवश्यक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

वाह्य-मुद्रा

नं नत्वा श्री बाबा जी साहिबां सौ बन्दना १०८ बार रिखड़े की। आपके गुणग्राम याद करता हुं। हूं किसी लाय (क) हुं नहीं कृतकृत्य क्योंकर हूंगा। मरणा तो आया, इहां कछु नहीं हुं कमाया एक आपके दर्शन तो पाया बाकी जनम ले गमाया।

अब वह मुनिमुद्रा कान पर चश्मा ओघा कंधे पर हस्त में तमाखू डब्बी, ठुमक ठुमक चाल, मुख से वचनामृत भरतादिक अनेक आनन्दकारी भावमयी माधुरी सूरत कब देखूंगा। धाया अब कहां दर्शन पाऊंगा, जो है पाया इस जन्म में और तो कछु

नहीं मैं कमाया, एक यही दर्शन अपूरब पाया, इस ध्यान से जनम जनम का पाप गमाया, इतना तो खूब ही पुण्य कमाया आप ध्यान में मुझ निर्बुद्धि को रखोगे तो मैं धन्य धन्य कहाया, सिवाय इस के और कुछ है नहीं।

—पत्र बाबा जी श्री १०८ ज्ञानसार जी महाराज के चरणों में।

आत्म-परिचय

श्रीमद् ने अपना किंचित् परिचय अपनी 'बहुत्तरी' के ५२वें पद में दिया है—

राग—आशा (नं० ५२)

साधो भाई निहचे खेल अखेला। सोहं निहचे खेला। सा०
ना हमरे कुल जात न पांता, एह मेरा आचारा।
मदिरा मांस विवर्जित जो कुल, उन घर में पैसारा।१। सा०
वर्जित वस्तु बिना जो देवे, सो सबही हम खावें।
उन्हों वा फासू अकराथित, धोवण जल सब पीवें।२। सा०
पड़िकमणा पांचू नहीं लाइक, सामायिक ले वैसें।
साधु नहीं जैन के जिन्दे, जिन घर बिन नहीं पसें।३। सा०
श्रावक साधु नहीं को साधवी, नहीं हमरे श्रावकणी।
सुधी श्रद्धा जिन सम्बन्धी, सो गुरु सोई गुरुणी।४। सा०
नहीं हमरे कोई गच्छ विचारा, गच्छ वासी नहीं निन्दें।
गच्छवास रत्नागर सागर, इन कुं अहनिश वन्दें।५। सा०
थापक उत्थापक जिन वादी, इन से रीझ न भीजें।
न मिलणो न निन्दन वन्दन, न हित अहित धरीजें।६। सा०
न हमरे इन रो वादस्थल, चरचा में नहीं खीजें।
क्रिया रुचि क्रिया न रागी, हम किरिया न पतीजें।७। सा०
किरिया बड़ के पान समाना, स्वतारक जिन भाखी।
सोई अवंचक वंचक सौं तो, चउगति कारण दाखी।८। सा०
पैं किरिया कारक कुं देखें, आतम अति ही हींसें।
पंचम काले जैन उद्दीपन एह अंग थी दीसै।९। सा०

सब गच्छ नायक नायक मेरे, हम है सब के दासा।
पँ आलाप संलाप न किणसुं, नहीं कोई हरख उदासा।१०। सा०
पड़कमणा पोसा न करावें, करता देख्यां राजी।
पच्चखाणे व्याख्यान न आग्रह, आग्रह थी न विराजी।११। सा०
जो हमरी कोउ करे निन्दा, किंचित अमरस आवै।
फिर मन में जग रीति विचारें, तब अति ही पछतावै।१३। सा०
क्रोधी मानी मायी लोभी, रागी द्वेषी योद्धी।
साधुपना नो लेश न देश न, अविवेकी अपबोधी।१४। सा०
ए हमरी हम चर्या भाखी, पँ इन में इक सारा।
जो हम ज्ञानसार गुण चीन्हें, तो हुवे भवदधि पारा।१५। सा०

उन्हों ने वृद्धावस्था में गच्छ परंपरादि से अलग होकर एकाकी रहने और विहार
: का उल्लेख 'आनंदघन चौबीसी बालावबोध' में इस प्रकार किया है—

हिवै पं० ज्ञानसार प्रथम भट्टारक खरतर गच्छ संप्रदायी वृद्धवयोन्मुखियै सर्व गच्छ परंपरा संबंधी हठवाद स्वेच्छायें मूकी एकाकी विहारियैं कृष्णगढ़ सं० १८६६ बावीसी नुं अर्थ लिख्युं।

यद्यपि श्रीमद् का अनुभव एवं ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था, फिर भी उन्हों ने कई ग्रंथो

विनम्रता

में मंद-बुद्धि आदि शब्दों द्वारा अपना परिचय देकर विनम्रता प्रदर्शित की है। देवचंद्र जी कृत 'साधुपद सभाय के बाला-
।' में लिखते हैं—

हुं महा निर्बुद्धि वज्रठार छुं जैनरो जिन्दो छुं म्हारो माजणो अति अल्प छै। सभाय कर्ता नो माजणों मोटो छै।

इसी प्रकार 'चौबीसी बालावबोध' आदि में भी अपनी लघुता व्यक्त की है। 'आत्म-
' ग्रंथ तो उन की विनम्रता का प्रतीक है।

आध्यात्म-साधना और तत्वज्ञान के अतिरिक्त वैद्यक में भी श्रीमद् की अच्छी गति
लेखन-कला और तत्संबंधी सामग्री के निर्माण में वह अद्वितीय थे। उन के

कला-विशारद

बनाए हुए पूठे, फाटिये, पटड़ी आदि आज भी नामांकित वस्तुओं में हैं जिन की मजबूती और सुंदरता की बराबरी

[दू]सरे नही आ सकते। अब भी वे 'नारायणसाही' नाम से सुप्रसिद्ध हैं। लेखनशैली और लिपि बड़ी मनोहर थी। उन की हस्त-लिपि हमारे संग्रह में पर्याप्त है, [उन] मे से एक पत्र का फ़ोटो हमारे 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह' मे प्रकाशित है। अनेक हुनर में निपुण थे, यह बात स्वयं 'वीसी' म लिखते हैं—

हुन्नर केता हाथे कीधा, ते पण उदय उपायें सीधा
जस उपजायो जस उदय थी, मंद लोभ ते मंदोदय थी ॥३॥
(१२वां स्तवन)

इस के संबंध मे उन के गुण-वर्णनात्मक काव्यों में अन्य भक्तों ने भी कहा है कि—

कर्मे विश्वकर्मा सौ हुन्नर हजार जाके वैद्यन में जान सब ज्योतिष मंत्र तंत्र को ॥
(नवलराय कृत गुणवर्णन)

उन्हों ने कई विख्यात विद्वानों और कवियों की कृतियों पर विशद गद्य वचनिकाए [लि]खी हैं, जिन से उन के स्पष्ट वक्तृत्व और निडर समालोचक होने का परिचय मिलता है। श्रीमद् आनंदघन जी की चौबीसी के बालावबोध में श्री ज्ञानविमलसूरि जी को खूब आड़े हाथों लिया [औ]र कई स्थानों मे उन के बालावबोध की कड़ी समालोचना की है। अंत में उन्हो ने [कह]ा है कि—

समालोचक

ज्ञान विमल सूरि महापंडित हुंता, तेउ ए उपयोगी तीक्षण प्रयूंज्यो हुंत तौ तेउ तौ समर्थ अर्थकरी सकता पण तेउ ए तौ अर्थ करते विचारणा अत्यन्त न्यून जकरी नै मै ज्ञानसार मारी बुद्धि अनुसारैं सं १८२९ थी विचारतै विचारतै सं० १८६६ श्री कृष्णगढ़ मध्ये टबो लिख्यौ परं मै इतरा वरसां विचार विचारतां ही सी लिद्धि थई तेहवौ मोटौ पंडित विचार विचार लिखितौ तौ संपूर्ण अर्थ थातौ। परं ज्ञानविमल-सूरि जी यें तो असमझ व्यापारी ज्युं सौदो बेच्यौ करै, नफो तोरो न समझै तिमि ज्ञानविमलसूरि जी यै पिण लिखतां लेखण न अटकावणी एज पंडिताई नौ लक्षणं निर्द्धार कीनौ अर्थ व्यर्थ अर्थ समर्थित नी गिणनां न गिणी।

इसी प्रकार स्पष्ट वक्तृत्व के नाते आनंदघन जी जैसे महापुरुषों पर भी एक [ज]गह कुछ आलोचना की है। आध्यात्म-अनुभवी श्रीमद देवचंद्र जी की दो कृतियों पर

ो ने बालावबोध रचा। उन में भी कई स्थानो मे उन की विशद समालोचना की है। धु सभाय बालावबोध' में तो कई बाते बड़ी ही मनोरंजक और रहस्यमयी कह ी है। उपयोगी होने से उन का कुछ अवतरण यहां देते ह :—

ध्रुव छै ए तौ कथन क्षायिक भावै छै परंक्षायिक भावे आतम वित्त ने सिद्ध मां तो अभेदोपचारी पणुं छै ए विरोधाभास छै . . . .

एह वुं जे कह्युं ए क्षायिक भावे कथन ते विरोध इति सटंक। हिवै आगल सझाय नी गाथाओ मां स्यो वर्णन करस्यो। परं ए कविराज नी योजना नो एज सुभाय छै तेज बात नै गटर पटर आगे नी पाछे नी आगे हांकतो चाल्यो जाय ते तमे पोते विचारी लेज्यो संबन्ध विरुद्ध अंगोपांग भंग कविता वारंवार एक पद गुंथाणो ते पुनरुक्ति दूषण कविता ते एहीज सझाय में तमे ही जोर लेज्यो एक निज पद दस जाग्यां गुंथ्यौ छै ते गिण लेज्यो एकलो मुझने दूषण मत देज्यौ। बीजु एह नो छूटक लिखत सप्त नयाश्रयी सप्त भंगाश्रयी चुस्त छै स्वरूप नी कथन नी योजना सेमां तो गटर पटर छै ए बिना बीजी सहित छूटक योजना सटंक छै। योजना करवी ए पिण विद्या न्यारी छै, कौमुदी कर्त्तायें शिष्य थी आद्य श्लोक करायो, आप थी न थयो। वलि ए बात खुली न लिखुं तो ए लिखत वांचण वालो मूर्ख शेखर जाणे ए कारण लिखुं। गुजरात में ए कहिवत छै—"आनन्दघन टंकशाली, जिनराजसूरि बाबा अबध्य बचनी, उ० यशोविजय टानर टुनरिया पोते थाप्यो तेज उथाप्यो उ० देवचंद्र जी ने एक पूर्व नुं ज्ञानहतुं ते थी गटर पटरिया, मोहन विजय पन्यास ते लटकाला मुझ नै आगल अर्थ लिखवुं छे ते अक्षर प्रमाणे अर्थ लिखीश किहां सरखो अर्थ दीसे ते माहरो दूषण न काढस्यौ अक्षर विरुद्ध अर्थ माहरौ दूषण सही।

अठारहवी शताब्दी में मोहन-विजय अति लोकप्रिय कवि हुए हैं उन के 'चद- का प्रचार बहुत जोरों से था। उस पर दोहों में जो सुदर और सजीव समालोचना , वह समालोचना-पद्धति का एक अच्छा उदाहरण है।

इस ग्रंथ का विशेष परिचय आगे दिया जायगा। कविवर बनारसीदास जी ामयसार' की भी कुछ आलोचना 'आत्मप्रबोध-छत्तीसी' में की है।

जयपुर और बीकानेर के नरेशो पर श्रीमद् के ________ प्रभाव का उल्लेख

आगे किया जा चुका है। इन के अतिरिक्त जैसलमेर-नरेश गजसिंह भी इन्हे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे[1]। उदयपुर के महाराणा जवानसिंह जी से भी उन का अच्छा संबंध विदित होता है।

राज-सम्मान

कहा जाता है कि राणा जी की दुहागिन (कृपाहीन) राणी प्रतिदिन उन के पास आकर विनती किया करती थी कि 'गुरुदेव! ऐसा कोई यंत्र दीजिए जिस से महाराणा मेरे वश मे हो जायँ।' उन्हों ने उसे बहुत समझाया, पर राणी किसी तरह न मान कर यंत्र देने के लिए विशेष हठ करने लगी। तब श्रीमद् ने उसे एक कागज़ पर कुछ लिख कर दे दिया। राणी की श्रद्धा और श्रीमद् की वचनसिद्धि से महाराणा की राणी पर पूर्ववत् कृपा हो गई। लोगों के भड़काने पर जब महाराणा ने यंत्र के संबंध में उन से पूछताछ की तो उन्हो ने कहा, 'राजन्! हमें इन सब कार्यों से क्या प्रयोजन?' अंत में यंत्र खोल कर पढ़ने पर 'राजा राणी सुं राजी, तो नारायणे ने कंइ, राजा राणी सु रूसे, तो नारायणे ने कंइ' लिखा मिला। इसे देख कर महाराणा आप की निस्पृहता से बडे सतुष्ट हुए। महाराणा के आशीर्वाद में एक कविता भी उपलब्ध है।

श्रीमद् ने सत्रहवीं शताब्दी के शेपार्द्ध के परम योगिराज आनंदघन जी की चौबीसी और बहुत्तरी पदों का चिंतन अपनी यौवनावस्था से प्रारंभ कर अंतिमावस्था पर्यंत किया था। अतः उन के जीवन पर आनंदघन जी के अनुभवों की गहरी छाप अंकित हो गई थी। आनंदघन जी के पद उन्हें अति प्रिय थे। उन के कई पदों के उद्धरण 'चौबीसी बालावबोध', 'आध्यात्मगीता बालावबोध' और 'साधु सभाय बालावबोध' आदि में दिए हैं। श्रीमद् के बहुत्तरी आदि पदो पर योगिराज आनंदघन जी के पदों का प्रभाव बिलकुल स्पष्ट है। इसी लिए कई आचार्यों ने उन्हें 'लघु आनंदघन' विशेषण से सबोधित किया है।

आनंदघन जी का प्रभाव

श्रीमद् के जीवन-चरित्र की बहुत बड़ी सामग्री हम ने संग्रह की है। परन्तु विस्तार-भय से बहुत ही संक्षेप रूप से यह निबंध लिखा गया है।

---

[1] सुप्रसिद्ध राजमान्य पटवा सेठों के लिखे हुए पत्रों में रावल जी ने अप्रतिम भक्तिभाव प्रदर्शित करते हुए जैसलमेर पधारने की विनती लिखी है। ऐसे ४ पत्र हमारे पास है जिन के ऊपर महारावल जी ने स्वयं अपने हाथ से वंदना नमस्कार लिखा है। एक पत्र (खास रुक्का) रावल जी का स्वयं-लिखित भी हमारे संग्रह में है

श्री ज्ञानसार जी के ग्रंथों का परिचय

हिंदी ग्रंथ

१. **पूरब देशवर्णन**—यह ग्रंथ उन के पूर्व देश भ्रमण और अनुभव का जीवित चित्र है। इस से बंगाल की तत्कालीन परिस्थिति, रीति-रिवाज, वेष, भाषा, लोक-व्यवहार, प्राकृतिक वर्णन का बहुत कुछ पता चलता है। हिंदी के देश-वर्णनात्मक स्वतंत्र काव्यों में संभवतः यह सब से विशद, लालित्यपूर्ण और बड़ा काव्य है। इस में १३२ त्रिभंगी और अंत में १ छप्पय कुल १३३ छंद है। एवं इस में राजस्थानी शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया गया है।

आदि—केई मैं देख्या देश विशेषा, नति रे अबका सब ही में।
जिह रूप न देखा नारी पुरुषा, फिर फिर देख्या नगरी में॥
जिहां काणी चुचरी अधरी बधरी, लंगुरी पंगुरी ह्वै काई।
पूरब मति जाज्यो पच्छिम जाज्यो दक्षिण उत्तर हे भाई॥१॥

अंत—घणुं घणुं क्या कहुं, कह्यौ मै किंचित कोई।
सब दीठौ सब लहै, देश दीठौ नहीं जोई।
जाणी जेती बात, तिती मैं प्रगट कहाणी।
झूठी कथ नहीं कथी, कही है साच कहाणी॥
पिण रहिस हू इक बात नौ, तन सुख चाहै देह धर।
नारण धरी अरु क्या पहुर, रहै नहीं सो सुघड़ नर॥१३३॥

२. **कामोद्दीपन**—यह ग्रंथ वि० सं० १८५६ माधव शुक्ला ३ को जयपुर मे महाराणा प्रतापसिंह की प्रशंसा में बनाया गया था। इस की भाषा विशुद्ध हिंदी है। उपमालंकारों की छटा और कवि की प्रतिभा पद-पद पर झलकती है। कामदेव के साथ महाराजा की तुलना करते हुए इस ग्रंथ का नाम भी 'कामोद्दीपन' रक्खा है। दोहा और सवैये कुल मिला कर १७७ पद्य हैं।

आदि—तारिन में चन्द जैसे, ग्रह गन दिनन्द तैसे,
मनिनि में मनिन्द त्यौं गिरिन गिरिन्द यू।

सुर में सुरिन्द महाराज राज वृन्द हू में,
माधवेश नन्द सुख सुरतरु सुकंद यू॥
अरि करि करिंद भूम भार को फणिन्द मनौ,
जगत को वंद सूर तेज तैं न मंद यू।
आशय समंद इन्दु सौं अन्द ज्याकौ,
मदन कर गोविन्द प्रतपै, प्रताप नर इन्द यू॥१॥

अंत—ग्रंथ करौ षटरस भरौ, बरनन मदन अखंड।
जसु माधुरिता तै जगति, खंड खंड भई खंड॥१७५॥
सुधरनि जन मन रस दियै, रस भोगनि सहकार।
मदन उदीपन ग्रन्थ यह, रच्यौ रच्यौ श्रीकार॥१७६॥
जग करता करतार है, यह कवि वचन विलास।
पैं या मति को खंड दै, हैं हम ताके दास॥१७७॥

३. **मालापिंगल**—पिंगल के छंद-विज्ञान पर उदाहरण सहित १५४ पद्यों में यह ग्रंथ रच कर सं० १८७६ फाल्गुन कृष्णा ६ को संपूर्ण किया। इस की रचना 'रूपदीप', 'वृत्तरत्नाकर', 'चिंतामणि' आदि छंद-ग्रंथों के आधार से हुई है। नवकार वाली (माला) में १०८ मणके और २ मेरु होते हैं इस में भी ११० छंदों का वर्णन होने से इस का नाम भी 'मालापिंगल' रक्खा गया है।

आदि—दोहा—श्री अरिहंत सुसिद्ध पद, आचारज उवज्झाय।
सरब लोक के साधु कुं, प्रणमुं श्री गुरु पाय॥१॥
प्राकृति तें भाषा करूं, माला पिंगल नाम।
सुखै बोध बालक लहै, परसम को नहिं काम॥२॥

अंत—दोहा—आदि मध्य मंगलकरण, संपूरन के हेत।
अन्तिम मंगल हर्ष कौ, कारण कवि संकेत॥१४५॥

... ...

चौपाई—रूपदीप तें बावन किये, वृतरत्न तैं केते लिए।
चिन्तामणि तै केई वेख रचना कीनी कविमति पेख॥१५२॥

नहीं प्रस्तरन कर उदिष्ट, मेरु मर्कटील कियौ नष्ट।
आधुन काली पंडित लोक, ग्रन्थ कठिन लखि देहै धोक ॥१५३॥
दोहा—इक सौ आठ दो मेरु के, वृत किये मतिमन्द।
यातें याकूं भाखियौ, नामा माला छंद ॥१५४॥

४. **चंद चौपाई समालोचना**—जैन राम-साहित्य में श्री मोहनविजय जी कृत चंद राजा की चौपाई की बड़ी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि है। इस की रचना बड़ी मधुर और लालित्यपूर्ण होने से यह अधिक लोकप्रिय हो गई है। इस पर श्रीमद् ने हिंदी कविता में सुंदर प्रसादगुण-युक्त समालोचना लिखी है। इस में ४१ दोहे और ३ सवैये हैं। इन्हें पढ़ने से कवि के विशाल छंद-ज्ञान और काव्यकौशल का परिचय मिलता है। रास की समालोचना में उन्हों ने केवल दोषों का उद्घाटन ही नही किया है, किंतु प्रासंगिक दोहे स्थान-स्थान पर डाल कर रास की शोभा में चौगुनी वृद्धि की है। दोहे बड़े ही सरस हैं।

आदि—ए निश्चै निश्चै करो, लखि रचना को मांझ।
छंद अलंकारै निपुण, नहीं मोहन कविराज ॥१॥
दोहा छंदै विषम पद, कही तीन दस मात।
सम में ग्यारै हू धरै, छंद गिरंथै ख्यात ॥२॥
सो तो पहिलें ही पदें, मात रची बो बार।
अलंकार दूषण लिखुं, लिखत चढ़त विस्तार ॥३॥

अंत—ना कवि की निन्दा करी, ना कछु राखी कान।
कवि कृत कविता शास्त्र की, सम्मति लिखी संधान ॥२॥
दोहा त्रिक दश च्यार सौ, प्रस्ताविक नवीन।
खरतर भट्टारक गच्छै, ज्ञानसार लिख दीन ॥३॥

५. **प्रस्ताविक अष्टोत्तरी**— विविध विषय के ११२ (कवि के कथनानुसार १०६) दोहों में प्रस्तुत रचना हुई है। दोहे के पूर्वार्द्ध मे किसी प्रस्ताविक बात का निरूपण करके शेषार्द्ध में उदाहरण द्वारा उस की पुष्टि की गई है। नमूने के रूप में कुछ दोहे बीच-बीच से चुन कर यहां उद्धृत करते हैं—

आतमता परमात्मता लक्षणतायैं एक।
यातैं शुद्धातम नम्यैं, सिद्ध नमन सुविवेक ।।१।।
मन निःशल्य आलोवतां, सब अपराध खमात।
ज्यों कांटे की वेदना, निकसत टुक न रहात ।।३।।
मोल लियत दिक्षा दियत, संयम कहा पढ़ात।
ज्यों संध्या के मृतक कों, कौलौं रोवत रात ।।६।।
जौ लौं मुरदा न जलै, तौ लौ मृतक वैराग।
ज्यों सुपने की वेदना, तौ लौं न हुवत जाग ।।१७।।
दुष्ट संग बिन दुष्टता, कैसे हू न लखाय।
प्रगट देखिबे की गरज, कांजी दूध मिलाय ।।६१।।
गरभ वेदना निकसतैं विसरत जगत तमाम।
सुरति समय पर प्रसव दुख, भूल जात ज्युं वाम ।।१०२।।
वृद्ध पुरुष हित सीख दैं, सो नहीं मानत ज्वान।
कटुक लगैं जुर में कटुक, ज्युं गुण करत निदान ।।१०३।।

६. **निहाल-बावनी**—यह ५२ गूढ़ार्थ वाले दोहों में बनी है। इस कारण कवि ने स्वयं इसे 'गूढ़ाबावनी' लिखा है। परंतु ये गूढ़े श्री निहालचंद जी को निर्देश कर कहे गए हैं, और प्रत्येक दोहे के अंत मे 'निहाल' शब्द आने से इसे निहाल-बावनी कहते है। इस की रचना सं० १८८१ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ को हुई थी।

आदि—चौंच आंख पर पाउं खग, ठाढ़ो अम्बनि डाल।
हिलत चलत नहीं नभ उडत, कारण कौन निहाल ।।१।।—चित्रित

अंत—बिन पैड़ी चवदै चढे, समयन्तर कर काल।
मरण होत ही उड़ चलै, कारण कौन निहाल ।।५२।।—सिद्ध

७. **भाव-छत्तीसी**—इस में ३६ दोहे है। सं० १८६५ कार्तिक सुदि १ को कृष्णगढ़ में श्रावक के आग्रह से रची गई।

८ **चारित्र-छत्तीसी**—यह भी ३६ हिंदी दोहों में बनी हुई है। इस मे दुःषम काल में शुद्ध चारित्र्य की दुर्लभता का वर्णन किया है। जैसलमेर के नंदलाल जी की स्त्री

मोतू, जो साध्वी चैना के पास दीक्षा लेने को उद्यत हुई थीं; उन्हें अयोग्य जान कर उत्साह मंद करने के लिए इस छत्तीसी का निर्माण किया।

९ **आत्मप्रबोध-छत्तीसी**—यह दोहा, चौपाई, सवैया, कुंडलिया, चंद्रायणा, आदि ३६ छंदों में है। जयपुर में ऋषभदास सरावगी के 'उत्तराध्ययनसूत्र' के बदले 'समयसार' का व्याख्यान करने के अनुरोध पर उस ग्रंथ के एकांतवाद की समालोचना रूप में यह छत्तीसी बनाई गई है।

१०. **मतिप्रबोध-छत्तीसी**—भाषा के छत्तीस दोहों में रची हुई है।

११. **बहुत्तरी आदि पद**—बहुत्तरी में ७३ पदों का सन्निवेश किया गया है। परंतु इस के अतिरिक्त और भी बहुत से हिंदी पद प्राप्त हुए हैं जिन की संख्या इतनी ही और होगी। इन में से पाठकों के अवलोकनार्थ दो पद नीचे दिए जाते हैं—

राग—सामेरी

औगुन किन के न कहियै रे भाई। औ०
आप भरे सब औगुन ही सें, औरन कुं क्या चहियै रे भाई॥१॥
डुंगर बलती देखै सबही, पगतल कौन बतइयै।
लागी पगतल लाय बुझावौ, जो कछु तन सुख चहियै रे भाई॥२॥
आप बुरें तै है सब जग ही, आप भलें ते भले ही हैं।
ज्ञानसार गिन गुण जपमाला निशदिन रटतैं रहियै रे भाई॥३॥

राग—सोरठ

कीकरां में रैन विहानी।
नींद न आवै नींद न आवै, नींद न आवै॥ की०
उदयें आतम ज्ञान अर्क के रात विभाव विहावै॥१॥ की०
रुचि शुद्ध भावें सहिज पसरतें भ्रम तम कम न रहावै।
चकवा चकवी और भये तै हिलमिल प्रीति बढ़ावै॥२॥ की०
लोभ लूक जब अन्ध भयौ तब विषयी चंद छिपावै।
ज्ञानसार पद चेत न पायौ, यातैं अलख कहावै॥३॥ की०

१२- **प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य**—और आशीर्वादात्मक काव्यादि।

राजस्थानी ग्रंथ

पद्य ग्रंथ—

१३. **चौबीसी**—सं० १८७५ मार्गशीर्ष सुदि १५, बीकानेर।

१४. **बीसी**—सं० १८७८ कार्तिक शुक्ल १, बीकानेर।

१५. **सैंतालीस बोल गर्भित चौबीसी स्तवन**—सं० १८५८ कार्तिक बदि १५, जयपुर।

१६. **संबोध-अष्टोत्तरी**—सं० १८५८ ज्येष्ठ सुदि ३, जयपुर।

१७. **जीवविचार-स्तवन**—सं० १८६१ माघ चतुर्थी, जयपुर।

१८. **दंडक-स्तवन**—सं० १८६१ पौष शुक्ल ७ सोमवार।

१९. **नवतत्व-स्तवन**—सं० १८६१ माघ कृष्ण १३ चंद्रवार, जयपुर।

२०. **हेमदंडक**—सं० १८६२ मार्गशीर्ष बदि १४, जयपुर।

२१. **बासठ यंत्र-रचना-स्तवन**—सं० १८६२ चैत्र शुक्ला ८, जयपुर।

२२. **नवपदपूजा**—सं० १८७१ माघ कृष्ण १३, बीकानेर।

२३. **दादा जी की पूजा।**

२४. **शत्रुंजय-स्तवनादि**—सं० १८६६ फाल्गुन कृष्ण १४।

गद्य ग्रंथ—

२५. **आनंदघन चौबीसी बालावबोध**—स १८६६ भा० शु० १४, कृष्णगढ़।

२६. **देवचंद जी कृत आध्यात्मगीता बालावबोध**—सं० १८८० आषाढ़ शुक्ल-१३, बीकानेर

२७. **आनंदघन जी कृत बहुत्तरी के कुछ पदों पर बालावबोध।**

२८. **जिनप्रतिमा-स्थापन**—स० १८७४ चैत्र सुदि ७ को वैशाली के श्रावक ने हिंदी भाषा में ४२ प्रश्न पूछे थे, उन का सप्रमाण उत्तर इस ग्रंथ में दिया गया है। अंत मे हिंदी के प्रशस्त दोहे है।

२९. **देवचंद्र जी कृत साधु सज्झाय बालावबोध**—श्रीमद् देवचंद्र मे प्रकाशित।

३०. **यशोविजय जी कृत तत्त्वार्थ गीत टवार्थ।**

३१. **पंच-समवाय-विचार।**

३२ **आत्मनिंदा।**

३३. जिनमत व्यवस्था गीत स्वोपज्ञ वचनिका।

३४. हीयाली सोपज्ञ वचनिका।

३५. समुद्रबद्ध सोपज्ञ वचनिका—सं० १८५३ माघ कृष्ण ८।

३६. ज्वानसिंह आशीर्वाद स्वोपज्ञ वचनिका।

इन में से केवल निम्नोक्त प्रतियां ही प्रकाशित हुई हैं—

१. आनंद चौबीसी बालावबोध—भीमसी माणक, बंबई से प्रकाशित।

प्रस्तुत संस्करण में ग्रंथ को गुजराती भाषा में परिवर्तन करके प्रासंगिक अनेक बातों को निकाल कर मनमाना प्रकाशित किया गया है।

२. साधु सभाय टबार्थ—आध्यात्म-ज्ञान-प्रसारक मंडल, पादरा से प्रकाशित।

३. जीवविचार, नवतत्व, दंडक-स्तवन—हमारे प्रकाशित 'अभयरत्नसार' आदि में प्रकाशित।

४. दादाजी की पूजा—जिनदत्तसूरि-चरित्र (उत्तरार्द्ध) में प्रकाशित।

५. आत्मनिंदा—और कतिपय पद भी प्रकाशित हो गए हैं।

अवशेष सभी ग्रंथों की प्रतिलिपि हमारे पास है, जिन्हें यथावकाश स्वतंत्र ग्रंथ-रूप से प्रकाशित करने का विचार है।
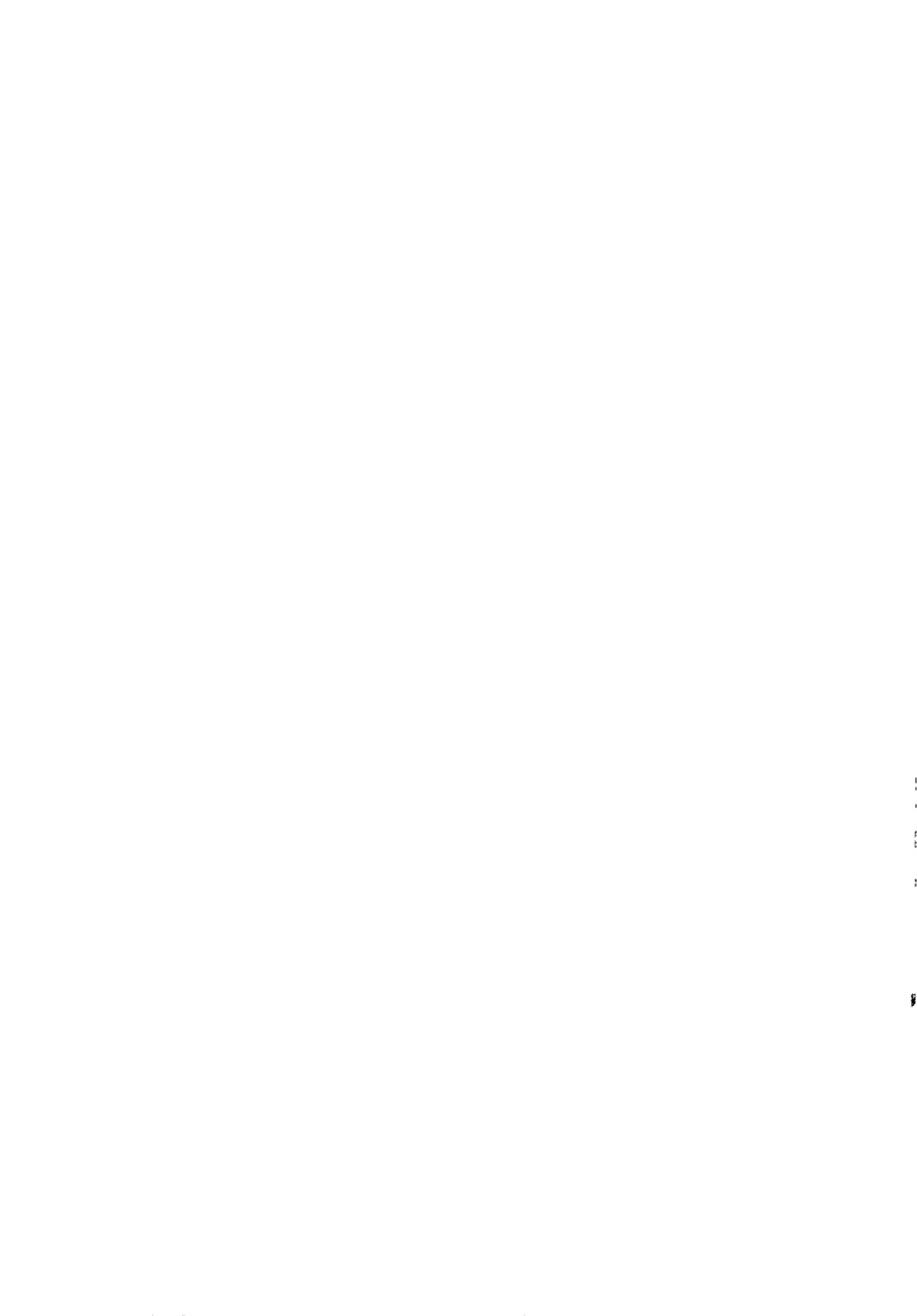
चकबस्त

[लेखक—डाक्टर ताराचंद, एम्० ए०, डी० फ़िल्० (ऑक्सन)]

सन् १८५७ के ग़दर के बाद हिंदुस्तान में जो बेबसी और असहायता की दशा उत्पन्न हुई, उस का आज अनुमान करना कठिन है। ग़दर ने न केवल हमारी राजनैतिक-शक्ति को मिटाया और हमारे जातीय आत्म-सम्मान को गहरी चोट पहुँचाई, उस ने जाति के संगठन को विच्छिन्न, हमारी संस्थाओं को निर्बल और हिम्मतों को पस्त कर दिया। पश्चिमी सभ्यता की नई रोशनी के सामने हिंदुस्तानी सभ्यता का दीपक मंद और फीका पड गया। जिस पीढ़ी ने ग़दर के हंगामों को देखा था उस, की सांस्कृतिक दशा शोचनीय हो गई। उसी को संबोधन करके कवि अकबर ने अपनी प्रसिद्ध कविता में कहा था—

क़फ़स है कम हिम्मती का सीमीं,
पड़े हैं कुछ दानाहाए शीरीं।
उन्हीं पै मायल है तबा शाहीं,
न बाल अब हैं न पर रहे हैं॥

लेकिन चौथाई सदी बाद जो नई पौध उगी, उस के मस्तिष्क से पुरानी भयावह घटनाओं की स्मृति दूर होने लगी। पश्चिमी धन के घमंड और शक्ति के गर्व ने उस के हृदयों पर ठेस लगाई, और हिंद की भूमि पर नई उमंगों और आशाओं का बीज बोया।

चकबस्त इसी परिवर्तन काल में उत्पन्न हुए। उन्हों ने अवध के सुल्तानों की राजधानी में, जो पुरानी संस्कृति का केंद्र थी, शिक्षा प्राप्त की। लखनऊ में अभी वह प्रभाव शेष थे, जिन पर पुरानी संस्कृति की छाप अंकित थी। ऐसे लोग मौजूद थे जिन की आँखो ने पुरानी संगतें देखी थीं। अंग्रेज़ी कालिज और लखनऊ के वातावरण में उन का मानसिक विकास हुआ, और उन दोनों का उन के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। चकबस्त उन लोगो में न थे जो एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा कर, पसीना बहा कर, कवि बनते हैं। कविता उन के स्वभाव में थी। बचपन से उन्हें शायरी का शौक़ था।

कविता कई प्रकार की होती है। एक कविता वह है जिस का रंग प्रेममय है और जिस में भावों का शासन है। इस कविता के प्रेमी बढ़ते है तो सूफ़ियों की भाँति बंधनो को तोड़ कर उन से ऊपर उठ जाते हैं। दूसरी कविता वह है जो सीमाओं को स्वीकार करती है। भावों से तो कोई भी कविता वास्तव में विमुख नहीं हो सकती, लेकिन यह दूसरे कवि ऐसे भावो की दासता नही स्वीकार करते जो बुद्धि से परे हों। यदि पहला वर्ग कल्पना-रूपी पक्षी को नीले आकाश में, दृष्टि की सीमा से परे, उड़ा ले जाना चाहता है तो दूसरा संभावनीय विशेषताओं के आकर्षक चित्र खींचने की आकांक्षा धारण किए है। चकबस्त सुरुचिपूर्ण व्यक्ति थे, सरलता और संस्कृति के प्रेमी, बेराहरवी, अतिशयोक्ति या झूठ से दूर थे। कठिन शब्दों के गोरख-धंधों से उन्हें घृणा थी। वह इस विचार के थे कि सचाई सफ़ाई का नाम है, इस लिए यदि विचारों में सचाई है तो उसे शब्दों की सफ़ाई में झलकना चाहिए।

यदि वर्णनशैली में उलझन है तो वह विचारों की गुत्थियों की ओर संकेत करती है। आतश के अनुसार कवि का कर्म जड़ाऊ काम करने वालों जैसा है। वह शब्दो के सच्चे नगीनों को ढूँढ़ता है और उन्हे अपनी जगह ठीक-ठीक बैठाता है। चकबस्त उन कलाकारों मे से थे जिन्हों ने इस काम में कमाल हासिल किया था। शब्दों के विन्यास और प्रयोग, वर्णन मे प्रवाह, और सरलता तो उन की भाषा का विशेष गुण था। इस के अतिरिक्त उन का भाषा पर अधिकार सुंदर शब्दों के चुनाव से प्रकट होता है। उन के शब्दो मे माधुर्य और सामंजस्य है, सुरुचि और सांस्कृतिक मस्तिष्क की छाप है, ओज है, प्रवाह है। लाला श्रीराम अपने 'खुमखानए-जावेद' नामक इतिहास में चकबस्त के विषय मे लिखते हैं—

"इस मे शक नही कि अकसर बंद हद दर्जे मुअस्सर और पुर दर्द होते हैं। और सफाई और सादगी से ख़ाली नही। मगर ख़याल की बलंद परवाज़ी और शौकत अलफ़ाज़ बहुत ज्यादः है। मनाज़र के सीन, मुख़्तलिफ़ जज़बात के फ़ोटो, हुब्ब वतन, अदब व अख़लाक की दिलफ़रेब तसावीर तो कसरत से दिखाई देती है। महज़ हुस्न व इश्क के चरचे बहुत कम। वाक़यात के नज़्म करने में आप की क़ाबिलियत और मश्शाक़ी मुसल्लम है। एक छोटा और मामूली वाक़या बयान करने के लिए पहलू बदल-बदल कर कई-कई बद मुसल्सल लिख जाते हे। तशबीहात खूब बरतते हैं बाज़ जगह असलूब बयान में ऐसी

रवानी और दिलकशी होती है कि असातज़ा के कलाम का धोका होता है। रामायन के जो सीन आपने नज़्म किए हैं उन की दिलचस्पी व दिलफ़रेबी हद तौसीफ़ के बाहर है।"

यह लेख उस समय का है जब चकबस्त की अवस्था केवल अठाइस वर्ष की थी। उस समय इस उदीयमान कवि के जीवन के सोलह सफल वर्ष शेष थे।

चकबस्त कवि थे और आलोचक भी। उर्दू कविता साधारण रीति से, और उस ज़माने की कविता विशेष रूप से, एक सीमित प्रकार की कविता थी। कुछ इने-गिने विचार उस की पूँजी थे और एक विशेष जीवन-दर्शन उस का प्राण था। इन्हीं बुनियादों पर शब्दो को उलट-फेर कर पद्य बना देने का नाम कविता था। अच्छे कवि शब्दों के चुनाव और उन के हेर-फेर में कविता की विशेषता समझे हुए थे। चकबस्त कविता के इस पहलू को अंगीकार करते थे लेकिन उन की व्यापक दृष्टि इस से ऊँची थी। वह आतश, गालिब, अनीस के प्रेमी थे। विचारों की नवीनता को कविता का जरूरी अंग समझते थे। अपनी कविता के सबंध में वह अत्यंत विनम्रता के साथ कहते है—"अपने दोस्तो का दिल बहलाने के लिए कभी-कभी शेर कह लेता हूं। पुराने रंग की शायरी यानी गजलगोई से नाआश्ना हूं। लेकिन उसी के साथ मेरा अक़ीदा यह है कि महज़ नए ख़याLात को तोड़-मरोड़ कर नज़्म कर देना शायरी नही है। मेरे ख़याल के मुताबिक़ ख़यालात की ताजगी के साथ ज़बान में शायराना लताफ़त और अल्फाज़ में तासीर का जौहर होना ज़रूरी है। लेकिन मैं आप को फिर लिखता हूं कि मैं कद्रदां सखुन हू सखुनवर नही हू। जिस का नाम शायरी है वह और चीज है, जो बहरहाल मुझे नसीब नही।"

चकबस्त की कविताओं का संक्षिप्त संग्रह 'सुबह वतन' के नाम से उन की मृत्यु के साल सन् १६२६ में प्रकाशित हुआ। उस में ३६ मुक्तक कविताएं है और लगभग ४० ग़ज़लें, कुछ रुबाइयां और कुछ स्फुट शेर। पुस्तक में कुल मिला कर १७७ पृष्ठ है। मुक्तक कविताओं में कुछ राष्ट्रीय हैं जिन का संबंध राष्ट्रीय आंदोलन के किसी न किसी अग से है, अथवा जिन में देश-प्रेम की भावना प्रेरक रूप में उपस्थित है।

कुछ शोक-पद्य हैं जो देश के नेताओ या अपने मित्रों की मृत्यु की स्मृति में लिखे गए हैं। कुछ कविताएं राष्ट्रीय सुधार के उद्देश्य से लिखी गई हैं। कुछ में सांस्कृतिक विचारों का विवेचन हुआ है और कुछ में ऐतिहासक घटनाएं पद्य-बद्ध हुई हैं। तीन चार

कविताओं में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण हुआ है और एक में लखनऊ के इमामबाड़े का बयान है। संग्रह में मुक्तक भाग ही अधिक है।

चकबस्त के राष्ट्रीय पद्यों की विशेषता यह है कि वह धार्मिक संकीर्णता और दलबंदी की भावना से सर्वथा मुक्त है। उन का देश-प्रेम यथार्थ मे समस्त देशवासियो का प्रेम है। कहते हैं —

बलाए जां है यह तसबीह और जुन्नार के फंदे,
दिले हक़बीं को हम इस क़ैद से आज़ाद करते हैं।
अज़ां देते है बुतख़ाने में जाकर शान मौमिन से,
हरम में नारए नाक़ूस हम ईजाद करते हैं।

हिंद की धूल का महत्व वर्णन करते हैं तो बताते हैं :—

गौतम ने आबरू दी इस माबदे कुहन को,
सरमद ने इस ज़मीं पर सदक़े किया वतन को,
अकबर ने जामे उल्फ़त बख़्शा इस अंजुमन को,
सींचा लहू से अपने राना ने इस चमन को,
सब सूर बीर अपने इस ख़ाक में निहां है,
टूटे हुए खँडर हैं या उनकी हड्डियां हैं।

यही प्रेम प्रकारांतर से इन पंक्तियों में प्रकट है :—

यही पयाम है कोयल का बाग़ के अंदर,
इसी हवा में है गंगा का ज़ोर आठ पहर,
हिलाले ईद ने दी है यही दिलों को ख़बर,
पुकारता है हिमाले से अब्र उठ उठ कर,
तलब फ़ुज़ूल है काँटे की फूल के बदले,
न लें बहिश्त भी हम 'होम रूल' के बदले।

और भी लिखते हैं :—

किया है फ़ाश परदा कुफ़्रो दीं का इस क़दर मैंने,
कि दुश्मन है बिरहमन औ' अद्रू शेख़े हरम मेरा।

देश की सेवा के लिए पुकारते हैं तो हिंदू और मुसलमान दो

भँवर में क़ौम का बेड़ा है हिंदुओ हुशियार,
अँधेरी रात है, काली घटा है औ' मझधार,
अगर पड़े रहे ग़फ़लत की नींद में सरशार,
तो ज़ेरे मौज फ़ना होगा आबरू का मज़ार,
मिटेगी क़ौम यह बेड़ा तमाम डूबेगा,
जहाँ में भीष्म व अर्जुन का नाम डूबेगा।
दिखादो जौहरे इस्लाम ऐ, मुसलमानो,
विकारे क़ौम गया क़ौम के निगहबानो,
सितून मुल्क के हो, क़द्र क़ौमियत जानो,
जफ़ा वतन पे है, फ़र्ज़ वफ़ा को पहचानो,
नबी के ख़ल्को मुरव्वत के वरसादार हो तुम,
अरब की शाने हमीयत की यादगार हो तुम।

के इतिहास में—अपने पूर्वजों में—जो उन की आस्था है, उस
ायन के एक सीन में पूरा-पूरा प्रदर्शन है तो दूसरी ओर आसफ़ु
इमामबाड़े को अवध की सभ्यता के लिए गर्व का विषय बता

जिस के फ़ैज़ान हकूमत का करिश्मा है यह,
इस के साये में है सोया हुआ वह ख़ल्क नवाज़,
उस की हिम्मत की बलंदी है बलंदी इस की,
उस के इख़लाक़ की वसअत का है इस में अंदाज़,
जब ज़ियारत में मुहर्रम को बशर आते हैं,
चाँदनी रात में आती है फ़लक से आवाज़—
"बे अदब पा मनेह ईजां कि अजब दरगाहस्त,
सिज्दागाहे मलको रौज़ए शहंशाह अस्त।"[1]

ब इस जगह पैर न रख, क्योंकि यह अजीब दरगाह है। यह फि
ी जगह है और शहंशाहों की यह समाधि है।

चकबस्त के राष्ट्रीय पद्यों की एक विशेषता यह है कि उन के भावों में निग्रह और उन के प्रकाशन में मध्यम मार्ग का अनुसरण है। वह देशरूपी वाटिका के वसंत के पुजारी हैं, भारत-भूमि को स्वर्गतुल्य प्रतिष्ठित समझते हैं। वह उस की फूल-फुलवारियां, सावन की काली घटाओं, बरसात की हल्की फुहारों, कोयलों की कूक, मोरों के स्वर, गंगा और जमुना की लहरों के मतवाले हैं। लेकिन उन्हें अपने देश की जो वस्तु सब से प्यारी है वह यहां की पुरानी सभ्यता है। इस सभ्यता की नींव ज्ञान और संस्कृति पर है, मनुष्य-मात्र के प्रेम, सहानुभूति, ईमानदारी, सफ़ाई, और ईश्वर के भय पर है। वह हिंदुस्तानी सभ्यता के इन वास्तविक विशेषताओं पर मुग्ध हैं, परंतु वह सुधारवादी हैं और निरक्षरता, अन्याय, विलासिता, और दिखावे के दुश्मन हैं। पश्चिमी सभ्यता से उन्हे विरोध नही, प्रदर्शन से बैर है। देश की लड़कियों को वह इस प्रकार संबोधन करते हैं—

> नक़्ल यूरप की मुनासिब है मगर याद रहे,
> ख़ाक में ग़ैरते क़ौमी न मिलाना हरगिज़।

लेकिन यूरप की नक्ल का क्या अर्थ है, वह सुनिए :—

> मस्त हूं हुब्बे वतन से कोई मैख़ार नहीं,
> मुझ को मग़रिब की नुमाइश से सरोकार नहीं।
> अपने ही दिल का प्याला पिए मदहोश हूं मैं,
> जूठी पीता नहीं मग़रिब की वह, मैनोश हूं मैं।

और साफ़-साफ़ कहते हैं :—

> हज़्जे अकबर से जो यूरप के हुए हैं मुमताज़,
> है वतन में भी ग़रीबुल्वतनी पर उन्हें नाज़,
> बैर याराने तरीक़त से है ग़ैरों से है साज़,
> वह बनाई हुई चितवन वह अनैले अंदाज़,
> लबो लहजे में लगावट है तरहदारी है,
> एक फ़क़त रंग पै क़ाबू नहीं, लाचारी है।
> उन को तहज़ीब से यूरप की नहीं कुछ सरोकार,
> ज़ाहिरी शानो नुमाइश पै दिलोजां है निसार

हैं व सीने में कहां ग़ैरते क़ौमी के शरार,
जिन से मग़रिब में हुए ख़ाक के पुतले बेदार,
सैर यूरप से यह इख़लाक़ो अदब सीखा है,
नाचना सीखा है और लह्वोलअब सीखा है।

उन के पद्यों में अतिशयोक्ति नही, लेकिन सचाई की गूँज है। माना कि
ावों में बेचैनी और उथल-पुथल नहीं पैदा करते, लेकिन उन में दर्द है। य
ारे मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं, और हमारी बुद्धि पर प्रभाव डालते है
पहला बंद देखिए :—

दर्द है दिल के लिए और दिल इंसां के लिए,
ताज़गी बर्गो समर की चमनिस्तां के लिए,
साज़ आहंग जनूं, तार रगे जां के लिए,
बेख़ुदी शौक़ की मुझ बे सरोसामां के लिए,
क्या कहूं कौन हवा सर में भरी रहती है,
बे पिए आठ पहर बे-ख़बरी रहती है।

ीवन के दर्शन को एक शेर में बाँधा है :—

फ़ना का होश आना ज़िंदगी का दर्दे सर जाना,
अजल क्या है ख़ुमारे बादए हस्ती उतर जाना।

मिसेज़ बीसेंट के सामने देशभक्ति का संदेश प्रस्तुत करते हैं :—

हो चुकी क़ौम के मातम में बहुत सीनाज़नी,
अब है इस रंग का संन्यास, यह है दिल में ठनी,
मादरे हिंद की तस्वीर हो सीने पै बनी,
बेड़ियां पाँव में हों और गले में कफ़नी,
हो यह सूरत से अयाँ आशिक़े आज़ादी है,
क़ुफ़्ल है जिन की ज़ुबां पर यह वह फ़रयादी है।

आज से शौक़ वफ़ा का यही जौहर होगा,
फ़र्श काँटों का हमें फूलों का बिस्तर होगा,
फूल हो जायगा छाती पै जो पत्थर होगा,
क़ैदख़ाना जिसे कहते हैं वही घर होगा,

संतरी देख के उस जोश को शरमाएँगे,
गीत जंजीर की झंकार पर हम गाएँगे।

चकबस्त के जीवन का वह भाग जब कि उन के मस्तिष्क और हृदय पर जमाना अपने प्रभाव डाल रहा था, हिंदुस्तान के इतिहास मे अद्भुत संघर्ष का समय था। कौम के दिल में निराशा और उत्कंठा की लड़ाई चल रही थी। परिस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है—

गुलशने क़ौम में है पेशनजर रंग अजीब,
फ़ितने जागे हुए है, ख़्वाब गरां में है नसीब,
दिल मुहब्बत से ख़फा है, तो मुरव्वत के रक़ीब,
दूर है दिल से जो आँखों से हैं हरवक़्त क़रीब,
अब वह पहले की मुहब्बत, वह भलाई है कहां,
दिल के आईनों में अगली सी सफ़ाई है कहां।

निराशा और उत्कंठा का संघर्ष चल रहा है।

यास कहती है कि जमने का नहीं रंगे चमन,
आरज़ू कहती है अगला सिलसिला टूटे नहीं।

चकबस्त की कविता में दुःख व वेदना का अंश बहुत प्रकट है। जाति के कई नेताओं की मृत्यु पर शोकोद्‌गार और युवक मित्र, तथा अन्य निकट संबंधियों की मृत्यु पर विलाप उन के काव्य मे विशेष स्थान रखते है। उन के हृदय में ट्रेजेडी से अनुकूलता मालूम होती है। दुख-दर्द भरी दास्तानों का बयान, करुणा भरे चित्रों का चित्रण, उन की चमत्कारी लेखनी की विशेषताएं हैं। ऐसे पद्यों में भी जिन के शीर्षक शोकमय नही है, हम दर्द की कसक पाते हैं। शायद अंग्रेज़ी कवि के इस उद्‌गार का उन पर प्रभाव रहा था कि हमारे मधुरतम संगीत वह हैं जो सब से दुखभरे विचारो को व्यक्त करते है।[१] स्वय कहते हैं—"मुहब्बत है मुझे कोयल के दर्दगेज़ नालों से।"

निराशा की कल्पना बहुधा उदासीनता उत्पन्न करनेवाली, उत्साह को भंग करने वाली और जीवन को विचलित करने वाली होती है। लेकिन चकबस्त के यहां उस का

---

[१] सेली, 'अवर स्वीटेस्ट सांग्स अर दोज़ दैट टेल अव् सैडेस्ट थाटस'।

यह रूप नहीं है। यद्यपि 'मातमेयास' में वह अत्यंत दु:ख और वेदना की दशा मे यह पुकार उठते हैं—

इंतिज़ामें देह्र में आख़िर है यह तदबीर क्या?
ख़्वाब दुनिया है तो है इस ख़्वाब की ताबीर क्या?

परंतु वह सब्र को हाथ से नहीं खोते। अपने मित्र की मत्यु पर लिखते हुए वह अपनी कविता इस शेर से समाप्त करते हैं—

सफ़र इस रूह का भी तै हो रहमत के उजाले में,
ख़ुदा बख़्शे बहुत सी ख़ूबियां थीं मरने वाले में।

और बालगंगाधर तिलक की मृत्यु पर लिखते हुए तो वह अपने शोक के स्वर को वीरता और उत्कर्ष के स्वर में छिपा देते हैं। कहते हैं—

शोर मातम न हो झंकार हो जंजीरों की,
चाहिए क़ौम के भीषम को चिता तीरों की।

पंडित बिशननारायन दर पर उन की विशेष रूप से आस्था थी। उन्हें अपना मित्र, आदरणीय, तथा गुरु मानते थे। उन की पूजा करना अपना धर्म और उन की भक्ति मे मरना अपना गौरव समझते थे। उन की मृत्यु पर लिखते है तो आरंभ इस प्रकार करते हैं—

दिले मायूस मुहब्बत का इज़ाख़ाना है,
अपनी आँखों में यह दुनिया नहीं वीराना है।

लेकिन निराशा को अपने ऊपर इस तरह विजय नहीं पाने देते कि आँसुओं की झडी में उन के जीवन के कारनामे आँखो से ओझल हो जाएं। यह मृत्यु का शोक मनाने वालों का रुदन मात्र नहीं है; मरने वाले की विशेषताओं का ऐसा वर्णन है, जिस में उन को विनाश के पंजे से छुटा कर अनत जीवन प्रदान कर दिया गया है। यों भी चकबस्त की निराशा उस गरीब हिंदू विधवा की निराशा नहीं, जिस का जीवन अपने पति की मृत्यु के बाद वह समाप्त न होने वाली रात है जिस के भाग्य में सूर्योदय देखना नहीं, न उस प्रवासी की निराशा है जो देश से दूर किसी पराए घर में अपने जीवन की अंतिम घड़ियां गिन रहा है, और जिस के भाग्य में अपनी स्त्री और बच्चों को देख कर अपनी आँखों को ठंडा करना नहीं उन की निराशा दिल को पस्त करने वाली और जीवन बुझाने वाली निराशा नहीं

शिकार खेले जा रहे हैं? निजी उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्मांधता को कितना उकसाया जा रहा है। यदि धर्म के अर्थ रक्तपात और परस्पर बुरा कहने के हैं तो बहुत से लोग उन धर्माध्यक्षों को जो मानव-प्रेम को सर्वोपरि धर्म नहीं समझते दूर से सलाम करेंगे, और चकबस्त से सहमत होंगे—

> **रहते हैं सदा फ़िक्र में उक़बा की गिरफ़्तार,**
> **दुनिया के फ़रायज़ से नहीं उन को सरोकार।**
> **यूं जादए तसलीमों रज़ा मिल नहीं सकता,**
> **इन में वह ख़ुदी है कि ख़ुदा मिल नहीं सकता।**

लेकिन चकबस्त के विचारों का एक सृजनात्मक पहलू भी है। वह हिंदुस्तानी सभ्यता को ज्ञान और संस्कृति की नींव पर स्थापित करना चाहते हैं। उन का विचार ठीक ही है कि "जुन्नार पहनने से बिरहमन नहीं होता।" बल्कि—

> **मज़हब बजुज़ इख़लाक़ रवा हो नहीं सकता,**
> **मानी से कभी लफ़्ज जुदा हो नहीं सकता।**

धर्म का मतलब क्या है? "कृष्ण कन्हैया" के अंतिम बंद में देखिए:—

> **फिर हो दुनिया मे किसी हस्तिए कामिल का ज़हूर,**
> **दिल में जिस के हो समाया हुआ ख़िदमत का सुरूर,**
> **जज़्बए ख़ैर की हो जिस को परस्तिश मंज़ूर,**
> **बादए शौक़ से हों जिस की निगाहें मख़मूर,**
> **दिल की तसख़ीर करे अंजुमन आरा हो कर,**
> **हो न दुनिया से ख़फ़ा दीन का प्यारा हो कर।**

विविधता से एकता का पाठ प्राप्त करना, वेदांत या मारफ़त के प्रकाश से मस्तिष्क और हृदय को प्रकाशित करना है—

> **जिस से इंसान में है जोशे जवानी पैदा,**
> **उसी जौहर से है मौजों में रवानी पैदा।**
> **रंग गुलशन में फ़िज़ा, दामने कुहसार में है,**
> **ख़ूं रगे गुल में है नश्तर की ख़लिश ख़ार में है।**

तमकनत हुस्न में है, जोश है दीवाने में,
रौशनी शमा में है नूर है परवाने में।
रंगो बू हो के समाया वही गुलज़ारों में,
अब्र बन कर वही बरसा किया कुहसारों में।
शौक़ हो कर दिले मजनूं पै छाया है वही,
दर्द बन कर दिले शायर में समाया है वही।
नूर ईमां से जो पैदा हो सफ़ा सीने में,
अक्स उस का नज़र आता है इस आईने में।

चकबस्त की रचनाओं का अध्ययन हमारा ध्यान कवि की कृतियों की उन विशेषताओं की ओर आकर्षित करता है, जिन का कवि की प्रकाशित कविता में केवल आरंभ दिखाई देता है। यदि जीवन साथ देता तो उस परिपक्व काव्य-पारखी कवि की कल्पना की उड़ान उसे कहां से कहां ले जाती उस का अनुमान नहीं हो सकता! तैंतालिस वर्ष की छोटी आयु में उस का मस्तिष्क उन दर्जों को पार कर के जिन में मानवी बुद्धि व्यक्ति और समाज के जीवन के प्रकट और स्थूल मंतव्यों को पहचानती है, उन गहराइयों की थाह लेने में लगा था जिन का संबंध वास्तविक दर्शन से है। शोक है कि काल ने अवसर न दिया और उर्दू कविता को प्रेम और वेदांत के उस पूरे संदेश से रहित कर दिया जिसे सुनाने के लिए एक सच्चा देशभक्त और विशाल-हृदय कवि तैयारी कर रहा था। बहुत सी आशाएं मिट्टी में मिल गईं।

भोजपुरी लोकोक्तियां

[लेखक—श्रीयुत उदयनारायण तिवारी, एम्० ए०]

बिहार की तीन मुख्य बोलियां हैं—मगही, मैथिली और भोजपुरी। तीनों मे, विस्तार-क्षेत्र तथा व्यापकता की दृष्टि मे भोजपुरी का स्थान ऊँचा है। इस बोली का नामकरण भोजपुर नामक प्राचीन नगर के आधार पर किया गया है। यद्यपि इस नगर का वैभव अब विनष्ट हो चुका है तथापि इस नाम के दो ग्राम डुमराँव के निकट शाहाबाद जिले में इस समय भी वर्तमान है।

आधुनिक भोजपुरी का विस्तार-क्षेत्र

पश्चिम में बनारस से लेकर पूरब मे मुजफ़्फ़रपुर तक, तथा दक्षिण मे जबलपुर से लेकर उत्तर में हिमालय तक साधारणतः इस बोली का विस्तार है। इस प्रकार बिहार के शाहाबाद, सारन, चपारन और मुजफ़्फ़रपुर के पश्चिमोत्तर भाग तथा युक्तप्रांत के पूर्वी ज़िलो में—जिन में बनारस, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़, बलिया तथा जौनपुर और मिर्ज़ापुर के कुछ भाग सम्मिलित हैं—इस बोली के बोलने वाले निवास करते हैं। नेपाल की तराई मे बसे हुए थारू[1] लोग भी भोजपुरी बोलते है।

भोजपुरी की प्राचीन सीमा

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'भोजपुरी भाषा' के लिए 'मल्ली भाषा' शब्द का प्रयोग किया है। आप बलिया हिंदी-प्रचारिणी सभा के अपने अभिभाषण में इस की प्राचीन सीमा के संबंध में लिखते है:—"बलिया ज़िले का जिस भाषा से संबंध है, उस को बोलने वाली जाति इतिहास में एक बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बुद्ध के समय मे इस भाषा की मातृ-स्थानीया भाषा मल्लों की भाषा थी, जिन का गणतंत्र छपरा (सारन),

---

[1] देखिए, डा० बाबूराम सक्सेना लिखित, 'थारू बोली का एक नमूना'—लिंग्विस्टक सोसाइटी का बुलेटिन, भाग २–४, सन् १९३१

गोरखपुर तथा बलिया जिले के भी कुछ भागों में फैला हुआ था। यद्यपि उस विशाल गणतंत्र की तीन सीमाएं थी, तो भी सरयू (घाघरा) और गंडक की धाराओं में कुछ परिवर्तन हुआ है, जिस से वह सीमा जहां छपरा मे कुछ बढ़ गई है, वहां बलिया के पूरबी भाग में वह कुछ घट गई है, और आज जो आप छोटी सरयू बड़ी सरयू नाम पाते है वह उसी परिवर्तन को प्रकट करता है।"

राहुल जी ने हिंदी मे अनूदित अपने 'मज्झिम निकाय' में बुद्धकालीन (५०० ई० पूर्व) भारत के मध्यमंडल का एक मानचित्र दिया है, जिस से वर्तमान बोलियो की सीमा निश्चित करने में बहुत सहायता मिलती है। इस मानचित्र में मल्ल-गणतंत्र की पूर्वी-उत्तरी सीमा मही (गंडक) नदी है। गंडक के उस पार वज्जी-गणतंत्र था, जिस की प्रधान नगरी वैशाली (वर्तमान बसाढ़) थी। आज भी भोजपुरी और मैथिली बोलियो की सीमा यही गंडक नदी ही है। भगवान बुद्ध के समय मे भी इन बोलियों की मातृ-स्थानीया भाषाओ की सीमा भी कदाचित् यही होगी।

मल्ल-गणतंत्र की पश्चिमी सीमा अचिरवती (वर्तमान राप्ती) नदी थी; इस के उस पार कोसल राज्य था, जिस की राजधानी साकेत (वर्तमान अयोध्या) थी। उत्तर मे नेपाल की तराई में शाक्यों का राज्य था। इन की राजधानी कपिलवस्तु (वर्तमान तिलौराकोट) थी। तिलौराकोट के उच्च वर्ण के लोगों की बोली आज भी पूर्वी अवधी और नीच वर्ण के लोगों की बोली भोजपुरी मिश्रित पूर्वी अवधी है। इस से यह बात प्रतीत होती है कि सभवत: शाक्यो की बोली भोजपुरी की मातृ-स्थानीया भाषा ही थी। भगवान बुद्ध की भी यही मातृभाषा थी, जो मागधी के नाम से प्रसिद्ध हुई। साहित्यिक रूप में तथा शिष्ट समाज मे व्यवहृत होने के कारण ही आजकल कपिलवस्तु की ओर अवधी बोली का प्रसार हो गया है। प्राचीन काल मे अवधी तथा भोजपुरी की मातृ-स्थानीया भाषाओं की सीमा कदाचित् कपिलवस्तु से पश्चिम होगी।

इस मल्ल-गणतंत्र की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर 'कासी' (काशी) का राज्य था, जिस की राजधानी 'वाराणसी' थी। वर्तमान आज़मगढ़, जौनपुर तथा मिर्जापुर जिलों के कुछ भाग भी प्राचीन काल में इसी काशी राज्य में सम्मिलित थे। इसिपतन (वर्तमान सारनाथ) से कीटागिरि (वर्तमान केराकत, जिला जौनपुर) की ओर भगवान बुद्ध की चारिका का वर्णन पालि ग्रथो में मिलता है। काशी भी भोजपुरी बोली

के ही क्षेत्र मे है। वास्तव में भदोही (बनारस स्टेट का एक जिला) तथा मिर्जामुराद के बीच मे स्थित तमंचाबाद ग्राम ही आधुनिक काल में भोजपुरी की सबसे पश्चिमी सीमा है।

यद्यपि व्याकरण तथा गठन की दृष्टि से मल्ल-गणतंत्र तथा काशी राज्य, दोनों की बोली भोजपुरी ही है; किंतु यदि ध्वनि और उच्चारण की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाय तो इस के भी निम्नलिखित दो विभाग होंगे, अर्थात् (१) मल्ली भोजपुरी; और (२) काशिका भोजपुरी। इन में मल्ली के अंतर्गत भोजपुरी का वह रूप आएगा जो सारन, बलिया, गाज़ीपुर, शाहाबाद, गोरखपुर तथा आजमगढ़ के पूर्वी भाग मे व्यवहृत होता है, और काशिका के अंतर्गत भोजपुरी के उस रूप का समावेश होगा जो पश्चिमी आजमगढ़, बनारस, पूर्वी जौनपुर, तथा मिर्ज़ापुर में मिलता है।

काशिका की अपेक्षा मल्ली भोजपुरी अधिक श्रुति-मधुर है। जिस प्रकार ईरानी लोगों की बोलचाल की फारसी तथा फ्रेंच बोलने वालो के लहजे में एक विशेष प्रकार का संगीतात्मक माधुर्य तथा लोच—'इंटोनेशन'—होता है, उसी प्रकार का माधुर्य तथा लोच मल्ली भोजपुरी में भी होता है। वाक्य के अंतिम स्वर को देर तक उच्चारण करने से ही यह माधुर्य उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी को कहना है कि 'बच्चे, कहा जा रहे हो ?' तो इसे मल्ली भोजपुरी में इस प्रकार कहेंगे—'बबुआ हो...ओ...ओ, कहा जा तार ...अ...अ।' काशिका भोजपुरी में इस माधुर्य तथा लोच का सर्वथा अभाव है।

भोजपुरी बोली के संबंध मे उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के पश्चात् अब लोकोक्तियो के संबंध में भी थोड़ा निवेदन करना है। वास्तव मे लोकोक्तियां अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। शताब्दियों से किसी जाति की विचारधारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इस का दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है। काल-क्रम के अनुसार लोकोक्तियों का वर्गीकरण करके राजनैतिक तथा भाषा की इतिहास-संबंधी सामग्री प्रचुर परिमाण में उपलब्ध की जा सकती है। इस विषय पर हिंदी मे अभी विशेष सामग्री प्रकाश मे नही आई है। ओझा-अभिनंदन-ग्रंथ में प्रकाशित श्रीमती सुमित्रा देवी शास्त्रिणी-कृत 'देरेवाली कहावते', तथा 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' में श्री शालिग्राम वैष्णव-कृत 'गढवाली भाषा के पखाणा' शीर्षक लेख, इस दिशा में अच्छे प्रयत्न हैं।

लोकोक्तियों का महत्व तथा उन का संग्रह

इन लोकोक्तियों के संग्रह में मेरा एकमात्र उद्देश्य भाषा-संबंधी (लिंग्विस्टिक) है। प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० बाबूराम सक्सेना की अध्यक्षता में जब सन् १६३२ ई० में मैंने भोजपुरी के अध्ययन का कार्य आरंभ किया था, तो उस समय भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह भी आवश्यक समझा गया। इस आवश्यकता का कारण था भोजपुरी के ऐतिहासिक व्याकरण की सामग्री की खोज। तब से प्रायः गत छः वर्षों से इन लोकोक्तियों के संग्रह का काम धीरे धीरे चलता रहा।

मेरा उद्देश्य

इन लोकोक्तियों का सब से अधिक प्रयोग गाँव की पंचायतों में होता है। सौभाग्य से अभी भी राजनैतिक तथा सामाजिक विषयों पर भोजपुरी में व्याख्यान होते रहते हैं। रेल अथवा पैदल यात्रा में शिक्षित भोजपुरी भी बंगालियों की तरह आपस मे भोजपुरी में ही बात-चीत करते है। ऐसे अवसरों पर भोजपुरी लोकोक्तियां नितात स्वाभाविक रूप से वक्ता के मुख से निकल पड़ती है। इस संग्रह के प्रस्तुत करने में इस प्रकार के समस्त अवसरों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया गया है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे में भोजपुरी बोली को एक बलाढ्य जाति की व्यावहारिक भाषा कहा है[1]। व्यावहारिक भाषा-भाषियों में स्पष्टवादिता की प्रचुरता रहती है। भोजपुरी लोकोक्तियों में यह एक खास बात है कि वे अत्यंत स्पष्ट है। उदाहरणार्थ युद्ध अथवा लड़ाई झगड़े में भोजपुरी लोग किसी दैवी शक्ति की अपेक्षा अपनी लाठी का ही अधिक भरोसा करते है। इस पर भोजपुरी में एक लोकोक्ति है—"सइ पुराचरन नाँ एक हुरा चरन।" 'हूरा' लाठी के नीचे वाले मोटे भाग को कहते है। 'हूरे' से मारने से बहुत अधिक चोट लगती है। लोकोक्ति का अर्थ है—"सौ पुरश्चरण (एक प्रकार का मंत्र पाठ जो शत्रु की मृत्यु के लिए किया अथवा कराया जाता है) बराबर होता है लाठी के 'हूरे' की एक चोट के।"

भोजपुरी लोकोक्तियों के संबंध में

इन लोकोक्तियों में कहीं कहीं गहरा व्यंग्य भी है। यज्ञ के हवन में खाद्य सामग्री विशेषतया घी का जलाना भोजपुरियों को कदाचित् अप्रिय है। इस के लिए एक लोकोक्ति

---

[1] भोजपुरी इज़ दि प्रेक्टिकल लैंग्वेज अव् ऐन एगर्जेटिक रेस'

है—'करवा कोंहार के, घीव जजमान के, स्वाहा स्वाहा।' करवा (मिट्टी का पात्र जिस के द्वारा घी यज्ञकुंड में डाला जाता है) कुंभकार का और घी यजमान का है। (पुरोहित जी) खूब स्वाहा स्वाहा कीजिए (आप का इस में क्या नुक़सान हो रहा है ?)।

अंग्रेजी में एक कहावत है—"फूल्ज़ मेक् फ़ीस्ट्स एंड वाइज़ मेन् ईट् देम्" अर्थात मूर्ख लोग निमंत्रण देते हैं और चतुर लोग भोजन करते हैं। खड़ी बोली में इस के समकक्ष की कौन लोकोक्ति है, यह मुझे ज्ञात नही; किंतु भोजपुरी की निम्नलिखित लोकोक्ति इस के आस-पास की है।

ऑन् कर आटा ऑन् कर घीव।
चाबस चाबस बाबा जीव।

दूसरे का आटा है और घी भी है दूसरे का ही। शाबाश बाबा जी, शाबाश (खूब खाइए)।

लोकोक्तियों में कहीं कहीं जातिगत आक्षेप वाली लोकोक्तियां भी हैं। इसी प्रकार कतिपय अशिष्ट लोकोक्तियां भी हैं जिन्हें इस संग्रह से पृथक् रक्खा गया है।

इस संग्रह को प्रस्तुत करने से पूर्व मैं उन सब सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना धर्म समझता हूं, जिन्हों ने समय समय पर इस निबंध की सामग्री जुटाने में मेरी सहायता की है। मैं श्री राहुल जी का अत्यंत आभारी हूं, जिन से मुझे अपने कार्य मे बड़ी मदद मिली है। बलिया के कविवर चंद्रभानु सिंह जी तथा पं० जनार्दन चतुर्वेदी का भी मै अत्यंत आभारी हूं जो समय समय पर लोकोक्तियां संग्रह करके मेरे पास भेजते रहे। बलिया के प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता पं० चित्तू पांडेय जी के भोजपुरी में दिए गए व्याख्यानों से भी समय समय पर अनेक लोकोक्तियां इस संग्रह में ली गई हैं। इस संग्रह को प्रस्तुत करने के लिए मैं डा० बाबूराम जी सक्सेना का विशेष रूप से आभारी हूं। वास्तव में आप की प्रेरणा से ही यह निबंध इस रूप में तैयार हो सका।

उच्चारण-चिन्ह

इस संग्रह में दो उच्चारण-चिन्हों का भी प्रयोग हुआ है। (१) (अ)—इस का तात्पर्य यह है कि इस के पहले के स्वर का उच्चारण कुछ दीर्घ होगा। (२) ˘—यह चिन्ह आकार के ऊपर कहीं कहीं आया है। उन स्थलों पर 'आ' का उच्चारण 'अ' और 'आ' के बीच का होगा।

अइली ना गइली, दुके बों कहवली—

वह स्त्री न तो (ससुराल) आई और न गई, फिर भी लोग कहने लगे कि वह अमुक पुरुष की पत्नी है।

अकुताइल कोहाँर लकड़ी से खनें माटी—

जल्दबाज कुम्हार लकड़ी से मिट्टी खोदता है।

अग्रसोची सदा सुखी—

जो आगे की सोचता है वह सर्वदा सुखी रहता है।

अगर भेड़ी के लेंड़ी मीठे होइत त दोसर आदमी का खेते ना हिराइत—

यदि भेंड़ की लेंड़ी मीठी ही होती तो गड़ेरिया भेड़ों को दूसरे आदमियों के खेतों में न बैठाता।

अगहन दूना पूस सवाई, माघ मास घरहू से जाई—

यदि अगहन में पानी बरसे तो अन्न दूना होता है, यदि पूस में हो तो सवा गुना और यदि माघ मास में हो तो घर की पूँजी भी चली जाती है।

अतवरिया के बियाह, अतवरिया गइलि कपसउरा—

अतवरिया नाम की लड़की की शादी होने वाली थी। ठीक जिस समय शादी थी उसी समय वह कपास के खेत में चली गई। ठीक समय पर ग़ायब हो जाने वालों पर प्रयुक्त।

अथीथ ना फकीर, परपोंगा—

न तो वह अतीथ (जाति विशेष) है न फ़कीर (साधु) बल्कि निरा मूर्ख है।

अथीथ मंत्री, बोआवे तितलउकी—

अतीथ मंत्री तितलउकी (कड़वी लौकी) बुवाने लगा। ऊटपटांग सलाह देने वाले पर प्रयुक्त।

अदिमी ना हवे, बागड़ हवे—

यह आदमी नहीं है, जंगली है।

अधभरि गगरी छलकति जाइ—

आधी भरी गगरी छलकती जाती है। तात्पर्य यह कि जिसे पूरा ज्ञान नहीं है, वह बहुत बकता है।

अन्हेर नगरी चउपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा—

अंधेर नगरी में चौपट राजा था। उस के यहां भाजी और खाजा एक ही भाव— टके सेर—बिकता था।

अन्न अन्न जरलसि, भार खातिर लखेदले फिरतिआ—

भड़भूजिन ने अन्न तो जला ही दिया, अब मजदूरी के लिए पीछे पड़ी हुई है।

अन्हरन में काना राजा—

अंधों में काना राजा।

अनारी के घोड़ा, सोनारी के सोना, ना पटेला—

मूर्ख का घोड़ा और सोनार का सोना खरीदारों से नही पटता।

अपना घरे दीआ ना बाती, आनका घरे मूसर अलबाती—

अपने घर तो न दीपक है और न बत्ती, पर दूसरे के यहां जाकर मूसल ऐसी बत्ती जलाते हैं? व्यंग्य में प्रयुक्त।

अपने खाइ बिलारि के लावे, बोकर जियरा सूम सतावे—

जो स्वयं तो खाता है और बिल्ली को लगाता है, उसे आगे चल कर विपत्ति में फँसना पड़ता है।

अब का लिलाम से तिलाम होई—

नीलाम तो हो गया, अब क्या तिलाम होगा?

अबरें ओनचास बयारि—

निर्बल मनुष्य पर सब तरफ़ से आफ़तें आती हैं।

अबहीं पोखरा खनइबे ना कइल, तबले घरियार डेरा डलले—

अभी पोखरा खुदवाया ही नहीं गया, तब तक घड़ियाल ने आकर डेरा ही डाल दिया।

अलगी बिलरिया के अलगें डेरा—

अलग रहने की प्रवृत्ति वाला मनुष्य अपना डेरा अलग ही जमाता है।

अवर अन्न खइलें, ना गोहूँ गँठिअवलें—

और अन्न के खाने से जितनी ताक़त आती है, उतनी गेहूं की केवल गठरी बाँध लेने से।

अवर जनावर के लीदि, ना हाथी के चिरिकल—

और जानवरों का लीद करना और हाथी का चिरकना बराबर ही होता है।

असक्का परली बिलारि, त मूँस कहले जे होख (अ) मोर बहुआरि—

जब बिल्ली अशक्त हुई तब चूहे ने कहा कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ; अर्थात् अशक्त होने पर सभी लोग दबाते हैं।

अस रहिला बरियार होइहें, जे भरसाइ फोरिहें—

क्या चना ऐसा मज़बूत होगा कि भट्ठी फोड़ देगा ?

अस्ल से खाता ना, कमस्सल से नाफा ना—

असल आदमी (कुलीन व्यक्ति) कभी खता नहीं करता और कमअसल (वर्णसंकर) से फायदा नहीं होता।

अंडा सिखावे बच्चा के कि चेउँ चेउँ बोलु—

अंडा बच्चे को सिखाने लगा कि तुम 'चीं चीं' बोलो।

ऑगॉराइलि बिटिआ बर के आँखि फोरे—

अत्यंत प्रसन्न लड़की वर (अपने पति) की आँख फोड़ती है।

ऑन्हरॅा कॅा सूझे बहराइचि—

अंधे को बहराइच ही सूझता है।

ऑन्हरॅा सियार कॅा गोंदे मीठ—

अंधे सियार को (गोदा बड़-पीपल आदि का फल) ही मीठा लगता है।

ऑन्कर आटा, ऑन्कर घीव, चाबस चाबस बाबाजीव—

दूसरे का आटा है दूसरे का घी है। बाबाजी, खूब खाइए, खूब चाबिए।

ऑनॉका कमाई पर तेल बुकवा—

दूसरे की उपार्जित संपत्ति पर ठाटबाट करना। बुकवा—हल्दी और जौ के आटे से बनाया हुआ एक प्रकार का उबटन।

ऑनॉ का धन पर बिकरम राजा—

अन्य के धन पर राजा विक्रमादित्य बने हैं! दूसरे की संपत्ति प्राप्त कर ऐंठ कर चलने वालों पर व्यंग्य।

ऑनॉका के पाँड़े दीन देलें, अपने ढिमिलिया खालें—

पांडे (पंडित जी) विपत्ति से बचने के लिए दूसरों को तो शुभ मुहूर्त बतलाते हैं; किंतु स्वयं विपत्ति में फँसे रहते हैं।

ऑनॉका सिंगार का पाछाँ आपन नाक ना कॅटावल जाला—

दूसरे के शृंगार के लिए अपनी नाक नही कटाई जाती।

ऑपनॉ करते उढ़रल जाइ, आ कहे कि दइबा उढ़रले जाइ—

अपने मन से (दूसरे आदमी के साथ) उढ़री जाती है और कहती है कि ईश्वर मुझे उढ़ारता है। उढ़रना—किसी स्त्री का अपने प्रेमी के साथ छिप कर भाग जाना।

ऑपनॉ के रोवती, तीनि गीति गवली—

अपने आप तो रोती है। किंतु दूसरे लोगों के घर गाना गाने जाती है। ऐसे आदमियों पर व्यंग्य है जो स्वयं तो आफ़त में हैं, और दूसरों की भलाई करने जाते हैं।

ऑपना गावें आगि लागे, आन का गॉवें धूँआँ—

अपने गाँव मे आग लगी हो, और दूसरे के गाँव धुआँ देखना।

ऑपनॉ दुआर पर कुकुरो बाघ होला—

अपने दरवाजे पर कुत्ता भी शेर होता है।

ऑपनॉ पेटे सुअरियो जीयेले—

अपने पेट से सूअरी भी जीती है।

ऑपॅनॉ बउराहे रोअल जाला, ऑनॅका बउराहे हँसल जाला—

यदि अपने घर का कोई पागल होता है तो रोया जाता है, और दूसरे के घर का कोई पागल होता है तो हँसा जाता है।

ऑपॅनॉ मरला का आगा, दोसरा के जरल आदमी ना देखेला—

अपने मरने के आगे दूसरे का जलना आदमी नहीं देखता।

आई आम, कि जाई लबेदा—

या तो आम ही आएगा नही तो डंडा ही ग़ायब होगा।

आगे कूबर, पाछे कूबर, हमरा भतार ले बॉड़ा सूघर—

आगे कूबड़ है और पीछे भी। क्या तुम मेरे पति से सुंदर हो ?

आगे नाथ नॅं पाछे पगहा—

आगे न तो नाथ है और न पीछे पगहा ; परम स्वतंत्र है ।

आजु तोहार महतारी खर जिउतिया कइले रहलिहॅं—

तुम्हारी माता ने निर्जल जिवपुत्रिका व्रत किया था। किसी खतरे से बचने पर कहा जाता है ।

आजु मरिहें सासु, काल्हि ढरिहे आँसु—

आज तो सास का देहांत हुआ और कल रोऊँगी । व्यंग्योक्ति ।

आजू बनिया, काल्हू सेठि—

आज तक तो बनिया थे, कल सेठ हो गए । थोड़ी संपत्ति पाकर इतराने वालो पर व्यंग्योक्ति ।

आठ आना पर दुर्गापाठ सतनरायन सूकी, एहू पर जे ना सुने सेहू करम के चूकी—

आठ आना देने से दुर्गा-सप्तशती का पाठ और चार आना देने से सत्यनारायण की कथा सुनी जा सकती है, इस पर भी जो न सुने वह कर्म का चूका (भाग्यहीन) है ।

आधा कहे से मरद बूझे, सर्बस कहे से बरध बूझे—

आधी बात कहने से तो मर्द समझते हैं, और संपूर्ण कहने पर बैल । अक़्लमंद को इशारा ही काफ़ी है ।

आधा घर देउकुरि, आधा घर भरसाइ—

आधे घर में तो देवता का निवास है, और आधे घर में भट्ठी है । कुप्रबंध की ओर संकेत है ।

आधा तजे पंडित, सर्बस तजे गॅंवार—

पंडित तो केवल आधा का त्याग करता है, किंतु गँवार सर्वस्व का ।

आधा माघे कम्मर कान्हें—

आधे माघ में लोग कंबल को कंधे पर ले चलते हैं । आधे माघ में सर्दी कम हो जाती है ।

आधा साधे, कम्मर बाँधे—

केवल कमर कस लेने से आधा काम सिद्ध हो जाता है ।

आन्हर कुकुर बतासे भूँके—

अंधा कुत्ता हवा की आवाज़ से ही भूँकता है। अर्थात्—मूर्ख बिना कारण बकझक करता है।

आन्हर गइया के राम रखवइया—

अंधी गाय की रक्षा परमेश्वर करते हैं। ग़रीबों की सुध भगवान ही लेते है।

आन्हर गुरू बहिर चेला, माँगे गूर देखावे ढेला—

अंधे गुरू थे, और बहरा चेला था। गुरू के गुड़ माँगने पर उस ने ढेला दिखाया।

आन्ही के आगे बेना के बतास—

आँधी के आगे पंखे की हवा।

आन ताल के बकुला, आन ताल बकलोल—

दूसरे ताल का बगुला जब किसी दूसरे ताल में गया तो मूर्ख बन गया। एक देश का आदमी दूसरे देश में जाकर, वहां का रस्म-रिवाज न जानने से, प्राय: मूर्ख बन जाता है।

आपन अँकवारि पूजल, आगे बम्हना के खेत—

अपने तो (चुरा कर खेत काट कर) अँकवार (अंकमाली) भर लिया, और जब दूसरा चोर काटने लगा तो कहा कि आगे ब्राह्मण का खेत है, अब मत काटो। अर्थात् अपना काम पूरा कर लेने और दूसरा जब काम करने लगे तो उसे मना करने पर उक्ति है।

आपन बैला मोहिं दे, तें जो अगवारि करु—

अपना बैल मुझे दो और तुम जाकर अगवार करो। अपना बैल न होने पर दूसरे का हल जोतने और मज़दूरी के बदले हल लेने को अगवारि कहते हैं।

आपन मामा मरि गइले, जोलहा धुनिया मामा भइले—

अपने मामा तो मर गए। अब जोलहा धुनियां मामा हो गए।

आपन हाथ जगरनाथ के भात—

अपना हाथ जगन्नाथ के भात के समान है। अर्थात् अपना ही परिश्रम सदैव काम देता है।

आप मियां उल्ल, पढ़ावे चललें तोता—

स्वयं तो मियां उल्लू हैं और पढ़ाते हैं तोते को। स्वयं तो मियां मूर्ख हैं और दूसरों को शिक्षा देते हैं।

आपू आपू जग बिआपू—

दुनिया में सब जगह अपनी ही फ़िक्र है। सर्वत्र 'आप, आप' व्याप्त हैं।

आम के आम, अँठली के दाम—

अँठिली=गुठली। अर्थ स्पष्ट है।

आमें मछरी भेंट हो जाला—

आम (पेड़ पर रहता है) और मछली (पानी में रहती है) दोनों में संयोग-वश (पकाए जाने पर) मुलाक़ात हो जाती है। अर्थात् संयोग से असभव कार्य भी संभव हो जाता है।

आर्सी न फार्सी, मियाँ जी बनारसी—

चलते-पुर्जे आदमी के लिए कहा गया है।

आवत हाही, जात संतोख—

धन प्राप्त करते हुए हाय हाय (हविस) रहती है, पर धन नष्ट होते समय संतोष हो जाता है।

आसनं पगुटारनं, पहिलि खीसि निवारनं—

आसन को पैर से हटा कर बैठना चाहिए, और पहले क्रोध का निवारण करना चाहिए।

आहारे व्यवहारे लज्जा न कारे—

भोजन तथा व्यवहार में लज्जा न करे।

आँखि चले, भहूँ चले, चले पपनी, सभ घरे लाई लावे इहे कुटनी—

इस की आँखें चलतीं हैं, भौहें चलती हैं और चलती है इस की पपनी भी। यही कुटनी सब घरों में चुग़ली करती है।

आँखि ना ताखि, नवगो कजरवटा—

आँख तो है ही नहीं और कजरवटे नौ हैं।

आँखि मूँदि के खाईलें, लरिका ना परिकाईलें—

आँख मूँद कर खाता हूं और लड़कों को पास नही फटकने देता।

आँखी देखीं, साखी पूछीं—

आँख से देखी हुई बात के लिए साक्षी की क्या आवश्यकता ?

इहाँ बाघ देखल(अ)हा, आत(अ)इ बकोट केकर ह(अ)—

यहां क्या तुम ने शेर देखा ? (घायल आदमी अपनी चोट दिखला कर कहता है) यह 'बकोट' किस का है ? अर्थात् मैं स्वयं शेर से भिड़ चुका हूं, मुझ से क्या पूछते हो ?

इहे गंगा असनान, इहे आमा भोजन—

यही गंगा का स्नान है, और यही अम्मा के हाथ का भोजन। कठिन प्रतिज्ञा के समय कहते हैं।

उकुसवनी बाती, खुधुकवनी पतोहि, अधसे नाँहीं—

निरंतर उकसाई जाने वाली बत्ती और तंग की जाने वाली पतोहू बहुत दिनों तक नही चल सकतीं। अर्थात् बत्ती जल जायगी और पतोहू सास से लड़ने लगेगी।

उखरे बार ना, नाँव बरियार खाँव—

बाल तो उखड़ता नहीं पर नाम है बरियार (बलवान) खां।

उखिहड़िहा ऊखि ना देइ, कोलुहाड़े भेली—

उखिहाड़ी में ईख नहीं देते तो कोल्हुआड़ में भला भेली (गुड़) क्या देगे ? कोलुहाड़ अथवा कोल्हुआड़ उस स्थान को कहते है जहां ईख पेरने की कल रक्खी जाती है। उखिहाड़ी—ईख का खेत जहां गन्ने का पत्ता आदि छील कर उसे पेरने के लिए तैयार करते हैं।

उघरे अंत न होहिं निबाहू—

भडाफोड़ होने पर निर्वाह नहीं होता।

उजरा गाँवे ऊँट आइल त लोग कहल कि बलबल ह (अ)—

उजड़े हुए गाँव में ऊँट आगया तो लोगों ने कहा कि बलबल है।

उत्तरा में जो बहे उतरही, अँगने गगरी भरु बउरही—

उत्तरा नक्षत्र में यदि उत्तर की ओर से हवा चले तो ऐ पगली, आँगन में ही घड़ा रक्खा हुआ भर जाय।

उधिआइल सतुआ पितरन के—

उड़ा हुआ सत्तू पितरों को।

उपास भौंला, कि मेहरी के जूठ भॉला—

उपवास अच्छा कि स्त्री का जूठा खाना अच्छा ?

उलटा चोर कोतवालें डाँटे—

कोतवाल को ही चोर उलटे डाँटता है।

उसिना चाउर दाल खमोरी, मगह देस जनि जइह मुरारी—

हे मुरारी ! मगध देश मत जाना क्योंकि वहां भुजिया चावल और खराब दाल खाने को मिलती है।

ऊगत ऊगे महि भरे, बिसवत ऊगे जाई—

यदि इंद्रधनुष सूर्योदय के साथ निकले तो खूब वृष्टि हो; किंतु यदि वह सूर्यास्त काल में निकले तो वृष्टि न हो ।

ऊठे बइठे के सक्क न सिराहीं, बादरि छुवे के हाथ लफाहीं—

उठने-बैठने की शक्ति नहीं है और बादल छूने को हाथ बढ़ाते हैं !

ऊधो के लेना, ना माधो के देना—

अर्थात् किसी के लेने-देने मे नहीं हैं।

ऊरिद के भाव पूँछीं, बनउर नव पसेरी—

उड़द का भाव पूछा जाय और (बतलाया जाय कि) बिनौला नव पंसेरी बिकता है। अर्थात् प्रश्न कुछ है और जवाब और ही है।

ऊलुंगी का बेटा भईल, उतपाती नांव धॉराइल—

उलुगी (एक स्त्री) को पुत्र हुआ तो उस का नाम रक्खा गया उत्पाती। जैसा मां का नाम वैसा पुत्र का !

ऊँच हवेली फोंफड़ बाँस, करज खाए के बरहो मास—

ऊँची हवेली है और उस मे मोटे-मोटे बाँस लगे हुए है, किंतु बारह महीने ऋण लेकर उधार खाते हैं। बाहरी तड़क-भड़क वालों पर व्यंग्योक्ति है।

ऊँट का मुँह में जीरा—

स्पष्ट है।

ऊँट चोराँई खाले खाले—

ऊँट की चोरी लुक-छिप कर नही हो सकती।

ऊँट बउराला त पछिमे जाला—

ऊँट पागल होता है तो पश्चिम ही की ओर जाता है।

एक अहिरा का एके गाइ, लागे त खाइ नात सूखे भभाइ—

एक अहीर के एक ही गाय थी। जब वह दूध देती थी तब वह खाता था अन्यथा, भूखा रहता था।

एक दिन पहुना, दोसर दिन ठेहुना, तीसर दिन केहुना—

एक दिन पहुना, दूसरे दिन ठेहुना और तीसरे दिन कोई नही। एक संबंधी के दूसरे के यहां बहुत दिनों तक टिके रहने पर कहा जाता है।

एक दिन हमारी पारी, एक दिन तुम्हारी पारी, चल भाई पारा पारी—

एक दिन हमारी (जीत) की बारी है, तो दूसरे दिन तुम्हारी। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की बारी है।

एक मसी घसे, एक हँसि बोलसी; एक तगा तूरि के पड़ि रहसी—

एक मसिजीवी है (कायस्थ), एक हँस कर के बोलती है (वेश्या) और एक जनेऊ तोड़ कर पड़ रहता है (महाब्राह्मण)। तात्पर्य ये तीनों वंचक हैं।

एक त (अ) अपने डाइनि, दूसरे ओझइत से बिआह—

एक तो अपने ही डाइन थी, दूसरे ओझइत (झाड़-फूँक करने वाले) के साथ शादी हो गई।

एक त(अ) खाँई अहिरे किहाँ, दोसरे खाँई छूँछ—

एक तो अहीर के यहां खावें, दूसरे खाली ही अर्थात् बिना दही-दूध के। जिसे गुनाह बे लज्जत कहते है।

एक त (अ) गिरलीं फेड़ा परसे, दोसरे मरलसि बीछी—

एक तो पेड़ पर से गिरे दूसरे बिच्छू ने डंक मारा। विपत्ति पर विपत्ति आने पर कहते है।

एक त(अ) तितलउकी, दोसरे चढ़लि नीमी पर—

एक तो कड़वी लौकी, दूसरे नीम पर चढ़ी।

एक त (अ) बबुआ अपने गोर, दूसरे अइलें कमरा ओढ़ि—

एक तो बबुआ (लड़के) अपने ही गोरे थे, दूसरे कंबल ओढ़ कर आए। पहले ही बुरे थे, अब संगति भी बुरी हो गई।

एक नाद दुइ भँइसा, ता घर कूसल कइसा—

नाँद तो एक और उस में खाने वाले भैंसे दो। भला वहां कुशल-पूर्वक कैसे बीते? एक ही स्थान पर दो प्रतिद्वंद्वियों को देख कर कहा जाता है।

एक फेड़ा के राकस, दुइ फेड़ भुकभुकउअल—

रात्रि में कभी कभी दूर के बागों में प्रकाश दिखलाई पड़ता है। लोगो का विश्वास है कि राकस (एक प्रेत विशेष) जो प्रायः पेड़ों पर रहता है, उतर कर प्रकाश करता है। यही इस लोकोक्ति का आधार है। 'राकस' रहने वाला तो एक पेड़ का है किंतु दो पेड़ों तक अपना प्रकाश फैलाता है। दुष्ट अपने आस-पास चारों ओर दुष्टता करता है।

एक बोलावे, चउदह धावे—

स्पष्ट है।

ए कुकुर तूं दूबर काँहे, दू घर का आवे जाए से—

ऐ कुत्ते, तुम दुबले क्यो हो? कुत्ता—दो घर मे आने जाने से। द्विविधा मे पड़े हुए आदमी पर चरितार्थ होती है।

एगो रहिला से भाँरसाइ ना फूटे ले—

अकेला चना भाड़ नही फोड़ सकता।

एगो हरे, भए गाँवे खोखी—

हड़ तो केवल एक और गाँव भर को खाँसी। अर्थात् थोड़ी सी तो वस्तु है, गाहक बहुत हैं।

ए छान्ही के कोंहड़ा ओ छान्ही—

इस छप्पर का कुष्मांड उस छप्पर पर। इधर की बातें उधर करने वालों पर कहा जाता है।

ए छूँछा, तोके के पूछा—

ऐ खाली हाथ वाले भला तुझ कौन पूछता है?

एने पाकड़ि ओने बर, एके सोझा दूनो घर—

एक तरफ़ पाकड़ दूसरी तरफ़ बरगद, दोनों घर एक दूसरे के आमने-सामने। अर्थात् कोई किसी से घट कर नही है।

ए मँगमूड़नी, आ त (अ) तें कवन पटिया सँवरले बाड़े—:

(किसी ने कहा) ऐ माँग मुड़ाई हुई (तो उस ने कहा) तू कौन बाल काढ़े हो। छिद्रान्वेषी को जवाब है।

ए माई अरजीं, तए पूता बरजीं—

पुत्र ने मा से पूछा—"माता! क्या मैं कमाई करूं?" माता ने कहा—"क्या मैं तुम्हें मना करती हूं?"

ए मियां एढ़े, त हम तोहसे डेढ़े—

सेर का सवा सेर।

एह तीसी में तेल नइखे—

इस तीसी में तेल नही है। उन लोगों पर संकेत है जिन से काम नहीं निकल सकता।

एह पार न(अ)दी ओहपार न(अ)दी, ई बिपति कहिया के ब(अ)दी—

इस पार भी नदी उस पार भी नदी; यह विपत्ति किस दिन निश्चित की गई थी?

एहि रहिला के पूड़ी कचौड़ी एहि रहिला के दालि, एहि रहिला के खाइ खिरौली खूब मोटाइल गाल—

इसी चने की पूड़ी कचौड़ी और इसी चने की दाल तथा खिरौली (एक प्रकार की खाने की वस्तु जो चने से तैयार की जाती है) खा कर गाल खूब मोटा हुआ है।

ओखरी में मूड़ी परल, त(अ)चोट के कवन गनती बा—

ओखली में सिर है तो चोट की क्या गिनती?

ओझऊ भाँज, गोंड़ऊ गीति के अन्त ना ह(अ)—

ओझा लोगों (ब्राह्मणों की एक जाति) की चालबाजी और गोंड़ो (एक जाति विशेष) के गीत का अंत नहीं है।

ओढ़े के आँटे ना, भुइयां ले सोहरे—

ओढ़ने के लिए तो पूरा नहीं पड़ता किंतु गर्व इस बात का है कि उन का कपड़ा पृथ्वी पर स्पर्श करता चलता है। व्यर्थ अभिमान करने वाले पर कहा गया है।

ओढ़े के कुछ ना, द(अ)री बिछौना—

ओढ़ने को तो पास में कुछ नही है, पर बिछाने के लिए दरी चाहिए !

ओदा करइला चलि ना जाइ, सूखा करइला धाइ धाइ खाइ—

काली मिट्टी मे, सूखी होती है तब भी नहीं चला जाता है; क्योंकि वह पैर में गडती है और गीली रहने पर भी नही चला जाता है क्योंकि पैर उस पर रपट जाता है।

ओरी तर के भूत, नव पुहुत के नांव जानें—

पास का भूत नौ पुश्त का नाम जानता है। पड़ोस में रहने वाला मनुष्य पड़ोसी की सभी कमज़ोरियों को जानता है।

कइलीं हँसी भईल फूर, मुँह में गईल लउरी के हूर—

(मैंने) हँसी किया और हो गया सच, लाठी का सिरा मुँह मे चला गया।

कइलें ना जाइ, कहत बे जाला—

(बुरा) काम करने से उतनी शिकायत नही होती। किंतु यदि लोग (झूठ ही) कहने लगें तो बहुत शिकायत हो जाती है।

कचहरी में बाकी, बन में बेबाक—

अतर्कथा—किसी अहीर से एक मुंशी जी ने कचहरी में कहा कि 'रुपया दो, तुम्हारे जिम्मे इतना रुपया हिसाब से निकलता है।' बन मे जब अहीर लाठी लेकर दौडा, तब मुंशी जी ने कहा, 'अब बाक़ी नहीं है।'

कनकट बुजकट कतरल केस, राह चलत में लागे ठेस; जो केहू पूछे जइ ब (अ) कँहवा, भइलो काम नसाई तहँवा—

यदि यात्रा में प्रस्थान करते समय कोई कनफटा (योगी), आधा फूटा मिट्टी का घड़ा, सिर मुँड़ाया हुआ कोई व्यक्ति मिले, रास्ते में ठेस लग जाय अथवा कोई टोक बैठे कि 'कहां जाओगे?' तो संपन्न होता हुआ कार्य भी न संपन्न हो।

कनियां के मांड़ ना, लोकनी के बुनियां—

वधू को माँड़ तक नहीं मिलता और नौकरानी को बूँदी (मिठाई) दी जाती है।

कबीर साहब के उलटा बानी, बरिसे कम्मर भीज पानी—

कबीर साहब की बानी उल्टी होती है कंबल बरसता है, और पानी भीगता है। लोगो के उल्टे व्यवहार पर उक्ति है।

कभी घनेघना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी ऊहो मना—

कभी तो खूब खाने को मिलता है, कभी मुट्ठी भर चना ही मिलता है, और कभी वह भी नहीं मिलता।

कमाई ना धमाई, धाधा माँग टीके जाई—

कमाई-धमाई तो कुछ है नहीं, किंतु विवाह करने के लिए अत्यंत उत्सुक है !

कमाई ना धमाई, सनहक ले फरियाई—

कमाई-धमाई तो कुछ है नहीं सनहक (चीनी मिट्टी का बर्तन) लेकर अलग होने चले हैं।

कर्नी ना धर्नी, धिया भइली ओठ बिदोर्नी—

करना-धरना कुछ नहीं, लड़की सब को चिढ़ाने वाली हो गई। लड़की की ढिठाई पर उक्ति।

कर करवा कोपीन, भजु राधागोबीन—

हाथ में करवा (मिट्टी का बर्तन) और कौपीन है और राधा-गोविंद भज रहे हैं। किसी संपत्ति शाली व्यक्ति के निर्धन हो जाने का वर्णन करते समय की उक्ति है।

करज के खाइल, पुअरा के तापल, बराबरी ह(अ)—

कर्ज खाना और पुआल का जला कर तापना बराबर है। अर्थात् दोनों में से किसी से भी तृप्ति नहीं होती।

कर में लीखल भेंड़ी के बार, कहाँ से ओढ़बि ऊनी दोसाल—

कर्म में तो लिखा है भेंड़ का बाल, तो ऊनी दुशाला कहां से ओढ़ूंगा ?

करवा कोंहार के, घीव जजमान के, स्वाहा स्वाहा—

कोंहार का करवा (मिट्टी का पात्र) और यजमान का घी (बाबाजी) स्वाहा स्वाहा करते हैं। दूसरे की वस्तु के दुरुपयोग करने पर यह उक्ति है।

करिआ अच्छर भँइसि बरोबरि—

काला अक्षर भैंस बराबर।

करिया बाम्हन गोर चमार, कयर छत्री महा हतिआर—

काला ब्राह्मण गोरा चमार और भूरा छत्री, ये महा हत्यारे होते हैं।

करिआ बाभन गोर चमार, एक संग ना उतरबि पार—

काले ब्राह्मण और गोरे चमार को एक साथ (नदी के) पार नहीं जाना चाहिए। नही तो लोग ब्राह्मण को चमार और चमार को ब्राह्मण समझेंगे।

करिआ भँइसि ऊजर दही, साहेब कहसु उहे सही—

जिस प्रकार काली भैंस होती है और दही उजली, उसी प्रकार साहब जो कुछ कहे वही सही ठीक है।

करें परपंच, कहावें पंच—

करते हैं प्रपंच और कहलाते हैं पंच। झगड़ा लगाने वाले पंच के प्रति उक्ति है।

कलछुलि राखल जाला हाथ बचावे खातिर—

कलछी रक्खी जाती है हाथ बचाने के लिए।

कलवार के लइका खइले बिना मरत रहे त लोग कहल कि पीके बउराइल बा—

कलवार का लड़का खाने बिना मर रहा था तो लोगों ने कहा कि शराब पीकर पागल है।

कवन पूछे भकभवन पुरी में—

अंधेर नगरी मे कौन किस को पूछता है?

कहावे के रानी, चोरावे के चमरख—

कहलाने को रानी और चुराने को चमड़े का एक टुकड़ा!

कहां गाइ के नइहर, कहां परजा के देस—

कहां गाय का नैहर और कहां प्रजा का देश? अर्थात् जहां खाना मिलता है ये वही रहते है।

कहाँ राजा भोज, कहां भोजवा तेली—

स्पष्ट है। दो व्यक्तियों में बहुत अंतर होने पर कहा जाता है।

कहि सुनाई, कि करि देखाई—

कह सुनाया जाय कि कर दिखाया जाय।

कहीं त माय मारी जाइ, नाहीं त बाप कुत्ता खाइ—

कहूं तो मां मारी जाती है और नहीं तो बाप कुत्ते से खिला दिया जाता है। विकट परिस्थिति आ पड़ने पर कहते हैं।

कहे आम, सुने इमिली—

आम कहा जाता है और सुनते हैं इमली। कहा कुछ जाता है और सुनते और ही है।

कंक के महुए मीठ—

कंक (कंगाल) के लिए महुआ ही मीठा है।

काँमाइ धोती वाला, खाइ टोपी वाला—

धोती वाला कमाता है, और टोपी वाला खाता है। ग़रीब कमाते हैं और धनी लोग खाते हैं।

काँहला से धोबी, गाँदाँहा पर ना चढ़े—

कहने से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता।

का खुर्पा का बेंचलें, का खुर्पी के बान्ह—

खुर्पा के बेचने और खुर्पी को गिरो रखने से क्या हो सकता है? तुच्छ वस्तुओं के क्रय-विक्रय से लाभ ही कितना?

काटल कूटल कतरल केस, चलत बाट में लागे ठेस; आगे लउके बभना काना, ब्रह्मलोक नहिं उबरे प्राना—

यदि यात्रा में जाते समय सिर मुँड़ाया हुआ मनुष्य दिखलाई पड़े, या रास्ते में ठेस लग जाय अथवा आगे काना ब्राह्मण मिल जाय तो उस यात्रा में मृत्यु का भय जानना चाहिए।

काटल गईल त फुफुकारलो जाउ—

(साँप) काटने से गया तो क्या फुफकारने से भी जाय?

काठ गढ़ले चीकन होला, बात गढ़ले रूखर होला—

काठ गढ़ने से चिकना होता है और बात गढ़ने से रुक्ष हो जाती है।

कातिक के टूटल बरध, माघ के टूटल मरद कबहीं ना जूटसु—

कार्तिक का (खाना न मिलने के कारण) टूटा बैल और माघ का टूटा मर्द कभी नहीं जुटता।

का ना होइ धर्नीधर से—

धरणीधर (परमात्मा) क्या नहीं कर सकता?

काना भाई राम राम, ग्रात(अ) इहेत गेंग के जरि ह(अ)—

काना भाई राम राम; (तो काना भाई ने कहा) यही (काना कहना ही) तो झगड़े की जड़ है।

का बकुला तू लाव(अ) डीठि, कतने जाल खचवलीं पीठि—

(मछली कहती है) बगुले, तुम क्या दृष्टि लगा रहे हो? कितने जालों से मैं ने अपने को बचा लिया है। धूर्त के प्रति होशियार ग्रादमी का कथन।

का बाँगर का अन्ने, का जोलहा के धन्ने—

बाँगर के अन्न से क्या होता है, और जुलाहे के धन से क्या होता है? तात्पर्य यह कि बाँगर में बहुत कम अन्न और जुलाहे के पास बहुत कम धन होता है।

काम करे नथ वाली, लागे चिरकुटही—

नथवाली काम करती है (चोरी करती है) पर अपयश लगता है चिरकुटही (चिथड़ा पहनने वाली) को!

काम के न काज के, कटाहि घोड़ी घास के—

काटने वाली घोड़ी किसी भी काम-काज की नहीं, केवल घास खाने को ही है।

काम के न काज के कटाहि घोड़ी भाट के—

कटही घोड़ी काम-काज की नहीं होती। भाँट को दे देने लायक़ होती है।

काम परे मउसी, भोज परे लबार—

काम पड़ने पर मौसी कहते हैं, किंतु निमंत्रण के अवसर पर झूठी कहते हैं।

काम भईल दुख बिसरि गइल, दादा हो चहुँपा द(अ)—

काम हो गया तब दुख भूल गया और कहने लगे ऐ दादा, पहुँचा दीजिए। स्वार्थ-पूर्ति हो जाने पर स्वार्थी के प्रति कहा गया है।

का मियां बहल जाताड़ (अ), ग्रात नाहीं गँव में बाँड़ी—

ऐ मियां बहते जाते हो? मियां कहते हैं, मैं गौ (होशियारी) में हूं।

कायथ के इयारी, भादों मास उजारी—

कायस्थ की दोस्ती से भादों मास में ही उजड़ना होता है।

काली गइया के अलगव थान—

काली गाय का उठा हुग्रा थान

कासी का साहु के चमकउवा बनवले बाड़ें—

काशी के साहु की चमकीली तथा तड़क-भड़क वाली चीजें बनाया है। व्यंग्य में किसी की तड़क-भड़क देख कर कहते हैं।

का सुखला सावन, का भरला भादों, इनकर पेट कबहूँ ना भरी—

क्या सावन और क्या भादों कभी इन का पेट नहीं भरता।

कि बयल तीसे पर बिकइहें, कि खूँटे पर तबइहें—

या तो बैल तीस रुपए पर बेंचा जायगा या खूँटे पर ही बधा रहेगा।

किरपिन का घरे पाहुन अइले जस बादरि घहराइ; मलिकाइन के त छाती फाटे कब दुअरा से जाइ—

कृपण के यहां पाहुन (मेहमान) आया, मानो बादल टूट पड़ा हो। मालिकिन की छाती फटने लगी कि यह कब घर से जायगा।

कुकुर का पेटे घीव ना पचेला—

कुत्ते के पेट में घी नहीं पचता। छिछोरे आदमी के पेट में बात नहीं पचती।

कुटतो फक, पीसतो फक, बबुआ के हाल (अ) हाल (अ) करतो फक—

कूटने वक्त भी खाना, पीसते वक्त भी खाना, और लड़के को खिलाते समय भी खाना। बहुत खाने वाली स्त्री पर व्यंग्योक्ति।

कुबंस से निरबंस भँाला—

कुवंश से निर्वंश ही अच्छा है।

कुल्हि घर जरि गईल, बुढ़िया कहे कि कहीं चेथरा गम्हाला—

सब घर जल गया पर बुढ़िया कहती है कि कहीं से चिथड़े जलने की गंध आ रही है। सब कुछ नष्ट हो जाने के पश्चात् किंचित् अनुभव करने वाले व्यक्ति पर व्यंग्य।

कुल कापड़ रखला के मोल ह (अ)—

कुल और कपड़ा रक्षा करने की चीजें है।

केकर केकर धरी नाँव, कमरी ओढ़ले सगरे गाँव—

किस का किस का नाम लिया जाय, सब गाँव कमरी ही ओढ़े है। किस की बुराई भलाई की जाय सभी एक समान हैं।

केकर खेती केकर गाइ, कवन पापी हाँके जाइ—

न मालूम किस की खेती है और किस की गाय है। कौन ऐसा पापी है कि इसे हाँकने जायगा ? अर्थात् अपने काम से काम होना चाहिए।

केथी में तेलिनि अब्बर, केथीमें धोबिनि बाढ़ि, उनका मुँगरी उनका जाठि—

किस मे तेलिन निर्बल है और किस में धोबिन बढ़ कर है ? एक के पास मुँगरी है, तो दूसरे के पास जाठि। जाठि—कोल्हू के ऊपर की मजबूत तथा लंबी लकड़ी।

केपर करों सिंगार, पुरुष मोर आन्हर—

किस पर श्रृंगार करूं ? मेरा पति तो अंधा है।

केरा पर सितुहा चोख—

केले पर सीपी भी तेज़ रहती है। कमजोर पर सभी बल दिखलाते है।

केरा, केंकरा, बिच्छी, बाँस, तीनों का अपने जमले नाँस—

केला, केंकड़ा, विच्छू और बाँस तीनों का नाश अपने वंश से ही होता है।

के सराहल फुटही खापरि—

मिट्टी की हाँड़ी अथवा दूसरे बर्तन जब फूट जाते है, तब फूटे हुए बर्तन के बड़े भाग मे भड़भूँजे भाड़ भूँजते हैं। उसे खपरी कहते हैं। फूटी खपरी की किस ने सराहना की ?

केहू के घर जरे, केहू आगी तापे—

किसी का घर जले और कोई आग तापे। किसी पर विपत्ति पड़े और दूसरे उसी को लेकर मजाक उड़ावें !

केहू के भंटा बाई, केहू के भंटा पंथ—

किसी के लिए बैंगन वायुवर्द्धक होता है तो किसी के लिए पथ्य।

केहू के पइया ना बुझे के—

पइया उस बीज को कहते हें जो खेत में डालने पर नहीं जमता। किसी को निर्बल नहीं समझना चाहिए।

केहू के मुअल हाथी, केहू के फूटल हाँडी, त कहलसि कि करिए धन पर गरह बाइ—

किसी का हाथी मर गया और किसी की हाँड़ी फूट गई, तो उस ने कहा कि काले धन पर ग्रह है।

केहू खात खात मुए, केहू खइला बिना मुए—

कोई अधिक खाने से मर जाता है, तो कोई बिना खाए।

कोइरी अहीर खेती करे, अवरि करे बरियाई—

कोइरी और अहीर ही खेती करते हैं, और तो जबरदस्ती करते है।

कोइरी के लड़का जनमें के हीन, हाथ में खुरपा मोथा बीन—

कोइरी का लड़का जन्म से ही हीन होता है और हाथ में खुरपा लेकर मोथा (एक प्रकार की घास) निराता है।

कोर्‌हिया डेरवावे थूकों—

कोढ़ी डरवाता है कि तुम्हारे ऊपर थूक दूंगा। कमजोर आदमी की धमकी पर कहा जाता है।

खइला अस पदारथ, नॉ खइला अस खोअल—

खाने के समान कोई पदार्थ नहीं और न खाने के समान कोई खोना।

खग जाने खग ही के भाखा—

पक्षी ही पक्षी की भाषा जानते हैं। समान व्यापार वाले लोग एक दूसरे को समझते हैं।

खन में रानी, खन में चेरि—

क्षण में रानी क्षण में दासी। क्षण क्षण में बदलने वाले व्यक्ति पर।

खपड़ा खपड़ा के बानर, ओड़ा तरना तोपाला—

खपरैल पर घूमने वाला बंदर भला टोकरे के अंदर छिपाया जा सकता है? चंचल मनुष्य साधारण रीति से क़ब्जे में नहीं रक्खा जा सकता।

खरच त खर्चे सही, दे दाली में पानी—

खर्च तो खर्च ही सही, दाल में पानी छोड़ते जाओ। व्यंग्य में, कंजूस पर।

खरी मजूरी, चोखा काम—

खरी मज़दूरी और चोखा (अच्छा) काम।

खल के दवा, पीठि के पूजा—

दुष्ट की दवा- पीठ की पूजा। दुष्ट की दवा यही है कि उसे खूब पीटा जाय।

खस के टाटी, गुजराती ताला—

खस की टट्टी गुजराती ताला। बेमेल काम पर कहते हैं।

खाइ के परि रहु, मारि के टरि रहु—

खाकर पड़ रहना चाहिए, और मार कर टल जाना चाहिए।

खाइ घोड़ा कि रोड़ा—

या तो घोड़ा ही खाता है, या ईंट का टुकड़ा ही। तात्पर्य यह कि घोड़ा पालने और मकान बनवाने में बहुत व्यय होता है।

खाइबि गोहूँ, ना त रहबि ओहूँ—

खाऊँगा तो गेहूं ही, नहीं तो उसी तरह रहूँगा। या तो अच्छी चीज खाऊँगा या भूखा ही रहूँगा।

खाए के किछू ना, नहाए के भोरे—

खाने को कुछ नहीं और स्नान करना प्रातः काल ही।

खाए के ना पिये के, राम राम कहे के—

न तो खाना है और न पीना है, केवल राम राम रटना है!

खाए के बाघ, कमाए के मुरगी—

खाने को शेर और कमाने को मुर्गी। थोड़ा कमाने और अधिक ख़र्च करने पर कहा जाता है।

खाए के साग पात, सुते के नवाब का साथ—

खाना तो शाक-पात और सोना नवाब के साथ। अपनी हैसियत से बढ़ कर काम करने वालों पर व्यंग्य।

खाँड़ा खाँड़ा दिदिआ, अढ़ाई गो दादी—

टुकड़े टुकड़े जीजियों को और ढाई दादी को दो। अधिक भोजन करने वालों से व्यंग्य में कहा गया है।

खात खां जे लाँजाला से अँचवत खां पछताला—

भोजन करते समय जो संकोच करता है, वह आचमन करते समय पश्चात्ताप करता है। जो व्यवहार के आरंभ में संकोच करता है वह अंत में पछताता है।

खा पी के भइलीं चंग, अब ना लागबि तोहरा संग—

खा पी कर चंग (मोटा-ताजा) हो गया। अब तुम्हारे साथ न रहूंगा। मतलब निकल जाने पर प्रयुक्त होता है।

खाली मँड़वा बाजल ढोल, लरिका भइलें डाँवाडोल—

खाली विवाह-मंडप में ढोल बजा और लड़के डाँवाडोल पैदा हुए।

खाली हाथ मुँह में ना परे—

खाली हाथ मुँह में नहीं पड़ता।

खाले खाले ऊँट चरावल जाला—

ऊँट की चरवाही चुपके चुपके कहीं होती है?

खाले जीभि, लजाले आँखि—

खाती है जिह्वा और लज्जा आती है आँखों को!

खुर्पी का बिआह में हँसुआ के गीति—

खुर्पी की शादी में हँसिया का गीत। बेमेल काम करने वालों पर उक्ति।

खूँटे का बल पर बाछा कूदेला—

खूँटे के बल पर ही बछड़ा कूदता है। बड़े आदमियों के बल पर ही छोटे शेखी बघारते हैं।

खेत खाइ गँदोहा, मारल जाइ जोलहा—

खेत तो गधा खाय, और मारा जाय जुलाहा।

खेत जोतीं घोड़ चाढ़ा कें, करज खाईं साहुकारा के—

घोड़े पर चढ़ने वाले (अर्थात् बड़े भारी जमींदार) का खेत जोतना चाहिए और साहुकारा (बड़े धनी व्यक्ति) से कर्ज लेना चाहिए।

खेत ना जोतीं राढ़ी, भँइसि ना बेसाहीं पाड़ी—

वह खेत, जिस में राढ़ी (एक प्रकार की घास जो खेत के उपजाऊपन को नष्ट कर देती है) हो, नहीं जोतना चाहिए तथा पाड़ी (भैंस की छोटी अवस्था में उसे पाड़ी कहते हैं) नही खरीदना चाहिए। इन दोनों में बड़ा कष्ट होता है।

खेवा दे बाँहाइल फिरे—

खेवा (नाव वालों की मजदूरी) देकर भी बहता फिरे।

खोख (अ) लोग भलि, नाहीं त नाव बूड़ेले—

खाँसो मत, नही तो नाव डूब जायगी। व्यर्थ चेतावनी देने पर कहते हैं।

गइयो हूँ, भँइसियो हूँ—

गाय कहने पर भी 'हां' और भैंस कहने पर भी 'हां'। दुबिधा उत्पन्न करने वाले के विषय में कहते हैं।

गइल ठकुरई आइल चमरई, एही ऊखि का बोए से; गोरि से देहिया करिआ भइली, बिना जेठ का सोए से—

इसी ईख के बोने के कारण ठकुराई गई, चमारपन आगया और जेठ में न सोने के कारण देह काली पड़ गई। किसी कठिन कार्य के अवसर पर कहते हैं।

गइल माघ दिन ओनतिस बाकी—

माघ केवल एक दिन बीता अभी उनतीस दिन बाक़ी हैं। किसी काम के बिना समाप्त हुए समाप्त हुआ बताने पर उक्ति।

गइला घर के कवन ठेकाना—

गए घर का ठिकाना ही क्या? छोटे आदमी की गणना ही क्या?

गइलि गाइ जहाँ ठाकुर लोभी, गइल खेत जहाँ उपजल बनगोभी—

जहां स्वामी लोभी होता है वहा गाय की जान चली जाती है (रुपए की लालच से गाय को बेंच देता है) और जिस खेत में बनगोभी उत्पन्न होती है, वह खेत नष्ट हो जाता है।

गगरी अनाज बाइ, जोलहन राज बाइ—

जब तक घड़े में नाज है तब तक जुलाहे आनंद मनाते हैं। थोड़े धन पर छोटे आदमी इतरा उठते हैं।

गदहा के इयारी, लात के सन्सनहटि—

गदहे की दोस्ती और लातों की भरमार। बुरे आदमी के साथ रहने से दुर्दशा होती है।

गनला गाइ में चोरी ना होखे—

गिनी गायों में चोरी नहीं होती। अच्छी तरह समझी बात में भूल नही होती।

गर में ढोलक परला पर बजावही के परी—

गले में ढोल पड़ने पर बजाना ही पड़ता है। संकट आ जाने पर उसे बर्दाश्त करना ही पड़ता है।

गली छेड़ी करी बात, कचहरी गइले ना आवे बात—

गली-कूचे में बात करते है पर कचहरी जाने पर बात ही नहीं कही जाती। इधर उधर तो बात चीत खूब करते हैं लेकिन मौके पर मुँह से बात नही निकलती।

गँवई के दालि भात, सहर के रमरमी—

गाँव की दाल और भात और शहर का राम राम बराबर है। शहर में कोई किसी को खाने पीने के लिए नही पूछता, केवल दुआ नमस्कार लोग कर लेते हैं।

गंगा के असनान, सीरामपुर के पेठिया—

शिवरामपुर गंगा के निकट का एक गाँव है। गंगा-स्नान करने जाते समय शिव-रामपुर का बाजार भी मिल जायगा। एक पंथ दो काज।

गंगा के धार, हाकिम के मन केहू ना जाने ला—

गंगा की धारा और हाकिम का मन कोई नही जानता।

गाइ गुन बछरू, पिता गुन घोड़, नाहीं त (अ) किछु थोरो थोर—

गाय का गुण बछवे मे और पिता का गुण घोड़े में, यदि अधिक नही तो थोड़ा अवश्य होता है।

गाइ बाँभन के घुमले से पेट भरेला—

गाय और ब्राह्मण का पेट घूमने से ही भरता है।

गाइ मारि के जूता दान—

गाय मार कर जूता दान देना, अर्थात् भारी अपराध कर के थोड़ा सा प्रायश्चित्त करना।

गाँठी दाम बा, मधुरी चालबा, आज नाहीं पहुँचबि पहुँचबि काल्हि—

गाँठ में दाम है और धीरे धीरे जा रहे हैं। आज नहीं पहुँचेंगे कल पहुँचेंगे। चिंता किस बात की है ?

गाँव के जोगी जोगना आन गाँव के सीध—

योगी को उस की जन्मभूमि के लोग 'जोगना' (साधारण) मानते हैं किन्तु वही

जब दूसरे गाँवों में जाता है तो सिद्ध समझा जाता है। योगी की प्रतिष्ठा अन्यत्र ही होती है, उस के गाँव में नहीं।

गाँव के दुस्मन, ना आन गाँव के हीत—

अपने गाँव का दुश्मन और दूसरे गाँव का मित्र बराबर होता है।

गुद्दी लीले गूलरि—

गौरेया गूलर निगलती है। अर्थात् छोटा आदमी होकर बड़े काम साधने का प्रयत्न करता है।

गुनल मथल भोर परल, भकोसीं सभें—

जो काम करने के लिए सोचा था वह भूल गया। अब आप लोग भोजन करें। अंतर्कथा—एक दिन एक अहीर किसी ब्राह्मण से मिलने गया। वहां पर ब्रह्मभोज की तैयारी थी। निमंत्रित ब्राह्मण पंक्ति में बैठ चुके थे। जब सब वस्तुएं परोसने वालों ने ब्राह्मणों के सम्मुख रख दी तब दायक ने कहा—"अब आप लोग 'लक्ष्मीनारायण' (भोजन) करें।" अहीर ने यह सब देखा। उस ने निश्चित कर लिया कि वह भी एक दिन ब्रह्मभोज करेगा। निश्चयानुसार उस ने एक दिन ब्राह्मणो को निमंत्रित किया। जब सब वस्तुएं परोस दी गईं तो वह 'लक्ष्मीनारायण करें' इस वाक्य को याद करने लगा किंतु स्मरण शक्ति पर बहुत जोर देने पर भी उसे यह वाक्य याद न आया। तब उस ने कहा 'गुनल मथल भोर परल, भकोसीं सभें।'

गुर के नफ़ा चिऊँटे खइले—

गुड़ का फ़ायदा चींटों ने ही खा लिया। व्यापार में नफ़ा के नष्ट हो जाने पर उक्ति।

गुरु गुरे रहि गइलें, चेला चीनी हो गइले—

गुरु गुड़ ही रह गए और चेला चीनी हो गए। अर्थात् चेला गुरु से भी बढ़ गया।

गोंड़ के साखी दबिला—

दबिल—एक लकड़ी का औजार है, जो सिरे पर पतला और आगे की ओर चपटा होता है। भाड़ भूँजते समय उस से अनाज को चलाते हैं। गोंड़—जाति विशेष, जिस का पेशा भाड़ भूँजना तथा कहारी करना होता है। जब कोई व्यक्ति गवाही में अपने कब्जे के आदमी को पेश करता है तब कहते हैं।

गोंयड़ा के खेती, सिखा के साँप, मैभा कारन बैरी बाप—

गोंयड़ा (गाँव के आस-पास) की खेती के कारण (खेतिहर), सिर पर रहने के कारण साँप, विमाता के कारण पिता—ये तीनों बैरी होते हैं।

घर की चीजु के कवनो दाज ह (अ)—

घर की चीज की कोई बराबरी है? घर की वस्तु से बाहर की वस्तु का मुक़ाबला करते समय कहते हैं।

घर के गवरइया मारलि जाइ, आन घर के खियावल जाइ—

घर की गौरैया मारी जाती है और दूसरे के घर की खिलाई जाती है। घर के लोगों की अप्रतिष्ठा तथा दूसरे लोगों की प्रतिष्ठा करने पर उक्ति।

घर के बीबी के खासा ना, बेसवा के मलमल—

ब्याही स्त्री के लिए तो खासा (एक प्रकार का मोटा कपड़ा) भी नहीं, किंतु वेश्या के लिए मलमल दिया जा रहा है। अपने निकट के लोगों से उदासीन रहने तथा दूसरों से प्रसन्न रहने पर उक्ति।

घर के भेदिया, लंका दाह—

घर वाले आदमी के भेद कह देने से लंका का भी, दहन हो गया।

घर के मारल बने गइलीं, बन में लागलि आगि—

घर से घबड़ा कर वन में गए किंतु वहां भी आग लग गई। विपत्ति से बचने के उपाय के व्यर्थ जाने पर कहते हैं।

घर के मुरगी, दालि बरोबर—

घर की मुर्गी दाल के बराबर है। जो वस्तु बिना परिश्रम के उपलब्ध रहती है, उस की लोग क़द्र नहीं करते।

घर ना दुआर, चलु बरतर—

घर न द्वार बरगद के पेड़ के नीचे चलो। किसी ऊपरी तड़क-भड़क वाले आदमी पर, व्यंग्य में।

घर फूटे गँवार लूटे, गाँव फूटे जवार लूटे—

घर में फूट होने से उसे गँवार लूटते हैं; और गाँव में फूट पड़ने से (उसे) आस-पास के गाँव वाले।

घर में भूजी भाँग ना, कोठा पर घुमगाजरि—

घर में तो इतनी दरिद्रता है कि भूँजी भाँग तक नही है, किंतु कोठे पर ग्रानद मनाया जा रहा है। दरिद्र को ग्रानंद मनाते देख कर कहते हैं।

घर में भूजी भाँग ना बीबी बाँटसु चिउरा—

घर मे भूजी भाँग नही, ग्रौर बीबी चिउड़ा बाँटती हैं।

घर रही भाँ जाई, बहरबूँटे गाँढ़ाई—

घर रहे ग्रथवा नष्ट हो किंतु बहरबूटा (बाजूबंद) ग्रवश्य बनेगा।

घरी में घर छूटे, नव घरी भँादँारा—

एक घड़ी में तो घर छूटने वाला है किंतु सायत देखी जा रही है कि ग्रभी प्रस्थान नही करना चाहिए, ग्रभी नौ घड़ी भद्रा है। विपत्ति ग्रा जाने पर भी कोई निश्चित मत स्थिर न कर के तर्क-वितर्क में पड़े रहने पर कहते हैं।

घरें दिया बारि के त, महजीदी में बारल जाला—

ग्रपने घर में दीपक जला कर तब मस्जिद में जलाना चाहिए। ग्रपनी दशा सुधार कर तब दूसरे की दशा सुधारने का यत्न करना चाहिए।

घरे मेहरारू ना, बाहर बेटा के किरिया—

घर में तो ग्रौरत ही नदारद ग्रौर बाहर बेटे की सौगंध खाते हैं।

घरे रेघवा, त बनो रेघवा—

जब घर पर कष्ट है तो बाहर भी कष्ट होता है।

घान मारे घनवहिया, हुँकड़े लोहार—

घन मारने वाला तो घन मारता है ग्रौर लोहार हुँकारता है। दूसरा कष्ट उठावे और दूसरा ही उस की जगह पर शोर करे।

घीव के लड्डू टेढ़ो भँाला—

घी का लड्डू टेढ़ा भी भला।

घीव देत घोड़ नरिग्राइ—

घी पिलाने से घोड़ा रोष प्रकट करते हुए हिनहिनाता है। दुष्टों के साथ भलाई करने पर भी वे बुराई करते है।

घूस के दीहल धन, बीआ के बोअल अन्न कहीं जाला ना—

घूस में दिया हुआ धन और बीज-रूप में बोया हुआ अन्न कहीं जाता नहीं। इन का फल अवश्य होता है।

घोड़ा गाड़ी नोना पानी, और राँड के धक्का; ए तीनू से बचल रहे त केलि करे कलकत्ता—

घोड़ा-गाड़ी, खारा पानी और राँड के धक्के से यदि बचा रहे तो कलकत्ता में मनुष्य आनंद करे।

घोड़ा जाइ घोड़दौड़, गदहा जाइ संग—

घोड़ा तो घुड़दौड़ पर जाता है, और गदहा उस के पीछे लगा हुआ है।

घोड़े घीव मर्दे तमाकू—

घोड़े को घी और मर्द को तबाकू चाहिए।

चइत सुते भोगी, कुवार सुते रोगी—

चैत मे भोगी सोता है और कुँवार में रोगी।

चउथी के चान, अँचरा से ना तोपाई—

चौथ का चाँद अंचल से नहीं छिपाया जा सकता। किसी बड़े दोष को छिपाने का व्यर्थ उद्योग करने के अवसर पर कहते हैं।

चउबे गइलें छब्बे होखे, दूबे हो के अइलें—

चौबे जी गए छब्बे होने तो दुबे हो कर आए। नफ़े के लिए कुछ काम करने पर घाटा हो जाय तो कहते हैं।

चढ़त बरिसे आँदरा उतरत बरिसे हस्त; बीच बरिसे माँघा, चैन करे गिरहत्त—

यदि आर्द्रा नक्षत्र चढ़ते ही बरसे, हस्त उतरते ही बरसे और मघा बीच में बरसे तो गृहस्थ को खूब आनंद हो। अर्थात् अन्न खूब उपजे।

चढ़ि के ऊँचा देखा, त घर घर एके लेखा—

जब ऊँचे चढ़ कर (ध्यान-पूर्वक) देखा तो घर घर एक ही बात दिखाई दी, अर्थात् कलह सब जगह है।

चमइनि से पेट ना पचेला—

चमारिन से पेट (गर्भ) नहीं छिपाया जा सकता को धोखा नहीं

दिया जा सकता।

चमरी कोनी बहे मजगूत, हराई में पानी पीह(अ) मोरे पूत—

जिस समय उत्तर-पूरब कोने से हवा चलती है, उस समय वृष्टि अवश्य होती है।

चमार के जोरू, टूटल पनही—

चमार की स्त्री होने पर भी टूटी जूती ! आश्चर्य की बात है।

चलनी में दूध दुहें, करम के दोस—

चलनी में दूध दुहते है तो कर्म का क्या दोष है ?

चाँमार का कहे से, डाँगर ना मुएला—

चमार के कहने से डाँगर (पशु) नही मरता।

चाँमरा खेले चाम से, चमइनियाँ खेले आम से—

चमार खेलता है चाम से और चमारिन खेलती है आम से।

चाम के चालनि, कुकुर रखवार—

चाम की चलनी और रखवाली करने वाला कुत्ता। अविश्वसनीय पर विश्वास करने पर कहते है।

चाम के टाटी कुकुर रखवार—

चाम की टट्टी और रखवाली करने वाला कुत्ता।

चारि आना के जनेरा, चउदह आना के मचानि—

चार आने का मक्का और चौदह आने की मचान। थोड़ी सी वस्तु की रक्षा के लिए उस के मूल्य से अधिक व्यय करने पर कहते हैं।

चारि कवर भीतर, तब देवता पीतर—

चार ग्रास पहले खाले, तब देवता अथवा पित्र की याद करे।

चारि चक्कर चलाऊँ, जरी पलई के खाउँ—

ऐसा चक्र चलाता हूं कि जड़ और पल्लव सब नष्ट हो जावें।

चारि जाति लायक, बाभन, बनिया, छतिरी कायथ—

ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया और कायस्थ इन चार जातियों के लोग लायक़ होते हैं।

चारि दिन के चाम चूम, फेनू धूरा धूरी—

यह ऊपरी दिखावट सिर्फ़ चार दिन के लिए है। फिर वैसी ही धूल उड़ेगी।

चारि दिन के जोगी, मेंओं मेंओं—

चार दिन के योगी और तिस पर भी इतना पाखंड !

चारि दिन के बिटिआ भतारे के मोआरिनि—

वधू को आए हुए तो अभी चार ही दिन हुए, किंतु वह पति की मालकिन बन गई।

चाल चले सादा, जे निबहे बाप दादा—

सादी चाल चलनी चाहिए जिस से पुश्त दर पुश्त निभता जाय।

चालिसि के भैंइसि लिहलीं, चोंकरे के सिहनी—

चालीस की भैंस ली और जरा बोलती तक नही।

चित्तो तोहार, पट्टो तोहार—

चित भी तुम्हारा पट भी तुम्हारा, सब तरह तुम्हारी ही जीत है।

चिरलें चार, बघलें आठ—

चीरने पर तो कोई वस्तु चार होती है, किंतु छौक लगाते समय वह आठ हो जाती है। झूठे आदमियों के किसी बात के बहुत चढ़ा-बढ़ा कर कहने पर कहते हैं।

चिरई के जान जाइ, लरिका के खेलवना—

चिड़िया की जान जाती है और लड़कों का खिलवाड़ हो रहा है। किसी को कष्ट पहुँचे और किसी का उस से मनोरंजन हो।

चीना का बंस में सपूत भइलें मार्हा—

चीना, एक प्रकार का अन्न जिस से मार्ह (एक प्रकार का चबेना) तैयार किया जाता है। मार्ह को छुड़ा कर चीने की भूसी आदि काम में नही आती। बुरे वंश में अच्छा पुत्र होने पर कहते हैं।

चूना चाम कुटले से ठीक होला—

चूना और चमड़ा कूटने से ही ठीक होते हैं। दुष्ट लोग पीटने से ही दुरुस्त रहते हैं।

चोर का दार्ही में तिनका—

चोर की दाढ़ी में तिनका।

चोर का अँगारी मीठि—

चोर के लिए अंगार भी मीठा है।

चोर के दिल सरिसो बरोबरि होला—

चोर का दिल सरसों के बराबर (बहुत छोटा) होता है।

चोर चोर मउसिआउत भाई, साँझे हँसुआ धइल पजाई—

चोर चोर मौसेरे भाई हैं। शाम को ही हँसिया तेज़ करके रखते हैं। चोरी करने के लिए चोर एक-दूसरे से मिल जाते हैं।

चोर चोरी से जा, त तुम्मा फेरिओ से जा—

चोर यदि चोरी छोड़ दे, तो क्या तुम्मा फेरी भी छोड़ दे ? अंतर्गत कथा—प्रसिद्ध है कि कोई चोर साधु हो गया और साधुओं की जमात में रहने भी लगा। धीरे धीरे उस की चोरी की आदत छूट गई किंतु वह प्रायः रात मे साधुओ का तुंबा इधर उधर बदल कर रख देता था। सबेरे जब साधु लोग उठते और अपना तुंबा इधर उधर पाते तो आपस में झगड़ने लगते।

चोरवा के मन बसे, ककरी का खेतें—

चोर का मन ककड़ी के खेत में ही बसता है। चोर हमेशा चोरी करने के लिए ही सोचता है।

चोरवा के माई सपने देखे, कि बबुआ बरधे ले आवतारें—

चोर की माता स्वप्न देखती है कि पुत्र (चुराकर) बैल ही लेकर आता होगा।

चोर से कहलस चोरी करिह, साहु से कहलस जागत रहिह (अ)—

चोर से कहा कि चोरी करना और साहु से कहा कि जागते रहना। झगडा लगाने वाले आदमी पर व्यंग्योक्ति।

छव महीना के कुत्ता, बारह बरसि के पुत्ता—

छः महीने का कुत्ता और बारह वर्ष का लड़का होशियार हो जाता है।

छव महीना मिमियानी, त एक पठरू बियानी—

छः महीने के मिमियाने पर एक बच्चा ही पैदा किया। बहुत परिश्रम के बाद थोडा फल होने पर कहते हैं।

छाजा बाजा केस, तीन बंगाला देस—

छाजन, बाजा और केश इन तीनों का महत्व बंगाल देश में ही दीख पड़ता है।

छूँछ छोह हइता बरोबरि

खाली दया, हत्या के बराबर है। केवल दया दिखाना और सहायता न करना बहुत कष्ट देने वाला होता है।

छूंछे छाछे आँतोंना, त नूने तेले कोंतोंना—

सूखा भोजन इतना तो नमक तेल के साथ न मालूम कितना !

छेरी, छीआ, ऊँट, कोहाँर, फेड़ बबूर के गाड़ीवान; फरे जवासा बेस्वा बानी, भइल मलीन जब बरिसल पानी—

बकरी, मल, ऊँट, कुम्हार, बबूल का पेड़, गाड़ीवान, जवास, वेश्या की वाणी, ये सब वर्षा के कारण मलीन हो जाते हैं ।

छोट के मोआर ना अच्छा, बड़ के चेर अच्छा—

छोटे का मालिक नही अच्छा और बड़े का दास अच्छा ।

जइसन उदई ओइसन भान, इन का पोंछि नाँ उन का कान—

जैसे उदई हैं वैसे ही भान । न तो उन के पूछ है न उन के कान । अर्थात् सभी एक से हैं ।

जइसन कर्नी, ओइसन भर्नी—

जैसा कर्म वैसा ही भोग ।

जइसन करे तइसन पावे, पूत भतार न आगे आवे—

जैसा किया जाता है वैसा ही पाया जाता है । दुनिया में पुत्र अथवा भर्तार कोई काम नहीं आता ।

जइसन तोरी देन दुआरी, ओइसन मोर चरवाही—

जैसा तुम्हारा देना है वैसा ही मेरा काम है । जितनी तुम मजदूरी देते हो, उतना ही मैं काम करता हूं ।

जइसन देखीं गॉव क रीति ओइसन उठाई आपन भीति—

जैसी गॉव की रीति देखे वैसी ही अपनी दीवार उठावे ।

जइसन देस, ओइसन भेस—

जैसा देश वैसा भेस ।

जइसन धीआ गवनी हउई, ओइसन धिया बजवनी रहिली, त नाँ जाने का होइत—

लड़की जैसी गाने वाली है वैसी बजाने वाली होती तो न मालूम क्या हो जाता ।

जइसन पसु ओइसन घास, जइसन देवता ओइसन पूजा—

जैसा पशु वैसी ही घास उस के लिए अनुकूल होती है। जैसा देवता वैसी पूजा

जइसन बबुआ ओइसन कुरुई, ओइसन पटुआ के भुजा—

जैसा बच्चा है, वैसी ही डलिया है और वैसा ही उस डलिया में पटुए का चबेना भ

जइसन बाबा अपने लबार, ओइसन उन्कर कुल पलिवार—

जैसे बाबा स्वयं झूठे हैं वैसे ही उन के परिवार के लोग भी।

जइसन बेटा रानी के, ओइसन बेटा कानी के—

जैसा रानी का लड़का वैसे ही कानी (स्त्री) का भी। दोनों को अपने पुत्रों से समान प्रेम होता है।

जइसन मियाँ पान के खवइया, ओइसन चाम के बगली—

जैसे मियां पान के खाने वाले हैं, वैसा ही उन का चमड़े का बटुआ भी है।

जइसनि नीअँति, ओइसनि बरकति—

जैसी नीयत वैसी ही बरकत होती है।

जइसने रसूल मियाँ, ओइसने भभाक मियाँ—

जैसे ही रसूल मियां वैसे ही भभाक मियां। कोई किसी से घट कर नहीं।

जइसा के तैसा मिले, मिले डोम के डोम; दाता को दाता मिले मिले, सूम को सूम—

जैसा मनुष्य होता है उसे दूसरा वैसा ही मिलता है। दाता को दाता मिलत डोम को डोम और सूम को सूम।

जइसा के तइसा मिले, मिले नीच के नीच; माठा को पीठा मिले, मिले कीच के कीच—

जैसे को तैसे मिलते हैं। नीच को नीच मिलता है; माठा को पीठा और कीच कीचड़ मिलता है। पीठा—गर्म पानी में नमक तथा सत्तू डाल कर तैयार किया पदार्थ है। इसे प्रायः मट्ठे के साथ खाते है।

जइसे कुल तीअन, ओइसे दमरी के सिधरिओ—

जैसे और तीअन (दाल, साग आदि जिस से रोटी अथवा भात मिला कर जा सके) खरीदते है वैसे एक दमड़ी की सिधरी मछली भी खरीदी जा सकती

जइसे मुर्दा पर पाँच मन, ओइसे पचास मन—

मुर्दे पर चाहे पाँच मन लकड़ी डालो चाहे पचास मन उस के लिए इस मे

अंतर नहीं पड़ता।

जतने सरी, ओतने तरी—

जितना ही सड़ेगा उतना ही नफ़ा देगा। जितने अधिक दिनों तक रहेगा उतने ही अधिक पैसे मिलेंगे।

जनमते बबुआ गोर ना होइहें, त का अबटला से गोर होइहें—

जन्म लेते ही कोई गोरा न होगा तो उबटन लगाने से क्या होता है?

जनम भर के कमाई, चार घंटा में गँवाई—

वह जन्म भर की कमाई चार घंटे में ही नष्ट कर बैठेगा।

जब अपने बर बउराह, त दहेज कहाँ से मिली—

जब दूल्हा स्वयं बौड़हा है, तब दायज कहां से मिलेगा?

जब एक कलम घस्के, तब बावन गाँव खस्के—

यदि (मुंशी की) एक कलम खिसक जाय तब बावन गाँव खिसक जाय (इधर-उधर हो जायँ)।

जब ओखरी में मूंड़ी परलि बाइ, तब चोट के कवन गिनती बाइ—

जब ऊखल में सिर पड़ा है, तब चोट की गिनती ही क्या है? जब काम पर डट गया हूं, तो चाहे जितनी विपत्तियां पड़ें।

जब चइत राजा अइले, तब घुरओ पर दुइ दाना—

जब चैत महीना आता है तब घूरे पर भी दो दाने दिखलाई देते है। चैत में सब के पास कुछ न कुछ हो जाता है।

जब बकुला टांग उठवल, त ताल के अंत पवले—

जब बगुले ने पैर उठाया, तब ताल की गहराई मालूम हुई।

जब्बर के लाठी, सिर पर—

बलवान की लाठी सिर पर।

जबरजहत के लाठी, सिर पर—

जबरदस्त की लाठी सिर पर।

जबरे जुबरे छाई घर, सर्बस लाइ चलाईं हर—

घर किसी प्रकार से छा लेना चाहिए किन्तु सर्वस्व लगा कर हल चलाना चाहिए।

जब ले करीं पुत्ता पुत्ता, तब ले करीं आपन बुत्ता—

सहायता के लिए 'पुत्र, पुत्र' कह कर समय नष्ट करने की अपेक्षा स्वयं कार्य कर लेना अच्छा है।

जब ले पाँड़े दोना लगावसु, तब ले पंड़ाइनि सुखले बुकावें—

जब तक पाडेय जी दोना लगावेंगे, तब तक तो पडाइनि सूखे ही फाँक डालेगी।

जबले रसरी खेत पर तब ले देवान देवान, रसरी गइली खेत से देवान भइले हेवान—

जब तक जरीब खेत पर रहती है, तभी तक दीवान दीवान रहते हैं। और जब जरीब खेत से चली जाती है तब दीवान हैवान हो जाते हैं। (जब तक खेत की नपाई होती है, तब तक दीवान की इज़्ज़त रहती है, उस के बाद नही)।

जबले साँस, तबले आस—

जब तक साँस रहती है तभी तक आशा भी रहती है कि यह आदमी जीवित रहेगा।

जबले सिधरी पहाड़े ना ठेकिहें, तबले ना मनिहें—

जब तक सिधरी (छोटी मछली) पहाड नही ठेकेगी (उस की पूरी दुर्दशा न होगी) तब तक न मानेगी।

जबले सोखा के भाव आई, तबले बबुआ के मूड़ी अँइठाइ जाई—

जब तक ओझा में देवत्व का भाव आवेगा, तब तक बच्चा मर जायगा।

जर आवे, जाउरि खाई—

ज्वर आवे और खीर खाई जाय (जो उस के लिए बहुत नुक़सानदेह है)।

जल्दी के काम, सैतान के होला—

जल्दी का काम शैतान का होता है।

जल मे केवट, बन में अहीर, नइहर में जोइ, आपन न होइ—

जल में केवट, वन मे अहीर, और नैहर गई हुई स्त्री, अपने नही होते।

जव ओखरिए में मोटाला—

जौ ऊखल में ही मोटा होता है।

जव का संगे घून पिसाला—

जौ के साथ घुन भी पीसा जाता है।

जवन कुँडी लगवलसि आगि उहे कुँउडी कवरवें ठाढ़ि—

जिस लड़की ने आग लगाई (कलह उत्पन्न किया) वही दरवाज़े के पास खड़ी है।

जवन देव गरजेलें, ऊ बरसिसुनां—

जो बादल गरजते हैं वह बरसते नहीं।

जवना पत्तल में खाए के, ओही पत्तल में छेद करे के—

जिस पत्तल में खाना उसी पत्तल में छेद करना।

जवन बैदा फरमावे, तवन रोगिआ का भावे—

जो वैद्य फ़रमाते हैं, रोगी को वही चीज़ अच्छी लगती है।

जव हरवाहे, धान बिदाहें, ना जानी ऊखि उपजे काहे—

खेत खूब जोत कर यदि उस मे जवा बोया जाय तो अच्छा उपजता है; धान, खेत में बोने के पश्चात् उसे विदाहने (जोतने) से खूब उपजता है, किंतु यह रहस्य मालूम नहीं होता कि आखिर अच्छी ईख कैसे उपजती है ?

जस दूलह, तस बनी बराता—

जैसा दूल्हा है, वैसी ही बारात भी वनी है।

जस मन भवनी तस मन भवना, जस भगुई तस मिला भगवाना—

जैसे को तैसा मिलना।

जहाँ के ईसर अइसन, उहाँ से दलीदर कइसन—

जहां का ईश्वर (धनी) ऐसा, वहां का दरिद्र कैसा होगा ? व्यंग्य में।

जहाँ गुर, उहाँ मकुनी—

जहां गुड़ रहता है वहीं मकुनी (एक तरह की रोटी) खाने में आनंद देती है।

जहाँ जस, ताँहाँ तस—

जहां जैसा वहां तसा। मौक़े के अनुसार बदलने पर कहते हैं।

जहाँ जेईं तहाँ जीमा, जहाँ रोग तहाँ दावा—

जहां भोजन किया जाता है वही ज़िम्मेदारी होती है, और जहां रोग होता है वही दवा।

जहाँ पाँचो पीर, तहाँ अमीने सती बाकी—

जहां पाँचों पीरों की पूजा होती है, वहां क्या अमीना सती बाक़ी रह जाती है ? प्राचीन काल में सतीदाह की प्रथा थी। इस प्रकार पति के साथ दग्ध स्त्रियों के लिए गाँव के बाहर एक चबूतरा (चौरा) बना दिया जाता था और उन की पूजा

अब तक होती है। यहां 'अमीना' सती स्त्री का नाम है।

जहाँ फेड़ ना खूँट तहाँ रेंड़ परधान—

जहां कोई पेड़ न हो, वहा रेंड ही प्रधान होता है।

जहां बुढ़वन के संग, उहां खर्ची के तंग, जहां लरिकन के संग, उहाँ बाजे मिरदंग—

जहां बूढ़ों का साथ रहता है, वहां खर्च की कठिनाई रहती है, किंतु जहां लड़कों का साथ रहता है, वहां हमेशा मृदंग बजता रहता है।

जहाँ सइगो कसाई, तहाँ एक के कहाँ बसाई—

जहां सौ क़साई है, वहां एक भले आदमी की क्या चलेगी ?

जोंबारा मारे रोए नाँ दे—

बलवान मारता भी है और रोने भी नहीं देता।

जाकी जाति के जौन हैं, ताकी पाँति के तौन, बाघ बाज के बाँच्चा, धरे सिखावे कौन—

जिस जाति का जो होता है, वह उसी पंक्ति में बैठता है। शेर और बाज़ के बच्चो को शिकार करना कौन सिखलाता है ?

जाठि अस म(अ)रद कोल्हू अस जोइ, तेकर लरिका सींकि अस होइ—

जाठ ऐसा (खूब क़द का लंबा) मर्द हो और कोल्हू ऐसी स्त्री हो तो उन का लड़का सीक के समान पतला होता है।

जाड़ कहे हम हाड़ तूरबि, अगिनि करे धरहरिआ—

जाड़ा कहता है कि हम हाड़ तोड़ेंगे और अग्नि रोक-थाम करती है।

जाड़ राड़ के कवन चिरउरी, कम्मर पर जब होइ पिछउरी—

दुष्ट जाड़े की मिन्नत की क्या जरूरत ? शर्त यह कि कंबल के ऊपर एक चादर हो। कंबल पर चादर ओढ़ लेने पर जाड़ा दूर रहता है।

जात रहलीं नरहीं, सांझि भइल घरहीं—

जाते तो थे नरही (ग्राम का नाम) पर शाम हो गई घर पर ही।

जात रहलीं सरग में, दलिद्दर से भइल भेंट—

स्वर्ग मे जा रहे थे लेकिन रास्ते में दरिद्र से मुलाकात हो गई। सन्मार्ग पर जा रहे थे किंतु बुरे मार्ग पर ले जाने वाला रास्ते में ही मिल गया।

जाति के बैरी जाति काठ के बैरी काठ—

जाति का बैरी जाति वाला ही होता है, और काठ का बैरी काठ ही होता है।

जाति पाँति बूझे नाँहि कोई, हरि के भजे से हरि के होई—

कोई जाति पाँति नहीं पूछता, जो हरि (भगवान) को भजता, है वही हरि का होता है।

जाति सुभाव न छूटे, टांग उठाइ के मूते—

कुत्ते का जाति-स्वभाव नहीं छूटता। वह हमेशा टाँग उठाकर ही पेशाब करता है।

जान नाँ पहचान, बड़ी बीबी सलाम—

न तो जान न पहचान और (सामने देख कर कहते हैं) बीबी जी सलाम।

जानेली चिलम, जेपर चढ़ेली अंगारी—

चिलम ही जानती है जिस पर अंगारी चढ़ती है। जिस पर विपत्ति पड़ती है, वही उसे जानता है।

जाल से जइब(अ) त टाप से कहाँ जइब(अ)—

यदि जाल से निकल भागोगे तो टाप से कहां जाओगे? टाप—बाँस की खपच्चियों से बनाया हुआ औज़ार, जिस में ऊपर से हाथ लगाने की जगह होती है और जिस से मछली पकड़ी जाती है। 'टाप' से मछली को ढक देते हैं और उस के ऊपर के छेद में हाथ लगा कर मछली पकड़ लेते है।

जाँहाँ जाली खेहो रानी, ताहाँ ना मिले आगी पानी—

जहां खेहो रानी (एक स्त्री का नाम) जायँगी वहां अग्नि और पानी भी नहीं मिलेगा।

जाँहां मुरुगा ना रहिहें, तहां बिहाने ना होइ—

जहां मुर्गा नही रहेगा, वहां क्या सुवह न होगी?

जियत माछी ना घोंटाइ—

जीवित मक्खी नहीं निगली जा सकती। देखते हुए पाप नहीं किया जा सकता।

जियता नाँ दूध भात, मुअला पर मरन गरास—

जीते जी दूध भात न खिलाया परंतु मरने पर मरन-ग्रास दिया गया। मृत्यु के समय मरते हुए आदमी के होंठ से दूध भात अथवा दही भात छुआ देते हैं। इसे 'मरण-ग्रास' कहते हैं।

जिअता पर किछू ना, मुअला पर पिंडा—

जीवित रहने पर कुछ भी नहीं और मरने पर पिंडदान।

जिअला बाछी ना, मुअला गाइ—

जीवित रहने पर तो बछिया का भी दान न दिया और मरने पर गोदान करते हैं।

जितला का आगा, हॅार्ला का पाछाँ—

जीतने वाले के आगे और हारने वाले के पीछे। उन लोगों पर व्यंग्योक्ति है जो संकट से दूर रहते हैं।

जियले रे निलज के पूत, अपनी चुल्हिआ लवले लूक—

निर्लज्ज का पुत्र जीवित रहा तो अपना ही चूल्हा नष्ट किया। अपने ही वंश के लिए कष्टदायक हुआ।

जे ईयारी हाटे बाटे, से दुआरे नाहीं—

जो दोस्ती रास्ते और बाजार में है, वह द्वार पर नहीं।

जेकर कान छेदाला उहे गुर खाला—

जो गुड़ खाय सो कान छेदावे। जो लाभ उठाता है उसे कष्ट या घाटे के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

जेकर खाइबि तेकर गाइबि—

जिस का खाऊँगा उसी का गाऊँगा। जिस से प्राप्ति होगी उस की प्रशंसा करूँगा।

जेकर पीठि हेला, सेकरे दुनिया के गेला—

जिस की पीठ पर हेला (एक प्रकार का ढोल) है, वही दुनिया की निंदा करता है। दोषी मनुष्य ही संसार की निंदा करता है।

जेकर पुरखा माँगे भीखि, से का जाने धरम के रीति—

जिस के पुरखा (पूर्वज) भिक्षा माँगते थे, वह धर्म की रीति (किसी को दान देना) क्या जाने?

जेकर बहियां पकरे खरग, ओकर लरिका गइलें सरग—

जिस की भुजाएं खड्ग पकड़ती है उस के लड़के ही स्वर्ग चले जाते हैं। अर्थात् जिसे तलवार लगती है वह स्वर्ग चला जाता है।

जकर बानर से खलाव, आन खेलावे काटे धावे—

जिस का बंदर रहता है वही उसे नचा सकता है, दूसरे के नचाने पर वह काटने दौड़ता है।

जेकर बाप कमरा ना ओढ़ले, से ओढ़सु रॉजाई—

जिस के बाप ने कभी कंबल नहीं ओढ़ा वह रजाई ओढ़े !

जेकर भाई अन्नर, सेकर भाई सिकन्नर—

जिस का भाई अन्न वाला है, वह सिकंदर के समान है।

जेकर रहे से कहे बहिला, आन कहे तीन बिआन—

जिस की (गाय) है वह तो उसे बहिला (जिसे कभी बच्चा न पैदा हुआ हो) कहता है और दूसरे कहते हैं कि नही तीन बार बच्चे पैदा कर चुकी है।

जे घर हींगु न हरदा, से घर जेवें बरधा—

जिस घर में भोजन बनाने में हींग और हल्दी का प्रयोग नही होता, वहां मानो बैल भोजन करते है।

जेकरे कउड़ा आगी तापीं, ओही के देह दागीं—

जिस के कउड़ा पर आग तापें उसी की देह जलावें। अर्थात् जिस से लाभ उठावें उसी का नुक़सान करें। जाड़े के दिनों में शाम के वक़्त लोग घास-फूस इकट्ठा कर के जलाते हैं। इसे 'कउड़ा' कहते हैं।

जेकरा के मानलु पिया, उहे सोहागिनि—

जिस को प्रियतम प्यार करे वही सौभाग्यवती है।

जेकरा खरिहान के दइवे गड़िवान होइहें, ओकरा भूसा कहाँ से बांची—

जिस के खलिहान का गाड़ीवान ईश्वर होगा, उस के भूसा कहां से होगा ? अर्थात्, ईश्वर गाड़ी पर तो भूसे को ले न जायँगे, हवा द्वारा उड़ा कर ले जायँगे।

ेकरा खातिर चोरी करे, उहे कहे चोरा चोरा—

जिस के लिए चोरी की जाय, वही चोर चोर कहे।

जेकरा मारे परगन रोए, सेकर भाई गद टोवे—

जिस की मार से सारे परगने के लोग परेशान हों, उसी का भाई एक मिट्टी के टुकड़े से मारे जाने पर परेशान हो।

जेकरा से पराईं पात, ओके सुताई एके खाट—

जिस के डर के कारण मारे मारे फिरना पड़ा, उस को भला कभी अपनी चारपाई पर सुलाया जा सकता है।

जेकरा हरि अस ठाकुर, ओकरा जम्भु से कवन डर—

जिस के हरि (भगवान) ऐसा स्वामी है, उसे भला जंबु (यमराज) से डर ही क्या?

जेकरे बिआह, ओकरे खाँड़ा बारा—

जिस का विवाह उसी को बड़े का एक टुकड़ा दिया जाय? जो सब कुछ काम करने वाला हो उसी की अप्रतिष्ठा हो?

जेकरे हाथ जोर, ओकरे हाथ मुलुक—

जिस के हाथ में जोर है, वही संसार का मालिक है।

जे केहू से ना हेठ होला, ऊ अपना जमला से हेठ होला—

जो किसी से नहीं दवाया जाता, वह अपने पुत्र से ही नीचा देखता है।

जे गरजे ला, से बरिसे ला ना—

जो गरजता है, वह बरसता नहीं।

जे गाड़ गड़ाई करी, से भाड़-भरसाई परी—

जो मनुष्य बुरा कर्म करेगा उस का अंत भी बुरा होगा।

जे गुर से मरे, ओकरा के माहुर ना देबे के—

जो गुड़ से मरे, उसे विष न देना चाहिए।

जे जिएला, से का का ना देखेला—

जो जीवित रहता है, वह क्या क्या नहीं देखता?

जेठ का दुपहरिया, भादों का अन्हरिया, पूस का भिन्सहरा अभागा काम करेले—

जेठ की दुपहरिया, भादों की अंधकारमयी रात्रि और पूस के भिनसार (प्रातः काल) में अभागे ही काम करते हैं।

जेठ भइले हेठ, बइसाख भइले ऊपर—

ज्येष्ठ नीचे गया और वैशाख बड़ा हो गया। जब बड़ी उम्र वाले से छोटी उम्र वाले प्रतिद्वंद्विता करने लगते हैं तब कहते हैं

जेतना जाल देखेला, ओतना मलाह् देखे, त छाती फारि के मरि जाई—

जाल को जितनी मछलियां दिखाई देती है, उतनी अगर मल्लाह् को दिखाई दें, तो वह छाती फाड़ कर ही मर जाय।

जे तीनि पाव से गइल से तीनू लोक से गईल—

जो तीन पाव अन्न दान नही दे सकता, वह तीनों लोक में कुछ नहीं कर सकता।

जे नाचल, से बांचल कब—

जो नाच में फँसा, वह बुरे कामों से कब बचा ? बुरी चाल से मनुष्य का आचरण भी दूषित हो जाता है।

जे परनारी पर लावे डीठि, लाल लोह् करि दाग(अ) पीठि—

जो दूसरे की स्त्री पर दृप्टि डालता है, उसे लाल लोहा कर के पीठ पर दाग दो।

जे पडित का पॅतॅारा, से पंडिताइनि का ऑचॅारा—

जो पंडित के पंचांग में हैं वह पडिताइनि जी के अंचल में है। अर्थात् जितना पडित नही जानते, उस से अधिक का दावा पंडिताइन करती हैं।

जे पूत दरबारी भइले, देव लोक दूनों से गइले—

जो पुत्र (मनुष्य) दरबारी हुआ, वह स्वर्ग और इस संसार दोनों से वंचित हुआ। दरवारी लोगों की निंदा में उक्ति है।

जे पेट के आस, उहे बिआइल बेटी—

जिस गर्भ से पुत्र की आशा थी, उसी से पुत्री उत्पन्न हुई। निराश होने पर कहा जाता है।

जे सेर से मुए, ओके पसेरी ना मारे के—

जो सेर से ही मरे, उसे पंसेरी नहीं मारनी चाहिए।

जेही बॉस के बाँसुरी, ओही बाँस के सूप दउरी—

जिस बाँस की बाँसुरी बनती है उसी बाँस की दउरी और सूप बनते हैं। एक ही जगह् जन्म लेने वालों में भेद पड़ने पर उक्ति।

जेहे हाथ, उहे साथ—

जो हाथ लगे वही साथ है।

जोगी जोगी लड़ि परलें, खप्पर के नोकसान—

जब दो योगी आपस में लड़ते हैं तो खप्पर का नुक़सान होता है, क्योंकि वे खप्पर से ही लड़ते हैं। खप्पर—एक प्रकार का पात्र जिसे योगी लिए रहते हैं।

जोगी बयल बलाइ, कोंहारे बादरि, माली का घरे छेरि, जोलाहे बानर—

योगी के लिए बैल, कुम्हार के लिए बादल, माली के लिए बकरी और जुलाहे के लिए बंदर बला हैं।

जो छेरिए भेंड़ी हर चलित, त बैल का होइत—

यदि बकरी अथवा भेंड़ से ही हल चलता तो बैल क्या होते ? यदि छोटे आदमियों से ही काम चलता तो बड़ों की क्या आवश्यकता होती ?

जो भल रहितो रूपा, त का पंच लगाइत लूका—

यदि रूपा (एक स्त्री) अच्छी रहती तो क्या पंच (सब लोग) लूका लगाते (बुरा कहते)।

जोलहा के बेगरिहा पैठान—

जुलाहे का नौकर पठान। छोटे का नौकर बड़ा। व्यंग्य में बेमेल बात की चर्चा पर कहते हैं।

जोलहो के छोरिमरखाहि—

कहीं जुलाहे की बकरी भी मरखही (मारने वाली) होती है ? जुलाहे की दीनता की ओर लक्ष्य है।

जो सब केहू तम्मू तानी त (अ) हम का भगई तानबि—

यदि सब लोग तंबू तानेंगे तो क्या मैं भगई (कौपीन) तानूँगा ? अर्थात् जैसा सब लोग करेंगे वैसा मैं भी करूँगा।

जो हमके ना मारे त, हम दुनिया के मारीं—

जो लोग मुझे न मारें तो मैं दुनिया भर को मारूँ। असंभव शर्त रखने पर कहते है।

टाम टिम ओंतोंना, बाकी जलपातर के ठेकाने ना—

ठाट-बाट इतना अधिक है, परंतु साथ में जल के लिए एक लोटा भी नहीं।

टेढ़िया से सभे डेराला—

टेढ़े से सभी डरते हैं।

ठग जाने ठग ही के भाखा—

ठग ही ठग की भाषा जानता है।

ठग बनवले खिचड़ी, ठग पहुँचले आइ; मर्द बखानों ठग के, कि ठग के खिचड़ी खाइ—

ठग ने खिचड़ी बनाई और (दूसरा) ठग आ पहुँचा। तभी असली ठग (वह आने वाला) होगा, जब ठग की खिचड़ी ठग कर खा डाले।

ठग मारे अनजान, बनिया मारे जान—

ठग अनजान आदमियों को ठगता है और बनिया जाने लोगों को।

ठठेरा के बिलारि, सूप का ढभढभहटि से ना डेराले—

ठठेरे की बिल्ली सूप की ढभढभाहट से नहीं डरती। जो आदमी किसी बात के आदी हो जाते हैं वह मामूली डाँट डपट से नहीं डरते।

ठठेरे ठठेरे बदलई ना होखे—

ठठेरे ठठेरे में बदला नहीं होता। अर्थात् एक वर्ग वाले आपस में एक-दूसरे को खूब समझते हैं।

ठाढ़ नाचु मोरा, त निहुरि के नाचबि तोरा—

यदि (हमारे यहां) खड़ी हो कर नाचो (तो) तुम्हारे यहां (म) झुक कर नाचूँगी। हमारी थोड़ी भलाई करोगी तो मैं उस से ज़्यादा भलाई तुम्हारी कर दूँगी।

ठांव जानी काजर, ठांव जानी करिखा—

एक स्थान पर काजल, और एक स्थान पर कालिख। वही वस्तु एक को वरदान और दूसरे को अभिशाप हो जाती है।

डेढ़ बोझ धनियां, दीअर में खरिहान—

धनियां केवल डेढ़ बोझ और खलिहान दीअर (बड़ी दूर कछार) में। थोड़ी सी चीज़ के लिए बहुत दिक़्क़त उठानी पड़े तो कहते हैं।

ढेर जोगी मठ के उजार—

ज़्यादा जोगी, मठ का उजाड़। योगियों के ज़्यादा होने पर मठ उजड़ जाता है।

ढेला पतई के साथ कइसन—

ढेला और पत्ती का साथ कैसा? हवा, पानी एक साथ आने पर पत्ती उड़ जायगी और ढेला गल जायगा। दो विभिन्न प्रवृत्ति वालों का साथ नहीं चल सकता।

तसलवा तोर की मोर—

भोजपुर से गुज़रते हुए कोई यात्री तसले (पतीली) में भोजन बना रहा था। इतने में कोई भोजपुरी वहां पहुँचा और उस ने कहा 'ये तो मेरा तसला है', और यह कह कर उसे छीन लिया। इसी से इस मुहाविरे की उत्पत्ति हुई है। ज़बर्दस्ती करने पर कहते हैं।

ताॅलाॅब में पानी ना, हाथी के नेवता—

तालाब में पानी नही, और हाथी का निमंत्रण। शक्ति न रहते हुए किसी बड़े आदमी को निमंत्रण देने पर कहते हैं।

तीन टिकट, महा बिकट—

तीन आदमियों का एक साथ कहीं जाना विकट का सामना है।

तीन दिन के बिटिया, भुखेली जिउतिआ, आॅपना के दालि भात, घर भर के लिटिया—

तीन दिन की लड़की जिवपुत्रिका व्रत करती है। अपने लिए दाल चावल बनाती है और घर भर के लिए लिट्टी। व्यग्य में।

तीनि अकिलि के झुलुहा झूलें, दुई अकिलि उतान, एक अकिलि के सियरन पांडे सांझे कीन पयान—

तीन अक़्ल के (लोग) झूला झूलते हैं, दो अक़्ल के उतावले हो गए हैं, वे बेचारे सियरन पांडेय एक अक़्ल के ठहरे शाम को भाग गए। अनेक स्थानों पर असाधारण बुद्धि वालों के चूक जाने पर उक्ति।

तीनि कउड़ी गाॅठी, चूरी पहिरों की माठी—

तीन कौड़ियां ही गाँठ में हैं, चूड़ी पहनूं कि माठी। माठी—एक प्रकार का गिलट का गहना है जिसे ग़रीब तथा छोटी जाति के लोग पहनते हैं।

तीनि कनउजिया, तेरह चूल्हा—

तीन कनौजियों में तेरह चूल्हा।

तीनि कानू, तेरह हूंका, तबो हूँका हूँका—

तीन काँदू (जाति विशेष जिस का काम मिठाई आदि बनाना होता है) और तेरह 'हुक़्क़े', फिर भी इस बात का कष्ट है कि 'हूंका' है ही नहीं। किसी वस्तु की अधिकता होने पर भी कमी का अनुभव करने पर कहते हैं

तीनि के तीसी तेरह लागलि, तब तेलिनियाँ पेरे लागलि—

तीन की तीसी, जब तेरह पर बिकने लगी तब, तेलिन ने पेरना आरंभ किया। बेचने वाले की मूर्खता पर कहते हैं।

तीनि परानी, पदुमा रानी—

घर में केवल तीन प्राणी तो हैं ही चाहे जैसे रहें। जिस के घर में केवल तीन आदमी ही हों और वह अपने रहन-सहन की तारीफ़ करे उस पर कहते हैं।

तीनि पानी, तेरह कोड़, तब देख (अ) ऊखी के पोर—

तीन पानी, तेरह कोड़ देने पर ईख तैयार होती है।

तीनि फँकिया टीका, मधुरी बानी, चोर चाई के इहे निसानी—

तीन लकीरों वाला टीका और मधुरी (मधुर) वाणी, चोर-चांइयों (डाकुओं) की निशानी है।

तीनि बिगहा पर पानी बदले, पाँच कोस पर बानी—

तीन बीघे पर पानी बदलता है, और पाँच कोस पर वाणी (बोली) बदलती है।

तीनि में कि तेरह में—

सरयूपारीण ब्राह्मणों में गर्ग, गौतम और शांडिल्य ये तीन गोत्र वाले श्रेष्ठ माने जाते हैं। इन के अतिरिक्त तेरह गोत्र वाले और होते हैं। इसी से 'तीन में कि तेरह में' मुहावरे की उत्पत्ति हुई है। एक वंश के लोगों में आपस में झगड़ा हो और यदि कोई दूसरे वंश वाला किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे तब कहते हैं।

तुरत दान, महा कल्यान—

तुरंत दान देने से महाकल्याण होता ह।

तू चुहनियां हम डुड़हियां मटका मटकी कइसे चली—

मैं 'चुहानी' पर हूं और तू 'डुड़ही' पर है, एक दूसरे से इशाराबाजी कैसे चलेगी ? जब दो व्यक्तियों को परस्पर बातचीत करनी हो और वे बहुत दूर से बातचीत करते हों तब बात कैसे हो ? चुहनियां—जहां पर चूल्हा रहता है, भोजन बनाने का स्थान; डुड़ही—रसोईघर का एक भाग, जहां पर कि भोजन रक्खा जाता है। यह चूल्हे के सामने वाली दीवाल के पास होता ह

तू डाढ़ि डाढ़ि हम पात पात—

तुम डाल डाल, हम पात पात।

तू हूँ रानी हम हूँ रानी के भरी गगरी से पानी—

तुम भी रानी, हम भी रानी, घड़े से पानी कौन भरे?

तेलिनि रूसली, कूपा ले बइठली लेब (अ) लवँड़ू तेल—

तेलिन क्रोधित हुई, तो कुप्पा लेकर बैठ गई और बोली, 'तेल लोगे?' नाराज होकर अपना ही नुक़सान करने पर तुले हुए मनुष्य के लिए कहते हैं।

तेलिया हरे बेरिया बेरिया दइबा हरे एके बेरिया—

तेली बार बार हरण करता है, परंतु दैव (ईश्वर) तो एक ही बार में हरण कर लेता है।

तेली के तेल जरे, मसालची के जीव जाइ—

तेली का तेल जले और मशालची की जान जाय। नुक़सान किसी का हो और दुःख दूसरा माने, तब कहते हैं।

तोर नउजी बिकाइ, मोर घलुआ दे—

तुम्हारी बिक्री चाहे हो, अथवा नहीं, मुझे घेलुआ अवश्य दो। चाहे जो कुछ हो, मेरा स्वार्थ अवश्य पूर्ण होना चाहिए।

थरिया भुलाला, त गगरी में खोजल जाला—

थाली खो जाने पर लोग उसे घड़े मे ढूँढ़ते हैं।

थाकल बैल, गोनि भइल भारी, अब का लदब ए बयपारी—

ऐ व्यापारी, बैल के थकने से उस की गोन (बोझ लादने की काठी) भी भारी हो गई है, अब क्या लादोगे? किसी वृद्ध पुरुष को काम करते देख कर उस के घर वालों के प्रति अन्योक्ति।

थोर कइले कबीरदास, ढेर कइले कविता—

कबीरदास ने तो थोड़ा कहा, किंतु दूसरे कवियों ने और उसे बढ़ा दिया।

थोर कहलीं बहुत समुझिह (अ)—

थोड़ा कहा है, बहुत समझना।

थोरे दाम के कामरी, आवे बड़न के काम—

थोड़े दाम की कमरी और आती है बड़े आदमियों के काम म

दमरी के बाछी, जनम के हइता—

दमड़ी की बछिया जनम की हत्या।

दमरी के भागवति, टोकरा के पुरान—

दमड़ी की भागवत, टुकड़ा का पुराण अर्थात् किसी की कोई क़ीमत नहीं है।

दमरी के मुर्गा, टॉका चौथाई—

स्पष्ट है।

दमरी के हांडी गईल, कुता के जाति पहिचनाइल—

दमड़ी की हाँड़ी गई और कुत्ते की जात पहचानी गई। ख़र्च तो थोड़ा हुआ, लेकिन परीक्षा हो गई।

दरबे से दरबे, जे चहबे से करबे—

द्रव्य से सब कुछ है, जो चाहे वह किया जा सकता है।

दस हाथ हाथी से डरिह(अ), बीस हाथ मतवाला; अनगिनत हाथ उनका से डरिह(अ) जेकर नाम हवे सुर्तवाला—

हाथी से दस हाथ, मतवाले से बीस हाथ, तथा दोग़लों (वर्णसंकरों) से अनगिनत हाथ दूर रहना चाहिए।

दही चिउरा बारह कोस, लिचुई अठारह कोस—

(ब्राह्मण लोग) दही चिउड़ा खाने के लिए बारह कोस चले जाते हैं और लिचुई खाने के लिए अठारह कोस।

दही दूध तोरा, मथनी बाजे मोरा—

दही दूध तेरे घर और मथनी बजे मेरे घर ? किसी के माल पर कोई दूसरा मजा करे।

दही परोखत खाँ, खँइकि गड़लि—

दही परखते समय खँइकि (छोटा सा तेज़ तिनका) गड़ी। भलाई के बदले बुराई मिलने पर कहते हैं।

दाता दान करे, भंडारी के पेट फाटे—

देने वाला तो दान करता है लेकिन भंडारी का पेट फटता है।

दाता ले सूम भला कि ठांवे देइ जवाब—

दाता से सूम अच्छा है जो पहले ही जवाब देदे।

दान का बछिया के दाँत ना देखल जाला—

दान की बछिया का दाँत नही देखा जाता। अर्थात् मुफ़्त में मिली चीज की विशेष परख नही की जाती।

दाना खाई आपन, लोग कहै दरिदरी—

अन्न तो अपना खाता हूं किंतु लोग कहते है कि दरिद्र है।

दाना ना घासि दूनो, जूनि खरहरा—

(घोडे को) दाना न घास किंतु दोनों वक़्त खरहरा (मालिश)।

दालि भात में ऊँट के ठेहुन—

स्पष्ट है।

दिदिआ दुलार कइली, पीठि पर अंगारी धइली—

जीजी ने दुलार किया तो पीठ पर अँगार रख दिया।

दिन भर डग डग, राति भर ठक ठक—

दिन भर घूमना है और रात को काम करना।

दिन भरि के भूलल साँझि का घरे चलि आवे, त ऊ भुलाइल ना कहाइ—

दिन भर का भूला यदि शाम को घर चला आवे तो उसे भूला नही कहा जाता।

दिन भरि माँगी त सवे सेर, एक छन माँगी त सवे सेर—

दिन भर माँगता है तो भी सवा सेर और एक क्षण माँगता है तो भी सवा सेर। जिस के भाग्य में जो होता है वही मिलता है।

दुइ नाव पर चढ़ल, छाती फाटि के मरल—

दो नावों पर चढ़ना (दोनों पक्ष लेना) छाती फाड़ कर मरना (अपनी दुर्दशा करना) है।

दुइ लबारे दइबे साखी—

दो झूँठ बोलने वाले इकट्ठा हो तो उन का ईश्वर ही साक्षी है।

दुखिया के घर जरे, सुखिआ पीठि सेंके—

दुखिया का घर जलता है और सुखिया (सुखी) पीठ सेंकने (आग तापते) हैं

दुधार गाइ के दूगो लातो भला—

दूध देने वाली गाय की दोलत्ती भी अच्छी।

दुसाधे का खोभारी कहीं गाँव बसेला—

भला कहीं दुसाध (जाति विशेष, जो सूअर पालती है) के खोभारी (सूअरी के बाड़े) मे गाँव बसता है? खराब स्थान पर गाँव बसाने पर कहते हैं।

दूध के जरल मठो फूँकि फूँकि पिएला—

दूध से जला मट्ठा भी फूँक फूँक कर पीता है।

दूनो लोक से गइलें पांड़े, हलुआ मिले ना मांड़े—

पांडेय दोनों लोक से गए, न तो हलुआ ही मिलता है न मांड ही।

दूर के ढोल सोहावन—

दूर का ढोल सुहावना मालूम होता है।

देउकुरि गइले दूना दुख—

भूत-पिशाच की बाधा छुड़ाने के लिए लोग प्रायः देवस्थान में जाते हैं, किंतु देवस्थान के ओझा प्राय. भूत-पिशाच की बाधा न रहने पर भी झूठ-मूठ कह देते हैं कि प्रेत-बाधा है; अतएव लोकोक्ति में कहते हैं कि देवस्थान पर (दुःख छुड़ाने की इच्छा से) जाने पर दुःख दूना हो जाता है।

देखली ना सुनली, सखरजि हो गइली—

उस स्त्री को न तो देखने का और न पुराने लोगो से सुनने का ही अवसर मिला कि दानशीलता क्या वस्तु है, फिर भी वह दानशील बन गई।

देखे के नन्हींमु के, आवे पाँचो पीर—

कद की तो बहुत छोटी है, परंतु पाँचो पीर शरीर पर आते हैं। अर्थात् देखने में भोली-भाली है परंतु प्रपंच से भरी हुई है।

देखे के ना ओखे के, बथे के आरा—

अपनी अंधी आँख को लक्ष्य कर के कोई कह रहा है कि देख तो सकती नहीं, किंतु व्यर्थ में दर्द बहुत करती है।

देवलोक से गइलें देऊ, सुनति कराव(अ) भा द जनेऊ—

अंतर्कथा—एक पंडित जी जिन का नाम देऊ था एक दिन किसी स्त्री के लड़के का

यज्ञोपवीन कराने गए। उन्हो ने स्त्री से पूछा 'यज्ञोपवीत दे न ?' उस ने जवाब दिया, 'इस का बाप तो मुसलमान था पर, मैं हू हिंदू, अब आप जैसा चाहें करें।' इस पर पंडित जी घबराए। उन्हो ने कहा 'मेरा तो देवलोक--धर्म--गया; चाहे तुम इस की सुन्नत कराओ चाहे यज्ञोपवीत कराओ।'

देसी घोड़ी मरहठी चाल--

देसी घोड़ी और चाल महाराष्ट्र देश की। बेमेल काम करने वालों पर कहा जाता है।

देहीं पर लत्ता ना, पान खाइ अलबत्ता--

देह पर वस्त्र नही लेकिन पान जरूर खाते हैं।

देही बार ना तीनि पाव के छूरा--

देह (शरीर) में बाल नही और रक्खे हैं तीन पाव का छूरा।

दोसरा के काटल, ना सॉप के फुफुकारल--

दूसरे जंतुओं का काटना और सॉप का केवल फुफकारना बराबर होता है।

दोसरा के सिर कद्दू बरोबरि--

दूसरे का सिर कद्दू बराबर। दूसरों की परवा न करने पर कहते हैं।

धन मधे कठवति, बंस मधे फूफू--

धन में तो एक कठवति बची है, और वंश में केवल बुआ। संपत्ति और वंश के नष्ट हो जाने पर कहते हैं।

धर्मो छूटल, तुम्मो फूटल--

धर्म भी छूटा और तुंबा भी फूटा।

धरम करे में जो होखे हानि, तबो ना छोड़ीं धरम के बानि--

यदि धर्म करने में हानि भी हो तो धर्म करना न छोड़ना चाहिए।

धाइ के चलबि ना, हारि के गिरबि ना--

न तो दौड़ कर चलूंगा, न हार कर गिरूंगा।

धान के देस पुआरे से चिन्हाला--

धान का देश पुआल से ही पहचाना जाता है।

धूआं, धूरि, बिटप रहें जहँवा, बैल पचीस बरिस जिये तहवां--

धूआं धूल और वृक्ष जहां रहें वहां यदि बैल रहे तो पच्चीस वर्ष जीवित रहे

धोबी के कुकुर ना घर के ना घाट के—

धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का।

धोबी धोवे, पिआसे मुए—

धोबी (पानी में ही) धोता है और प्यास के मारे मरता है।

धोबी बसि के का करे दिगंबर के गाँव—

दिगंबर (नंगे रहने वालों) के गाँव में बस कर धोबी क्या करेगा ?

धोबी से पार ना पाई गदहा के कान अँइठीं—

धोबी से पार न पाकर गधे का कान उमेठना, अर्थात् दूसरे का रोष दूसरे पर उतारना।

नइहर खइली, सासुर खइली, ठूँठ कइली पीपर; इहे कुलदीपा आवतारी हाथ लिहले मूसर—

(जिस ने) नैहर और ससुराल का सर्वनाश किया, पीपल को बिना पत्तों वाला किया वही कुलदीपा हाथ में मूसल लिए आ रही है। अत्यंत झगड़ालू स्त्री के संबंध में।

नई जवानी माँझा ढील—

जवानी में ही कमर का झुक जाना। जवानी में बुढ़ापे की तरह आचरण करने पर कहते हैं।

नई धोबिनिया आइलि, लुगरिया साबुन लसलसि—

नई धोबिन आई तो चिथड़ों में भी साबुन लगाने लगी।

नउआ का नव बुधि, ठकुरवा कों एके—

नाई को नौ बुद्धि किंतु ठाकुर को एक ही होती है। अर्थात् ठाकुर की एक ही बुद्धि इतनी प्रबल होती है कि वह नौ बुद्धि वाले नाई पर शासन करता है। साधारण आदमी के सयानापन दिखलाने पर कहते हैं।

नउआ का बराती सभे ठाकुरे ठाकुर—

नाई की बारात में सब ठाकुर ही ठाकुर होते हैं।

नउआ देखि हजामति बाढ़े—

नाई को देख कर हजामत बढ़ जाती है। किसी वस्तु को देख, उस की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है

नदी नाव संजोग—

संयोगवश नदी मे नाव पर मुलाकात हो जाना। जिस के मिलने की कभी आशा न हो उस का मिल जाना।

नरको में ठेला ठेली—

नरक मे भी ठेला-ठेली? निकृष्ट वस्तु को स्वीकार कर लेने पर भी कष्ट होने पर कहते हैं।

नव के लकड़ी नब्बे खरच—

स्पष्ट है।

नव नगद ना तेरह उधार—

स्पष्ट है।

नव सइ चूहा खाइ के बिलारि भइली भगतिनि—

नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली भक्तिन हुई। अनेक पाप करने पर भलाई में लगने वाले पर कहते हैं।

नहट देवता के भरभहट पूजा—

नष्ट देवता की भ्रष्ट पूजा। जैसे को तैसा।

नॅाया गँजेड़ी बँड़ेरी पर धूँआँ—

नया गँजेड़ी बहुत ऊँचे तक धुआं फेंकता है।

नॅाया जोगी गॅाजॅारा के संख—

नया जोगी गाजर की शंख।

ना कइलीं नइहरे सुख, ना देखलीं पिआ के मुख—

न तो नैहर में सुख किया न प्रियतम का मुख ही देखा। किसी परिस्थिति में सुखी न रहने पर कहते हैं।

ना खॅड़रिचि का गोड़े लागे के, ना ढेले फेंके के—

न तो खंजन के पैरों पडना चाहिए और न तो उसे ढेले ही मारना चाहिए।

ना खाइबि ना खाए देबि, सगरे घरे छींटि देबि—

न खायेंगे न खाने देंगे, सारे घर में फैला देंगे।

(शेष अगले अंक में)

समालोचना

समाज के स्तंभ (नाटक)---मूल-लेखक हेनरिक इब्सन। अनुवादक, श्री लक्ष्मी-नारायण मिश्र। प्रकाशक, भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य १)

गुड़िया का घर (नाटक)---मूल-लेखक हेनरिक इब्सन। अनुवादक, श्री लक्ष्मी-नारायण मिश्र। प्रकाशक, भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य १)

आधुनिक हिंदी नाटचसाहित्य इतना संपन्न नही कि वह विदेशी नाटचकारो की कृतियों की उपेक्षा कर सके। बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि पाश्चात्य नाटच-साहित्य की उत्तम उत्तम रचनाओं को हिंदी मे प्रस्तुत किया जाय। इस मे संदेह नही कि नाटच-व्यवस्था की दृष्टि से हमें बहुत कुछ पश्चिमी नाटकों मे सीखना है। इस दिशा मे कुछ काम हिंदुस्तानी एकेडेमी और अन्य प्रकाशकों ने भी किया है, लेकिन फिर भी यह क्षेत्र अछूता ही कहा जायगा। इस दृष्टि से भारती-भंडार के इन दो प्रकाशनों का स्वागत होना चाहिए।

हेनरिक जोहान इब्सन (१८२८-१९०६) नार्वे का निवासी और, कवि तथा नाटचकार दोनों ही था। विशेष ख्याति उस ने नाटक के क्षेत्र में ही पाई। यूरोप के उन्नीसवी सदी के साहित्यिकों में उस की बड़ी धाक थी और यूरोप की सभी भाषाओं में उस के नाटकों के अनेक अनुवाद और रूपांतर मिलते हैं। उसे नाटचमंच की आवश्यकताओं का विशेष ज्ञान था क्योंकि बर्जेन के थियेटर के प्रबंधको में यह बहुत समय तक रहा है। राजनीति और सामाजिक प्रश्नों में उस की गहरी अभिरुचि थी और यह प्रश्न उस की रचनाओं में भिन्न भिन्न समस्याओं के रूप में बार बार उठते हैं। इसी से बहुत से आलो-चकों ने उसे समस्या-नाटको का प्रवर्तक बताया है। बर्नर्ड शा उस की कृतियों पर विशेष रूप से मुग्ध रहा है और उस से प्रभावित भी बहुत रहा है। यहां तक कि शा ने इब्सन को नाटच-रचना मे शेक्सपियर मे बड़ा माना है। ऐसे नाटचकार की रचनाओं के हिंदी अनुवाद की आवश्यकता सिद्ध करना व्यर्थ है। जो दो नाटक अनुवाद के लिए चुने गए

है, दोनों ही बहुत विख्यात हैं और इब्सन की रचनाओं में विशेष स्थान रखते हैं।

'समाज के स्तंभ' सन् १८७७ में प्रकाशित हुआ था, और इस के संबंध में यह कहा जाता है कि इस का शीर्षक, इब्सन के इस वर्ष के अनंतर प्रकाशित होने वाले सभी नाटकों के लिए लागू हो सकता है। इब्सन के विचारों में दो विचार प्रधान रहे हैं। एक तो उस ने व्यक्ति की महत्ता पर विशेष जोर दिया। उस ने बताया है कि यदि हम वास्तव में एक सस्कृत समाज की भविष्य में आशा करते हैं तो हमें व्यक्तियों को स्वतंत्र विकास का अवसर देना चाहिए। दूसरे यह कि संसार में जो सब से बड़ी ट्रैजेडी या दुर्घटना हो सकती है वह है किसी व्यक्ति का प्रेम से वंचित रहना। इन दो मूल मतव्यों के आधार पर, चरित्रों के उलट-फेर में उस के प्रायः सभी नाटक रचे गए हैं।

'गुड़िया के घर' में जो १८७९ की रचना है, हमें इब्सन की शैली का उत्कृष्ट उदाहरण मिलेगा। अनेक आलोचकों ने स्वीकार किया है कि इस नाटक में हमें इब्सन के व्यक्तित्व-संबंधी सिद्धांत का सर्व-प्रथम दृढ़ निदर्शन मिलता है। जिस समय यह नाटक लिखा गया, उस समय इब्सन व्यक्ति और समाज के बीच में होने वाले संघर्ष के प्रश्न में दिलचस्पी ले रहा था। इस नाटक में उस ने अपने मत के प्रतिपादन के लिए एक स्त्री-पात्र चुना है। इस से यह न समझना चाहिए कि उस ने स्त्रियों की स्वतंत्रता संबंधी आंदोलन के समर्थन में यह रचना लिखी। इस का रहस्य केवल इतना है कि उस ने यह समझा कि स्त्रियां जीवन पर जिस प्रकार से व्यक्तिगत रूप से दृष्टि डालती हैं, उस प्रकार पुरुष नहीं।

वास्तव में इस नाटक में दो प्रसंग अलग अलग चलते हैं। एक वह जिस के परिणाम-स्वरूप नोरा इस बात का अनुभव करती है कि उस ने इतने वर्ष एक अपरिचित व्यक्ति के सहवास में बिता दिए। दूसरा और विशेष महत्व का प्रसंग वह है जिस में तोवल्त के विषय में यह दिखाया गया है कि प्रेम-संबंधी अपराध की अपेक्षा वह समाज-संबंधी अपराध को बहुत महत्व देता है। विशेष कर 'गुड़िया के घर' शीर्षक नाटक में हम इब्सन की शैली तथा विचार-धारा दोनों से ही अच्छा परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

चरित्र-चित्रण में इब्सन ने जो यथार्थता उपस्थित की है उस की प्रशंसा में तो अनेक ग्रंथ रचे जा चुके हैं।

अनुवादक श्री मिश्र जी स्वयं हिंदी के सफल हैं

अनुवाद के क्षेत्र में यह उन का प्रथम प्रयास है। कदाचित् इसी कारण अनुवाद की भाषा मे वह स्वाभाविकता नही आ पाई है जिस की हम अपेक्षा कर सकते थे। फिर भी उन का प्रयास स्तुत्य है। हम आशा करते है कि अगले संस्करण मे मिश्र जी भाषा में और परिमार्जन कर लेगे। अनुवाद मूल भाषा से न हो कर अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर हुआ है।

रा० द०

तारीख़ इलाहाबाद (उर्दू)—जिल्द १—लेखक, मौलवी सैयद मक़बूल अहमद समदनी। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०। मूल्य ४)

मौलवी मकबूल अहमद साहब अरबी-फ़ारसी के विद्वान् तथा बड़े साहित्य-प्रेमी है। आप ने कई छोटी-बड़ी पुस्तकें उर्दू में लिखी है, जिन का विषय अधिकाश जीवन-चरित तथा इतिहास है। आप जिला फर्रुखाबाद के निवासी हैं, पर इलाहाबाद से आप का अगाध प्रेम मालूम होता है, जिसे इस पुस्तक में कई स्थलों पर कहीं गद्य और कही पद्य मे प्रकट किया गया है।

प्रयाग का कोई क्रमबद्ध पुराना इतिहास उपलब्ध नहीं है। अलबत्ता उस की बहुत-सी सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई है। अत. योग्य लेखक ने अनेक पुस्तकों की छान-बीन कर के इस इतिहास की रचना की है। पुस्तक गद्य में है पर बीच-बीच में फारसी-उर्दू के सैकड़ों पद्य उद्धृत हुए हैं। शैली कुछ पुराने ढंग की मौलवियाना और भाषा साधारण उर्दू से कुछ क्लिष्ट फ़ारसी-अरबी शब्दों से मिश्रित है।

पुस्तक का मुख्य विषय 'खुसरो' तथा 'खुसरोबाग' ही है। कारण यह है कि इस में खुसरो तथा उस के परिवार और संबंधियों का वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ लिखा गया है, यहां तक कि उस की माता के ब्याह तथा उस के जन्म के अवसर पर मीरासिनों ने जो गीत गाए थे वह भी लिख दिए गए हैं। ऐसे ही खुसरो बाग़ की इमारतों के एक एक कोने की नाप-जोख और उस के रूप आदि का विशद वर्णन है। इन दोनों की सामग्री ने लगभग सारी पुस्तक घेर ली है, जिस के कारण इस को 'तारीख़ इलाहाबाद' के स्थान पर 'तारीख़ खुसरो' कहना अधिक सार्थक होगा।

'प्रयाग' शब्द का अर्थ कुछ अशुद्ध और कुछ शुद्ध लिख कर 'इलाहाबाद' और 'इलाहाबास' के नामकरण पर विचार किया गया है। कई प्रमाण इस के भी दिए गए है कि क़िला बनने से पहले प्रयाग की आबादी मौजूद थी' मालूम नहीं इस से किस को

इन्कार है ? अलबत्ता यह प्रसंग जो उठाया गया है कि 'अकबर ने बिना किसी मदिर को तोड़े क़िला बनवाया था' ऐतिहासिक दृष्टि से संदेहात्मक है।

सातवी शताब्दी में ह्वेनसांग ने उस स्थान पर, जहां किला बना है, एक देव-मदिर और बटवृक्ष देखा था (बील्स, 'बुधिष्ट रेकर्ड्स' जिल्द १, पृ० २३०-३१)। वह वृक्ष (अक्षयबट) और मदिर किला बनने से पहले तक अकबर के समय मे मौजूद था, जिस की चर्चा बदायूनी ने 'मुतखबुल् तवारीख' (खंड २, पृष्ट १७६) पर की है। फिर वह मदिर और वृक्ष यदि नष्ट नही किए गए तो क्या हो गए ? और बिना उन के हटाए क़िला क्योंकर बन गया ? अलबत्ता उस की मूर्तिया एक तहखाने में बंद कर के रख दी गई थी। पीछे किसी समय उस का द्वार खोल दिया गया और उस में वे मूर्तियां अब तक मौजूद है।

इस पुस्तक मे मुसलमान बादशाहों के पक्षपात-रहित होने की भी कुछ विस्तार के साथ विवेचना की गई है, और उस का प्रमाण यह दिया गया है कि उन्हों ने अपनी हिंदू स्त्रियों को धर्म-परिवर्तन के लिए विवश नही किया था। इस के सिलसिले में योग्य लखक ने मुईज़ुद्दीन साम से लेकर फ़र्रुखसियर तक जितने बादशाहों ने हिंदू राजाओ की लडकियों से व्याह किए थे, उन सब की एक सूची बना कर लिख दी है, जिस का सबध प्रयाग के इतिहास से कुछ भी नहीं मालूम होता। खुसरो की मां शाहबेगम का तो एक नही अनेक स्थलों पर जहां कहीं नाम आया है 'राजकुमारी', 'राजदुलारी', 'भगवानदास की बेटी', 'मानसिंह की बहन', लिख कर परिचय दिया गया है। यह भी दिखलाया गया है कि बादशाहों ने परस्पर मेल-मिलाप के लिए राजाओ से ये नाते-रिश्ते किए थे, जो सर्वथा निर्मूल हैं। सच्ची बात तो यह है शाहशाहियत को सुदृढ़ करने तथा पराजित और अधीन राजाओं की मान-मर्यादा भंग करने के लिए ऐसा किया गया था। मालूम नहीं किन परिस्थितियों से विवश होकर उन लोगो ने ऐसा बेमेल संबंध स्वीकार किया था। अब इन गडे मुर्दो को उखाड़ कर रखने से इस पुस्तक के साथ कोई संगति मालूम नहीं होती, बल्कि राजपूत नरेशों की हीनता तथा क्षुद्रता का ही प्रदर्शन होता है, जिस को बहुत उभार कर लिखा गया है।

इन विवादास्पद बातों को छोड़ कर, निस्संदेह, खुसरो और खुसरोबाग़ के संबध मे इस पुस्तक में मौलवी साहब ने जितनी सामग्री एकत्रित की है वह किसी एक पुस्तक म

पाई नहीं जाती, अतः इस के लिए उन का परिश्रम सराहनीय है।

पुस्तक मे लेखक के चित्र के अतिरिक्त दो रंगीन और कई सादे चित्र तथा खुसरो बाग़ के मक़बरों के धरातल के कुछ मानचित्र भी हैं। काग़ज़ और छपाई (लीथो) साधारण है और कपड़े की जिल्द बँधी हुई है। मूल्य कुछ अधिक मालूम होता है।

शालिग्राम श्रीवास्तव

कामुक—अंग्रेजी कवि जॉन मिल्टन के 'कोमस' का पद्यानुवाद। अनुवादक, चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र, बी० ए०। प्रकाशक, नवयुग पुस्तक-भंडार, इलाहाबाद। मूल्य १।)

किसी भाषा की उत्कृष्ट कविता को दूसरी भाषा के पद्य में प्रस्तुत करने का प्रयास साधारणतः एक दुःसाहस है। महाकवि मिल्टन के प्रसिद्ध दृश्यकाव्य 'कोमस' के अनुवाद का काम उठा कर चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र जी ने अपने ऊपर एक कठिन भार ग्रहण किया। निस्संदेह हिंदी पाठक उन के ऋणी होंगे कि उन्हों ने मिल्टन की रचना का हिंदी मे रसास्वादन कराया। कथा की रोचकता तो सभी स्वीकार करेंगे। अनुवाद में बहुत स्थलों पर ऐसा प्रवाह है जिस की अपेक्षा हम मौलिक रचना में ही कर सकते हैं। परंतु हमें अनुवादक के भाषा-संबंधी विचारों पर आपत्ति है। किसी एक शैली का आधार न लेकर उन्हों ने अपनी भाषा को ब्रजभाषा, अवधी तथा खड़ी बोली का अजीब मिश्रण बना लिया है। अपनी शैली के समर्थन में अनुवादक महोदय 'प्राक्कथन' मे लिखते हैं कि—"भारतीय जिह्वा के लिए जैसी आदरणीय, पुनीत 'ब्रजभाषा' है उसी तरह रामचरितमानस की 'अवधी' भी है; एवं 'खड़ी बोली' इत्यादि सभी का सम्मिश्रण जब तक भाषा मे न पाया जावेगा वह स्वाभाविक प्रौढ़ता न पा सकेगी।' स्पष्ट है कि यह तर्क सर्वमान्य नहीं हो सकता और अनुवादक की भाषा 'प्रौढ़ता' प्राप्त कर सकी है यह संदेहात्मक है। अनुवाद के विषय में सिद्धांत-रूप में एक आपत्ति और की जा सकती है। वह है मूल नामों का भारतीय करण। आलोचकों ने इसे अधिकांश स्वीकार कर लिया है कि ऐसा करने से मूल कथा के वातावरण का नष्ट होना संभावित है। फिर भी हम मिश्र जी को उन के प्रयास पर बधाई देते है।

रा० ट०

अग्निपूजक तथा अन्य कहानियाँ—लेखक, श्री केशवदेव शर्मा। प्रकाशक, भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य १)

इस संग्रह की छः कहानियो मे से पॉच तो अंग्रेज़ी कवियों के प्रबधकाव्यो को लेकर लिखी गई हैं, और एक कहानी महाकवि शेक्सपियर के 'ओथेलो' नामक दुःखात नाटक के आधार पर है। उपर्युक्त प्रबंधकाव्यों में दो टेनिसन के है, अर्थात् 'इनोक् आर्डन', और 'डोरा'। इन के भावानुवाद 'त्याग' और 'कुमारी' शीर्षक दे कर हुए हैं। 'वनदेवी' शीर्षक मे सर वाल्टर स्काट कृत 'लेडी अव् दि लेक' का रूपातर प्रस्तुत किया गया है। बाइरन कृत 'पैरीसीना' का अनुवाद 'अपराधी' शीर्षक है। जिस कहानी ने पुस्तक को शीर्षक दिया है वह है टामस मूर कृत 'फायर वर्शिपर्स'। सभी कहानियां अंग्रेज़ी साहित्य मे प्रख्यात और प्रिय मानी जाती है। श्री केशवदेव शर्मा ने इन कथानकों से हिंदी साहित्य प्रेमियों का परिचय करा कर एक ऐसी सेवा की है जिस का आदर होना चाहिए। बहुधा ऐसा होता है कि अंग्रेजी और अन्य भाषाओं की कथाओं का रूपातर करते समय लेखक मूल नामों का भारतीयकरण कर लेते हैं। यह प्रथा आपत्तिजनक है; एक प्रकार से इस मे मूल कथा का वातावरण नष्ट हो जाता हैं। शर्मा जी ने मूल नामो को बनाए रख कर एक सिद्धांत की रक्षा की है, और इस उदाहरण का अनुकरण होना चाहिए। विदेशी नामों को बनाए रखते हुए भी कथा हिंदी पाठकों के लिए किस प्रकार रोचक बनाई जा सकती है इस का नमूना इस पुस्तक मे मिलेगा। पुस्तक की भाषा सर्वत्र सरल, सुरुचिपूर्ण, मुहावरेदार और सुदर है और पढ़ते समय मूल का आनद देती है। हम पुस्तक का हृदय से स्वागत करते हैं।

रा० ट०

क्रांति-चक्र—मूल-लेखक, कर्नल टी० एफ़० ओडनल। अनुवादक, श्री राधे-श्याम शर्मा, एम्० ए०। प्रकाशक, भारती-भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। मूल्य १।)

कुछ समय हुए इलाहाबाद के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'लीडर' में मेरठ कॉलिज के प्रिंसिपल कर्नल टी० एफ़० ओडनल की एक उपन्यास 'ह्वील्स अव् रिवोल्यूशन' धारा-वाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिंदी रूपांतर है।

हमें इस उपन्यास में भारतीय समाज के उस अंश का विशेष रूप से चित्रण मिलता है जिस का सपर्क यूरोपीय अफ़्सरों से बहुधा होता है यह सपर्क अपने स्वतत्र मनोवैज्ञा

निक पहलू उपस्थित करता है, और उस का अध्ययन मनोरंजक है। हम इसे स्वीकार करते हैं कि पुस्तक भावुकता और सद्भावना से लिखी गई है, फिर भी इस की स्वाभाविकता हमें मान्य नहीं। कथा में अनेक स्थलों पर कृत्रिमता का आभास मिलेगा। अनुवाद संदर हुआ है। प्रश्न केवल यह उठता है कि यदि अनुवाद करने में इतनी योग्यता और समय लगाया जाय तो ऐसी पुस्तक भी अनुवाद के लिए क्यों न चुनी जाय जो अपने साहित्य में आदरणीय हो। कर्नेल ओडनल की पुस्तक का स्थान इस दृष्टि से संदिग्ध है।

रा० ट०

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर राम सिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १।) सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४) ; सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥) ; सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥) ; सादी जिल्द ४)

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)— लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥) ; सादी जिल्द ५)

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्० । सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६) ; कपड़े की जिल्द ६॥)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २) ; सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १)

(२७) राजस्व —लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५)

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥) ; कपड़े की जिल्द ५)

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम्० ए० । अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० । मूल्य १)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

सौर-परिवार

[लेखक—डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक

७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र

(जिन में ११ रंगीन हैं)

इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

"इस ग्रंथ को अपने सामने देख कर हमें जितनी प्रसन्नता हुई उसे हमीं जानते हैं। * * जटिलता आने ही नहीं दी, पर इस के साथ साथ महत्वपूर्ण अंगों को छोड़ा भी नहीं। * * पुस्तक बहुत ही सरल है। विषय चक बनाने में डाक्टर गोरखप्रसाद जी कितने सिद्धहस्त हैं, इस को वे तो खूब ही जानते हैं जिन से आप का परिचय है।

पुस्तक इतनी अच्छी है कि आरंभ कर देने पर बिना म किए हुए छोड़ना कठिन है।"—सुधा।

"The explanations are lucid, but never, so far as I seen, lacking in precision. * * I congratulate you on excellent work."

श्री० टी० पी० भास्करन, डाइरेक्टर, निजामिया वेधशाला

मूल्य १२)

नी एकेडेमी,

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

जूलाई, १९३६

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, जुलाई, १९३९

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४ -सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ९ } जूलाई, १९३९ { अंक ३

'रियाज़' की कविता

[लेखक—प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा, एम्० ए०]

'रियाज़' ख़ैराबादी पुरानी शैली के उर्दू कवियों में एक प्रमुख स्थान रखते थे। 'पुरानी शैली' मैं इस लिए कह रहा हूं कि आज के पाठकों को उन की रचनाएं रूढ़िवद्ध, बनावटी और समय की गति से पिछड़ी हुई जान पड़ेंगी। यह खेद की बात है कि उन का 'दीवान' अब से बहुत पहले न प्रकाशित हुआ। तीस वर्ष पूर्व यह हाथोंहाथ लिया गया होता। उन के अनेक प्रशंसक और शिष्य थे। यह लोग उन के वाक्यविन्यास से परिचित थे। 'रियाज़' जिन मुहावरों का उपयोग करते थे, उन्हीं को ग्रहण करने के लिए यह लोग उत्सुक रहते थे। जिन विषयों को लेकर वह कविताएं रचते, वह विषय अब भी लोगों मे रससंचार कर सकते थे। जिन प्रतीकों को उन्हों ने अपनाया था, वह उस समय निर्बल नही पड़े थे। वह ऐसे जीवन-तल का कोमल स्पर्श कर रहे थे, जोकि अतीत की वस्तु नहीं बना था। परंतु जीवित रहना कुछ परिस्थितियों को पार कर जाना है; और जिस समय तक 'रियाज़' अपनी यात्रा के अंत तक पहुंचे, उस समय तक लोगों के स्वप्नों के भाव बदल चुके थे, परंपरागत कल्पनाओं का त्याग किया जा रहा था जातीयता कविता का साधारण विषय बन गई थी

और उन लोगो के विरुद्ध जो पुराने रूपो और भावो में घिरे हुए थे विरोध उत्पन्न होना आरंभ हो गया था। यह कहा नही जा सकता कि उर्दू कविता का आज का पाठक 'रियाज़' का विशेष आदर भी करेगा। अनेक प्रकार से यह खेद की बात है, क्योंकि इस में संदेह नहीं कि जिस क्षेत्र तक उन्हो ने अपने को सीमित रक्खा उस में वह उस्ताद थे। कवि अपने लिए जो नियत्रण लगाता है और जो आदर्श वह ग्रहण करता है, उन से समालोचकों को संतुष्ट होना चाहिए। जैसा भी वह है, उस से भिन्न न हो सकने में उस का दोष नही; जो कुछ वह लिखता है, उसे लिखने के लिए वह अपनी परिस्थिति के कारण विवश है। समालोचकों को केवल इस बात का अधिकार है कि वह पूछे कि—उस की कृति में क्या स्थायी अंश है? क्या उस की कविता का सबोधन सनातन मनुष्य के प्रति है? कहां तक वह कविता मानव-प्रकृति, मनुष्य, और मनुष्य के मन से बाहर के जगत के आधारभूत, अभिन्न, और मार्मिक तत्वो का वर्णन करती है? अथवा, क्या वह केवल युग का अनोखापन लिए हुए है, साहित्यिक कौतूहल की वस्तु है, और ऐसी रचना है जिस का वास्तविक मूल्य नही, जो केवल ऐतिहासिक मनोरंजन की वस्तु है? प्रत्येक लेखक जिस प्रकार अपना निजत्व रखता है, उसी प्रकार, वह अपने युग द्वारा निर्मित व्यक्ति भी होता है। परंतु प्रत्येक बड़े लेखक में इस से कुछ विशेषता होती है। वह अतीत और वर्तमान के प्रभाव से निर्मित होते हुए भविष्य का सूचक होता है। वह अपना ही नही वरन् मनुष्य-मात्र का प्रतिनिधित्व करता है। यही कसौटी है। इस पर 'रियाज़' कैसे उतरते है, यह देखना है।

* * *

'रियाज़' सीतापुर ज़िले के खैराबाद क़स्बे के रहने वाले थे; इन्हों ने, अपनी लोकयात्रा पुलिस अफ़सर के रूप में आरंभ की। लेकिन इस नीरस वृत्ति को छोड़ने के अनतर वह पत्रकार के धंधे में लगे। उन के गद्य लेखों ने दूर-दूर तक लोगों का ध्यान आकर्षित किया और वह बड़ी दिलचस्पी से पढे जाते थे। गद्य में उन्हों ने दो उपन्यासों की रचना की। वह अमीर मीनाई के शिष्य हो गए, जैसा वह कहते है:-

मस्ते मीना हूं, पिया है मैं ने—
जाम अमीर अहमदे मीनाई का।

'मीर' 'अमीर' मीनाई, और 'मसहफ़ी' को वह अपना उस्ताद मानते थे। उन के संबंध में कुछ हवाले इस प्रकार हैं:—

अब कहां शुस्ता ज़बां 'मीर' की अफ़सोस 'रियाज़',
'मीर' का रंगे तग़ज़्ज़ुल भी गया 'मीर' के साथ।

कुछ कुछ है 'रियाज़', 'मीर' का रंग;
कुछ शान है हम में 'मसहफ़ी' की।

उठती है अब जहां से 'मीर' की तर्ज़,
कि 'रियाज़' अब यहां से उठता है।

हैदराबाद के निज़ाम, और महाराजा किशन प्रसाद ने इन की सहायता के प्रस्ताव किए, परंतु वह महाराजा साहब महमूदाबाद के आश्रय से संतुष्ट रहे। महाराजा साहब के संबंध में हमें 'रियाज़' की कविता में बहुधा प्रशंसात्मक वचन मिलेंगे, और इन में 'रियाज़' ने अठारहवीं सदी के कवियों की भाँति अपने आश्रयदाता की सराहना की है:

कहने को हमारे भी हैं अशआर बहुत ख़ूब;
सच यह है कि फ़रमाते हैं सरकार बहुत ख़ूब।

ज़ौफ़े पीरी से 'रियाज़' अब नहीं उट्ठा जाता;
गाहे माहे कभी जा रहते हैं सरकार के पास॥

मेरी अफ़सूंतराज़ी की 'रियाज़' इतनी जो शोहरत है;
सबब यह है कि 'साहिर' सा मिला है क़द्रदां मुझ को।

'साहिर' स्वर्गीय महाराजा महमूदाबाद का तख़ल्लुस था।

*　　*　　*

साहित्य का इतिहास बड़े मनोरंजक ढंग से इस बात पर प्रकाश डालता है कि लोगों का विचार इस संबंध में बदलता रहा है कि क्या बातें गुप्त रखनी चाहिएं और किन बातों को प्रकट करना उचित है। रुचियां बदलती रहती हैं। आज जिस उक्ति को हम कुरुचिपूर्ण और आपत्ति-जनक समझते हैं संभवत: कल उसी की यथार्थवाद के नाम से प्रशंसा की जाय। आधुनिक कविता, उपन्यास और कला ने मिल कर अनेक पुराने बंधनो को तोड़ दिया है, और कितने ही विषयों में हमारे मौनभाव को भंग कर दिया है। परंतु यद्यपि विक्टर ह्यूगो ने कहा था कि कविता के लिए अच्छे और बुरे विषयों का भेद नहीं हो सकता फिर भी यह सत्य है कि विचारों के प्रकाशन के ढंग जो एक पीढ़ी में प्रचलित होते हैं वह दूसरी पीढ़ी में बदल जाते है, बल्कि अप्रिय प्रतीत होने लगते हैं। यह केवल शैली या छंदों के नियम का प्रश्न नहीं है। तीस या चालीस वर्ष पहले मुशायरों में जो शेर खुले रूप से पढ़े जा सकते थे, उन्हें सुन कर आज लोग कान बंद कर लेंगे। 'अकबर' जैसे कवि की भी बहुत-सी पंक्तियां हमारे आधुनिक रुचि के लिए प्रिय न होंगी। 'रियाज' में भी ऐसी पंक्तियां हैं जिन के सुरुचिपूर्ण होने में बड़ा संदेह है। जब वह युवा थे—प्राय: ७० वर्ष पहले—उस चुने हुए दायरे में जिस में उर्दू कविता पढ़ी और सुनी जाती थी, इन का कलाम पसंद किया जाता था। आज उस से पढ़ने वाले प्रसन्न नहीं हो सकते।

नासेह के सर पर एक लगाई तड़ाक से;
फिर हाथ मल रहे हैं कि अच्छी पड़ी नहीं।
शामे शबे विसाल मेरी बेक़रारियां;
उन का दबी ज़बान से कहना अभी नहीं।

हम लाख पारसा के एक पारसा सही;
मौक़े से तुम को पाएं तो बतलाओ क्या करें ?

जो बेहिजाब कहीं सीना ताने जाते हैं;
खुले खज़ाने वह जोबन लुटाते जाते हैं।

*　　　*　　　*

'मीर' के समय से अब उर्दू कविता बहुत दूर चली गई है। 'ज़हूरी' और 'मीर' जैसे प्रारंभिक कवियों, की भाषा में हिंदी शब्दों की बड़ी मिलावट थी। बाद के कवियों, विशेष कर 'ग़ालिब' और 'नासिख़' के प्रभाव से फ़ारसीपन की ओर अधिकाधिक प्रवृत्ति बढ़ती रही, यहां तक कि क्रियाओं और अव्ययों को छोड़ कर अधिकांश आधुनिक उर्दू वाक्य का कोई भी अंश कदाचित् ऐसा नही जिस का भारत से अथवा किसी भारतीय भाषा से संबंध हो। इस वर्णन मे अत्युक्ति नही, यह नीचे के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा, जो मैं ने अप्रयास ही दो प्रमुख उर्दू पत्रिकाओं से चुन लिए हैं, जो इस समय मेरी मेज़ पर है। मई के 'निगार' के पहले लेख का पहला वाक्य ही इस प्रकार है:

"डाक्टर ज़ाकिर हुसेन कमिटी ने जो निसाब तालीम 'हिंद जदीद' के लिए तजवीज किया है वह अपने मक़ासिद के लेहाज से इतना बलंद है कि इस की मुख़ालिफ़त का (जिस हद तक अगराजो मकासिद का सवाल है) किसी तरफ से इमकान नहीं, लेकिन हुसूल मकासिद के ज़राए के मुतल्लिक़ वेशक इख़्तिलाफ़ राय है और इस लिए इस वक़्त अहमतरीं सवाल यह है कि हम इस नस्बुल ऐन तक जो वारधा स्कीम के पेशेनज़र है, क्योंकर आसानी से पहुँच सकते हैं।"

दूसरे लेख का पहला वाक्य है:

"गुज़श्ता जंगे अज़ीम दो ज़बर्दस्त इन्क़िलाब पर ख़त्म हुई। एक इन्क़लाबे जर्मनी, दूसरा इन्क़लाबे रूस; लेकिन यह किस क़द्र अजीब बात है कि एक ही ज़रिए से दो पैदा होने वाली चीज़ें आपस में क़ुतुबैन का-सा हुदूद इख़्तिलाफ़ रखती हैं।"

'ज़माना' के पहले लेख का प्रारंभिक वाक्य इस प्रकार है:

"इस में कोई कलाम नहीं कि इक़बाल बहुत बलंदपाया शायर और अज़ीमुल्मरतबात मुफ़क्कर थे. . . बाज़ हज़रात को शायद इस बात के तसलीम करने में पशोपेश हो कि वह उलूमे रूहानी के मुअल्लम, और असरारे बातिनी के हकीम भी थे। और उन्हें रूहानियात की गहराइयां मालूम और रमूज़े मख़फ़ी से बख़ूबी आगाही थी।"

उसी पत्रिका में प्रकाशित एक कविता की प्रारंभिक पंक्तियां भी देखिए

ऐ सरापा सोज़, तस्वीरे जुनूं आशुफ़्ता सर,
पैकरे इश्क़ो मुहब्बत, तप्तए दिल खस्ता जिगर;
इश्क़ का शोला निहां है क़ल्ब सोज़ां में तेरे,
शम्मा यह वह है कि जलती है शबिस्तां में तेरे।

दुर्भाग्य से उर्दू भाषा का यह रूप हो गया है—उसी तरह जिस तरह कि ब्रजभाषा के ह्रास के समय से हिंदी अधिकाधिक संस्कृत की ओर झुकी है। सादे, नित्य की बोलचाल के शब्दों का स्थान कठिन अपरिचित शब्दों ने ले लिया है। किस का कितना दोष है यह निर्णय करना व्यर्थ है। हिंदी और उर्दू दोनों ही के लेखक दोनों के बीच की बढ़ती हुई खाई के लिए समानरूप से दोषी हैं। यह खाई गहरी और वास्तविक है, और राष्ट्रीय कट्टरता से प्रेरित होकर यह कहना पागलपन होगा कि नीचे के दो उद्धरण एक ही भाषा के हैं:

(१) शिलीभूत सौंदर्य, ज्ञान, आनंद, अनश्वर
शब्द शब्द में तेरे उज्ज्वल जड़ित हिमशिखर
शुभ्र कल्पना की उड़ान भव-भास्वर कलरव
हंस अंश वाणी के तेरी प्रतिभा नित नव,
जीवन के कर्दम से, अमलिन मानस सरसिज
शोभित तेरा, वरद शरद का आसन निज,
अमृत पुत्र कवि यशःकाय तव जरामरणजित,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत।
('रूपाभ', अप्रैल)

(२) ख़ुदा जाने तेरी मै किस क़दर कैफ़ आफ़रीं होगी,
नज़र में तेरी जब रंगीनिए सद जाम है साक़ी।
समझते हैं यह बरबादे ख़िरद तेरी, अदाओं को,
भरी महफ़िल में तेरा राज़ तश्तज़ बाम है साक़ी।

निगाह लुत्फ़ अब तो रुशदिए दीवाना पर अपने,
कि मुद्दत से यह नज़रे गर्दिशे अय्याम है साक़ी।
('ज़माना', मई)

'रियाज़' उन उर्दू कवियों में थे जो आवश्यक होने पर हिंदी शब्द का उपयोग करने में संकोच नहीं करते थे। वह 'अज़ीज़' लखनवी की भाँति नहीं थे, जिन्हों ने हिंदी शब्द 'लाज' का अपने दीवान 'गुलकदा' की एक ग़ज़ल में व्यवहार कर के क्षमा-याचना करना आवश्यक समझा। 'रियाज़' के यहां ऐसे हिंदी शब्द बहुतायत से मिलेंगे, जिन्हे छोड़ कर उर्दू भाषा वास्तव में ग़रीब वन गई है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है :

काबा सुनते है कि घर है बड़े दाता का 'रियाज़';
ज़िंदगी है तो फ़क़ीरों का भी फेरा होगा।

आएं मेरी बज़्मे मातम में वह क्या?
हाथ में मेंहदी रची अच्छी नहीं।

हम लें बलाएं ज़ुल्फ़ की वह रात भी तो हो;
आए मज़े की रुत कहीं बरसात भी तो हो।

अद्दू की शबें वस्ल सौ बार सदक़े;
शबे ग़म है कितनी सुहानी हमारी।

बड़ी नटखट बड़ी चंचल है तबीयत मेरी।

बरसात की रुत, लुत्फ़ की है रात मज़े की,
पिलवा दे मुझे पीर ख़राबात मज़े की।

मेरी शम्मए लहद हँसमुख बड़ी है।

मुझ को अरमान, मनाए कोई मेरे दिल को;
उन को यह हठ कि ख़फ़ा है तो ख़फ़ा रहने दो।

हवाए गम खिज़ाँ से वह रंगो रूप कहाँ ?

अब दिल है, 'रियाज़' और न वह दिल की तमन्ना;
मँझधार में हम कश्तिए उम्मीद डुबा आए।

भाषा के संबंध मे लिखते हुए 'रियाज' की परिमार्जित शैली की प्रशंसा करना उचित ही है। भाषा के वह माने हुए उस्ताद हैं। उन की कविता के अन्य गुणों के संबंध मे मतभेद हो सकता है, परंतु यह बात तो स्पष्ट है कि उन का शब्दों पर पूर्ण अधिकार है, मुहावरों का उपयोग बहुत सुंदर ढंग से करते है, और काव्य-रचना शास्त्र में वह अद्वितीय है। वह मुहावरों के बादशाह थे। वाक्य-विन्यास में उन का कौशल सराहनीय है। उन की रचनाओं में हमे शब्दो के व्यवहार मे अनोखापन मिलता है, नवीनता मिलती है। यह कदाचित् उर्दू कविता का दुर्भाग्य है कि उस में केवल शाब्दिक कौशल पर बहुत ज़ोर दिया जाता है। मुशायरों में जिस प्रकार की पंक्तियों की प्रशंसा होती है, और जिस तरह उन का गुणगान होता है, उसे देखते हुए इस के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? कविता के विचार और उस के अंतर्गत कल्पना पर प्रायः कम ध्यान दिया जाता है। नई 'बह्र' के अथवा पुरानी 'बह्र' के नए ढग से व्यवहार पर ध्यान आकर्षित किया जाता है; 'रदीफ़' के कौशल का बखान होता है; 'गैर मानूस' शब्दो से बचने की प्रशंसा होती है। यह प्रथा कविता के पक्ष में श्रेयस्कर न होते हुए भी भाषा के लिए तो हितकर होती ही है। क्योंकि प्रत्येक रचयिता भाषा की सफाई में दूसरे से बाज़ी ले जाने का प्रयत्न करता है। इस कौशल के लिए हम 'रियाज़' से अच्छा उदाहरण नहीं पा सकते। एक ही खयाल बीसियों ढग से दुहराया गया है। वही कल्पनाएं सैकड़ों बार शब्दों के उलट-फेर के साथ आई हैं। केवल कथन में नवीनता है जिस के कारण वह ग्राह्य होती है। 'रियाज' का छंदों का ज्ञान भी अद्भुत है। कठिन से कठिन 'बह्र' का बहुत सहजता से निर्वाह हुआ है। इस कार्य में 'रियाज़' को अपार क्षमता प्राप्त थी। वह लिखते हैं :

वह क्या रंग है, क्या खूब तबीयत है 'रियाज़';
हो जमीं कोई, तुम्हें फूलते फलते देखा।

'रियाज़' का यह गर्व क्षम्य है, इस लिए कि वह यथार्थ है। अपने सहज-ज्ञान और चिर अभ्यास द्वारा वह बोलचाल के शब्दों से वह प्रभाव उत्पन्न कर लेते हैं जो दूसरे बड़े-बड़े अपरिचित 'कवित्वमय' शब्दों द्वारा कर पाते हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं:—

ख़ुदा जाने हुआ क्या कूचए जानां में दिल जाकर;
मेरा भूला हुआ, भटका हुआ, अब तक नहीं आया।

मरके हम दावे वफ़ा दें, तो भी कुछ पुरशिश नहीं;
यूं ही सी है हुस्न की सरकार, कुछ यूं ही सी है।

अथवा इस पंक्ति को लीजिए:

ज़ौफ़े पीरी जो बढ़ा, मौत के पैग़ाम चले।

एक स्थल पर वह सत्य ही कहते हैं:

आ गया वक़्ते सफ़र, सुब्ह चले, शाम चले;
पीने का यह असर है, वह कौसर को हो न हो।

'रियाज़' की भाषा तथा शैली के गुण उन्हीं के शब्दों में कहे जा सकते हैं:

पाकीज़ा, शुस्ता, साफ़, हमारी ज़बान है।

और उन का यह कहना भी यथार्थ है कि:

मेरे कलाम में है मज़ा बोलचाल का।

* * *

कुछ अंशों में, जिस वर्ग के वह कवि थे, उस वर्ग की परंपरा के कारण, और कुछ अंशों में अपने स्वभाव के कारण, 'रियाज़' की रचना में लालित्य और परिमार्जन विशेष हैं, और गहनता तथा चिंतन कम। यह ठीक है कि कवि का काम एक दर्शन-मीमांसा प्रस्तुत करना नहीं है, और न धर्म-गुरुओं के स्थान को ग्रहण करना है। फिर भी यदि कविता जीवित रह सकती है तो केवल ललामता और शब्दों के कुशल व्यवहार का आश्रय लेकर नहीं। कवि को सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त होनी चाहिए और उसे यथार्थता का गहरा अनुभव भी होना चाहिए। तभी उस की रचनाएं क्षणिक मनोरंजन का कारण न हो कर स्थायी प्रभाव

डाल सकती है। 'रियाज़' की कविता में हम साधारणतया विचारों की गहनता कम पाते हैं, यद्यपि जहां-तहां उन की प्रेरणा प्रबल हो गई है और उन्हों ने ऐसे भाव भी प्रकट किए हैं जो सत्य की गहराई में डूबे हुए हैं। फिर भी उन की अधिकांश रचना ऐसी नहीं कि वह वेदना की अनुभूति की छाप रखती हो। वह जीवन के ऊपरी सतह का स्पर्श मात्र करते दिखाई पड़ते हैं; और इस सतह पर उन की गति अवश्य ललाम है। नीचे कुछ ऐसी पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं जिन में वह ऊँचे भी उठे हैं और गहराई में भी पैठे हैं, जो करुणा का उद्रेक करती हैं, और जिन में हमें वेदना की अनुभूति मिलती है—उस वेदना की जो हमें उस देश का मार्ग दिखाती है जो वेदना से परे है:

क़फ़स में हम थे, घिरी बादलों में बिजली थी;
तड़प तड़प के रहे दोनों आशियां के लिए।

वह कौन है दुनिया में जिसे ग़म नहीं होता?
किस घर में ख़ुशी होती है, मातम नहीं होता?

हम थक के गिरे, गिर के उठे, उठ के चले भी;
तुझ पर असर ऐ दूरिए मंजिल नहीं होता।

भटका हुआ ख़याल है, उक़बा कहें जिसे;
भूला हुआ सा ख़्वाब है दुनिया कहें जिसे।

कितने काबे मिले रस्ते में कई तूर मिले;
इन मुक़ामात से हम को वह बहुत दूर मिले।

सैयाद घर तेरा मुझे जन्नत सही मगर;
जन्नत से भी सिवा मुझे राहत चमन में थी।

अजल, ख़ुदा के लिए रहम कर हसीनों पर;
मिला के ख़ाक में हुस्नो जमाल क्या होगा?

मैं कौन हूं? क्या हूं? नहीं मालूम कहां हूं;
मुझ से कोई बेनामो निशां हो नहीं सकता।

कहीं भी जायें कहां आसमां नहीं मिलता?
लहद ही एक जगह है जहां नहीं मिलता।

ऐ जवानी, न जा बहार के साथ;
वह तो आएगी एक साल के बाद।

ख़ाक में छुपना है तो कैसा ग़ुरूर,
ख़ाक में मिलना है तो कैसा घमंड?

आए, आने को फ़स्ले गुल सौ बार;
मेरे दिल की कली खिली ही नहीं।

फ़सुर्दा दिल हूं, मुझे क्या है, कोई मौसम हो,
भरी बहार में क्या था जो अब ख़िज़ां में नहीं।

जिन के दिल में है दर्द दुनिया का;
वोही दुनिया में ज़िंदा रहते हैं।

जो मिटाते हैं ख़ुद को जीते जी;
वही मर कर भी ज़िंदा रहते हैं।

बड़ी कोई नटखट है यारब क़ज़ा भी
चुने बांके तिरछे जवां कैसे कैसे!

* * *

'रियाज़' के यहां हमें ऐसे शेर भी मिलेंगे जिन में मीठा व्यंग्य है अथवा जिन से उन का विनोदी स्वभाव प्रकट होता है। आमोद और परिहास की प्रवृत्ति तो

उन की अनेक पंक्तियों में मिलेगी उर्दू की प्रेम-संबंधी कविता में हम बहुधा उलाहने और प्रेमी के दग्ध तथा निर्जीव-प्राय होने के भाव का प्रदर्शन मिलता है। 'रियाज़' में यह बातें कम हैं। वह प्रेमी को दयनीय भिक्षुक के रूप में—जो दर्शन मात्र का प्यासा, और सांत्वना का आकांक्षी तथा दलित और त्रस्त हो—नहीं दिखाते। उन का ढंग और है:

हम गुज़रे जिस तरफ़ से उधर उँगलियां उठीं;
दीवाना हसीनों ने हम को बना दिया।

देखिएगा सँभल के आईना;
सामना आज है मुक़ाबिल का।

['जुरअत' की ग़ज़ल में इसी तरह का एक शेर है:
क्यों हो हैरान से? क्या आईना देखा, प्यारे?
कुछ तो बोलो कि यह किस ने तुम्हें ख़ामोश किया?]

बना लूं ख़ुदा, तो भी मेरे न होंगे;
बुतों में कोई भी हुआ है किसी का?

क्या क़यामत है शबे वस्ल ख़मोशी उस की;
जिस की तस्वीर को भी नाज़ है गोयायी का।

कभी क़ैस दीवाना, आता जो मुझ तक;
मेरे पास से बन के इंसान जाता।

न देखते थे कभी जो नज़र उठा के मुझे;
वह देखते हैं दमे हश्र मुस्करा के मुझे।

हसीनों का आलम नया हो रहा है;
कि जिस बुत को देखो ख़ुदा हो रहा है।

'दाग़' का एक शेर है:

जिस में लाखों बरस की हूरें हों;
ऐसी जन्नत का क्या करे कोई?

और 'रियाज' कहते हैं:

हैं फ़रिश्तों की बराबर उम्रे हूर;
क्या तमन्ना ऐसी कमसिन के लिए?

'मीर' कहते हैं:

इस के कूचे में न कर शोर क़यामत का जिक्र;
शेख़ यां ऐसे तो हंगामे हुआ करते हैं।

'रियाज़' का शेर है:

डराता है हमें महशर से तू वायज अर जा भी!
यह हंगामे तो हम ने रोज़ कूए यार में देखे।

'रियाज़' की कुछ अत्यंत सुंदर पंक्तियां वृद्धावस्था पर हैं:

वही शबाब की बातें, वही शबाब का रंग;
तुझे, 'रियाज़' बुढ़ापे में भी जवां देखा।

यह कम नहीं है बुढ़ापे में हम ने तौबा की;
तमाम उम्र में हम ने यह एक काम किया।

क्यों जवानी आई दो दिन के लिए?
दिन गिने जाते थे इस दिन के लिए।

जवानी के नश्शे में कुछ सूझता है?
बुढ़ापे में अच्छी बुरी सूझती है।

बड़े लुत्फ़ से दिन गुजर जाते यह भी;
बुढ़ापे में हम को जवानी जो मिलती।

'रियाज़' अब कहाँ वह जवानी का आलम
गले से लगाते जवानी जो मिलती।

यह स्वाभाविक है कि 'रियाज' के 'दीवान' में हमें परंपरागत विषयों पर पुरानी शैली में लिखी हुई अनेक पंक्तियां मिलें। परंतु इन विषयों के वर्णन में भी वह कुछ नवीनता ला सके हैं। भाग्य की कठोरता और उदासीनता साधारणतया आकाश मे प्रतिबिंबित दिखाई गई हैं। 'रियाज़' लिखते हैं:

ज़रा जो हम ने उन्हें आज मेहरबां देखा;
न हम से पूछिए क्या रंगे आसमां देखा।

एक और पुराने विषय पर देखिए:

कहता है अक्स हुस्न को रुसवा न कीजिए;
हर वक़्त आप आईना देखा न कीजिए।

मदिरा की प्रशंसा में 'रियाज' ने जो कुछ कहा है उसे मैं ने जान-बूझ कर अत के लिए छोड़ दिया है। इस संबंध में उन की अपनी एक विशेषता है। मदिरा उन्हों ने कभी छुई भी नही, फिर भी यह महान् आश्चर्य की बात है कि उर्दू कविता में इस विषय पर जो कुछ कहा गया है, उस मे 'रियाज़' का नाम अमिट रहेगा। मदिरा के विषय में इस उत्साह और आह्लाद के साथ उन्हो ने लिखा है कि पढ़ने वाले यह कभी नहीं समझ सकते यह केवल कल्पना के आधार पर कहे गए वाक्य हैं। वरन् ऐसा विचार उठता है कि मदिरा-पान से उन्हे घनिष्ट परिचय रहा है। जिन लोगों ने इस की ध्यान-पूर्वक गिनती की है उन का कहना है कि 'रियाज' के दीवान में मदिरा का विषय लेकर लिखे गए शेरों की संख्या १३६६ से कम नहीं। फ़ारसी कविता की परंपरा ग्रहण करते हुए उर्दू कविता ने भी 'साक़ी', 'शराब', 'मैख़ाना', 'वायज़' आदि को बहुत अपनाया है, और यह संकेत लाक्षणिक हो गए हैं। मदिरा के संबंध में हमें उर्दू मे बहुत अच्छे-अच्छे शेर मिलेंगे। जैसे:

न हम होश में मैंपरस्ती से गुज़रे;
हुए जब कि बेहोश मस्ती से गुज़रे।

(मीर हसन)

दूर से आए थे, साक़ी, सुन के मैख़ाने को हम;
बस तरसते ही चले, अफ़सोस पैमाने को हम।

मै भी है, मीना भी है, साग़र भी है, साक़ी नहीं;
दिल में आता है, लगा दें आग मैख़ाने को हम।
(नज़ीर)

बह गए हैं, वायज़ा, गिरदाबे दौरे जाम में;
ज़ीस्त भर होंगे न इस दरयाए मै से पार हम।
(नासिख़)

ज़ाहिद, शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों?
क्या डेढ़ चुल्लू में ईमान बह गया?

ज़ौक़ जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला;
उन को मैख़ाने में ले आओ सँवर जाएँगे।
(ज़ौक़)

मसजिद में बुलाता है हमें ज़ाहिदे नाफ़हम;
होता अगर कुछ होश तो मैख़ाने न जाते।
(अमीर)

लुत्फ़े मै तुझ से क्या कहूँ ज़ाहिद!
हाय कंबख़्त तूने पी ही नहीं।

ज़ाहिद, शराब नाब की तासीर, कुछ न पूछ;
अकसीर है जो हल्क़ के नीचे उतर गई।

जलवए साक़ी वो मए जान लिए लेते हैं;
शेख़ जी ज़ब्त करें, हम तो पिए लेते हैं।
(अकबर)

मेरे मजहब में है वायज तर्के मनोशी हराम
छोड़ कर पीता हूं फिर, तौबा इसी का नाम है।

(चकबस्त)

सच कहा था तूने, जाहिद, जह्रे क़ातिल है शराब;
हम भी कहते थे यही, जब तक बहार आई न थी।

(जलील)

मैं और बज्मे मै से यूं तिश्नाकाम आऊं,
गर मैं ने की थी तौबा साक़ी को क्या हुआ था?

(ग़ालिब)

मुजतरिब रूह कोई आगई मैख़ाने में;
खुद बखुद मै को है गर्दिश मेरे पैमाने में।

(नासिरी)

लेकिन मेरी धारणा है कि शराब के विषय को लेकर 'रियाज़' ने जो विशेषता प्राप्त की है वह औरों को नहीं प्राप्त है। उन की कल्पना भौतिक है, उन का साक़ी शारीरिक आकर्षण रखता है; उन की शराब अंगूर के रस से बनी हुई शराब है। इसी प्रकार उन का प्याला नशा उपजाने वाला है, और सौंदर्य तथा यौवन का आभास करानेवाला है। लेकिन वर्तमान समय से परे का संकेत भी हमें उन के यहां मिलता है। उन की शराब और भी मदिर और पूर्ण बन जाती है; उन का साक़ी एक आसमानी व्यक्ति हो जाता है, और उस मदिरापान तथा मित्रमिलन में जिस की वह चर्चा करते हैं कोई अश्लीलता या घृणा उपजाने वाली बात नहीं होती। इच्छा, और आकांक्षा, उल्लास और आत्मविस्मरण; दुःख और वेदना पर विजय; मदिरा-गृह के पथ का अंततः परमेश्वर के सिंहासन तक पहुँचना; उपदेशकों का उपहास और फिर भी एक आंतरिक संयम—यह सभी बातें 'रियाज़' की मदिरा-संबंधी कविता के विषय हैं, और उस की प्राण है।

तौबा करते हुए आता है यह रह रह के ख़याल;
मुँह मेरा देख के रह जायगा साग़र मेरा।

मैख़ाने में क्यों यादे ख़ुदा होती है अकसर?
मसजिद में तो ज़िक्रे मयो मीना नहीं होता।

रहमत को यह अदा मेरी शायद पसंद आए;
डर डर के, काँप काँप के, पीना शराब का।

कोई मस्त मैकदा आगया, मए बेख़ुदी वह पिला गया;
न सदाए नग़मए दैर उठी, न हरम से शोरे अज़ां उठा।

ए शेख़, वह काबा हो या हो दरे मैख़ाना!
तूने मुझे जब देखा सिजदे ही में सिर देखा।

काबे में नज़र आए, जो सुबह अज़ां देते;
मैख़ाने में रातों को इन का भी गुज़र देखा।

मैख़ाने में मज़ार हमारा अगर बना;
दुनिया भी कहेगी कि जन्नत में घर बना।

देख वायज़ मुझ को मैं क्या हो गया;
आदमी था, पी फ़रिश्ता हो गया।

तुझे यह मै है अज़ाब वायज़, मुझे यह मै है सवाब वायज़;
अजीब शै है शराब वायज़, मिले मुझी को अज़ाब तेरा।

हश्र में दूँगा एक के दस दस;
दे मुझे क़र्ज़ ऐ शराब फ़रोश।

सेख आना है तुझ को अमल में
देखता जा मेरी शराब का रंग।

कुछ मज़े में हम आगए ऐसे;
तौबा पीने से हम ने की ही नहीं।

किसी से हाय, साक़ी का यह कहना;
लहू मेरा पिएं जो वे पिए जाएं।
घटा उठते ही बौछारें यह हम पर;
अरे वायज़ कहां तक हम पिए जाएं?

मैकदे वालो, इधर भी निगाहे लुत्फ़ रहे;
दूर से काबा नशीं तुम को दुआ देते हैं।

न लूं राहे मैख़ाना किस तरह वायज़;
यह बादल जो सर पर मेरे छा रहे हैं।
कमर सीधी करने ज़रा मैकदे में;
असा टेकने क्या 'रियाज़' आ रहे हैं?

जनाबे शेख़, उलझते हैं किस तअल्लुक़ से?
वह दुख़्तेरज़ के कोई रिश्तेदार भी तो नहीं।

उट्ठे भी कभी घबरा के तो मैख़ाने को हो आए;
पी आए तो फिर बैठ रहे यादे ख़ुदा में।

मुँह बनाता है बुरा क्यों वक़्ते वाज़?
आज वायज़ तूने पी अच्छी नहीं?
बुतकदे से मैकदा अच्छा मेरा;
बेख़ुदी अच्छी ख़ुदी अच्छी नहीं।

काम मैख़ाने का हो जाएगा बंद;
चश्मे साक़ी की हया अच्छी नहीं।
शेख़ यह कहता गया पीता गया;
है बहुत ही बदमज़ा, अच्छी नहीं।

धड़के महशर के मिटाने को मेरे साक़ी;
मरते मरते भी पिलाई है मये ख़ूं मुझ को।
तोड़ना है मुझे तौबा सरे महफ़िल साक़ी;
देखना है लबे साग़र का तबस्सुम मुझ को।

क़द्र मुझ रिंद की तुझ को नहीं, ऐ पीरे मुग़ां;
तौबा कर लूं तो कभी मैकदा आबाद न हो।

ख़ुदा के बंदे कुछ ऐसे निडर हैं, ऐ साक़ी;
हज़ार बार पिएं तौबा एक बार न हो।

तौबा लब पर वायज़ से बे अख़्तियार आने को थी;
वह तो कहिए बच गए फ़स्ले बहार आने को थी।

शेख़ जी मैकदा वह जन्नत है;
तुम भी जाकर जवान हो जाते।

सौ रिंद पिएं तो न हो ख़ाली कभी साक़ी;
ऐसा भी तेरे मैकदे में जाम है कोई?

हश्र की इतनी हक़ीक़त होगी;
पास मैख़ाने के जन्नत होगी।

इतनी पी है कि बादे तौबा भी;
बे पिए बेख़ुदी सी रहती है।

अच्छी पी ली, खराब पी ली,
जैसी पाई शराब पी ली।
पी ली हम ने शराब पी ली;
आग थी मिस्ले आब पी ली।
आदत सी है, नशा है न अब कैफ़;
पानी न पिया शराब पी ली।
तौबा के बाद अब यह है हाल;
भूले से कभी शराब पी ली।
छोड़े कई दिन गुज़र गए थे।
आई शबे महताब, पी ली।

शेर तक मेरे छलकते हुए साग़र हैं, 'रियाज़';
फिर भी सब पूछते हैं आपने मै पी कि नहीं।

'रियाज़' की कविता के विस्तृत दिग्दर्शन में मैं ने उस के गुणों के वर्णन का प्रयत्न किया है। उन का शब्द-विन्यास अद्भुत है; मुहावरों और बोलचाल की भाषा के उपयोग में वह अद्वितीय हैं; उन की कल्पना उर्वर है और शराब के विषय को ले कर उन्हों ने खूब लिखा है। मै ने उन की रचना के कुछ ऐसे अंगों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है जो हमारी पीढ़ी के लोगों को कदाचित् पसंद न आए। कुछ ऐसी बाते भी हैं जो 'रियाज़' के अंधभक्त भी पसंद न करेंगे। यदि उन के दीवान के कुछ अंश काट दिए जायँ तो उन की कोई क्षति न होगी वरन् उन की प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी। इन सब बातों के होते हुए भी उर्दू ग़ज़ल लिखने वालों में 'रियाज़' के लिए ऊँचा स्थान दिया जाना उचित है। स्वयं कवि के शब्दों में:

यह ख़ास रंग हमेशा से तेरा हिस्सा है;
'रियाज़' मानते हैं सब तुझे तग़ज़्ज़ुल में।

भोजपुरी लोकोक्तियां

[संग्रहकर्ता—श्रीयुत उदयनारायण तिवारी, एम्० ए०]

(गतांक की पूर्ति)

नाचे कूदे तूरे तान, तेकर दुनियाँ क(अ)रे मान—

जो नाच कूद कर हाव भाव प्रदर्शन करता है दुनियां उसी का मान करती है।

नाचे त(अ) घुँघुट का—

जब नाचना है तो घूँघट की क्या ज़रूरत ? जब कोई काम करना है तो उसे प्रकट में क्यों न किया जाय ?

ना धोबिआ का दोसर पसुबा, ना गॅदोंहवा का दोसर मोआर—

न तो धोबी को दूसरा पशु है न गधे को दूसरा स्वामी। दो व्यक्तियों की परस्पर निर्भरता पर कहते हैं।

नान्ह जाति लतिअवले बड़ जाति बतिअवले—

छोटी जाति के लोग लात (मार पीट) से, तथा बड़ी जाति के बात से क़ाबू में आते हैं।

ना नव मन तेल आई, ना राधा नचिहें—

न नव मन तेल होगा न राधा नाचेंगी।

ना निमन काम करबि, ना दरबारे धइके जाइबि—

न तो अच्छा काम करूँगा न दरबार में पकड़ा जाऊँगा।

ना पँड़उस, के बरहा बॅाराई, ना चलनी के पानी आई—

पँडउस एक प्रकार की घास है जिस की रस्सी बड़ी कठिनाई से बन सकती है। प्रतिपक्षी की असंभव शर्त पर कहते हैं।

ना बासी बाँची ना, कुकुर खाई—

न बासी बचेगा और न कुत्ता खायगा।

नाम अगधू, करिया अच्छरि भँइसि बरोबरि—

नाम तो अगाध है किंतु काला अक्षर भैंस बराबर है, अपढ़ है।

ना मानी भरनी ना दिसा सूल, कहैं ब्यास सभ चकना चूर—

भरणी-भद्रा और दिशाशूल कुछ न मानना चाहिए, ये सब व्यर्थ हैं।

ना मोरा बोला चाली ना मोरा केहू, सिकहर पर पूआ बाटे काढ़ि खाउ केहू—

पति-पत्नी में आपस में कलह था। एक दूसरे से बात-चीत भी बंद हो गई थी। इसी बीच में एक दिन पतिदेव भोजन करने के लिए आए। स्त्री उन से स्पष्ट बात-चीत तो कर नहीं सकती थी अतएव उस ने अप्रत्यक्ष रूप से कहा "न तो मुझ से किसी से बात-चीत है और न कोई मेरा अपना है। छीके पर पूआ रक्खा हुआ है, कोई निकाल कर खा ले।"

नाँव कपूरचन, गन्ह गोबरो के ना—

नाम कपूरचंद है और गंध गोवर की भी नही।

नाँव के ब(अ)ड़ दरसन थोर—

नाम वड़े दर्शन थोड़े।

नाँव गुलाबचन, गन्ह के ठेकाना ना—

नाम गुलाबचंद, गंध का ठिकाना नहीं, अर्थात् सुगंध जरा भी नहीं।

नाँव दाताराम, पुन्नि के ठेकाना ना—

नाम दाताराम, पुण्य का ठिकाना नहीं, पुण्य जरा भी नहीं।

नाँव दूधनाथ, लज्जति म(अ)ठो के ना—

नाम दूधनाथ लज्जत मट्ठे की भी नही।

नाँव धर्मात्मा, पुन्नि के लेसे ना—

नाम धर्मात्मा, पुण्य का लेश नहीं।

नाँव नयनसुख, जनमें के आन्हर—

नाम 'नयनसुख' और है जन्म के अंधे!

नाँव नवलखा, जनमें के भिखारी—

नाम 'नवलखा' और जन्म का भिखारी।

नाँव पिरथीपति, समहुत के ठेकाने ना—

नाम पृथ्वीपति और समहुत करने का ठिकाना नहीं। अर्थात् समहुत (शुभ मुहूर्त में खेत में बीज डालने) के लिए खेत ही नहीं।

नाँव भवानी, मुँह छछूनरि के—

नाम भवानी, मुँह छछूँदर का।

नाँव रजरनियां, चमारे के बेटी—

नाम 'रजरनियां' (राजरानी) और चमार की लड़की।

नाँव रामबहादुर सिंह, पोत पौने बारह आना—

नाम रामबहादुर सिंह, लगान देते हैं पौने बारह आना।

निकुटी ना खाई, उघटी के खाई—

शत्रुता से उतनी हानि नहीं होती, जितनी कि अभिशाप से।

निर्गुन गावे धक्का पावे, बात बनावे पइसा पावे—

जो निर्गुन गाता है वह तो इस संसार में धक्का पाता है, और जो बात बनाता है वह पैसा पाता है।

निरोग लरिका बैद के अँगुठा देखावे—

नीरोग लड़का वैद्य को अँगूठा दिखलाता है।

नीचे धरीं त चील्हि कउआ खाई, ऊपर धरीं त सहदूल ले जाई—

नीचे रक्खें तो चील-कौवे खा जायँ और ऊपर रक्खें तो शार्दूल पक्षी उठा ले जाय। प्रत्येक स्थिति में हानि होने पर कहते हैं।

नोकर का चाकर, मँड़ई का ओसारा—

नौकर का चाकर वैसा ही है जैसे किसी झोंपड़ी में ओसारा लगाना। जब किसी आदमी को कोई काम सौंपा जाता है और वह स्वयं उसे न करके किसी तीसरे पर डाल देता है तब इस का प्रयोग होता है।

नोनिआ का बेटी के नाँ नइहरे सुख नाँ ससुरे सुख—

नोनिआ की लड़की को न तो नैहर में सुख, न पीहर में। नोनिआ= जाति विशेष, जिस का काम कुआं खोदना अथवा मिट्टी का घर आदि बनाना होता है।

पइसा ना कउड़ी, बाजार में दउड़ा दउड़ी—

पैसा-कौड़ी तो है ही नही बाजार में इधर-उधर दौड़ने से क्या ?

पइसा लेइ ना गइलीं हाटे, काँकरि देखि के जिअरा फाटे—

पैसा लेकर बाजार न गया तो ककड़ी देख कर मन में कष्ट होने लगा।

पकले आम सोहावन, पकले मर्द घिनावन—

पका हुआ आम सुहावना मालूम होता है, किंतु पका हुआ (बूढ़ा) मनुष्य घृणास्पद हो जाता है।

पगरी दास नगरी लेलें—

पगरी दास ने तमाम नगर पर क़ब्जा कर लिया।

पढ़ल कतनो होई, त मूल ना नासी—

पढ़ा हुआ आदमी कितना भी ख़राब होगा, तो अपनी जड़ का नहीं नाश करेगा।

पढ़े फारसी बेंचे तेल, देखो रे कुदरति के खेल—

स्पष्ट है।

पत्तल में कुछ ना, लछिमीनाँरायन—

पतरी में कुछ नही है और कहता है कि लक्ष्मीनारायण (भोजन प्रारंभ) कीजिए।

पत्थल के नाव ना चले—

पत्थर की नाव नहीं चल सकती।

पत्थल पर के मारि, चोखो तीर नसाई—

पत्थर पर मारने से तेज़ तीर भी नष्ट होता है। मूर्ख के समझाने पर शक्ति का अपव्यय होता है।

पत्थर पर जामें गुरुम्ही, तबो ना होखे आपन कुरमी—

पत्थर पर यदि गुरुम्ही (ककड़ी) जमे तौ भी कुर्मी (जाति विशेष) अपना नहीं होता।

पयर ओतने बढ़ावे के चाँही जेतना चद्दरि लमहरि होखे—

पैर उतना ही बढ़ाना चाहिए जितनी कि चादर लंबी हो।

पयर गरम सिर ठंडा, डाकदर आवे मारे डंडा—

पैर गर्म और ठंडा सिर हो तो डाक्टर आने पर उसे डंडा मार कर भगा दे। अर्थात् ऐसी दशा में आदमी स्वस्थ रहता है

परधन बान्हे कपड़ा फाटे—

दूसरे का धन बाँधने से कपड़ा फटता है। अर्थात् नुक़सान छोड़ कर लाभ नहीं।

पर मुंडे फरहार कईल—

दूसरे के सिर खर्च करना। किसी आदमी के जो दूसरे के सिर पर खर्च करता है—ज्यादे खर्च करने पर कहते हैं।

परलें राम कुकुर का पाला, खींचि खाँचि के ले गइल खाला—

राम कुत्ते के पाले पड़ गए तो वह उन्हें खींच कर नीचे ले गया। अच्छी चीज़ बुरे आदमी के हाथ पड़ने पर कहते हैं।

परहथ बनित, साझ के खेती, बे बर देखे ब्याहे बेटी; घरो के जे बिगारे थाती, इ चारु मिलि पीटें छाती—

जो स्त्री को दूसरे के हाथ में सौंप देते है, साझे की खेती करते हैं, बिना वर देखे लड़की का विवाह कर देते हैं, तथा घर की पूँजी नष्ट कर देते हैं, वे बाद में छाती पीट कर रोते हैं।

परोसिन के बेटा खाइ, नाव ना धरे—

पड़ोसिन के बेटे को गाली दे, पर नाम न ले।

पहिरे के ऑटे ना, भुइयाँ ले सोहरे—

पहिनने को तो पर्याप्त होता ही नहीं, पर इच्छा है कि वस्त्र ज़मीन को स्पर्श करता हुआ चले।

पहिली आन्हीं चमारे के घर—

पहली आँधी चमार के घर को ही नष्ट करती है। आफ़त पहले ग़रीब पर ही आती है।

पहिले आत्मा, तब परमात्मा—

पहले आत्मा है, तब परमात्मा है। पहले आत्मा की चिंता करनी चाहिए, तब परमात्मा की।

पहिले दिने पहुना, दोसरहा दिने ठेहुना, तिसरहा दिने केहुना—

पहले दिन पहुना (मेहमान) रहता है, दूसरे ठेहुना और तीसरे दिन कोई भी नहीं रहता। मेहमान की पहले दिन ही इज़्ज़त रहती है, इस के बाद नहीं।

पंच मुहें परमेसर बसेलें—

पंच के मुँह में परमेश्वर बसते हैं।

पंच संगे नीक, पिआ संगे ना नीक—

पंच के साथ रहना अच्छा और प्रियतम के साथ नहीं अच्छा।

पांसारी कीहां सास्तर रही त (अ) माँसाला बेची—

पंसारी के यहां यदि शास्त्र रहेगा तो वह उस पर मसाला ही बेचेगा। मूर्ख आदमी किसी अच्छी चीज़ की क्या क़द्र करे ?

पातर देखि परइह जनि, मोट देखि भभरिह जनि—

(कुश्ती के समय) पतला देख कर भागना नहीं चाहिए और मोटा देख कर डरना नहीं चाहिए।

पानी में रहि के घरियार से बयर—

पानी में रह कर घड़ियाल से बैर करना।

पाप के घइली भरेले त फूटबो करेले—

पाप का घड़ा जब भरता है तब फूटता भी है। अर्थात् पाप कर्म प्रकट हुए बिना नहीं रहता।

पाप के बाप लालच—

पाप का बाप लालच है।

पाव भरि के देवी, नव पाव के पूआ—

पाव भर की देवी जी थीं और नव पाव का पूआ उन के ऊपर चढ़ने लगा।

पाँच कवर भीतर, तब देवता पीतर—

पाँच ग्रास जब मुख के भीतर जाता है, तभी देवता और पित्र भी सूझते हैं।

पाँच कोस मुँड़िकटवा, आगे धरमराज—

पहले प्रेत का दर्शन होता है, तब धर्मराज का।

पाँड़े मुअसु जान के, पाँड़ाइनि माँगसु माठा—

पांडेय जी तो जान से मर रहे हैं और पांडेय जी की स्त्री मीठा माँग रही हैं। एक विपत्ति में हो और दूसरा मौज की बात चलावे तब कहते है।

पाँड़े में केहू पुजावल चाहीं—

पांडेय में किसी को पुजाना चाहिए।

पिटाइल आ खाइल भुलाला ना—

पिटना और खाना भूलता नहीं।

पिरथिमी जब जब आगर बाड़—

पृथ्वी में एक से एक बढ़ कर आदमी हैं।

पीठा में जब माठा होला तब ठीक होला—

जब पीठा में मठा होता है तब ठीक होता है। सत्तू को पानी में पका कर जमा लेते हैं, उसे पीठा कहते हैं।

पुरुआ में जो पछिवा बहे, हँसि के नारि पुरुस से कहे; कहैं घाघ हम करबि विचार, ऊ बरिसी ऊ करी भाँतार—

यदि पुरवैया हवा चलती हो किंतु उस में थोड़ी देर के लिए पछुवा हवा चलने लगे, और यदि कोई स्त्री हँस-हँस कर किसी पुरुष से बात-चीत करे तो यह निश्चित है कि वृष्टि होगी, और वह स्त्री किसी पुरुष से शादी करेगी।

पूछे ना आछे, मैं दुलहा के चाची—

कोई पूछता तो है ही नहीं और कह रही है कि मैं दूल्हे की चाची हूं।

पूरब से चललि तमाकू, रहल बंगाला छाइ, जेकरा देह पर लत्ता नइखे, सेहो तमाकू खाइ—

तंबाकू पूरब के देश से इस देश में आई। सर्व-प्रथम उस ने बंगाल में अपना अड्डा जमाया। वहां तो जिस के शरीर पर वस्त्र तक नहीं रहता वह भी तंबाकू खाता है।

पेट करे खाँव खाँव, माँगे के टिकुली—

खाने का कुछ सामान नहीं है पर माथे पर लगाने के लिए टिकुली चाहिए।

पेट भार, पीठी लाद—

पेट भार के समान और पीठ लाद के समान है। बेडौल आदमी है।

बइठल बनियाँ का करे, ए कोठिला के धान ओ कोठिला करे—

बैठा-ठाला बनिया जब कोई काम करने को नहीं पाता तो एक कोठिले का धान

दूसरे कोठिले में रखता है। बनिया हमेशा कुछ न कुछ किया करता है।

बइरी का फेड़ तर उघार कपार, ओके जनिह (अ) बॉड़ा गँवार—

बेर (वृक्ष विशेष) के तले जो खुला सिर जाय उस को महा गँवार जानना चाहिए।

बइसे के कहलीं डुड्हिआँ, घुसुकत जालीं चुहनियाँ—

बैठने के लिए तो कहा गया डुड्ही (चूल्हे के सामने वाली दीवार के पास की ऊँची जगह, जिस पर भोजन रक्खा जाता है) लेकिन खिसकते-खिसकते चली गई चूल्हे के पास एक कोने में। कहे हुए काम को न कर अन्य काम करने पर कहते हैं।

बकस (अ) बिलारि, मुर्गा बाँड़े होके रहिहें—

(एक बिल्ली ने किसी मुर्गे को पकड़ा और उस की पूँछ उस ने काट डाली तब एक आदमी ने कहा) बिल्ली! अब भी मुर्गे को बख्श दो। वल्कि ये बॉड़ा ही रहेगा।

बकुचा चढ़ि उचरूंग बइठलें, दलाल बनि गइलें—

बकुचा पर उचरूंग (एक कीट विशेष) चढ़ गया तो समझने लगा कि वह दलाल ही बन गया। थोड़े में ही अभिमान करने वालों पर व्यंग्य है।

बकुला मरलें, पाँखि हाथ—

बगुला मारने से पंख ही हाथ आते हैं।

बड़ आॅदमी का खीसि, आ छोट आदमी कॉ कजिया, देरी से होला—

बड़े आदमियों को क्रोध और छोटे आदमियों (शूद्रों आदि) का श्राद्ध देर से होता है।

बड़ आदमी के चॉलुए के मोल ह (अ)—

बड़े आदमी की चाल की ही इज्ज़त है।

बड़ के चोरी, जीव का पाछा—

बड़े आदमियों की चोरी जीव-समर्पण करके की जाती है।

बड़ जाति बतिअवले, छोट जाति लतिअवले—

बड़े आदमी बात करने से और छोटे लात मारने से क़ाबू में आते हैं।

बड़ि बड़ि ऊखि में भटही लवाही—

बड़ी ईखों में छोटी ईखों को कौन पूछे? बड़े आदमियों में छोटों को कौन पूछे?

बड़ बड़ जाना बॉहाइल फिरसु, गाॅदहा पूछसु कतेक पानी—

बड़े-बड़े आदमी तो बहे जाते हैं, और गधा पूछता है कि पानी कितना है?

बड बड़ रईसन के मर्दल मान, घुर पर के ठिकरी भइली परधान—

बड़े रईसों का तो मानमर्दन कर दिया और घूरे पर की (जहां कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया जाता है) ठिकरी (नीच) प्रधान बन गई। किसी अभिमानी का वचन अपने विरोधी के प्रति।

बड़ मरे बड़ाई के, छोट मरे दुलार के—

वड़े बड़ाई के लिए और छोटे प्यार के लिए मरते है।

बदमासी त पेट में बा, पिआला छुवे के देरी बा—

बदमाशी तो पेट में भरी है, सिर्फ़ प्याला छूने की देर है।

बदलो पंच, बेबदलो पंच, जइसे मान (अ) तइसे पंच—

चाहे तुम मुझे पंच मानो चाहे मत मानो, मैं पंच हूं अवश्य।

बन का गीदड़ जागा किधड़—

बन का गीदड़ जायगा ही कहां ? वह तो अवश्य पकड़ा जायगा।

बन के पतई, बन के खरिका, केरि करें बरई के लरिका—

बन की ही पत्ती है और बन का ही खरिका है, किंतु उसी से तमोली का लड़का केलि करता है (पैसे कमाता है)।

बनले म(अ)ल बिगरलें कुर्मी—

धनी होने पर मल्ल, किंतु दरिद्र हो जाने पर उन्हीं को लोग कुर्मी कहने लगते हैं।

बनि मारे के इहे उपाइ, दूनो भाई चलले कोहनाइ—

मज़दूरी न देने का उपाय यही है कि जिस समय मज़दूर मज़दूरी माँगने आया, उस समय दोनों भाई आपस में झगड़ा कर के क्रोधित होकर चल दिए।

बनियाँ काँ पसँघे के आस—

बनिये को पासंग की ही आशा रहती है।

बनियाँ देइ ना, पूरे तउल—

बनिया कभी पूरा नहीं तौलता।

बनी से हमार, बिगड़ी से तोहार—

जो बनेगा वह हमारा और जो बिगड़ेगा वह तुम्हारा। हर हालत मे अपना लाभ चाहने वालों पर कहते हैं।

बयल मरि गईल, अँठई झरि गईल—

बैल मर गया और अँठई भी झड़ गई। अब अँठई निकालने की कोई आवश्यकता नहीं। अँठई—एक प्रकार के उष्मज कीट, जो गाय, बैल, कुत्ते आदि के शरीर में चिपट जाते हैं।

बर जीति लिहले रे कानी, आत (अ) बर उठधु तब जानी—

अंतर्कथा—एक समय एक कानी लड़की के लिए लोगों ने एक बहुत सुंदर वर तजवीज़ किया। शरीर तथा कांति आदि में तो वर बहुत ही सुंदर था; किंतु वास्तविक बात यह थी कि उस के दोनों पैर इतने रोग-ग्रस्त थे कि वह स्वयं उठ बैठ नहीं सकता था। कन्या-पक्ष वालों ने वर-पक्ष वालों को यह बात न बतलाई कि लड़की कानी है किंतु वर-पक्ष वालों को यह बात मालूम हो गई थी। पर, उन्हों ने भी यह सोच कर विवाह स्वीकार किया कि आखिर वर भी तो अपाहिज ही है। जब विवाह-मंडप में वर बैठा दिया गया तो कन्या-पक्ष के किसी व्यक्ति ने वर की काया-कांति देख कर कहा, 'ऐ कानी लड़की तू ने वर जीत लिया'। इस पर वर-पक्ष के एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, 'बात तो ठीक है किंतु जब वर स्वयं खड़ा हो जाय तब मैं जानूं'। व्यंग्य में।

बरियार खेत के आँरिओ बहारल जाला—

उपजाऊ खेत का हाशिया भी झाड़ा जाता है, क्योंकि कटाई के समय बहुत अन्न हाशिए पर भी गिर जाता है।

बरियार चोर, सेन्हीं में गावे गीत—

बलवान चोर सेंध में भी गीत गाता है।

बरियार मेहरारू, कुल के नास—

स्त्री के बलवान होने से कुल का नाश हो जाता है।

बसिआ भात में खुदा के का चिरउरी—

बासी भात में खुदा की खुशामद क्या?

बसुला अस मुंह रुखानी अइसन गोड़—

बसूला ऐसा मुख है और रुखानी ऐसा पैर है। ऐसे खूबसूरत हैं! व्यंग्य में, बदसूरत आदमी के लिए कहते हैं।

बहिरा के सवाल सकल पंच सुनें, सकल पंच के सवाल बहिरा ना सुने—

बहरे का सवाल तो सब लोग सुनते हैं, पर वह स्वयं किसी का नहीं सुनता।

बहुरिया के बहुत दुलार, हाँड़ी डाली छुए न पावें—

वधू की बहुत प्रतिष्ठा है, पर आश्चर्य यह कि लोग उसे हाँड़ी और डाली तक छूने नहीं देते। दिखावटी प्रेम पर कहते हैं।

बहुरिया जी कुछ ना खालीं, नव सेर चाउर चुहनिया पकावेलीं—

बहू जी कुछ नहीं खातीं, केवल नव सेर चावल पकाती है।

बहे बयारि काँपे मलमली, खेती से ठुकठुकवे भली—

ठंढी हवा चल रही है और शीत के कारण शिर काँप रहा है। इस लिए खेती से सुनारी ही अच्छी है।

बॉकॉरा के जान जाइ, खाए वाला के सवादे ना मिले—

बकरे का प्राण जाय और खाने वालों को स्वाद ही न मिले।

बॉकॉरा के माई कब तक खयर मनाई—

बकरे की माता कब तक खैर मनावेगी?

बॉकॉरा के मूंड़ी गोसइयाँ का हाथ में—

बकरे का सिर ईश्वर के हाथ में रहता है। किसी भी समय उस का बध किया जा सकता है।

बघवा खाइ भा ना, बाकी ओकर मुंह रकतावन—

शेर खाय चाहे नहीं परंतु, उस का मुँह रक्तवर्ण सर्वदा रहता है। लोग सर्वदा उस से डरते रहते हैं।

बॉटुरे हाथ दुसमने लागल—

दुश्मन पर अधिक हाथ लगा। खूब परेशान हुआ।

बॉड़ॉका खेत के कुरुई में बीआ—

बड़े खेत के वास्ते छोटे पात्र में बीज!

बॉनॉरो के खीसि तॉबला का ऊपर—

बंदर का क्रोध तबले पर।

बॉनोंला के भूतो हर जोतेला—

धनी मनुष्य का हल भूत जोतता है।

बॉनॉला के सभे इयार होला—

धन होने पर सभी दोस्त होते हैं।

बाग बन दूनों राखे के चाहीं—

बाग और वन दोनों की रक्षा करनी चाहिए।

बागी में जाए ना पाई, पांच आम अंगऊँग—

बगीचे में जाने न पावें, और पाँच आम पेशगी माँगते है।

बाघ ना देखल देखल बिलारी, ठग ना देखल देखल पसारी—

बाघ नहीं देखा बिल्ली ही देख लिया, और ठग नही देखा पंसारी ही देख लिया।

बाछा बरध पतुरिया जोइ, ना घर रहे ना खेती होइ—

यदि बैल बछड़ा हो और स्त्री वेश्या हो, तो न तो वह स्त्री घर में रहेगी और न खेती होगी।

बाझल बनियाँ सउदा करे—

फँसा हुआ सौदागर सौदा करता है।

बाट मति चल हो एही मोट देहीं—

इस मोटी देह को लेकर रास्ता मत चलो। व्यंग्योक्ति।

बाढ़े पूत पिता के धर्मा, खेती उपजे अपने कर्मा—

पिता के धर्म से ही पुत्र की बढ़ती होती है, और खेती कर्म करने से उपजती है।

बात कहीं फरिछा, गुर लागे चाहे मरिचा—

बात साफ़ कहनी चाहिए, चाहे वह मीठी लगे चाहे कड़ुई।

बानर का जाने अदरख के सवाद—

बंदर अदरख का स्वाद क्या जाने?

बानर का हाथे नरियर—

बंदर के हाथ में नारियल।

बानर पहिले आपन घर छावसु, त दोसरा के छइहें—

बंदर पहले अपना घर छावे तब दूसरे का छावेगा। बंदर से उजाड़ का ही भय है।

बाप का गॉला में गुरिश्रा ना, बेटा का गला में रुद्राछ—

बाप के गले में मिट्टी की बनी गोली तक नही, और बेटे के गले में रुद्राक्ष की माला।

बाप के जनमे ना, पूत गइले पिछुआरा—

बाप का तो जन्म ही नही हुआ और पुत्र पिछवाड़े गए।

बाप के नाँव आऊँ जाऊँ, पूत के नाँव सहनसाह खांव—

बाप का नाम तो अंट-शंट और पुत्र का नाम 'शहंशाह खां' है।

बाप के नाँव सागपात, पूत के नाँव परोरा—

बाप का नाम तो साग-पात है और पुत्र का नाम है परवल।

बाप के मूँड़ी काटे, पूत से हाथ मिलावे—

बाप का सिर काटते हैं, और पुत्र से हाथ मिलाते हैं।

बाप दादा ना खइले पान, दाँत बिदोरि के निकलल प्रान—

बाप दादा तक ने तो पान नही खाया और दाँत निकाल कर मर गए। व्यर्थ की चेष्टा करने वाले पर उक्ति।

बाप दीहें हसुश्रा त ई जइहें बन काटे—

बाप जब हँसिया देंगे तब ये बन काटने जायँगे। बिना मदद के काम न करने वालों पर कहते हैं।

बाप ना दादा, सात पुहुत हरामजादा—

बाप दादा तक ही नहीं, सात पुश्त तक ये लोग बदमाश हैं।

बाप नाँ मारे बेंगुची, बेटा तीरंदाज—

बाप ने तो मेढकी तक नही मारी और बेटा तीरंदाज बने है।

बाप बटोरें गोबर नित, पूत बकसें गोहरउरि—

बाप तो गोबर बटोरते है, और पुत्र नित्य गोहरउरि (उपलों का ढेर) बख्शते है।

बाप बुड़ले अनुश्रा, पूत भइले पौराकी—

बाप तो एक छोटे कुँवे में डूब मरे, किंतु पुत्र तैराक पैदा हुआ।

बाबाजी के बाबाजी, बजनियाँ के बजनियाँ—

ब्राह्मण के ब्राह्मण है और बाजा बजाने वाले भी। एक पंथ दो काज।

बाभन, कुकुर, भाँट, जाति जाति के काट—

ब्राह्मण, कुत्ता और भाँट ये अपनी जाति को ही काटते हैं।

बाभन नाचे, धोबी देखे—

ब्राह्मण नाचे और धोबी देखे। बड़े लोगों की मूर्खता पर छोटे लोगों को हँसते देख कर कहते हैं।

बाभन पेटे, अहिर बकोटे, राजा डीठी, जोगी पीठी—

ब्राह्मण के पेट में, अहीर के बकोटे में, राजा की दृष्टि में और जोगी की पीठ में गर्मी होती है।

बाम्हन बेटा लोटे पोटे, मूर्ह ब्याज दूनों सरपोटे—

ब्राह्मण-पुत्र धरना देकर, मूल और ब्याज दोनों हज़म कर जाता है।

बार कबरले से मुर्दा हलूक —

बाल कटवा लेने से मुर्दा हलका नहीं होता।

बारह बार मिमियानी, त एक पठरू बिआनी—

बारह बार चिल्लाने पर एक पठरू पैदा किया। बड़े परिश्रम के पश्चात् थोड़ा काम करने वाले पर व्यंग्योक्ति।

बाहर उज्जर धोती, भीतर अँठिली के रोटी—

बाहर तो उजली धोती पहनते है, किंतु भीतर (आम की) गुठली की रोटी खाई जाती है।

बाहर के खा जासु, घर के लोग गावे गीति—

बाहर के लोग खा जाते हैं और घर के लोग गीत गाते है (खाने को नही मिलता)।

बाहे के ना बिआए के, तीनि हाला खाए के—

न तो बाहना और न ब्याना है किंतु तीन बार खाना है। काम-काज न करने वालों पर व्यंग्योक्ति है।

बाँझ का जाने परसअती के पीड़ा—

भला बंध्या स्त्री प्रसूत की पीड़ा को क्या जाने ?

बाँड़ बाँड़ गइलें, सात हाथ के पगहो ले गइलें—

दुमकटा खुद भागा और अपने साथ सात हाथ का पगहा भी लेता गया

बाँस का जरी बाँसे जामेला—

बाँस की जड़ में बाँस ही पैदा होता है। जैसे की संतान भी तैसी होती है।

बिकिरी ना बंटा, जोलहा से मारा मारी—

बाजार में क्रय-विक्रय कुछ भी नहीं है, केवल जुलाहों से मारपीट है।

बिजुली के मारल कुकुर, लुआठ देखि के डेराला—

बिजली का मारा हुआ कुत्ता लुआठ (जलती हुई लकड़ी) देख कर डरता है।

बिधि बनल अमावट रोटी—

अमावट और रोटी दोनों का अच्छा मेल बना।

बिन घरनी घर भूत के डेरा—

बिना स्त्री का घर भूत का निवास-स्थान है।

बिना आदति के खरिका मूसर बरोबरि—

बिना आदत का खरिका (सींक) मूसल के बरावर है।

बिना रोवल माई दूधो ना पिआवे—

बिना रोये माता दूध भी नही पिलाती। बिना आंदोलन किए कुछ भी नही मिलता।

बिनु पीसा बिनु कूटा बिनु हाथ परोसल, बिनू आगी बिनु पानी मोहि ततले ततले दे—

मुझे न तो पीसना पड़े, न कूटना पड़े, न हाथ से परसना पड़े, और न आग-पानी का इंतज़ाम करना पड़े किंतु मुझे खाने को गर्म गर्म दो। बिना परिश्रम उठाए सुख चाहने वालों पर व्यंग्य है।

बिरले कान होंहि भलमानुस—

विरले ही काने भलेमानस होते हैं।

बिलारि का जाने, कीनलि दही—

बिल्ली भला खरीदी दही क्या जाने ?

बिलारी के भागीं, टूटल सिकहर—

बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा।

बीछी के मंतर ना जानी, साँप का बियरी हाथ लगाई—

बिच्छू का मत्र नहीं जानते और सांप की बिल में हाथ डालते हैं अपन वश से

बाहर की बात करने वालों पर व्यंग्य है।

बिपति में केहू केहू के साथी ना ह(अ)—

विपत्ति में कोई किसी का साथी नहीं होता।

बिली में हाथ तूँ लगाव, मंतर हम पढ़(अ)तानी—

बिल में हाथ आप लगाइए; मैं मंत्र पढ़ता हूं। दूसरे को ख़तरे मे डाल कर स्वयं अलग रहने वालों पर कहते हैं।

बुरिबक का मूँहें ना लागे के—

बेवकूफ़ के मुँह नही लगना चाहिए।

बुरिबक के अकिल ना देबे के चाहीं, बरु एक पइसा दे देइ—

बेवकूफ को अक्ल नहीं देनी चाहिए चाहे एक पैसा भले ही दे दे।

बुरिबक के भइँसि बिआइलि त भरि गाँव धूंचे लेके धावल—

बेवकूफ़ की भैंस ब्याई तो गाँव भर के लोग बर्तन लेकर दूध दुहने आए। मूर्ख से सभी लोग लाभ उठाने का यत्न करते है।

बुरिबक गइलें हरवाहीं, तीनि बैल में कवरे नाहीं—

बेवकूफ आदमी, जहां हल चल रहा था, वहां गया तो कहने लगा कि तीन बैलों में काला बैल नही है। पर थे सब; उसे गिनने नही आ रहा था।

बुरिबक बैरागी भंटा के संख—

बेवकूफ सन्यासी भंटा का शंख बजाने लगा।

बूड़ल बंस कबीर के जमले पूत कमाल—

कबीर का बंश बूड़ गया जब कमाल ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ।

बूढ़ के खाइल, नाव के मॉराइल एके ह(अ)—

बुड्ढे के खाने में और नौका डूब जाने मे बराबर ही नुकसान होता है।

बूढ़नि के बिआह होखे, लउठनि का बधाव बाजे—

बूढ़ों की शादी में बदमाशों के घर बधावा बजता है। बूढ़ों की शादी से बदमाश प्रसन्न होते है।

बूढ़ सुग्गा पोस ना माने—

बड़ा तोता पालतू नही हो सकता

बूढ़ा बैल बेसाहि के झीना कपड़ा लेइ, अपने करनी कइ के दोष दइब का देइ—

जो लोग बूढ़ा बैल लेते हैं और झीना (पतला, बारीक) कपड़ा लेते हैं वह बाद में ईश्वर को दोष देते हैं।

बूढ़ि गाइ के सुहुरावे के साध—

बूढ़ी गाय को सहलवाने की इच्छा।

बूढ़ि घोड़ी के लाल लगाम—

बूढ़ी घोड़ी के लिए लाल लगाम। अयोग्य व्यक्ति को अच्छी चीज़ मिलने पर कहते हैं।

बूढ़ि छेरि बगइचा चरे के साध—

बूढ़ी बकरी और बगीचा चरने की इच्छा। बूढ़ी स्त्री को शान-शौकत करते देख कर व्यंग्योक्ति।

बे अलम के, बँवरि ना चढ़े—

बिना अवलंब के बौर नहीं चढ़ती।

बेकारी से, बेगारी भला—

बेकारी से बेगार भली।

बे जोलहे, ईदि ना होई—

बिना जुलाहों के ईद नही हो सकती।

बे जोलहे बाँजार ना लागे—

बिना जुलाहे के बाज़ार नहीं लगती।

बेटा एगो कुल राखेला, (अ) तो बेटी दूनो कुल राखेले—

यदि पुत्र एक कुल की रक्षा करता है तो पुत्री दोनो कुलों की।

बेटा के मरल नीक, बिसवास के उठल ना नीक—

पुत्र की मृत्यु अच्छी, पर विश्वास का उठना नही अच्छा।

बेटा लोटा, बहरें चमकेला—

बेटा और लोटा बाहर ही चमकते हैं।

बेटी के जो खाइल जोराइ, त दाँमाद घलुए में जासु—

यदि बेटी का खाना जोड़ा जाय (जब से पैदा हुई तब से) तो दामाद मुफ़्त में ही चल जाव

बेटी पतोह के लूगरो ना, बिलारी के गाँती—

लड़की और पुत्रवधू को (पहनने के लिए) लूगरी (फटा वस्त्र) तक नही मिलता, पर बिल्ली को गाँती (एक विशेष प्रकार से कपड़ा लपेटना) बाँधी जा रही है।

बेटी होई त तोहार, बेटा होई त हमार—

यदि बेटा होगा तो मेरा और लड़की होगी तो तुम्हारी। यदि लाभ हुआ तो मेरा यदि हानि हुई तो तुम्हारी।

बे बरखा के सागर ना भरे—

बिना वर्षा के सागर नही भरता।

बे बानि के इमिरित, पानी बरोबरि—

बिना आदत के अमृत भी पानी के बराबर है।

बे बानि के खरिका, बाँस बरोबर—

बिना आदत का खरिका (सीक) बाँस के समान मालूम पड़ता है।

बे बानि के चन्नन लगवला से चराला—

बिना आदत के चंदन लगाना भी चर्राता (खुश्की पैदा करता) है।

बे बोलवलें मँड़वा गइलों, डोकी पोंछि के माथे लवलों—

बिना बुलाये मै विवाह-मंडप मे गई। वहां डोकी (एक विशेष प्रकार का काष्ठ का बर्तन) पोंछ कर (सर में तेल) लगाना पड़ा। रीत्यानुसार किसी ने तेल मेरे सिर में नहीं लगाया। बिना बुलाए जाने से बेइज़्ज़ती होने पर कहते हैं।

बे भेदिया के चोरी ना होखे—

बिना भेद देने वाले के चोरी नही होती।

बे डँस के दउरी, बे रस के मारि, हाँका हाँकी चले कुदारि—

खेत सीचने के लिए दौरी (बाँस की निर्मित डाली, जिस से पानी उछालते हैं) और मार-पीट में बेलाग काम करने से ही सफलता मिलती है। किंतु कुदाल प्रतियोगिता से ही चलती है।

बेहया का पीठी रुख जामल, त ऊ कहलसि जे छाहें भईल—

बेशर्म आदमी की पीठ पर वृक्ष उगा तो उस ने कहा चलो छाया ही हुई। बेशर्म आदमी किसी नवीन बुराई की परवाह नही करता

बैद के घोड़ी, बेमतलब ना चले—

वैद्य की घोड़ी बिना मतलब नही चलती। वैद्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना मतलब नही जाता। किसी स्वार्थी पुरुष को कही आने-जाते देख कर कहते हैं।

बैद पसारी आधे आध—

दवा बेचने में वैद्य और पंसारी का आधा साझा रहता है। दोनों ही खूब फ़ायदा उठाते हैं।

बोखार के जरि खांसी; लॅड़ाई के जरि हाँसी—

ज्वर की जड़ खाँसी है और लड़ाई की जड़ हँसी।

बोटी खाइ के, सुरुवा से परहेज—

गोश्त का टुकड़ा खाकर शोरबे से परहेज़ करना।

भइल बिआह मोर करब(अ) का—

मेरी शादी तो हो गई अब क्या करोगे? मतलब तो सिद्ध हो गया, अब क्या नुक़सान पहुँचा सकते हो?

भइँसा लादे लोहिआ खाइ, तेकरा पापें परोसिआ जाइ—

भैंसे पर बोझा ढोने से और लोहे के बर्तन में खाने से पड़ोसी तक को पाप लगता है।

भदई चाहे से मिरगिडाहे गाहे—

जो मनुष्य चाहता है कि खरीफ़ की फ़सल अच्छी हो उसे मृगशिरा नक्षत्र में ही खेत बोना चाहिए।

भइँसि का आगे बीन बजावे, ऊ बइठि पगुरावे—

भैंस के आगे बीन बजाना अर्थात् अज्ञानी के सामने ज्ञान की बातें करना व्यर्थ होता है।

भरि गाँव मोर इलिया पितिया, अपने पिसान के लगवलों लिटिया—

गाँव भर तो हमारा संबंधी है फिर भी मुझे अपने ही आटे की रोटी पकानी पड़ी।

भरि घरे देवर, भोंतारे से ठट्ठा—

घर भर देवर है लेकिन भर्तार से ठट्ठा करती है। मज़ाक के अनौचित्य पर।

भरि सूप मोतियों बिआह, भरि सूप चउरों बिआह—

सूप भर चावल खर्च करके भी ब्याह ब्याह ही है और सूप भर मोती खर्च करके भी

ब्याह ब्याह ही है।

भरि हाथ चूरी, कि पटदे राँड़ि—

या तो भर हाथ चूड़ी पहन कर रहना अच्छा है, अथवा राड़ की तरह बिना चूड़ी का। या तो इस पार या उस पार, बीच में लटकना ठीक नहीं।

भल आदमी के एगो बात, भल घोड़ा के एगो चाभुकि—

अच्छे आदमी के लिए एक बात और अच्छे घोड़े को एक चाबुक मारना ही काफी है।

भल मरल, भल पिलुआ परल—

इधर मरा और तुरंत कीड़ा भी पड़ गया? किसी काम में बहुत जल्दी के कारण नुक़सान होते देख कर कहते हैं।

भाँगाला भूत के लँगोटिओ भाँला—

भागे भूत की लँगोटी भी अच्छी है।

भाँला संग रहब(अ) खइब(अ) बीरा पान; बुरा संग रहब(अ) कटइब(अ) दूनो कान—

भले आदमी के साथ रहोगे तो पान का बीड़ा खाने को मिलेगा, और यदि बुरे आदमी के साथ रहोगे तो दोनों कान कटवाओगे।

भाई अस हीत, न भाई अस मुदई—

भाई ऐसा हितू नहीं है और न भाई ऐसा शत्रु। जब आपस में पटती है तो भाई ऐसा हितू नहीं और जब नहीं पटती तो भाई ऐसा शत्रु भी नहीं।

भादो का आन्हर काँ हरिअरे सूझेला—

भादो के अंधे को हरियाली ही सूझती है।

भादो का बिछिलइला के, आ बड़ का गारी के, लाज ना ह(अ)—

भादो में फिसल जाने का और बड़े की गाली की कोई शिकायत नहीं।

भादो भइँसा, चइत चमार—

भादो में भैंइसा और चैत्र में चमार सुखी रहते हैं।

भादो मास कहाँ नाँ पानी, भइला के नाँ काँहावे दानी—

भादो मास में पानी कहाँ नहीं रहता और धन होने पर कौन दानी नहीं कहलाता?

भाभा कूटनि घर चलि जइहें, सासु पतोहिश्रा एके होइहें—

झगड़ा लगाने वाली अंत में अपने घर चली जायँगी और सास और बहू एक हो जायँगी। दो निकट संबंधियों के पारस्परिक झगड़े पर कहते हैं।

भारी रहे भार से, पतुकी फाँफाइ चले—

भारी बर्तन गंभीरता से रहता है किंतु पतुकी (मिट्टी की छोटी हँड़िया) में बहुत जल्द उफान आ जाता है। बड़े लोग गंभीरता से रहते हैं किंतु छोटे लोग बहुत जल्द उबल पड़ते हैं।

भितिएं लेवन, बूढ़वें जेवन—

लीपने को 'लेवन' लगाना कहते हैं। भित्ति लेवन से और वृद्ध पुरुष 'पौष्टिक' भोजन से वहुत दिनों तक चलते हैं।

भिखी में भीखि दे, तीनों लोक के जीति ले—

भिक्षा में जो भिक्षा देता है वह तीनों लोकों को जीत लेता है।

भुखला सिश्रार के पकुहो भाँला—

भूखे स्यार को गोदा ही अच्छा लगता है।

भुखाइल बंगाली भात भात करे—

भूखा बंगाली भात ही भात चिल्लाता है।

भूत मारेला ना त(अ) सतावेला—

भूत यदि मारता नही तो सताता अवश्य है। दुष्ट यदि सर्वस्व नहीं नाश करता तो कष्ट अवश्य देता है।

भुसहुल के चुअल छव महीना बाद बुझाला—

भुसहुल (भूसा रखने के घर) का टपकना छः महीने बाद मालूम पड़ता है। किसी व्यक्ति को झूठी शान में अधिक व्यय करते देख कर सचेत करने के लिए उक्ति।

मइल लूगा, दूबरि देहि, कुकुर काटे कवन सनेह—

मैला वस्त्र है, दुबली देह है, तो यदि कुत्ते ने काट लिया तो इस में क्या आश्चर्य है?

मछली, पहुना, तीन दिन केहुना—

मछली और मेहमान तीन दिन तक ही अच्छे बने रहते हैं।

मझउवाँ के बागड़—

मझउवां—सारन ज़िले में एक गाँव है, जहां के लोग अत्यंत असभ्य समझे जाते है।

मथुरा जी के पेड़ा जे खाला तेहू पछताला, जे ना खाला तेहू पछताला—

मथुरा का पेड़ा जिस ने खाया वह भी पछताता है, और जिस ने नहीं खाया वह भी।

मन चंगा त कठवती में गंगा—

स्पष्ट है।

मनमउजी जोगी, गाँजारा के संख, मन में आइल त बजवलें ना त दर दर चबा घललें—

मन मौजी जोगी था और रखता था गाजर की शंख। यदि मन में आया तो बजाया नहीं तो चबा ही डाला।

मन मन भावे, मूड़ँ हिलावे—

मन ही मन अच्छा लगता है और सिर हिलाता है।

मन माने मेला, चित माने चेला, ना त सब से भॉला अकेला—

यदि मन रमें तो मेला है, चित्त माने तो चेला है, नही तो सब से अच्छा अकेला ही है।

मर्दे पर, कि बर्धे पर—

या तो मर्द पर ही परिश्रम पड़ता है या बैल पर।

मर्ला का पाछे डोम राजा—

मरने के पश्चात् मृतक शरीर का तो चांडाल भी स्वामी हो जाता है। मरने के बाद सभी अधिकारी हो जाते है।

मर्ला पर बयद अइलें, बार नोंचि के घरे गइलें—

मरने पर वैद्य आए तो बाल उखाड़ कर घर गए। कुछ न कर सके।

मर्ला पूत के बड़ बड़ आँखि—

मरे पुत्र की बड़ी बड़ी आँखें होती हैं। नष्ट हुई चीज बहुत सुंदर कही जाती है।

मरद के खाइल, मेहरारू के नहाइल, केहू देखे केहू देखे ना—

मर्द का भोजन करना और स्त्री का स्नान कोई देखता है कोई नहीं देखता।

मरद मुए नाँव के, नीमरद मुए पेट के—

मर्द नाम के लिए और कापुरुष पेट के लिए मरते हैं।

मरि मरि कइलीं कतवनी, खा गइलि मूंह मरवनी—

मर मर कर के तो कतौनी द्वारा (सूत कात कर) पैसा कमाया, और वह दुष्टा खा गई।

मरे माई, जिए मउसी—

माता मर भी जाय पर मौसी जीती रहे।

मँगनी का बयल के दाँत ना देखल जाइ—

मँगनी के बैल के दाँत देखने की आवश्यकता नही पड़ती। मुफ्त चीज़ की बुराई नहीं देखी जाती।

मँगनी के चाउर, नानी के सराध—

मुफ़्त का चावल यदि मिले तो नानी का भी श्राद्ध कर दिया जाय।

मँगनी के बयल अँजोरिया राति—

यदि मँगनी का बैल मिला और उजेली रात हुई तो लोग उसे रात भर जोतते हैं। माल मुफ़्त दिले बेरहम।

मँगनी में चिखनी बिलरिया माँगे आधा—

मँगनी चीज़ में स्वाद चीखने को माँगना।

मँगले मउअति ना मिले—

माँगने से मृत्यु नहीं मिलती।

मंत्री बिना राज भंग—

मंत्री के बिना राज्य नष्ट हो जाता है।

मॉनला के देवता, नात(अ) पत्थर—

यदि माने तो (पत्थर) देवता है, और न माने तो पत्थर ही।

माई के मनवाँ गाई अस, पुतवा के कसाई अस—

माता का मन गाय ऐसा होता है पर पुत्र का कसाई ऐसा।

माई निहारे पोटरी, जोइया निहारे मोटरी—

(विदेश से आने पर) माता देखती है कि पुत्र का शरीर दुर्बल है अथवा हृष्ट-पुष्ट पर

स्त्री देखती है कि धन कमा कर लाया है कि नहीं।

माघा के जल बाघा—

मघा नक्षत्र का जल व्याघ्र की तरह पुष्ट होता है।

माटी के घोड़ा, सूत के लगाम—

मिट्टी का घोड़ा और सूत का लगाम। बिल्कुल खिलवाड़ की बात पर कहते हैं।

माटी के देवता तिलके में ओरइहें—

मिट्टी के देवता तिलक लगाने में ही खतम हो जायँगे।

मारल चोर, उपासल हीत, फेरु फेरु दुवारे ना लागे—

मार खाया हुआ चोर और उपवास किया हुआ संबंधी फिर दरवाज़े पर नहीं आता।

मारे ठेहुना, फूटे लिलार—

मारा तो घुटने पर जाता है और फूटता है सर। असंबद्ध कार्य के संबंध में उक्ति।

मारेला भतार, बाकी पसेला कसार—

भतार (पति) मारता तो है परंतु कसार (मिष्टान्न विशेष) खिलाता है।

मारे सर्दार, लूटे भंडार—

सर्दार (मुख्य आदमी) को मार दे, तो भंडार लूटा जा सकता है।

माहुर खाइ ना जहर खाइ, मुए के होखे त डामडिम जाइ—

यदि किसी को मारना हो तो वह ज़हर न खाय बल्कि 'डामडिम' चला जाय। डामडिम, दार्जिलिंग की तराई का एक स्थान है, जहां का जलवायु बहुत खराब है।

माँगे के भीखि, चुकावे के गाँव के जामा—

माँगना भिक्षा और शान इस बात की रखना कि हम गाँव भर का जमा (मालगुजारी) चुकाते हैं।

माँगो मुड़वले गरीब गिरिनाँव—

सिर मुड़ाने (किसी महंत का चेला हो जाने) पर भी गरीबगिरि नाम बना रहा। भाग्य में विशेष अंतर न आने पर कहते हैं।

मेयाँ के द(अ)र महजिदिए तक—

मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक

मिश्रॉ से पार ना पाईं, बिबिश्रा के बकोटि खाईं—

मियां का तो सामना नहीं कर पाते और बीबी से लड़ाई करते हैं।

मियें के थूक, मियें के दाढ़ी—

मियां का थूक मियां की ही दाढ़ी में। जिस का पाप उसी के ज़िम्मे लगा देना।

मींठ मींठ गप गप, तीत तीत थू—

मीठा मीठा तो खा लेते हैं और कड़वे को थूक देते हैं। अपने मतलब की बातों को स्वीकार करने तथा दूसरी बातों को स्वीकार न करने पर कहते हैं।

मुश्रला धान में पानी परल—

सूखे हुए धान में पानी पड़ा। नष्ट होती हुई वस्तु बच गई।

मुखुत के गंगा, हॉराम के गोता—

मुफ़्त में गंगा स्नान करते हैं और मुफ़्त में ही गोता लगाते हैं। कुछ लेना देना नहीं।

मुदई के ऊँच पीढ़ा दीहल जाला—

दुश्मन को ऊँचा स्थान दिया जाता है जिस में वह भॉप न सके।

मुरुगी का पोंछि में सूप—

मुर्गी की पूँछ में सूप। असंबद्ध कार्य।

मुरुगी बिश्रइली लाख, बाकी धूरि उकटेरि के खाए के—

मुर्गी कितना हू बच्चा पैदा करे लेकिन उसे खाना पड़ता है धूल कुरेद कर ही। वे बच्चे उस की कुछ भी सहायता नहीं करते।

मुसरी का मुँह में मूसर ना जाई—

चुहिया के मुँह में मूसल नहीं जा सकता।

मुसरी देसु, साँप के घर्रा—

चुहिया साँप को घर्षण करती है। व्यंग्य में, कमज़ोर आदमी की बलवान से शत्रुता करने पर।

मुसुरमान के लइका पैदा भइल त साहजादा, बिगड़ल त हरमजादा, मुश्रल त जीन-जादा—

मुसलमान का लड़का जब पैदा हुआ तो उस का नाम हुआ शाहजादा, जब बिगड़ गया तो हरामज़ादा, और मर गया तो जीनजादा।

मुँह अस मुँह ना, रुपया मुँह देखाई—

मुँह के ऐसा मुँह तो नहीं है (कोई सुंदर मुँह नहीं है) पर मुँह दिखाई रुपया चाहिए।

मुँह में धान डलला पर लावा फुटत बा(अ)—

मुँह में धान डालने पर लावा फूटता है। बड़ी चिंता मे है।

मुँह में राम, बगल में छूरी—

मुँह से राम राम जपते है। पर बगल में (गला काटने के लिए) छूरी है।

मूड़ि दिहलीं, माँगसु खासु—

चेला बना दिया। अब भीख माँगें और खाएं।

मूड़ीं काटि के बार के रइछा—

सिर काट कर बाल की रक्षा करना।

मूस का गोहूँ होई, त ना कूटि के खाई, ना पूरी पकाई—

चूहे के पास अगर गेहू होगा तो न तो वह कूट कर खायेगा न पूड़ी पकावेगा। कंजूस अपने धन का उचित उपयोग नही कर सकता।

मूँस मोटइहें लोर्हा होइहें—

चूहा अगर अधिक मोटा होगा तो लोढ़े के समान होगा। छोटे आदमी की बिसात ही कितनी ?

मेंघी मेघा भइँस किसान, मोर पपीहा घोड़ा धान; बाढ़े मीन जटा कह रानी, दस खुसी जब बरसे पानी—

मेढकी, मेढक, भैंस, किसान, मोर, पपीहा, घोड़ा, धान, मछली और जटा ये दस पानी बरसने पर खुश होते हैं।

मेटा घूँचा दियरी घांटी, सभ के जरि बाटे कोहरे के माँटी—

मेटा (घड़े से छोटा एक प्रकार का मिट्टी का पात्र) घूँचा (एक प्रकार के मिट्टी का पात्र जिस में दूध दुहा जाता है), दियरी और (मिट्टी की) घंटी इन सब की जड़ कुम्हार की मिट्टी ही है अर्थात् कुम्हार की मिट्टी से ही ये चीजें बनती हैं।

में मर जइबों, तोहे ना भँजइबों, तोहरा के देखि देखि, जिअरा जुड़इबों—

(एक कृपण रुपए के प्रति कह रहा है कि) मैं मर जाऊँगा किंतु तुम्हें न भुनाऊँगा। तुम्हें

देख देख कर अपना हृदय शीतल करूँगा।

मोंची मोंची गैंग लागे, राजा के जीन फाटे—

मोचियों में झगड़ा होता है और राजा की क़ीमती जीन फटती है। दुष्ट लड़ते हैं और नुक़सान होता है बड़े लोगों का।

मोर खाइ कौंतौरा, तोर खाइ कूस, देखल जाई अगहन पूस—

मेरी भैंस कतरा (एक तरह की घास) खाती है और तुम्हारी कुश खाती है; इस का मज़ा अगहन पौष मे देखा जायगा कि किस की ज्यादा दूध देती है।

मोर खेलावल गोगनाथ, मोंसे करसु मसखरी—

गोगनाथ (एक पुरुष विशेष) मेरे खिलाए हुए हैं (मेरे सामने पैदा हुए) और अब मुझसे मज़ाक़ करते हैं।

मोर पट्टी मोर गाँव, देबे के परे त पेलि पराउँ—

मेरी ही पट्टीदारी है और मेरा ही गाँव है परंतु जब पोत (मालगुज़ारी) देने का समय आएगा, तब भाग जाऊँगा।

मोर पिया बात ना पूछसु, मोर सुहागिनि नाँव—

मेरे प्रियतम बात तक नहीं पूछते पर मेरा नाम सुहागिन है। व्यंग्योक्ति।

मोर पिया बिसनी, पचास बीरा खासु—

मेरे प्रियतम व्यसनी हैं (प्रतिदिन) पचास बीड़े (पान) खाते है।

मोर बबुआ बड़ पंडित, केहू के कहल मनबे ना करसु—

मेरे बबुआ (पुत्र) बड़े पंडित हैं। किसी का कहना नहीं मानते। व्यंग्य में।

मोर भइल बिआह, अब करबे का—

मेरी शादी तो हो गई, अब क्या करोगे? मतलब निकल जाने पर कहते हैं।

मोर मन माई जाने, कठवति भर पिसान साने—

मेरा मन मेरी माता ही जानती हैं (मेरी मां ख़ूब जानती है कि मैं कितना खाने वाला हूं) अतएव वह कठौती भर आटा गूँधती है।

मोहर के नाव मराई, कोइला पर छापा—

मोहर से भरी डूबती नाव की परवा न करना और कोयले की रक्षा की परवा करना।

रसी जल गइल बाकी अँइठनि ना गइल—

रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई।

रउताइन के दही राजा के भेंट—

रउताइनि (अहीरिन) की दही राजा को ही भेंट होती है।

रहल करिमना तौ घर गइल, गइल करिमना तौ घर गइल—

करीमना घर रहा तब भी घर गया और गया तब भी घर गया। निकम्मे आदमी के निकम्मापन को लक्ष्य कर के कहते हैं।

रहल बात थोड़ी, जनि रोकाव घोड़ी—

बात थोड़ी ही रह गई है, अतएव घोड़ी मत रोको, जाने दो।

रहली घुराभारी, भइली समधिनि—

थी तो घुरभारा (अत्यंत साधारण श्रेणी की) और हो गई समधिन।

रही बाँस, नाँ बाजी बँसुरी—

न बाँस रहेगा न बाँसुरी बजेगी। न झगड़े की वस्तु रहेगी और न झगड़ा होगा।

राग, रसोइया पागरी, कबे कबे बनि जाइ—

राग, रसोई और पगड़ी कभी कभी ठीक बन जाती है। अर्थात् हमेशा नहीं।

राजा करे से न्याव, पाँसा परे से दाव—

जो राजा करता है वही न्याय कहलाता है और जो ासा पड़ता है उसी को दाँव कहते है।

राजा के गाँव मुसहर बाँटि लिहले—

राजा के गाँव को मुसहरों (एक प्रकार की जंगली जाति) ने बाँट लिया।

राजा के घरे मोती के दुख—

राजा के घर भी मोती का दुःख, अर्थात् यह आश्चर्य की बात होगी।

राजा के बेटी, खाए के भूजल भार के बनउर—

राजा की बेटी और खाने को भाड़ का भुना कपास का बीज (बिनौला)।

राजा नल पर बिपति परी, भूजल मछरी जल में परी—

राजा नल पर विपत्ति पड़ी तो भूनी मछली भी जल में जा पड़ी (खाने न पाए)। विपत्ति पडने पर दैव विरोधी हो जाता है

राजा होइबि त खाइबि का—

हम राजा होंगे तो खायँगे क्या? व्यर्थ की चिंता करने वालों पर व्यंग्योक्ति।

राजा हो राजा नगरिया के मूँड़ी? तू अपना के सोच (अ) जेकरा बार होई से उपाइ करी—

नाई ने कहा, "हे राजा! बड़ी परेशानी है, क्या मुझे इस नगर के सब लोगों को मूँड़ना पड़ेगा?" राजा ने कहा, "तुम अपनी फ़िक्र तो करो; जिस के सिर में बाल होगा वह उस के मुड़वाने का भी प्रबंध कर लेगा।"

राँड़ि का सरपले ले आस—

राँड़ स्त्री को श्राप का ही भरोसा रहता है। इस से अधिक वह कर ही क्या सकती है?

राँड़ि के दिन रेंड़े तर भारी—

रेंड़ के वृक्ष के तले भी राँड़ का दिन काटना दुश्वार हो जाता है।

राँड़ि के पुतवा, गोंड़िनि के बछरा—

राँड़ स्त्री अपने पुत्र को और गोंड़िन (एक जाति विशेष की स्त्री) अपने बछवे को बहुत प्यार करती है। अतएव ये दोनों बहुत मोटे ताज़े होते हैं।

राँड़ि के रोअल, आ पुरुआ के बहल, बिरथा ना जाइ—

राँड़ का रोना और पुरवा हवा का बहना वृथा नहीं जाता। अर्थात् राँड़ स्त्री के रोने से किसी को मनुष्य नुक़सान ज़रूर पहुँचता है और पुरवैया हवा चलने से वृष्टि ज़रूर होती है।

राँड़ि ना भइली, साँढ़ि भइली—

वह स्त्री राँड़ नहीं हुई बल्कि साँड़ हो गई।

राँड़ि रँड़ापा कटिहें कब, उढ़रन से काटे पइहें तब—

राँड़ रँड़ापा कब काटने पावेगी? भला जब उढ़रों (विधवा स्त्रियों को ले भागने वाले मनुष्यों) से बचने पावेगी तब न?

राँड़ि राँड़ि रोवसु, संग लागल कुँवारिओ रोवसु कि हमरा बरे नइखे मिलत—

राँड़ तो रोती ही है, साथ में क्वाँरी भी रोती है कि हम को पति ही नही है। राँड़ का रोना तो अर्थ रखता है किंतु क्वाँरी लड़की के रोने का कुछ अर्थ नही क्योंकि उसे तो अनेक वर मिल सकते हैं।

राँड़ि, साँढ़ि, सीढ़ी, संडासी, एसे बचे त सेवे कासी—

राड़ों, माँड़ों, सीढ़ियों और सन्यासियों से बचे तो काशी सेवन करे।

राति खाँ भूत से डरसु, नाँव ओझइत—

रात को भूत से डरते हैं और नाम है ओझा।

रानी के माँड़ ना, लोकनी के बुनिया—

रानी को तो माँड़ भी नही और नौकरानी को बूँदी की मिठाई दी जाती है।

राम(अ) गति आवे, ना दे माई पोथी—

आरंभ के अक्षर तो आते ही नही पर कहते हैं कि 'ए माता, पोथी दो।'

रामनगर में रामलीला, डोल डुमराव ; कोचस में कंस लीला, तजिआ ससरांव—

रामनगर में रामलीला, डुमराव में जन्माष्टमी, कोचस में कंसलीला, तथा सहसराम में ताज़िए की शोभा अद्वितीय होती है।

राम बिना दुख कवन हरी, बरखा बिन सागर कवन भरी ; माता बिनु सेवा कवन करी, लछिमी बिनु आदर कवन करी—

राम के बिना दुख का हरण कौन करेगा और वर्षा बिना सागर कौन भरेगा? माता के बिना सेवा कौन करेगा और बिना लक्ष्मी के आदर कौन करेगा?

राम भाई पतुकी, सलाम भाई चूल्हा—

हे पतुकी (मिट्टी का बर्तन विशेष) और चूल्हा तुम से राम राम है। अब हम भोजन नही पकाएंगे। किसी चलते पुर्ज़े आदमी से विच्छेद करने पर कहते हैं।

राम राम रटना, चिउरा दही सपना—

राम राम रटना है, पर चिउड़ा और दही स्वप्न में भी नही बदा है।

राम लागसु अभागा का ; अदिमी लागे सुभागा का—

राम (ईश्वर) अभागे को ही लगते हैं (दुख पहुँचाते हैं), पर आदमी सुभाग्यवान को। आदमी के शत्रु होने से कुछ नहीं होता पर राम के शत्रु होने से मृत्यु हो जाती है।

रिनि के फिकिर ना धन के सोच, एही कारन धमधूसर मोट—

ऋण की तो फ़िक्र ही नहीं और न धन की चिंता है, इसी कारण धमधूसर (पुरुष विशेष) मोटे हैं।

रुख ना बिरिछ, तहाँ रेंड़ परधान—

जहां दूसरे वृक्ष नहीं होते वहां रेंड़ ही प्रधान समझा जाता है।

रुखी मर्ले दूखी, कउआ मर्ले सूखी—

गिलहरी मारने से मनुष्य दुखी होता है और कौआ मारने से सुखी।

रुपया तीनि, बयल ल बीनि—

रुपए तो पास में केवल तीन ही हैं और चाहते है कि बैल चुन कर ही लें।

रुसिहें देवान मोर करिहें का, लुगरी छाड़ि के पहिरिहें का—

यदि दीवान रुष्ट ही होंगे तो मेरा क्या कर लेगे ? क्या चिथड़ा (जो मै पहने हूं उसे) छीन कर पहन लेगे ?

रोवत गइलें, मुवला के खबरि ले अइलें—

रोते गए—मरने की खबर ले आए।

रोए के रहलीं, अंखिए खोंदा गइलि—

रोने को था ही कि आँखों में चोट लगी। किसी काम के लिए पहले ही से तैयार था कि बहाना भी मिल गया।

रोजा के गइले, निमाज परल गरें—

रोजा को छुड़ाने जा रहे थे कि नमाज गले पड़ी। एक विपत्ति से बचने जा रहे थे कि दूसरी विपत्ति आ पड़ी।

लउरी का पोरे भेंट ना भइल, बाप बाप गोहरावे लगले—

लाठी से भेंट नहीं और लगे बाप बाप चिल्लाने। विपत्ति के आए बिना जो लोग शोर मचाते हैं, उन पर लक्ष्य है।

लड़नी आइलि, ना पेठिआ लागलि—

लड़नी (नाम की स्त्री) नहीं आई अतएव बाजार न लग सकी। अपने को अत्यंत महत्व देने वाले व्यक्ति के संबध में व्यंग है।

लड़ें सिपाही, नाँव कप्तान के—

लड़ते है सिपाही और कप्तान का नाम होता है।

लदले छव मन, बेचले नव मन—

लादने से छः मन और बेचने से नौ मन। एक गृहस्त अथवा बनिया किसी बाजार में

केवल छः मन अनाज बैल पर लाद कर बेचने के लिए ले गया था। जब बेच कर आया तो कहने लगा "आज मैंने नव मन अनाज बेचा"। इस पर यह लोकोक्ति चल निकली। व्यंग्य में झूठे मनुष्य पर।

लब लब करें अहिरिन के धीव, कब जाइबि ससुरा कब खाइबि घीव—

अहीरिन की पुत्री जल्दी करती है कि कब ससुराल जाऊँगी और कब घी खाऊँगी। जल्दबाज़ लोगों पर उक्ति।

लरिका का बहाने लरिकोरी जिएले—

लड़के के बहाने से ही लड़के वाली स्त्री जीती है। अर्थात् उस को भी अच्छा अच्छा भोजन खाने को दिया जाता है।

लरिका का खेलवार, खन खटिआ खन भुइयाँ—

लड़कों का खेलवाड़—क्षण मे खाट पर क्षण में भूमि पर।

लरिका के ढेर सहकावे के ना, मारे के त (अ) फुसिलावे के ना—

लड़कों का मन अधिक बढ़ाना अच्छा नहीं। उन्हें मारने पर फुसलाना नहीं चाहिए।

लरिका ठाकुर बूढ़ देवान, ममिला बिगरे साँझ बिहान—

यदि लड़का स्वामी हो और बूढ़ा दीवान हो तो सुबह शाम मामला बिगड़ता ही रहे, अर्थात् एक दूसरे का दृष्टिकोण न मिले।

ललका लुगवे जनि पतिआहु, तरे लुगरो बाइ—

लाल वस्त्र ऊपर देख कर ही विश्वास मत करो, इस के नीचे चिथड़ा है। बाहरी शानशौकत वालों पर प्रयुक्त।

लंका के जे बड़, छोट से हो ओन्चास हाथ के—

लंका का बहुत छोटा आदमी भी उंचास हाथ का।

लंगा नाचे, फाटे का—

नंगा यदि नाचे तो उस का फटे ही क्या? वह तो पहले ही से वस्त्रहीन है।

लंगा नाचे म(अ)धि बजार में—

नंगा बाज़ार के मध्य में नाचता है।

लॉजाइल लरिका, ढोंढ़ी टोवे—

लज्जित बालक अपनी ढोंढी (नाभि) टटोलता है।

लागि से करु, चाहे चरु चाहे परु—

जो काम करना हो उसे पूरी इच्छा से करो, चाहे खाओ, चाहे सो रहो।

लाजे लाँजासु ना त डीठी डेरइबो ना करसु—

लज्जा से यदि लज्जित नहीं होते तो क्या दृष्टि से डरें भी न?

लात के अदमी बात से ना मानेला—

लात मारने पर मानने वाला आदमी बात से नहीं मानता।

लाल लूगा फाटि जाई, चमकल छुटि जाई—

लाल वस्त्र फट जायगा तो चमकना (चमक कर चलना) भी छूट जायगा।

लाला के ओरि बहराला—

लाला के मकान का किनारा भी भाड़ा जाता है। बड़े आदमी की सभी प्रतिष्ठा करते हैं।

लाला के लावा, कोइरिए खाइ—

लाला का चबेना कोइरी (एक जाति विशेष) को ही बदा है।

लिखसु रहीम, पढ़सु करीम—

लिखते हैं रहीम और पढ़ते हैं करीम। जब किसी का लिखना पढ़ा नहीं जाता तब कहते हैं।

लूट में चरखा भॉला—

लूट में यदि चरखा भी मिले तो भला है।

लेना ना देना, बजाउ रे बजाउ—

लेना न देना और कहते हैं कि बजाओ, बजाओ। खर्च कुछ करना नहीं है और बजाने वालों से कहते हैं कि बाजा बजाओ।

ले लुगरिया, चल डुमरिया—

अपना कपड़ा ले ले। अब डुमरी (एक गाँव) मे चला जा। भागने पर उद्यत आदमी को लक्ष्य करके कहते हैं।

लोहइनि के बयल, कोहइनि लेके सती होइ—

लुहारिन का बैल और कुम्हारिन लेकर सती हो। दूसरे की चीज और दूसरा उस के लिए झगड़ा करे।

लोहा के लोहे, काटेला—

लोहे को लोहा ही काटता है—अपना संबंधी ही अपने को मारता है। जाति का बैरी जाति वाला ही होता है।

लोहा के सहताई, सियार गढ़वले टाँगा—

लोहा के सस्ता होने से स्यार ने भी टाँगा गढ़वाया।

लोहे तामे अइसन, त सोने चानी कइसन—

लोहा और ताँबा (पहनने) से ऐसे अच्छे मालूम होते हो तो सोना और चाँदी (पहनने) से कैसे अच्छे लगोगे?

सइ कपूत से एक सपूत आछा—

सौ कुपुत्रों से एक सुपुत्र अच्छा।

सइ गुंडा, नाँ एक मोछमुंडा—

सौ गुंडों के बराबर एक मुछमुंडा होता है।

सइ गुलाम, घर सूना—

सौ गुलाम और फिर भी घर सूना।

सइ घर में एक घर डाइनो बकसेले—

सौ घरों में एक घर डाइन भी बख्श देती है। अपना मंत्र उस पर नही चलाती। दुष्ट से दुष्ट का कोई न कोई मित्र अवश्य होता है।

सइ चमार, न एक भुँइहार—

सौ चमार न एक भूमिहार।

सइ चाईं, ना एक पछाहीं—

एक पछाहीं मनुष्य सौ चाइयों (धूर्तो) के बराबर होता है।

सइ चूहा खाइके, बिलारि भइलीं भगतिन—

सौ चूहे खाकर बिल्ली भक्तिन बन गई। सब उपभोग करके पुण्य करने वालों पर प्रयुक्त।

सइ चोट सोनारे के, नाँ एक चोट लोहारे के—

स्पष्ट है

सइ पुराचरन, ना एक हुराचरन—

एक हूरे की मार सौ पुरश्चरण के बराबर होती है। हूरा=लाठी के नीचे वाला मोटा भाग।

सइ बकता के एगो चुप हरावे—

सौ बक बक करनेवाले आदमियों को एक चुप रहने वाला आदमी हरा देना है।

सइ में फुली हजार में कान, सवा लाख में अइँचाातान; अइँचाताना करे पुकार, मँजरा से रहिह (अ) हुसिआर—

आँख में फूल वाला आदमी सौ में, काना हजार में, और ऐंचाताना सवा लाख में कहीं एक भलामानस होता है, किंतु कंजा मनुष्य तो कभी भलामानस होता ही नहीं, अतएव उस से सदैव होशियार रहना चाहिए।

सइ हइता बाघ मराला—

सौ हत्या करने पर बाघ भी मारा जाना है। अंत में पापी अवश्य नष्ट होता है।

सगरे रमायन होइ गइल, सीता केकर जोइ—

सब रामायण हो गई और यह बात नहीं मालूम हुई कि सीता किस की स्त्री थीं? व्यंग्य में मूर्खतापूर्ण प्रश्न पर कहते हैं।

सत्ती आपन मान राखसु त आन के रखिहें—

सती अपना मान रक्खें तो दूसरे का रक्खेंगी।

सदा दिआरी संत घर, जो घर आटा होइ—

संत के घर सदा दिवाली ही है, जो घर में आटा है, अर्थात् भोजनादि का प्रबंध है।

सब के कहल करबि, बाकी खूँटा गाड़बि उहें—

सब का कहा करूँगा लेकिन खूँटा वहीं गाड़ूँगा। जिद्दी आदमी के विषय में कहते हैं।

सब केहू तीन बीस, त हम काहे ना साठि—

सब कोई तीन बीस तो हम क्यों न साठ। सब के बराबर होने का दावा करने वाले व्यक्ति पर।

सब अन्न में साँवा जेठ, से भइले धाने के हेठ—

सब अन्नों में साँवा ज्येष्ठ है किंतु वह भी धान से उतर कर है

सभ का सभ चीजु के फीकिरि, त गोंड़वा के बेगारी के फिकिरि—

सब को सब चीज़ों की फ़िक्र है तो गोंड़ (एक जाति विशेष) को बेगार की।

सभ किछु काज भरथ के हाथ—

सब कार्य भरत के ही हाथ है। अधिकारी व्यक्ति के संबंध में उक्ति।

सभ किछु छुटल, तुम्मा के फेरल ना छूटल—

सब कुछ छूट गया पर तुंबा फेरना न छूटा। बुरी आदत जल्दी नही छूटती।

सभ के गुरु गोबरधनदास—

गोबरधनदास जी सभी के गुरु है। व्यंग्य में किसी सयाने आदमी पर।

सभ दाम, घरें खरचे नाहीं—

घर में द्रव्य तो भरपूर है, पर खर्च नही। कंजूस के लिए कहा है।

सभ दिन साहु के, एक दिन चोर के—

सब दिन साहु का एक दिन चोर का। साहु सर्वदा धन एकत्र करते है पर चोर एक दिन मे ही चुरा ले जाता है।

सभ धर निकलि गइल, पोंछि अटकलि बा—

सब शरीर बाहर निकल गया केवल पूँछ अटकी हुई है। सब काम हो जाने पर किंचित् शेष रहने पर कहते हैं।

सभ धान बाइस पसेरी—

अर्थ स्पष्ट है। खोटे-खरे की पहचान न होने पर कहते हैं।

सभ पर दया चिलर पर नाहीं—

सब पर दया करे परंतु चीलर (जुँआ) पर नहीं।

सभ बनिजिआ थाकल, त मुँह पिटावे लागल—

सब बनिज (वाणिज्य) थके तो मुँह पिटाने लगे। सब रोज़गार करके थक जाने पर, बुरे व्यापार करने पर।

सभ भेंड़ि भाड़ में गइलीं, उरु उरु लगले बा—

सब भेड़े तो भाड़ में गई और अभी 'उर उर' लगा ही है। किसी वस्तु के नष्ट हो जाने पर उस की चर्चा सुन कर कहते हैं।

समा के चूकल मरद डाढ़ि के चूकल बानर

सभा मे भूल किया हुआ मनुष्य और डाल का चूका हुआ बंदर दोनों बेकाम होते है।

समधी कोहनाइल जासु, बजनियाँ का गोड़ ले परीं—

समधी तो नाराज होकर चले जाँय और बारात के बाजा बजाने वालों के पैर पड़ा जाय। व्यंग्य में, योग्य व्यक्ति को छोड़ अयोग्य की पूजा पर कहते है।

सरनाम बनिया, बदनाम चोर—

यह दोनों मारे जाते हैं।

सरब दोस हरे बरिआई—

शक्ति सब दोषों को दूर कर देती है।

सरलो तेली, त एक अधेली—

सड़ा तेली भी एक अधेली का होता है। साधारण तेली भी धनी होता है।

सराहल बहुरिआ, डोम घरे जाली—

प्रशंसा की गई बहू डोम के घर जाती है, बिगड़ जाती है।

सवख का मारे खेखरि, बइरकँटी में करे डंड—

शौक़ के मारे लोमड़ी झरबैरी के काँटों में दंड करती है।

सवखीन बुढ़िया, चटाई के लहँगा—

शौकीन बुढ़िया चटाई का लहँगा।

सहकल गवरइया, भरसाईं लावे खोंता—

मन बढ़ी गौरइया भाड़ में घोंसला बनाती है।

सहता माल, बहता पानी—

सस्ता माल बहते हुए पानी की तरह होता है।

सइयाँ अस कहीं त नतवे टूटे, भइया अस कही तो सेजिए छूटे—

यदि अपने स्वामी (पति) का पक्ष लूं तो भाई से नाता टूटे, और भइया का पक्ष लूं तो पति की सेज छूट जाय।

सइयाँ के अर्जल भइया के नाँव, चोलिआ पहिरि में जइबों ससुरारि—

पति के धन से बनी हुई, किंतु उस से नाम होता है भाई का, ऐसी अँगिया को पहन कर मैं ससुराल जाऊँगी।

सइयाँ भइले कोतवाल, अब डर काहे के—

मेरे स्वामी कोतवाल हुए अब डर किस का? अब मैं स्वच्छंद हो गई। किसी की स्वच्छंदता पर उक्ति।

सँउँसे ताल में एके खरई—

खरई, तालाब की एक प्रकार की घास है जिस में पत्ते नहीं होते। संपूर्ण ताल में एक ही खरई; वंश भर में एक ही पुत्र।

सँउँसे धर सियार खाइ घललसि, बाकी मूँड़ी के झाँटल ना छुटल—

संपूर्ण धड़ तो स्यार ने खा लिया किंतु मूँड़ का हिलाना नहीं छूटा। दरिद्र हो जाने पर भी झूठी शान दिखलाने वालों पर कहते हैं।

सँउँसे रॉजाई जर गइल, बाघराइ के जाड़ा ना गईल—

संपूर्ण रजाई जल गई पर बाघराइ का जाड़ा न गया।

सँग घोड़ा पयदल चले, तीर चलावे बीनि, थाती धरे दॉमाद घर, जग में भकुआ तीनि—

साथ में घोड़ा रहने पर भी पैदल चलने वाले, युद्ध में चुन कर तीर चलाने वाले तथा दामाद के घर अपनी संचित पूँजी धरोहर में रखने वाले मनुष्य मूर्ख होते हैं।

सँगे सँगे लँगरो, देवाल फानेलो—

साथ साथ लँगड़ी स्त्री भी दीवाल लाँघती है। संग का महत्व बताया है।

साइत से सुतार भला—

शुभ मुहूर्त से शुभ अवसर अच्छा होता है।

साग से जुड़इले, त साग का पानी से जुड़इहें—

साग से तो पेट भरा नहीं, तो क्या साग के पानी से पेट भरेगा?

साझ के घोड़ा के कवन जड़े नाल—

साझे के घोड़े की नाल कौन मढ़ावे? साझे की वस्तु की दुर्गति होती है।

साझ के सुई सेंगरा पर चले ले—

सेंगरा—पेड़ के मोटे तने अथवा पत्थर के बड़े टुकड़े को मोटी रस्सी का फंदा बना कर बाँस के टुकड़ों में लटका कर कई आदमी ले जाते हैं; रस्सी और बाँस की सहायता से भार-वहन की जो वस्तु तैयार होती है उसे "सेंगरा" कहते हैं। साझे की सुई सेंगरा पर चलती है।

सात पाँच के लाठी, एक अदिमी के बोझ—

अर्थ स्पष्ट है।

सात पाँच मिलि करीं काज, हारीं जीतीं नाहीं लाज—

सात-पाँच आदमियों से मिल कर काम करना चाहिए। इस में हारने-जीतने से कुछ लज्जा नहीं होती।

सात पाँच लइका एगो संतोख, खेखरि मरल एकहू ना दोख—

अंतर्कथा—एक बार कुछ लड़कों ने एक लोमड़ी मार डाली, उन के अभिभावक पंडित जी के पास आए। उन्हों ने कहा, हमारे लड़कों ने लोमड़ी मार डाली है, उस का क्या फल है? पंडित जी ने कहा कि इस का तो बहुत दोष लगता है। लड़कों ने कहा इस में संतोष (पंडित जी के लड़के का नाम) भी था; तो उन्होंने कहा सात पाँच लड़कों में यदि संतोष था तो लोमड़ी मारने में दोष नहीं लगता। अपना दोष किसी मतलब के लिए भुलाने पर उक्ति।

सात बेवइहा के एगो कोरिह मारेला—

सात बेवाई वालों (जिन के पैर में बेवाई हो) को एक कोढ़ी मारता है। बेवाई कोढ़ से भी दुखदायी होती है।

सात रोटी माता के, सत्ताइस रोटी पवनी के—

सात रोटी तो देवी जी को और सत्ताइस रोटी 'पवनी' को। धोबी, नाई, दर्जी आदि पवनी के अंतर्गत आते हैं।

सात सइ के कनियाँ सत्ताइस सइ के बर, खेत बारी बान्हा बाटे, साधु होइ के चल—

शादी के अवसर पर सब धन उड़ा देने वालों पर उक्ति है।

सातू गुर खातानी, लागा लगवले बानी, आइ त आई नाहीं त गइल माल के कवन ठेकाना—

सत्तू और गुड़ खा रहा हूं और संबंध लगाया है। आवेगा तो आवेगा नहीं तो गए माल का ठिकाना ही क्या?

साधे घोड़ी बियइली पाड़ा—

साधे (श्रद्धा) से घोड़ी ने भी पाड़ा उत्पन्न किया। देखी-देखा काम करने पर उक्ति।

सावन पछुआ सींकि डोलावे, बरसत मेघ कवन बिलगावे—

सावन में पछवा हवा यदि सींक भी डुलावे तो वृष्टि होने में विलंब नहीं हो सकता।

सावन मास बहे पुरवइया, बरधा बेचि ली ह(अ)धेनु गइया—

सावन मे अगर पुरवा हवा बहे तो बैल बेंच कर गाय खरीदनी चाहिए क्योंकि उस वर्ष अन्न पैदा होने की संभावना नही।

सावन में जमले सियार, भादो में आइलि बाढ़ि, बाप रे बाप अइसनि बाढ़ि कबहीं ना देखलीं—

सावन में स्यार का जन्म हुआ और भादो में बाढ़ आई तो उस ने कहा "बाप रे बाप ऐसी बाढ़ ही मैंने कभी नहीं देखी।" किसी नववयस्क आदमी के किसी बूढ़े अथवा बड़े अनुभवी के सामने बढ़-बढ़ के बातें करने पर कहते हैं।

सावन ले भादवे दूबर—

क्या सावन से भादो दुबला है? दो आदमियों की शक्ति की तुलना करते समय कहते हैं।

सावाँ, साठी साठि दिन, बरखा होखे रातिदिन—

साँवा साठी (दोनों एक विशेष प्रकार के अन्न हैं) साठ दिन में ही तैयार हो जाते हैं किंतु दिन रात इन के लिए जल (वृष्टि) की आवश्यकता होती है।

सावाँ सोहले, बुरिबक सरहले—

सावां (एक प्रकार का निकृष्ट अन्न) निराने से और मूर्ख सराहना करने मे बढ़ते जाते हैं।

सास के हाथे खपलू त खपल, अब पतोहु के हाथे खप(अ) त जानी—

सास के साथ किसी प्रकार कालक्षेप कर सकी तो कर सकी। अब पतोहू के साथ कालक्षेप करो तो मालूम पड़े। किसी झगड़ालू स्त्री के संबंध में।

सासु ना ननद, घर अपने अनद, अब भले मटकाईं ना—

न तो सास है न ननद, घर मे खूब आनंद है, खूब खाओ। एकांत में मौज से जीवन व्यतीत करने पर कहा है।

साँझे मरद, बिहाने बरध—

खाने-पीने की सुविधा होने से मर्द एक शाम भर ही में और बैल दूसरे दिन मोटा ताजा

दिखलाई देने लगता है।

साँप छछूनरि के लड़ाई, छोड़े त आन्हा आ घोंटे त कोरिह् हो जाई—

साँप और छछूदरि की लड़ाई में यदि साँप उसे निगल जाय तो कोढ़ी हो जाय और छोड़ दे तो अंधा हो जाय। असमंजस में पड़ने पर कहते हैं।

साँप ना मुअल, लाठी टूटलि—

साँप तो मरा नहीं लाठी (डंडा) भी टूटी। काम सिद्ध नहीं हुआ और शक्ति का भी अपव्यय हुआ।

सिखावलि बुधि अढ़ाई घरी—

सिखाई वुद्धि ढाई घरी ठहरती है।

सिधरी चाल चले, रोहुआ का सिरे बीते—

सिधरी (एक प्रकार की छोटी मछली) तो काँटे में फँसाए जाने पर चलती है किंतु रोहित (बड़ी मछली) जब उसे पकड़ने आती है तब वह फँस जाती है। छोटे आदमी के दोष से बड़ों पर आपत्ति आती है।

सुकुवा के अइली सनिचरवे के गइली, खोलु माई टाटी गंगाजलि बेटी अइली—

शुक्रवार को (ससुराल) गई और शनिवार को लौट आई। अम्मा दरवाजा खोलो। गंगाजलि बेटी (एक लड़की का नाम) आ गई। जो लड़की ससुराल में झगड़ा करके नैहर लौट आती है, उस पर उक्ति है।

सुख दुख गइल बिसरि, जब लइका भइल तीसर—

जब तृतीय पुत्र ने जन्म लिया तब दुख-सुख सब भूल गया।

सुखी होइ के पान ना खाइ, दुखी होइ के नून ना खाइ, सेकर जनम अकारथ जाइ—

जो सुखी होकर पान नही खाता और दुखी होकर नमक नही खाता उस का जीना व्यर्थ ही जाता है।

सुखे सिहुला, दुखे दिनाइ, करम फूटे त फाटे बेवाइ—

सुख से सेहुँआ, और दुख में दिनाइ होती है, किंतु जब भाग्य फूट जाती है तब पैर मे बेवाई फटती है।

सुअर के बाँचा धर(अ) तब काँइ काँइ, मार(अ) तब कोँइ काँइ—

सुअर का वच्चा पकड़ने पर "काँइ काँइ" और मारने पर "कोँइ काँइ"। दुष्ट मनुष्य

चाहे किसी दशा में रहे दुख देता है।

सूका के बाछी, जनम के हतिया—

चार आने की वछिया और जन्म भर की हत्या। बात बहुत छोटी होने और परिणाम निरंतर दुखदायी होने पर कहते हैं।

सूखल रोटी अइसन, त नूने तेले कइसन—

जब सूखी रोटी इस प्रकार खाते हो, तो नमक तेल लगाने पर किस प्रकार खाओगे?

सूप हँसे त हँसे, चलनिओ हँसे जजना का सहस्त्ररि गो छेद—

सूप हँसे तो हँसे चलनी क्या हँसे जिस में हज़ारों छिद्र हैं? छिद्र वाले पुरुष का दूसरे पुरुष के छिद्रान्वेषण करने पर कहते हैं।

सूरदास के काली कामरि चढ़े ना दूजो रंग—

सूरदास की काली कमली पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता। किसी की दृढ़ एकनिष्ठा देख कर कहते हैं।

सेआना सतुरु हर उपाई नासे—

सयाना शत्रु हर तरह से नाश करता है।

से ननिअउरा नइखे, जे नाती कलेवा कइके जइहें—

वह ननिहाल नहीं कि नाती जलपान करके जायँगे। व्यंग्योक्ति।

सेर भरि के पिसिआ, महादेव के गितिया—

सेर भर की पिसाई और महादेव का गीत। काम थोड़ा शोर बहुत।

सेर भरि खातिर गइली गोनसारि, डेढ़ सेर जव मोर बछवे चबाइ—

सेर भर के लिए भाड़ के पास गई और डेढ़ सेर जव मेरे बछड़े ने खा लिया। थोड़े थोड़े लाभ की आशा में अधिक नुकसान होने पर कहते हैं।

सेर भरि धनियाँ साहजहाँपुर में कोठी—

सेर भर धनियां पास में है और शाहजहाँपुर में कोठी वनवाते हैं। पूँजी कुछ नहीं और बढ़-बढ़ के बातें करते हैं।

सेंगर बरहिया के लागि—

सेंगर (राजपूतों की एक जाति) और बरहिया (राजपूतों की एक जाति) की शत्रुता प्रसिद्ध है। दो व्यक्तियों अथवा वंशों में पारस्परिक भयंकर शत्रुता के अवसर

पर कहते हैं।

सोझ अँगुरी घीव नाँ निकरे—

सीधी अँगुली घी नहीं निकलता।

सोझिया के मुँह कुकुर चाटे—

सीधे आदमी का मुँह कुत्ता चाटता है।

सोवे से खोवे, जागे से पावे—

जो सोता है वह खोता है, और जो जगता है वह पाता है।

हथिया बरिसे चितरा घहराइ, घर में बइठि के धनहा अगराइ—

हस्त नक्षत्र में वृष्टि हो और चित्रा नक्षत्र में मेघ गर्जन करे तो घर में बैठ कर धान वाले आनंद मनावें।

हम अपना गोहूँ के अखरे पकाइबि, तोहार का—

हम अपना गेहूं अखरा (बिना कूटे हुए) ही पकायेंगे, तुम्हारा क्या? हम अपनी वस्तु का चाहे जैसा उपयोग करें, दूसरे का क्या?

हम अपना छान्ही पर होरहा लगाइबि, तोहार का—

हम अपने छप्पर पर होला लगावेंगे तुम्हारा क्या?

हम भरी आन के, हमार भरे कमकरिनि—

हम दूसरों का पानी भरते हैं और हमारा कमकरिन (कमकर की स्त्री) भरती है। कमकर=एक जाति विशेष है जिस का पेशा पानी भरना, बर्तन साफ़ करना आदि होता है।

हमरा किहाँ अइब(अ) त का ले अइब(अ), तोहरा किहाँ जाइबि त का खिअइब(अ)

हमारे यहां आओगे तो क्या ले आओगे? तुम्हारे यहां जाऊँगा तो क्या खिलाओगे?

हम राजा तू रानी, के भरी गगरी से पानी—

मैं राजा हूं और तुम रानी हो। घड़ा लेकर पानी कौन भरने जाय? जब दो व्यक्ति अपनी अपनी ऐंठ में हों तो काम कौन करे?

हम लरकोरी तू अलवाँति ; दूनो परोसा लइह(अ) जाँति—

मैं लरकोरी हूं और तुम अलवाँति (जिस का बच्चा बहुत छोटा हो) अतएव दोनों की थालियों में चावल खूब दबा दबा कर रखना।

हमार दादा घीव खात रहलें, देख(अ) हमार बाँहि मँहँकतिआ—

हमारे दादा घी खाते थे, देखो हमारी बाँह महक रही है।

हर्ना बयल, अँकवारि भरि पयना—

हिरन के बराबर तो बैल और बहुत से पयने (एक छोटी सी छड़ी जिस से हलवाहे बैल हाँकते हैं)।

हर्ना समुझि समुझि बन चर्ना—

हरिन, समझ समझ कर वन मे चरना। किसी को सावधान करने के लिए कहते है।

हर हगा में अइसल तइसन, पगुरी में रथ—

हल और पटेला में ऐसे तैसे पर जुगाली करने में रथ के समान। काम न करने वालों पर व्यंग्योक्ति।

हरिकल मानेला, परिकल नाहीं—

हरका हुआ मनुष्य मना करने से मान जाता है, परंतु परिचित मनुष्य नही मानता।

हरि कवर पर बिसमिल्ला ना होई—

प्रत्येक निवाले (कवर) पर बिसमिल्ला नहीं बोला जाता।

हलुआई के दोकान, दादा के फतिहा—

हलवाई की तो दुकान है, और दादा का फ़ातिहा करना है। खर्च दूसरे का और सुख पहुँचाना चाहते है किसी दूसरे को।

हलुवा में अँकटी—

हलवे मे ककड़ी। अच्छी बातचीत चलते समय कोई बेमजे की बात छेड़ दे तब कहते हैं।

हँसि लोरहा करसु लड़ाई, हम सम्भुनाथ के भाई—

लोढ़ा हँस कर लड़ाई करता है कि हम भी शंभुनाथ (शंकर जी) के भाई हैं। अयोग्यों की योग्यों से प्रतिद्वंद्विता करने पर कहते हैं।

हसुआ अपने ओर खिंचेला—

हँसिया अपनी ओर ही खींचती है। अपने संबंधियों का भले आदमी बराबर ख़याल रखते हैं।

हाकिम बदलेला, हुकुम ना बदलेला—

हाकिम बदलता है परंतु हुक्म नही बदलते ।

हाथ गोड़ सिरकी पेट नदकोला, जे कुछ कमाई से भकोसले के होला—

हाथ पैर सिरकी (पतले) है पर पेट नदकोला (नाद के समान) है, इस प्रकार जो कुछ उपार्जन करते है सब खा जाते हैं।

हाथ परे भँभोला, बे हाथ परे बक बक—

दूसरों के हाथ में पड़ने पर तो गिड़गिड़ाते हैं, परंतु बेहाथ होने पर बकबक (झगड़ा) करते है।

हाथ में ना गोड़ में, टकही लिलार में—

न तो हाथ में कोई गहना है न पैर में ही, पर दो पैसे की टिकुली लिलाट में है।

हाथी के दाँत खाए के अवर दिखावे के अवर—

हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और।

हाथी के पयर में सब के पयर—

हाथी के पैर में सब का पैर हो सकता है।

हाथी चललें बजार, कुकुर भूँकसु हजार—

हाथी बाजार चला तो हज़ार कुत्ते भूकने लगे। बड़े आदमी छोटों की शिकायत की परवा नही करते।

हाथे बाड़ी खुदिया तबहीं मोरी दिदिआ, नाहीं बाड़ी खुदिया जरसु मोरी दिदिआ—

जब तक उन के हाथ में अन्न है तब तक हमारी जीजी हैं, और जब अन्न नहीं है तो हमारी जीजी नही हैं।

हाथो तर से गइल, लातो तर से गइल—

हाथ के नीचे से भी गया और लात के तले से भी गया।

हारों त हूरों, जीतों त थूरों—

हारने पर भी मारूँगा, जीतने पर भी मारूँगा, सब प्रकार से मारूँगा। जबर्दस्ती करने पर कहते हैं।

हाड़ीं के एगो चाउर टोअला से पता चलि जाला—

हाँड़ी का एक ही चावल टोने से पता चल जाता है कि पका है या नहीं।

हाँड़ी के ठेकाने ना, चलीं समधी जेवें—

हाँड़ी (मिट्टी का बर्तन) तक घर में नहीं, और (कहा जाता है कि) चलिए समधी जी भोजन कर लीजिए।

हाँड़ी में के नून जानल—

हाँड़ी का नमक जानना। सभी भीतरी कमजोरियों से पूर्णतया परिचित होना।

हिजड़ा आपन घर बसावसु त दोसरा के बसइहें—

नपुंसक अपना घर तो आबाद करे, दूसरे का क्या आबाद करेगा?

हींगु ओराइ जाले, बाकी ओकर गमक ना ओराला—

हींग खतम हो जाती है पर उस की गंध नहीं जाती।

हीड़ल दोसर केहू, मछरी मारल दोसर केहू—

हीड़ा दूसरे किसी ने और मछली मारी किसी दूसरे ने। काम किया किसी दूसरे ने और मज़ा उठाया किसी और ने। जब तालाब अथवा गढ़े में बहुत कम पानी रह जाता है तो बहुत आदमी मिल कर पानी में पैर चलाने लगते हैं। ऐसा करने से नीचे का कीचड़ पानी में मिल जाता है। इसे "हीड़ना" कहते है।

हीले रोजी, बहाने मउअति—

रोजी हीले से ही लगती है, और बहाने से ही मृत्यु होती है।

हेल बाँड़ा हेल, आत पोंछि अलगवले बाँड़ी—

दुमकटे बैल की पूँछ तो थी नही, किसी ने नाला पार करते हुए कहा "जल्द पार चल जाओ"। जबाब मिला "पहले ही से पूँछ उठाए बैठा हूँ"। किसी मनुष्य ने अपनी समस्त कमाई उड़ा डाली एक दूसरे मनुष्य ने नाराज़ होकर कहा "भाई मरो खपो भी"। उस ने उत्तर दिया "मैं तो बहुत पहले ही से इस के लिए तैयार बैठा हूँ"।

होखे के रहले बाबू भइया हो गइले भिखारी—

होने वाले थे बाबू-भइया (अमीर) पर हो गए भिखारी।

तुलसीदास और नंददास के जीवन पर नया प्रकाश

[लेखक—श्रीयुत दीनदयालु गुप्त, एम्० ए०]

तुलसीदास और नंददास के जीवन के संबंध मे जिन प्राप्त ग्रंथों का उल्लेख अभी तक किया जाता रहा है, वह हैं—(१) 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (गोकुलनाथ, संवत् १६२५); (२) 'भक्तमाल' (नाभादास, संवत् १६४२); (३) 'तुलसीचरित्र' (बाबा रघुबरदास); (४) 'मूल गोसाईंचरित' (बाबा बेणी-माधवदास, संवत् १६८७); और (५) 'भक्तमाल की टीका' (प्रियादास, संवत् १७६९)। इन के अतिरिक्त कुछ और ग्रंथ भी खोज में मिले हैं, जो इन दोनों कवियों के आरंभिक जीवन पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। वे ये हैं:

१. 'रत्नावली' (जीवनी)—कवि मुरलीधर चतुर्वेदी-कृत, संवत् १८२९;

२. 'रत्नावलि दोहा-संग्रह'—तुलसीदास जी की धर्मपत्नी रत्नावलि द्वारा लिखित, संवत् १८७५;

३. 'श्रीसूकरक्षेत्रमाहात्म्य'—कृष्णदास-कृत संवत् १६७०; और

४. 'रामचरितमानस' की एक पुरानी प्रति—संवत् १६४३ की लिखी हुई। यह प्रति सोरों, जिला एटा, के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित गोविंदवल्लभ जी भट्ट के पास है, और मुझे इस के देखने का अवसर मिला है।

रत्नावली (जीवनी)

मुरलीधर चतुर्वेदी सोरों (सूकरक्षेत्र), जिला एटा, में एक कवि हो गए हैं। इन के लिखे दो ग्रंथ सोरों मे मिले हैं। एक 'रत्नावली का जीवनचरित्र' दूसरा 'बारहसैनी जातिवृक्ष'। मुरलीधर ने इस का रचना-काल सं० १८२९ दिया है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने जिस मुरलीधर कवि का वृत्तांत

दिया है, वह उन से भिन्न व्यक्ति हैं। साहित्य के इतिहासों में दिए हुए मुरलीधर या श्रीधर का समय सं० १७६७ है, और निवास-स्थान प्रयाग है। उस के स्वरचित ग्रंथों के विषय नायिका-भेद, कृष्ण-लीला-गान आदि है। प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता मुरलीधर का उल्लेख इतिहास मे नहीं हुआ है।

'रत्नावली' और 'बारहसेनी जातिवृक्ष' में इन का अपना परिचय इस प्रकार है :

विपुल सिद्ध मुनि वृद्ध संतजन वृंद बसत जहँ।
श्रीहरि-पदन-प्रसूत हरिपदी लोल लसत जहँ।
तासु कूल सोपान सेनि नयनाभिराम जहँ।
भक्ति-ज्ञान-बैराग-पुंज बाराह-धाम तहँ।
बहु पुन्यन सों पाइयत, दरस क्षेत्र बाराह महि।
केतिक पुन्यन फल लह्यो, द्विज मुरली जहँ जनम गहि।

('रत्नावली')

चतुरवेद मुरलीधर सुनाम,
संतति सनाढ्य तप वेद धाम।
हों रहहुँ सु सूकरखेत गाम,
प्रभु बराह पद पावन ललाम॥[१]

('बारहसेनी जातिवृक्ष')

यह कवि बहुत अधिक प्राचीन नही है। इस 'रत्नावली-चरित्र' ग्रंथ की एक प्रतिलिपि जो उक्त भट्ट जी के पास है संवत् १८६४ विक्रमी की है।

मुरलीधर के शिष्य रामवल्लभ मिश्र की नक़ल की हुई यह प्रति है। इस को नक़ल किए १३१ वर्ष हो गए। जीवन-चरित्र में गोस्वामी तुलसीदास और उन की पत्नी रत्नावलि के विषय में लिखा गया है। तुलसी के परंपरागत, जन-श्रुति रूप में आते हुए जीवनचरित्र का इस ग्रंथ में बहुत कुछ समर्थन

---

[१] देखिए अलीगढ़ का 'बारहसेनी' पत्र मई १९३१ अंक ५

वि ने स्वयं इस संबंध में अपने ग्रंथ की सामग्री का आधार जनश्रुति ही है। वह कहता है:

नव-कर-वसु-भू विक्रमीय, सूकर तीरथ बंदनीय।
साध्वी रत्नावलि कहानि, बिरधन मुख जस परी जानि।
दुज मुरलीधर चतुरवेद, लिखि प्रगटी जगहित सभेद।

जिस प्रकार वृद्ध-जनों के मुख से कवि ने सुना था, उसी प्रकार उस व कर प्रकट किया है। ग्रंथ की आरंभिक पंक्तियां इस प्रकार हैं:

श्रीगणेशाय नमः।। अथ रत्नावलि लिख्यते।।

बन्दहुँ विकट बराह ईस, बन्दहुँ सनकादिक मुनीश।
सती सारदहिं सीस नाय, सावित्री सिय गुनन गाय।
अरुन्धती दय गलि नारि, अनसूया पुनि गांधारि।
सती भई जे जगत धाम, तिनहिं सबनु कहँ करि प्रनाम।
रत्नावलि की लिखहुँ गाथ, तिहि चरनन मँह नाय माथ।
जासु चरित है अति गँभीर, तदपि लिखहुँ कछु धारि धीर।

अंत में पुष्पिका इस प्रकार है:

इति श्री रत्नावली सम्पूरणम्। लिषितम श्री मुरलीधर चतुरवेदि शिष्येन लभ मिश्रेन सोरों मध्ये सं० १८६४।।
मारगशिर मासे शुक्ल पक्षे ६ शनिवासरे। कृष्णाय नमः शुभम्।।

इस ग्रंथ की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, और कविता माधुर्यपूर्ण है। भाषा कहीं भी शिथिलता नहीं प्रतीत हुई। तुलसीदास और रत्नावलि के जन्म विद्याध्ययन, विवाह, वैवाहिक जीवन, तुलसी का वैराग्य और रत्नावलि योग, बस यही प्रसंग इस ग्रंथ के विषय हैं। तुलसीदास के वैराग्य के बाद रित्र इस में नहीं है। बीच-बीच में नंददास का भी उल्लेख आया है। । की प्रमाणिकता के पक्ष में हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि पुस्तक ना और भाषा आदि के देखने से पुस्तक सौ सवा-सौ वर्ष पुरानी अवश्य होती है। अप्रामाणिक मानने के, भाषा आदि संबधी, प्रमाण हमें इस छोटे

ग्रंथ में नहीं मिले। सोरों, ज़िला एटा, और वहां आस-पास के स्थानों में रत्नावलि की कहानी प्रसिद्ध है। उस के रचे दोहे भी कुछ वृद्ध-जनों को कंठ हैं। इस प्रकार अभी तक तो हमें इस की प्रामाणिकता के विरुद्ध कोई बात इस की जाँच में मिली नहीं। हां, इस के समर्थन में कुछ और भी ग्रंथ वहां मिले है, जिन की चर्चा आगे होगी।

इस ग्रंथ में रत्नावलि, तुलसीदास और नंददास के विषय में निम्न-लिखित वृत्तांत है—

गोस्वामी तुलसीदास सोरों ज़िला एटा के निवासी पंडित आत्माराम सनाढ्य ब्राह्मण, सुकुल आस्पदधारी के पुत्र थे। उन के गुरु सोरों के ही निवासी स्मार्त वैष्णव पंडित नृसिंह जी थे। नंददास उन के चचेरे भाई थे और दोनों नृसिंह जी से विद्या पढ़ते थे। तुलसीदास की माता का नाम हुलसी था। तुलसी के माता-पिता उन की बहुत छोटी अवस्था में ही परलोकवासी हो गए। उन की दादी ने बहुत ग़रीबी में उन का पालन किया। बाल्यकाल से ही 'राम राम' कहने मे वह आनंद लेते थे, इस लिए उन का नाम रामोला (? रामबोला) पड़ गया था। तुलसी के चचेरे भाई नंददास और चंद्रहास सोरों के निकट रामपुर गाँव में रहते थे। उधर रत्नावलि सोरों के निकट बहने वाली गंगा की धारा के पश्चिम ओर, एक छोटे से गाँव, बदरिका में रहने वाले पंडित दीनबंधु पाठक की पुत्री थी। दीनबंधु सनाढ्य ब्राह्मण और बड़े पंडित थे। उन्हों ने अपनी कन्या को भी खूब विदुषी बनाया था। जब रत्नावलि बड़ी हुई तब उस के पिता ने वर की खोज की। इन के एक मित्र ने सलाह दी कि सूकरखेत में पंडित नृसिंह जी की पाठशाला मे रामपुर-निवासी सनाढ्य ब्राह्मणों के लड़के भी पढ़ते हैं, उन मे से कन्या के लिए तुलसी, उपनाम रामोला बहुत सुंदर और योग्य वर रहेगा। इस परामर्श को पाकर पंडित दीनबंधु पाठक, पंडित नृसिंह जी के यहां गए और उन से विनती कर रामोला तुलसीदास का संबंध तै कर दिया। दोनों का विवाह हुआ। दादी ने तुलसीदास को बड़ी ग़रीबी और कष्ट में पाला था। पौत्र-वधू को पा वह बहुत प्रसन्न हुई। परंतु कुछ समय बाद वह स्वर्गवासिनी हुई। तुलसीदास जी पुराण आदि की कथा कह कर

सोरो में ही जीवन-निर्वाह किया करते थे। उन के तारा नाम का एक पुत्र भी हुआ, परंतु वह कुछ समय का होकर परलोक सिधार गया। विवाह के पंद्रह वर्ष बाद रत्नावलि एक दिन अपने पति की आज्ञा लेकर सावन मास में राखी बाँधने अपने मायके गई। तुलसीदास जी कहीं कथा बाँचने गए थे। जब ग्यारह दिन बाद वापिस आए, तो सूने घर में उन का मन न लगा। स्त्री की याद में रात में ही ससुराल चल दिए। भादों की काली रात्रि में चढ़ती हुई गंगा को पार कर अपने ससुर के घर पहुँचे। जब रत्नावलि को ज्ञात हुआ, तो वह तुलसीदास से मिली और उस ने पूछा, "प्राणनाथ, इस भादों की गंगा को आप रात्रि में कैसे पार कर आए?" तुलसीदास ने उत्तर दिया, "तुम्हारे प्रेम के सहारे!" इस पर रत्नावलि बहुत प्रसन्न हुई और बोली, "स्वामिन्! जगदाधार के प्रेम से मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाते हैं, मेरे प्रेम में आपने गंगा जी पार की! प्रेम की महिमा वास्तव में अपार है।" तुलसी का भगवद्-प्रेमी हृदय इस ईश्वरोन्मुख प्रेम का संकेत पाकर राम-प्रेम में उमड़ने लगा। रत्नावलि सो गई। उसी रात को तुलसीदास सब को सोता छोड़ न जाने कहाँ चल दिए। प्रातःकाल उन की खोज हुई, परंतु पता नहीं चला। इसी वियोग में वह बहुत काल तक शृंगारों का त्याग कर पति की पादुकाओं की पूजा करती हुई, जीवन व्यतीत करने लगी। उस का जीवन परोपकार और स्त्री-शिक्षा में ही व्यतीत हुआ। संवत् १६५१ वि० चैत्र कृष्ण अमावस के दिन अमर-लोक को चली गई।

इस जीवन-चरित्र के ऐतिहासिक महत्व पर हिंदी संसार का जो कुछ भी निर्णय हो, परंतु काव्य-रचना की दृष्टि से यह पुस्तक सुंदर है। 'मूल गोसाईं-चरित' की रचना जितनी शिथिल है, उतनी ही यह प्रौढ़ है। इस के कुछ अंश जिन का ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे इस लेख से संबंध है, हम उद्धृत करते हैं :

तासु प्रतीची नीर धाम, कबहुँ रह्यो नयनाभिराम।
नाम बदरिका बन प्रसिद्ध, होत मृगादिन जहां बिद्ध।
रह्यो शान्ति को थल विशाल, बदरीबन भुइं अन्तराल।
बसतु तहां वर बिप्र एक, धारतु निगमागम विवेक

दीनबन्धु पाठक सुनाम, ईस भक्त बहु गुनन ग्राम
तासु दयावति नाम बाम, पतिबरता गुन सील धाम
दोउन प्रकटे पुत्र तीन, सिब संकर सम्भु प्रवीन
तनया रत्नावलि कनीन, पतिपितु कुल जिन पूत कीन
तासु रूप अति मनोहारि, जनु विरंचि विरची सँभारि

इस प्रकार रत्नावलि के रूप-गुणों को कवि वर्णन करता है
लसी-वंश के विषय मे वह कहता है:

लवै मीत इक दई आस, गुरु नृसिंह के जाउ पास।
स्मारत वैष्णव सो पुनीत, अखिल वेद आगम अधीत ।।
वक्रतीर्थ ढिग पठसाल, तहाँ पढ़ावत विपुल बाल।
तहाँ रामपुर के सनाढच, सुकुल बंस धर द्वै गुनाढच ।।
तुलसीदास और नंददास, पढ़त करत विद्या विलास,
एक पितामह पौत्र दोउ, चंद्रहास लघु अपर सोउ ।।
तुलसी आतम रामपूत, उदर हुलासो के प्रसूत।
गये दोउ ते अमर लोक, दादी पोतहिं करि ससोक ।।
कहत रह्यो सो राम राम, रामोला हूं तासु नाम।
गौर वरण विद्यानिधान, विविध सास्त्र पंडित महान ।।

आगे नंददास के विषय में लिखा है:

नंददास अरु चंद्रहास, रहहिं रामपुर मातु पास।
दंपति बस बाराह धाम, लहत मोद आठोहु याम ।।

रेत्र' में रत्नावलि ने पति को भर्त्सना नहीं दी थी, और
ने मायके गई थी। पति-आज्ञा से ही अपने नैहर गई थी।
की संतान के विषय में कवि कहता है:

तारापति नामक सपूत, भयो तासु बुधि बल अकूत।
गयो दैव गति सुरग धाम, विलपति रत्नावली बाम ।।

. . . .

ब्याह भये दस पंच वर्ष इक दुख तजि बीते सहर्ष।

ज्ञात होता है यह 'एक दुख' पुत्र-शोक ही था। तुलसीदास जी के वैराग्य लेने पर रत्नावलि--

कबहु राम पुर बसति जाइ, कबहु वदरिका रहति आइ।

. . . .

पति वियोग में साधि जोग, त्यागि दये सब जगत भोग।।

भू सर रस भू बरस पूरि, सुरग गई तहि सुजस भूरि।

संवत् १६१५ में उन का स्वर्गवास हुआ।

इस ग्रंथ मे वर्णित स्थान सूकरक्षेत्र, वदरिका, रामपुर, नृसिंह पाठशाला आदि को मैं ने देखा है। गोस्वामी तुलसीदास के इस कथन की कि,

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत।

समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।।

पूर्ति इस ग्रंथ के वृत्तांत से होती है। तुलसीदास के सूकरक्षेत्र में राम-कथा सुनने के विषय में बाबा वेणीमाधवदास का कहना है कि गुरु नरहर्यानंद जी बालक तुलसीदास को लेकर सरयू और घाघरा के संगम पर सूकरक्षेत्र में आए।

कहत कथा इतिहास बहु, आये सूकरषेत।

संगम सरजू घाघरा, संत जनन सुष देत।।

इस संबंध में हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' के रचयिता बाबू श्यामसुंदरदास का कहना है, कुछ लोगों ने सूकरक्षेत्र को चित्रकूट के निकट का सोरों माना है, और इसी आधार पर वहां कुछ उत्साही जनो ने तुलसीदास का आश्रम भी स्थापित कर दिया है, परंतु वास्तव में सोरो का सूकरक्षेत्र से कोई संबंध नही है। सूकरक्षेत्र, जैसा वेणीमाधवदास ने लिखा है, सरयू और घाघरा के संगम पर है, और आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इस कथन से बाबू साहब ने सोरों (सूकरक्षेत्र) जिला एटा का कोई ज़िक्र नही किया है। तुलसीदास की जीवनी पर मई सन् १९३८ की 'वीणा' में एक लेख क्वीस इंटर-कालिज के रामबहोरी शुक्ल जी का निकला था। उस में भी उन्हो ने वेणीमाधवदास के लेख का समर्थन किया, और गंगा सूकरक्षेत्र जिला एटा को किसी दूसरे तुलसीदास का जन्म-स्थान माना। ज़िला एटा में गंगा के किनारे

सूकरक्षेत्र, सोरों, बहुत पुराना तीर्थ-स्थान है। नवलकिशोर प्रेस से छपे हुए 'श्री-बाराहपुराण भाषा' के पृष्ठ २१६ पर १२१ वें अध्याय में सूकरक्षेत्र के विषय मे निम्नलिखित लेख है:

"बाराह जी कहने लगे कि हे धरणी, जो पूछती हो, सावधान होकर श्रवण करो, मेरा अतिप्रिय कोका मुख नामक क्षेत्र है, जिसे सूकरक्षेत्र भी कहते है सो क्षेत्र श्री भागीरथी गंगा जी के निकट सब वान्छा को पूर्ण करनेहारा और मुक्ति का दाता है।"

इस के आगे बाराह जी ने, सूकरक्षेत्र में चक्रतीर्थ, सोमतीर्थ आदि तीर्थों का वर्णन किया है। 'बाराहपुराण' के अनुसार सूकरक्षेत्र गंगा के किनारे का होना चाहिए। यह 'बाराहपुराण' में वर्णित तीर्थ सोरों में विद्यमान है। सोरो की बस्ती वहुत ऊँचे पर बसी हुई है, और वहां के मकान भी प्राचीनता का परिचय दे रहे हैं। एक बहुत विस्तृत टीले पर एक प्राचीन इमारत बनी है जिस को नवी शताब्दी के सोलकी बंश के महाप्रतापी राजा सोमदत्त की यज्ञ-शाला कहा जाता है। इस में खंभों पर १३वी सदी संवत् के लेख खुदे हुए हैं। सोरों में राजा टोडरमल आदि प्राचीन राजाओं के घाट भी बने हुए हैं। नगर मे अधिकतर ब्राह्मण रहते है, और उन का व्यवसाय पंडागीरी ही है। हज़ारो यात्री इस स्थान पर आया करते हैं। 'बाराहपुराण' में कथित यहां बदरिका स्थान भी है। पहले सोरों के पश्चिम की ओर बदरिका और सोरों के बीच गंगा की एक धारा बहती है थी जो अब बुढ़गंगा कहाती है। कहा जाता है कि कई बार बदरिका स्थान गंगा की बाढ़ में उजड़ चुका है। आजकल गंगा सोरों और बद-रिका से २-३ मील के फ़ासले से बहती है। बाराह जी के मंदिर के नीचे एक बहुत विस्तृत तालाब है। यह सोरों की गंगा कही जाती है। इस में दो मील से गंगा का जल ही काट कर लाया जाता है। उस स्थान पर पहले गंगा की धारा के बहने के प्रत्यक्ष चिह्न दिखाई देते हैं। वहां की जमीन बिलकुल रेतीली और सफ़ेद है। कहा जाता है कि जब से नहरों में गंगा का पानी रोक लिया गया तब से यह धारा बंद हो गई है। परंतु बरसात में अब भी सोरों और बदरिका के बीच की नदी बहने लगती है इस लिए गंगा सूकरक्षेत्र (सोरों)

'वाराहपुराण' के सूकरक्षेत्र से भिन्न नहीं है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' ग्रंथ अभी हाल में नंददास के पुत्र कृष्णदास का रचा हुआ मिला है। उस में सूकरक्षेत्र का वर्णन किया है। उस ग्रंथ के आरंभ की वंदना में कवि ने तुलसीदास और नंददास का उल्लेख किया है। इस का विवरण हम अभी देंगे। इस कथन का निष्कर्ष यही है कि "सू(क)रक्षेत्र सोरों स्थान बहुत प्राचीन है और गंगा-संसर्ग से इस का महत्व प्राचीनकाल से ही विख्यात रहा है। घाघरा और सरयू के समय का स्थान वाराहपुरान के अनुसार सूकरक्षेत्र नहीं है।" मुझे लोगों ने नृसिंह जी की पाठ-शाला भी दिखाई। यह मंदिर नृसिंह जी मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। यह मदिर अब बहुत जर्जर अवस्था में है। नृसिंह जी को हनुमान जी का उपासक बताया जाता है। इस मंदिर में पहले एक हनुमान जी की छोटी-सी प्रतिमा एक कोठरी मे स्थापित थी। कहा जाता है कि वह नृसिंह जी की स्थापित की हुई थी। मदिर के किसी अधिकारी ने अब उस प्रतिमा को आँगन में स्थापित कर दिया है। वहां यह भी प्रसिद्ध है कि मूर्ति को निकालने वाला व्यक्ति तुरंत ही अधा हो गया था। इस मंदिर के दक्षिण कोण पर एक कुआं है जो बहुत ही प्राचीन है। इस के दक्षिण के कोने पर एक प्राचीन वटवृक्ष भी है।

रत्नावलि लघु दोहा-संग्रह

यह ग्रंथ सं० १८७५ की प्रतिलिपि है। सोरों जिला एटा निवासी पडित प्यारेलाल जी के यहां से पंडित गोविंदवल्लभ भट्ट जी शास्त्री काव्य-तीर्थ को प्राप्त हुई थी। इस संग्रह में १११ दोहे हैं। इन दोहों की भाषा मधुर और सरस है और शैली बडी परिमार्जित है। इस में कवि या कवियित्री की काव्य-प्रतिभा प्रत्यक्ष लक्षित हो रही है। भाषा में व्रजभाषा का बड़ा लालित्य-पूर्ण रूप है। ज्ञात होता है कि ये किसी सच्चे हृदय के उद्गार हैं। इन दोहो मे रत्नावलि ने पति के चले जाने पर वियोग में पश्चात्ताप, प्रिय-वियोग और पति-दर्शन की लालसा की बड़ी सच्ची वेदना के साथ व्यंजना की है। इस मे पति-भक्ति, शील, स्त्री-शिक्षा, सद्व्यवार आदि साधारण शिक्षाप्रद विषयों पर उपदेश दिए हैं इन में बडी सुंदर-सुंदर उक्तियां हैं सोरों में मुझ

से पंडित भद्रदत्त जी ने यह भी कहा था कि एक बृहद् दोहा-संग्रह और मिला है। वह उक्त भट्ट जी के अधिकार में है। भट्ट जी उन दिनों बंबई गए हुए थे। इस लिए मै उस बृहद् संग्रह को न देख पाया। उस से मुमकिन है कुछ और अधिक इस विषय पर प्रकाश पड़े।

इस संग्रह के आरंभ मे इस प्रकार लेख है:

रत्नावली लघु दोहा संग्रह।

श्रीगनेसायनमः। अथ रत्नावली किरत दोहा लिष्यते ॥

और अंतिम पृष्ठ पर इस प्रकार लिखा है:

इति श्री रत्नावली लघु दोहा संग्रिह संपूरनम। लिषितई सुरनाथ पण्डित सोरों जी मिती माघ सुदी तेरसि १३ सोमवार संमत १८७५ में।

यह संग्रह भी बहुत अधिक पुराना नही है। यदि इस की कोई प्राचीन लिपि मिल जाय तो इस की प्राचीनता का पूरा प्रमाण हो जाय। परंतु फिर भी इस के कुछ दोहों में ऐसे भाव व्यक्त हुए है जिन तक कदाचित् आजकल के रचनेवाले कवि की पहुँच बहुत कठिनता से हो सकती है। उदाहरण के लिए हम रत्नावलि के उपदेशात्मक दोहों में से एक को लेते है:

अगिनि तूल चकमक दिया, निसि महँ धरहु सम्हारि।
रत्नावलि जन का समय, काज परै लेउ बारि॥

इस दोहे का भाव उक्तिवैचित्र्य-पूर्ण न होते हुए भी सुंदर नीति और शिक्षापूर्ण है। रत्नावलि के समय मे दियासलाई नहीं थी। चकमक पत्थर के टुकडे घर-घर रहा करते थे। यहां 'चकमक' शब्द का प्रयोग यह बता रहा है कि दोहा कम से कम दियासलाई के प्रचार से पहले का रचा गया है। इसी प्रकार दोनों की भाषा में ब्रजभाषा का प्राचीन माधुर्य पूर्ण-रूप से विद्यमान है। इस ग्रंथ के तुलसीदास और नंददास संबंधी उल्लेखों को देने से पहले नमूने के तौर पर हम इस के कुछ दोहे पाठकों के अवलोकनार्थ देते हैं, जिस में रत्नावलि ने अपनी वियोग-दशा का वर्णन किया है:

धिक मो कहुं मो बचन लगि, जो पति लह्यो बिराग।
भई वियोगिनि निज करनि रतु काग

दीनबन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छांह।
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बांह॥
सुबरन पिय संग हौंलसी, रत्नावली सम कांच।
तिहि बिछुरत रत्नावली, रही कांच अब सांच॥
को जाने रत्नावली, पिय वियोग दुख बात।
पिय बिछुरन दुख जानतीं, सीय दमैंती मात॥
करहु दुखी जनि काहु कों, निदरहु काहु न कोय।
को जाने रत्नावली, आपनि का गति होय॥
दुखन भोगि रत्नावली, मन महि जनि दुखि पाइ।
पापनु फल दुख भोगि तू, पुनि निरमल ह्वै जाइ॥
ज्यों ज्यों दुख भोगत तसहिं, दूरि होति तब पाप।
रत्नावली निरमल बनत, जिमि सुबरन सहि ताप॥

कुछ दोहों में रत्नावलि ने अपना, अपने पति तुलसीदास और उन के चचेरे भाई नंददास का कई जगह जिक्र किया है। रत्नावलि का स्वयं दिया हुआ वृत्तांत कवि मुरलीधर चतुर्वेदी द्वारा लिखित वृत्तांत की पुष्टि करता है।

निम्न-लिखित दोहों में कवियित्री ने अपने और अपने पति गोस्वामी तुलसीदास संबंधी भाव प्रकट किए हैं:

हौं न नाथ अपराधिनी, तऊ क्षमा करि देउ।
चरनन दासी जानि निज, बेगि मोरि सुधि लेउ॥
दीनबन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छांह।
तौउ भई हौं दीन अति, पति त्यागी मो बांह॥

इस से ज्ञात होता है कि रत्नावलि दीनबंधु के घर पली थी, और उस को पति ने त्याग दिया था। इस त्यागने में रत्नावलि का कोई अपराध नहीं था।

सनक सनातन कुल सुकुल, गेह भयो पिय श्याम।
रत्नावलि आभा गई, तुम बिन बन सम गाम॥

रत्नावलि सनक के शुक्ल ब्राह्मण-कुल में ब्याही थी

तीरथ आदि बराह जे, तीरथ सुरसरि धार।
याही तीरथ आइ पिय, भजहु जगत करतार।।
प्रभु बराह पद पूत महि, जन्म मही पुनि एहि।
सुरसरि तट महि त्याग असि, गये धाम पिय केहि।।
सबहि तीरथन रमि रह्यो, राम अनेकन रूप।
जहीं नाथ आओ चले, ध्याओ त्रिभुवन भूप।।

इस से विदित होता है कि आदितीर्थ सूकरक्षेत्र सोरों तुलसीदास की जन्म-भूमि थी। वहीं रत्नावलि अपने पति को बुलाती हुई कहती है कि आप राम का भजन यहीं आकर कीजिए।

जासु चलहि लहि हरषि हरि, हरत भगत भव रोग।
तासु दास पद दासि हैं, रतन लहत कल सोग।।
मोइ दीनों संदेश पिय, अनुज नन्द के हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोइ, सुमिरति श्री रघुनाथ।।

इस दोहे मे कहा है कि तुलसीदास ने अपने छोटे भाई नंददास अथवा छोटे भाई के नंद (पुत्र) के हाथ रत्नावलि के पास संदेश भेजा कि रत्नावलि, जो तू रघुनाथ जी का भजन करती है, तो तू मुझ से अलग नहीं है। 'दो सौ बावन वार्ता' से मालूम होता है कि तुलसीदास ने एक बार नंददास को पत्र लिखा था, और एक बार वे नंददास से मिलने वृंदावन भी गए थे। मुमकिन है उसी समय यह संदेश नंददास के हाथ अपनी स्त्री रत्नावलि के पास भेजा हो, या इस किंवदंती के अनुसार कि एक बार नंददास के पुत्र, और तुलसीदास जी के भतीजे कृष्णदास, तुलसीदास को काशी से सोरों लाने के लिए गए थे। इस समय तुलसीदास ने यह सदेश भेजा हो:

साहस सों रतनावली, जनि करि कबहूं नेह।
सहसा पितु घर गौन करि, सती जराई देह।।

इस में उस ने अपने अनुभव से स्त्रियों को शिक्षा दी है। रत्नावलि ने अनेक दोहों में पति भक्ति और स्त्री-शिक्षा पर उपदेश दिए हैं

सूकरक्षेत्रमाहात्म्य

नंददास की जीवनी के अब तक के आधार-भूत ग्रंथो में नंददास के पुत्र कृष्णदास का नाम कहीं नहीं आया। इस 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' और संवत् १६४३ की 'रामचरितमानस' की प्रति में यह उल्लेख मिलता है कि कृष्णदास नंददास के पुत्र थे। सोरों में इन कृष्णदास के वंशजों में से अब भी एक घर विद्यमान बताया जाता है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' ग्रंथ कृष्णदास ने संवत् १६७० में लिखा था। जो प्रतिलिपि सोरों में भट्ट जी को मिली है, वह सं० १८७० की थी। मैं ने इस प्रति को देखा है, और पढ़ कर उसी में से नोट लिए हैं। कवि ने आरंभिक सोरठों में अपने पिता नंददास जी, अपनी माता कमला और रत्नावलि की बंदना की है। वे अंश इस प्रकार हैं:

श्रीगणेशायनमः। ॐ नमो भगवते बराहाय।
अथ कृष्णदास कृत सूकरक्षेत्रमाहात्म्य भाषा लिख्यते।

सोरठा

गणिपति गिरा गिरीस, गिरजा गंगा गुरुचरन।
बन्दहुं पुनि जगदीश, छबि बराह महि उद्धरन॥
बन्दहुं तुलसीदास, पितु बड़ भ्राता पद जलज।
जिन निज बुद्धि बिलास, रामचरितमानस रच्यो॥
सानुज श्री नन्ददास, पितु की बन्दहुं चरनरज।
कीनो सुजस प्रकाश, रास पंच अध्यायि भनि॥
बन्दहुं कृपा निकेत, पितु गरु श्री नरसिंह पद।
बन्दहुं शिष्य समेत, बल्लभ आचारज सुपद॥
बन्दहुं कमला मात, बन्दहुं पद रत्नावली।
जासु चरन जल जात, सुमिरि लहहिं तिय सुरथली॥
सुकुल बंस दुज मूल, पितरन पद सरसिज नमहुं।
रहहिं सदा अनकूल, कृष्णदास निज अंस गनि॥
महि बराह संवाद, सूकरक्षेत्र महात्म कर।
हों धरि उर आह्लाद कृष्णदास भाषा करहुं॥

इस ग्रंथ के अंतिम छंद इस प्रकार हैं:

बाराहक्षेत्र महात्म जे संक्षेप लहि भाषा करचो।
जगनाह श्रीमन्नर बराह, धरा बिचारन सों भरचो॥
जे कृष्णदास पढ़ें सुनें गावहिं बिचारहिं धन्य ते।
सद्गति गहें सुभ गति लहें हरिभक्त होत अनन्य ते॥

चौपाई

नरहरि कूरम सफरि अनूपा। परसुराम जोइ राम सरूपा॥
वामन कृष्ण जोई जग नाहा। बद्ध, कलकि सोइ ईस बराहा॥
व्यापक अखिल चराचर जोई। दस अवतार धारि प्रभु सोई॥

दोहा

सोरह सौ सत्तर प्रमित, सम्वत सित दल मांह।
कृष्णदास पूरन करचो, क्षेत्र महात्म बराह॥
तीरथ वर सौकर निकट, गाम रामपुर बास।
सोइ रामपुर श्यामपुर, करचो पिता नन्ददास॥

इति श्री बाराहपुराणे भगवच्छास्त्ये श्री वाराह धरनीं सम्वादे, कृष्णदास कृतं भाषा सूकरक्षेत्रमहात्म्य सम्पूर्णम्॥

इस ग्रंथ के अंत में कृष्णदास ने अपनी वंशावली भी दी है; जो प्रामाणिक साबित होने पर तुलसीदास और नंददास की जीवनियों पर एक नया ही प्रकाश डालेगी। इस ग्रंथ को देख कर तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर अभी तक तो हमें यही प्रतीत हो रहा है कि वास्तव में यह वृत्तांत इन दोनों कवियों के आरंभिक जीवन-चरित्र को अंधकार से निकाल कर प्रकाश में ला रहा है।

कृष्णदास जी की वंशावली:

खेत बराह समीप सुचि, गाम रामपुर एक।
तहं पण्डित मंडित बसत, सुकुल बंश सविवेक॥
पण्डित नारायन सुकुल, तासु पुरुष परधान।
धारयो सत्य सनाढ्य पद, ह्वै तप वेद निधान

शस्त्रशास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोन समान।
ब्रह्म रंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्त पिता अनुहारि।
पण्डित श्रीधर शेषधर, सनक सनातन चारि॥
भये सनातन देव सुत, पण्डित परमानन्द।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चितानन्द॥
तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परवीन।
लघु सुत जीवाराम भे, पण्डित धरम धुरीन॥
पुत्र आत्माराम के, पण्डित तुलसीदास।
तिमि सुत जीवाराम के, नन्ददास चन्दहास॥
मथि मथि वेद पुरान सब, काव्य शास्त्र इतिहास।
रामचरितमानस रच्यो, पण्डित तुलसीदास॥
वल्लभ कुल वल्लभ भये, तासु अनुज नन्ददास।
धरि बल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास॥
नन्ददास सुत हों भयो, कृष्णदास मतिमन्द।
चन्द्रहास बुध सुत अहे, चिरजीवी ब्रजचन्द॥

इस वंशावली के अनुसार तुलसीदास और नंददास चचेरे भाई ठहरते हैं।

वंश-वृक्ष

उन की जाति सुकुल आस्पदधारी सनाढ्य ब्राह्मण थी। रामपुर के निवासी एक पंडित सनातनदेव हुए थे। उन के पुत्र पंडित परमानंद जी हुए। परमानंद जी के पुत्र पंडित सच्चिदानंद थे। इन के दो पुत्र हुए, बड़े आत्माराम, छोटे जीवाराम। आत्माराम के पुत्र गोस्वामी तुलसीदास ('रामचरितमानस' के रचयिता) और जीवाराम के पुत्र कविवर नंददास और उन के छोटे भाई चद्रहास जी हुए। नंददास के पुत्र कृष्णदास और चंद्रहास के पुत्र ब्रजचंद्र हुए। तुलसीदास की कोई संतान जीवित नही रही। इसी से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने उन की किसी संतान का उल्लेख नही किया। इस ग्रंथ से यह भी ज्ञात होता है कि नददास ने कृष्ण-भक्त होने के बाद अपने गाँव रामपुर का नाम श्यामपुर रख दिया।

श्यामपुर गाँव आजकल दोनों नामों से प्रसिद्ध है। इस गाँव में एक श्याम-सर नाम का तालाब भी है, जहां बल्देव छठ के दिन प्रत्येक वर्ष मेला होता है। कहा जाता है कि यह तालाब भी नंददास जी ने ही बनवाया था। पटवारियों के सरकारी काग़ज़ों में इस गाँव का नाम श्याम-सर लिखा जाता है। इस गाँव के नाम बदलने की किंवदंती भी सोरों और आसपास के गाँवो मे प्रसिद्ध है। आजकल यह गाॅव लगभग पचास घरों की बस्ती है। यहां ब्राह्मणों के दो-एक घर ही है। परंतु वे अपने को नंददास का अथवा तुलसीदास का वशज नहीं कहते। नंददास जी के वंशज तो, कहा जाता है, सोरों में रहते है। मै जब सोरों गया तो मैं ने नंददास के वंशधरों का पता लगाया। मुझे एक ब्राह्मण-घर बताया गया, जो अपने को तुलसीदास और नंददास का वंशज बताता था। सोरों के आसपास के गाँवों में सनाढ्य ब्राह्मण ही रहते है, अन्य प्रकार के जैसे सरयूपारी या कान्यकुब्ज ब्राह्मण वहां नहीं हैं।

सोरों में 'रामचरितमानस' की एक प्राचीन प्रति

तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' के तीन कांडों की खंडित प्रतिया सोरों में पंडित गोविंदवल्लभ भट्ट शास्त्री काव्यतीर्थ के पास है। ये प्रतियां संवत् १६४३ वि० की लिखी हुई हैं। इन प्रतियों को मैं ने देखा और इन की जाँच की। उपर्युक्त तीन कांड ये हैं:—बालकांड, अयोध्याकांड, और अरण्यकांड। **अयोध्याकांड** का अंतिम पृष्ठ नष्ट हो गया है बाल तथा अरण्य कांडों में भी

बहुत से पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। बचे पृष्ठों में भी कुछ पत्र किनारे से जले हुए हैं। ये तीनों कांड भिन्न-भिन्न तीन लेखकों के लिखे हुए हे, और उन में से दो में १६४३ संवत् दिया है। सोरो मे 'रामचरितमानस' की इस प्रति के बारे मे यह कहा जाता है कि 'रामचरितमानस' का प्रचार सर्व-प्रथम सोरों में तुलसीदास के भाई नंददास के पुत्र कृष्णदास ने किया था। कहा जाता है कि कृष्णदास एक बार अपने ताऊ तुलसीदास को सोरों लाने के लिए काशी गए। परंतु तुलसीदास सोरों नहीं आए। तभी कृष्णदास तुलसीदास की दी हुई रामायण लाए थे। इन कांडों को देखने से प्रतीत होता है कि सात कांड 'रामचरितमानस' महात्मा तुलसीदास ने कई आदमियों से काशी में लिखवा कर कृष्णदास को दिए थे। अरण्यकांड के लेखक का नाम लछिमनदास दिया हुआ है, और बालकांड के लेखक का नाम रघुनाथदास दिया है।

अरण्यकांड की पुष्पिका २८ वें पृष्ठ पर इस प्रकार है:

इति श्री रामायने सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल-वैराग्य सम्पादिनी षट सुजन सम्वादे रामवनचरित्र वर्ननंनो नाम तृतीय सोपान अरण्य काण्ड समाप्त ॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उन के भ्राता सुत कृष्णदास सोंरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास काशी जी मध्ये संमत १६४३ आषाढ़ शुक्ल ४ शुक्र इति :

बालकांड के अंतिम छंद और उस की पुष्पिका इस प्रकार है:

सोरठा

बालचरित सति भाउ, बरनों तुलसीदास बुध।
. . . . . .ने सब पाउ, परम पुनीत विचित्र अति ॥
भद्रपुरी सुग्राम, अति निर्मल सुष शिव पुरी।
जहां देहु विश्राम, सो महिमा बरनिय कहा ॥

दोहा

कहैं सुनै समझैं जे जन, सफल सो प्रभु गुनगान।
सीतापति रघुकुलतिलक, सदा करहिं कल्यान ॥

इति श्री रामचरितमानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्यसंपादिनी नाम १ सोपान समाप्तः संवत् १६४३ शाके १५०८ (अक्षर नष्ट हो गए हैं) नन्ददास पुत्र कृष्नदास हेत लिषी रघुनाथदास ने काशी पुरी में।

इस ३५३ वर्ष पुरानी 'रामचरितमानस' की प्रति के अंतिम लेख से ज्ञात होता है कि गोस्वामी तुलसीदास के भाई नंददास थे और उन के भ्राता-सुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र के निवासी थे। श्री लछमनदास और रघुनाथदास तथा अपने अन्य शिष्यो से महात्मा तुलसीदास ने उस 'रामचरितमानस' की नक़ल कराई और उस प्रतिलिपि को कृष्णदास सोरो लाए। उन प्रमाणों से मेरा विश्वास तो अभी तक यही जमा है कि महात्मा तुलसीदास और नंददास चचेरे भाई थे और वे सोरो के रहने वाले थे।

इस संपूर्ण कथन का निष्कर्ष यह है कि महात्मा तुलसीदास जी और कविवर नंददास जी सोरों और उस के पास रामपुर गाँव जिला एटा के क्रमश रहने वाले थे। उन्हों ने शुक्ल आस्पद वाले सनाढ्य ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। उन के पिता के नाम आत्माराम तथा जीवाराम थे। ये दोनों भक्त-कवि चचेरे भाई थे, रत्नावलि तुलसीदास की और कमला नंददास जी की स्त्री थी तुलसीदास जी की स्त्री कवियित्री थीं। नंददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था, जो एक कवि भी थे। इन बातों का प्रमाण उपर्युक्त ग्रंथों से मिल जाता है। तुलसीदास के वैराग्य लेने के समय तक का जीवन-चरित्र अब अंधकार में नहीं रहना चाहिए। इन नवीन खोजे हुए ग्रंथों को जिन महानुभावों ने खोज कर हिंदी जनता के सामने रक्खा है, वे वास्तव में हिंदी-संसार के धन्यवाद के पात्र हैं। इस विषय में श्री पंडित गोविंदवल्लभ भट्ट शास्त्री काव्यतीर्थ, सोरों, पंडित भद्रदत्त जी शास्त्री, कासगंज, तथा बाबू कालीचरण जी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० एडवोकेट, कासगंज विशेष प्रशंसनीय हैं।

महात्मा तुलसीदास संपूर्ण हिंदी भाषा-भाषी प्रांत के प्रतिनिधि-कवि हैं। उन्हों ने जन्म ब्रजभाषा प्रांत मे लिया परंतु उन के जीवन का बहुत बड़ा भाग काशी, अयोध्या, और चित्रकूट ही में कटा। उन्हों ने अमरकाव्य 'रामचरितमानस' को अवधी भाषा में लिखा, और अपने वैराग्य-समय से अंत समय तक वे अवधी प्रांत में ही रहे। अयोध्या, काशी और चित्रकूट ये तीन स्थान उन के जीवन के वैकुंठ धाम थे, जहां उन की आत्मा को चिरशांति मिली थी। तुलसीदास का महाकाव्य और उन की अन्य उपदेशात्मक रचनाएं संपूर्ण हिंदी भारत के गौरव की वस्तुएं हैं

बागबहार

[डाक्टर बाबूराम सक्सेना द्वारा हमें इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। पुस्तक के मालिक हैं मुट्ठीगंज इलाहाबाद के स्वामी पूर्णानंद जी। इस प्रति के आगे-पीछे एक ही जिल्द में अन्य हस्तलिखित रचनाएं भी हैं, जिन के विषय भिन्न-भिन्न हैं, जैसे कविता, वैद्यक, यंत्र-मंत्र आदि। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक रचना-काल की दृष्टि से बहुत पुरानी नहीं है, और साहित्यिक दृष्टि से कोई उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, फिर भी विषय की दृष्टि से यह मनोरंजक है।

पुस्तक हाथ के बने मोटे मटमैले कागज़ पर काली रोशनाई में लिखी गई है। बीच के शीर्षक रोली के रंग की स्याही में हैं। यह २४ पृष्ठों में समाप्त हुई है और प्रत्येक पृष्ठ पर प्रायः २३ पंक्तियां है। इस के अंत में ईख की खेती के संबंध में एक छोटा-सा परिशिष्ट है जिसे यहां पर नहीं उद्धृत किया गया है।

इस पुस्तक के वर्णविन्यास में समानता नहीं है। एक ही शब्द 'वृक्ष' को ले लीजिए। यह 'वृक्ष', 'बृक्ष', 'ब्रिछ', 'वृछ', 'ब्रिच्छ', 'ब्रच्छ', 'व्रछ', आदि अनेक रूपों में मिलेगा। 'ऐ' के लिए कहीं 'अै' रूप मिलेगा और अन्यत्र ऐ। इन सब के संशोधन की या विन्यास में समानता लाने की कोशिश नहीं की गई है, वरन् पाठ यथासंभव ज्यों का त्यों दिया गया है। पाठ की कुछ प्रत्यक्ष अशुद्धियों का संशोधन अवश्य कर दिया गया है, जिन से अर्थ का अनिष्ट होने की संभावना थी। मूल में स्थल-स्थल पर अक्षरों की पुनरुक्ति हो गई है, जो स्पष्टतः लिपिकार की भूल है। उन्हें संशोधन कर दिया गया है। दोहों के बीच में पहले और दूसरे चरणों के बाद कामा (,) लगाए गए हैं।

पुस्तक का शीर्षक 'बागबहार' दिया गया है। लेकिन भीतर और पुष्पिका में इसी को 'विपिनविलास' भी कहा है। पुस्तक किसी महाराज दौलतराव के पुत्र राजा जनकराव के आदेश से, अथवा उन के संरक्षण में रची गई थी।

इस लिए रचयिता ने विकल्प रूप से इस का शीर्षक 'जनकविलास' भी दिया है। रचयिता बिहार प्रांत के भोजपुर प्रदेश के आरा जिले में भुलईपुर परगने का क़ानूनगो था और उस ने अपना नाम पुस्याल श्रीवास्तव कायस्थ लिखा है। यह भी पता चलता है कि वह पहले व्रज का रहनेवाला था। रचना-तिथि सवत् १८६२ दी गई है। पुस्तक मे यह जगह-जगह कहा गया है कि रचना पूर्व ग्रंथो की सहायता से हुई है। विशेष कर 'सारगधर' (शार्ङ्गधर) के संस्कृत ग्रंथ का आधार बतलाया गया है।

विषय का प्रतिपादन वैज्ञानिक न कहा जायगा। फिर भी इस में बहुत सी उपयोगी बातों का समावेश हुआ है। बाग़ किस स्थल पर लगाना चाहिए, भूमि-परीक्षा, बनस्पतियों का वर्गीकरण, बीजों की पहचान और उन्हे रोपने की विधि, वनस्पतियों के रोग उन के इलाज, सीचने और पैवद लगाने की विधि आदि अनेक बातों का इस में समावेश हुआ है। मंत्र द्वारा उपचार का भी एक स्थल पर वर्णन है। कुछ अंश आजकल के हार्टिकल्चरिस्ट के लिए विशेष मनोरंजक होंगे, जैसे बिजली से मारे हुए वृक्ष को हरा करने की दवा, अथवा फल को सुगंधित करने अथवा बारह मास फल लेने आदि के तरीके। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रचना मनोरंजक है और ऐसी है कि उस के कुछ प्रयोगों की वैज्ञानिक परीक्षा होनी चाहिए। संपादक]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ अथ लिष्यते बागबहार की पोथी ॥

॥ दोहा ॥

गुर गोबिंद गंगा सुमिर, गनपति गौर मनाइ।
पोथी बिपिन बिनोद की, भाषा करौ बनाइ॥१॥

सारंगधर कृत संस्कृत, समुझि न आवत चित्त।
मन पुस्याल भाषा करी, वोस न बीजे मित्त २

महाराज राजान श्री, दौलत राव नरेस।
जिन के गुनगन की कथा, बरन सके नहि देस ॥३॥
तिन के सुत महराज श्री, जनक राउ भुवाल।
तिन कारन भाँका करत, सारद सदा दयाल ॥४॥
या पोथी को नाम अब, राख्यौ जनक बिलास।
पठत सुनत सुख उपजे, हिय कौ होये हुलास ॥५॥
संवत दस अरु आठ सै, नौवें उपर दोइ।
माघ मास तिथि चौथि सुदि, भाषा कीनी सोइ ॥६॥
मेवा के जिन वृक्ष जे, अरु फूलन को जोइ।
तीन भाँति के वृक्ष जे, बीज तीन बिधि सोइ ॥७॥
बाग लगावन की विधि, सब बिधि कही बताइ।
अछ रोग की औषदै, सब बिधि कही सुनाइ ॥८॥
पैमद करिबे की समय, कह्यौ जानवे हेत।
पैमद करिबे की जतन, अछन नाम समेत ॥९॥
जाते सब बिधि समुझि कै, बाग लगामन हार।
निसंदेह सोषन करै, देषे बाग बहार ॥१०॥

॥ अछ लगामन फलं ॥

॥ चौपाई ॥

बर घर ते दिसि पुरब लगावै।
गूलर दिसि दछिन बैठावै॥
पीपर घर ते पछिम धरै।
या दिसि उत्तर को करै॥११॥
यहि बिध अछ लगावै जोई।
मन वांछित फल पावै सोई॥
यह सब कह्यौ ग्रंथ मत पाइ।
अब पुन और वृक्ष के भाइ॥१२॥

॥ दोहा ॥

ये घर में न लगाइये, नेबू बेर अनार।
और लभेरौ कंट बृछ, कंज टके कचनार॥१३॥
मेवा के वृक्षादिकन, घर ते दूर लगाइ।
पीरा करै प्रजान कौ जो नियरै ठहराइ॥१४॥
दूध कढै जे वृक्ष मे, घर न लगावहु कोइ।
छीन करत है पुंनि कौ, यहू जानियौ सोइ॥१५॥

॥ भूँमि परिछा ॥

(स्वादन) मीठी अरु बक सोठली, षारी करुई जान।
नौनारी अरु ऊसरी, भूँमि स्वाद पहिचान॥१६॥

॥ भूँमि रंग ॥

स्वेत स्याम पीरी हरी, नीली और सुरंग।
मन में ये सब जानियौ, सबै भूँमि के रंग॥१७॥

॥ निकाँम भूँमि ॥

करुई षारी ऊसरी, अहि कारी जहँ होय।
जहाँ दूर पाँनी कढै, ककरीली पुनि सोय॥१८॥
तहाँ न बाग लगाइयै, असी भूँमि निकाँम।
अछी भूँमि बिचारि कै, पूरौ मन के काम॥१९॥

॥ अछी भूँमि ॥

नीली पीली ऊजरी, हरी बराबर होइ।
जहाँ नियर पाँनी कढै, हरी घास जमै सोइ॥२०॥
तहाँ लगावै बाग को, अछी भूँमि निहार।
तहँ तैसे फल होहिगे भूँमि सुभाव विचार २१

॥ दिसा बिचार ॥

घर ते दिस अगनेउ में, अरु दखिन दिसि जान।
तहाँ न बाग लगाइयै, असु (भ) दिसा पहिचान ॥२२॥

॥ ब्रछ नाम ॥

बाग ब्रछ अंबादि जे, ते सीचे ते होहि।
तिन ब्रछन के नाम अब, बरन सुनाऊ तोहि ॥२३॥
कटहर, बटहर, जामफल, आम्र, जभारी जान।
महुआ तुन अरु केतकी, बास कुमुद पहिचान ॥२४॥
नेबू नारंगी बहुरि, बेल सुपारी जान।
मौलसिरी कदली सहित, और नारियर मान ॥२५॥
तूँस सरीफा कैथ पुनि, और छुहारे जान।
जामुन चंपा पानरी, मेहदी बेर बखाँन ॥२६॥
गूलर नीम अँजीर पुनि, और अनारहु जान।
सेब आम अरु आमरो, दाख मालती मान ॥२७॥

॥ तीन भाँति ब्रछ ॥

तीन भाँति के बृक्ष जो, जे धरती पर होत।
बंसपती द्रुम अरु लता, सुनिये तिन के गोत ॥२८॥

॥ बनस्पती ॥

ब्रक्ष बिना फूलै फलै, बनस्पती सो जान।
बड गूलर अंजीर पुनि, पाकर पीपर मान ॥२९॥
कटहल (है) तूतादिक बहुरि, बहुत ब्रक्ष बन माहि।
ते सब बिन फूलै फलै, नाम जानियत नाहि ॥३०॥

॥ द्रुम ॥

बृक्ष फलै जे फूल के, द्रुमम (जो) कहावत जोइ।
श्रीफल जामुन आँब अरु महुआ दाडिम सोइ ३१

बेर अनार नीबू सहित, ये द्रुम जानौ चित्त।
केतक और गनावहू, समुझि देखियौ चित्त ॥३२॥

॥ लता ॥

बेल चलै जेहि बृक्ष की, लता कहावत जोइ।
कदुआ खरबूजा सहित, खीरा ककरी सोइ ॥३३॥
दाख कुम्हेंडो ये सबै, लता बृक्ष सो जानि।
बहु साखा इन तिहँन मे, ताहि गुल्म करि मानि ॥३४॥

॥ बीज तीन भाँति के ॥

तीन भाँति के बीज सब, बृछादिक के जोइ।
एक बीज एक डार है, एक बीज जर होइ ॥३५॥

॥ बीज के बीज ॥

जामुन अमली आम पुनि, कैंथ बेर कचनार।
महुवा कटहल आदि दै, बीजहि कौ अधिकार ॥३६॥

॥ डार बीज ॥

बेला गुडहल चाँदनी, और चमेली जान।
अरु गुलाब सहतूत सब, डार बीज पहिचान ॥३७॥

॥ जर बीज ॥

केला नरगस केवरा, और केतकी जान।
जिमीकंद अरई सहित, जर के बीज बखान ॥३८॥

॥ भूँमि सोधन ॥

बीज बये ते ना जमे, धरती जान निकाम।
नौन दूध सो सीचिये धरती होय सकाम ॥३९॥

॥ बीज सोधन ॥

॥ चौपाई ॥

भाँटा कटरी को फल लावै।
तिल अरु घृत सब संग मिलावै॥
बीज निकाम मलै छिन जामे।
धरती बवै तुरत ही जामै॥४०॥
गोबर गाइन कौ लै आवै।
बीज मीड के छाँ सुकावै॥
जहँवै बीज बवै तहँ जामै।
कछु करो जिन संसय यामै॥४१॥

॥ पौध सीचने ॥

॥ दोहा ॥

जामुन कटहल आम अरु, बटहल थैसो(?) सीच।
और पौधि सब ब्रछ की, मीठे पाँनी बीच॥४२॥

॥ बाग ल(गा)वने की बिधि ॥

बाग लगावन कीय बिधि, प्रथम करै असनान।
वस्त्र नये तन पहिर कैं, करि गनपति को ध्यान॥४३॥
सूर्य चंद्र पृथ्वी क(?)कौ होइन सोइ।
भरनी भद्रा होइ नहि, सिधि जोग जब होइ॥४४॥
मास जेठ बैसाष मे, बाग लगावै नाहि।
ए सब वस्तु बिचारि कै, समुझ देषि मन माहि॥४५॥
चंपा चंदन सिरसि पुनि, नीम असोकहुँ जाँन।
और नागकेसर धरैं, परमा सिद्धि बषान॥४६॥
बाँस करौंदा पूर्व दिसि, उत्तर कैथ अरु बेर।
धरैं किनारे बाग के, कचनारादि लभेर॥४७॥

और बहरा कंट बृछ, धरै किनारे जाइ।
बीच बाग के थलन मे, मेवा बृछ लगाइ॥४८॥

दूर दूर बृछन धरै, जानि बृछ बिस्तार।
बड़े भये तैं ना मिले, बृछ डार ते डार॥४९॥

॥ सींचन बिधि ॥

सींचन बिध जेहि भाँति सौ, नये बृछ को होय।
सो बिधि अब मोसो सुनौ, तेहि बिधि सींचौ सोय॥५०॥

थालौ गहरौ कीजिऐ, एतौ मन मे जान।
पानी की सरदी रहै, तीन दिवस परवान॥५१॥

दिन चौथी फिर गोडि कै, कूरा घास निकारि।
याही बिधि सोचत रहै, दिन प्रति लेइ निहारि॥५२॥

जाडौ गरमी जानि कै, सीत उस्न कौ जानि।
बृछन की छाया करौ, सीष लेउ गुन मानि॥५३॥

जाडे की रितु जानि कै, तिल को तेल लगाइ।
सब बृछन के अंग मे दीजै ताहि लगाइ॥५४॥

बहुत सुषी रहिहै बिरछ, व्यापै नहीं तुसार।
ग्रंथन कौ मत देषि के, जतन कह्यौ यह सार॥५५॥

आँधी के दिन देषि कै, यौहि करै सुजान।
धुआँ अगिन तहाँ संचरन, पावै नहीं निदान॥५६॥

आस पास षाई करै, माटी नरम निहार।
ताकी क्यारी बाँधि कै अरु राषै रषवार॥५७॥

॥ बिजुली मारे की दवा ॥

बाग बीच जिहि बृछ कौ, बिजुरी मारयो होय।
ताकी यह औषध करौ- जतन की(जि)य ह सोय॥५८

जर की माटी काढि कैं, थालौ गहिर बनाइ।
सूखे सरसौ पीसि कैं, माटी बीच मिलाइ॥५९॥
सो माटी वहि बृछ के, भरि कैं थाले बीच।
षट् दिन सींचौ दूध सौं, षट् दिन दधि सौं सींच॥६०॥
बिजुरी मारचो बृछ जो, हरौ फेरि कैं होइ।
ताकी ग्रैसी भाँ(ति)सौं, जतन कह्यौ यह सोइ॥६१॥

॥ टीडी मूस पतंग बसी कौ मंत्र ॥

टीडी मूस पतंग ऋस, लसी बिहंगस जोइ।
ग्रान श्री हनुमान की, बृछ न व्यापैं कोइ॥

॥ ॐ हूं फट नमः ॥

मंत्र लिषै यह यंत्र पर, धूप दीप दै वाहि।
सात बार पढि बाग के, बीच गाडिये ताहि॥६२॥
मंगल के दिन रोट करि, पूजै श्री हनुमान।
घृत गुर रोट मिलाइ कैं, खाय बर्त्त करि मान॥६३॥

॥ कूपाति बनवाने की बिधि ॥

कुवा बावरी बाग के, सींचन को करैं जोइ।
सबै बाग की भूँमि मैं, जिहि दिसि ऊंची होइ॥६४॥
तहाँ कुवा ग्ररु बावरी, ग्राछी भाँति बनाइ।
सब बृछन को सहज ही, पानी पहुँचै जाइ॥६५॥
कुवां बावरी बाग के, बाहर करौ बिचार।
मानस पसु दूरहि रहै, बाग न कोइ उजार॥६६॥

॥ सर्वबृछ छुहारे कटहर बेलादि सींचन बिधि ॥

बृछ छुहारे बेल के, ग्ररु कटहर के जोइ।
सरसौं षलि मिलाय कैं, पाँनी सींचौ सोइ॥६७॥

बृद्धि करै बहु बिधि बढ़ै, डोमक ताहि न षाइ।
अैसी बिधि सौ सोचिये, दीन्हो जतन बताइ ॥६८॥

॥ नारंगी बड़हल सीचन बिधि ॥

सूहर बुकरा माछरी, तीनौ मास पकाय।
तिहि पानी सौ नारंगी, बडहर सीचौ जाय ॥६९॥
बेग फलै बहु फल धरै, रोग न कोऊ होइ।
ग्रंथ उकति कौ देषि कै, जतन कह्यौ यहँ सोइ ॥७०॥

॥ आवरे सीचन विधि ॥

उरद पीस पानी मैं, सीच आवरे मित्त।
बग बहुत फूलै फलै, समुझि देषियौ चित्त ॥७१॥

॥ तेदू सीचन बिधि ॥

सीचै तेदू दूध सौ, बेगि फूल फल होइ।
जतन कह्यौ यह ग्रंथ मत, संसौ करौ न कोइ ॥७२॥

॥ आम्र सीचन बिधि ॥

सीगा हिरन के चूर करि, और सुहर के पाय।
ताहि पकावै दूध मे, अरु घृत ताहि मिलाय ॥७३॥
मीठौ पानी डारि कै, बृछ आम कौ सीच।
बहुत सुगंधित होत फल, थोरे दिन के बीच ॥७४॥

॥ अनार सीचन बिधि ॥

घृत अरु दूध मिलाय कै, सीचै बृछ अनार।
तौ अति मीठो होय रस, कह्यौ जतन यह सार ॥६५॥

॥ दूसरी बिधि सोच को ॥

कुलथी बीजा कूटि कै, मछरी मास पकाय।
मीठै पॉनी डार कै त्रिफला ताहि मिलाय ॥७६॥

तासौ सीच अनार कौ, धूप देय तिहि जोय।
फलत न होय अनार जो, बहुत फलै वह सोय ॥७७॥

॥ कैथा सीचन बिधि ॥

घृत गुड दूधरु सहत ये, चारौ वस्तु मिलाय।
.................................[1]॥७८॥

॥ महुवा सीचन बिधि ॥

तेरेई या तरु बाजरौ, चूरन कपूर मगाय।
तीनौ कूटइ कत्र करि, पानी माहि मिलाय ॥७९॥

सीचै महुआ बृछ कौ, बहुते फलै (षिलै) बल पाय।
बहुत सुगंधित होय फल, स्वाद अनेक बताय ॥८०॥

॥ बेर सीचन बिधि ॥

तिली मु(ह)लहटी अरु सहित, कस्तूरी लै आउ।
चारौ बस्तु पिसाइ कै पानी माहि मिलाउ ॥८१॥

.................................।
तासौ सीचौ बेर कौ फलै बहुत अधिकाय ॥८२॥[2]

॥ कदम नागकेसर मौलसिरी ॥

दही तेल अरु मुलहटी, कॉजी नीर मिलाय।
कदम नागकेसर सहित, मौलसिरी सुषदाय ॥८३॥

सीचै तीनौ बृछ ये, इहि औषद कौ आन।
होय सुगंधित फूल बहु, तुम लीजौ यह जान ॥८४॥

---

[1] अंतिम दो चरण नहीं हैं।

[2] इस दोहे के पहले दो चरण नहीं हैं।

॥ दूसरी औषध ॥

लाल घोंघची पीपरी, बच हरदी हु लाउ।
पीरी सरसौ आनि कै, सम करि ताहि पिसाउ॥८५॥
घृत सम के सम डारि कै, पानी माहि मिलाय।
कछु अंगनि पर औटि कै, सोचौ चित के चाय॥८६॥
कदम नागकेसर बहुरि, मौलसिरी के फूल।
बहुत सुगंधित होहिगे, यामे कछू न भूल॥८७॥

॥ दाष सीचन बिधि ॥

मुरग गूह अरु माछरी ये दोऊ लै आइ।
तामे पानी डारि कै, धरै अग्नि पै जाइ॥८८॥
जब वह गलिकै अग्नि पर, घृत समान ह्वै जाय।
दोहूँ हाथ सौ पीडि कै, पानी ताहि मिलाय॥८९॥
सीचै दाष अंगूर कौ, वह पानी सौ जाय।
करै बृद्धि अति बल धरै, फलै बहुत रंग लाय॥९०॥

॥ नीबू सीचन बिधि ॥

छेरी मूतरु गौदरा, उपजत पानी बीच।
सूहर मछरी कै दोऊ, मास चुरै कै सीच॥९१॥
षाटे नेबू कागदी, सब जालन के जोइ।
बहुत बेग फूलै फलै, जतन कही यह सोइ॥९२॥

॥ लता सीचन बिधि ॥

लता बृछ तरबूज अरु, षरबूजादिक जोय।
सीचन की यह भाँति है, बरन सुनाऊ सोय॥९३॥
बीघू डंकरु घीउ गुड, ताहि अगिन पर डार।
धूप देइ सब षेत मे चारौ षूट (?) निहार॥९४॥

चरबी सूहर बोक की, अरु मूसे कौ तेल।
तामे नीर मिलाय कै, लता बृक्ष मे मेष ॥९५॥
फूलै बहुत फलै अधिक, मस न बाधिक होय।
लता बृछ इहि भाँति सौ, जो निजु सीचै कोय ॥९६॥

॥ फल टूटै (?) के बिधि ॥

लै घोडा के मूत सौ, अछ सीचिये कोइ।
छोटो फल जा बृछ कौ, वडौ सहज ही होइ ॥९७॥

॥ केतकी सीचन बिधि ॥

नागरमोथा बालछर, षस चंदन कौ लाइ।
अगर छरीला अरु तगर, सातौ वस्तु मिलाइ ॥९८॥
कूटि चुरावै अग्नि पर, मीठे पाँनी बीच।
बृछ केतकी केवरा, रितु बसंत मे सीच ॥९९॥
बृद्ध करै फूलै बहुत, फूल सुगंधित होय।
जतन कह्यौ जिहि भाँति सौ, तेहि बिध सीचौ सोय ॥१००॥

॥ अथ सर्ब फूलण की सीचन बिधि ॥

सब फूलन की येक ही, सीचन की बिधि जान।
आस पास वा बृछ की, माटी काढि सुजान ॥१०१॥
जाला रेसा बृछ की, जर मे भयो जु होय।
ताकौ तब ही दूर करि, जतन करौ यह सोय ॥१०२॥
अगर छरीला बालछर, चंदन मोथा लाइ।
चूरन कीजै कटि कै, नान्हौ बहुत बनाइ ॥१०३॥
आछी माटी मे मिलै, भरै सुथालन बीच।
सब फूलन मे बृछ कौ, मीठे पानी सीच ॥१०४॥
फू(ल) सुगंधित होहि बहु, बहु फूलै बल पाइ।
सब फूलन के बृक्ष की, दीन्ही जुगत बताइ ॥१०५॥

॥ सूके हरे करने की विधि ॥

दल केला के बीच कौ, नरम सु ताहि मगाय।
मंजारी अरु सूर की, बीठ बराबर लाय ॥१०६॥
तीनौ पीसि मिलाय कै, करि यक ठोरी सोइ।
आधी औषद बृछ पै, लेप कीजिये जोइ ॥१०७॥
आधी औषद जो रही, तामे नीर मिलाय।
तासो सींचै बृछ कौ, बृछ फेर हरियाय ॥१०८॥

॥ दूसर विधि ॥

जर की माटी काढि कै, बृछ जो सूषो होइ।
बकरा मारयो तुरत कौ, लेहु वोझरी सोइ ॥१०९॥
वोझरी मे चारौ कढै, ताकी रज में डारि।
ऊपर माटी डारि अरु, दूध सेर दो चारि ॥११०॥
बृछ लपेटै वोझरी, जर के निकट विचार।
बृछ हरौ कछु दिनन में, नैन (न) बीच निहार ॥१११॥

॥ लोटन होने की दवा ॥

पीरी कारी भूँमि जहँ, मीठी हरी जो होय।
जहाँ निकट पानी कढै, जतन करौ यह सोय ॥११२॥
थालौ गहिरौ हाँथ छ्अ, तामे बृछ लगा (उ)।
कामर न बाधौ बृछ कौ, उपर छांह छनाऊ ॥११३॥
घीउ और रस ऊष कौ, सीचौ कंयो बार।
लोटन बृछ तयारु करु, जतन कह्यौ यह स्तार ॥११४॥

॥ बड़े होने की दवा ॥

बाग बृछ मै जो बिरछ, छोटो बढत न होइ।
ताके बढबे की जतन, मोसे सुनिये सोइ ॥११५॥

पहिले थालो खोदि कै, माटी डारि निकार।
जाला रेसा तोरि कै, मीठी माटी डार॥११६॥

धूप देइ गुड घीउ सौ, मीठे पानी सीच।
बृद्धि करै बाढै बहुत, थोरे दिन के बीच॥११७॥

॥ दूसर बिधि ॥

तिल अरु बाइबिरंग को, पीसै नीर मिलाइ।
लेप करै जिहि बृछ सौ, बाढै सहज सुभाइ॥११८॥

कछु दिन सींचै दूध सौ खात डारिये सोइ।
जाला रेसो तोरिये, बेगि बडौ वह होइ॥११९॥

॥ बारह मास फर लै कै बिधि ॥

चरबी सूरह हिरन की, सहत घीउ लै आउ।
सरसौ जर अंकोल लै, काठौ कूटि बनाउ॥१२०॥

चारौ बस्तु मिलाइ कै, उहि काठे के बीच।
मास बारहौ फलै द्रुम, मास बारहौ सीच॥१२१॥

॥ कूणप जल सर्व रोग ग्रछ के ॥

हरना मेढा बोकरा, सूर मास ले आउ।
अरु चरबी इन चहुन की, सो सम भाग मगाउ॥१२२॥

दूनौ पानी डारि कै, बड़ी देग मे डार।
धरे अग्नि पर जब लगै, ताकौ लेउ उतार॥१२३॥

दूध उरद कै चून अरु, सहत घीउ अरु पान।
पाँचौ औषद डारि कै, मोहरा बाँधि सुजान॥१२४॥

सो धूरे मै गाडियै, पंद्रह दिन परवान।
दिवस सोरहे काढिये, धरै जतन सो आन ॥१२५॥

तासौ थोरौ काढि कै, पानी माहि मिलाइ।
सीचैं जाही बृछ कौ, ताकौ यही सुभाइ(?) ॥१२६॥
रोग हरै सब बृछ के, बाधा रहै न कोइ।
यह औषद को कुणपजल, नाम कहावत सोइ ॥१२७॥
रितु अनरितु फूलै फलै, बृछ बहुत बल होइ।
सब बृछन कै कारनै, कह्यौ कुणप जल सोइ ॥१२८॥

॥ पित्त कफ बात दोष ॥

जैसे मानुष देह में, होत पित्त कफ बात।
तैसे सब बृछादिकन, होत तीन ही भाँत ॥१२९॥

॥ परिछा पित्त की ॥

पित्त रोग जेहि बृछ के, पेठ माहि सरसाइ।
सूकैं कलँगा पात के, अरु बकला गिरि जाइ ॥१३०॥
अरु पत्ता पीरे परे, धूप माहि कुम्हिलाइ।
देखत फल रूखे लगे, जानहु पित्त सुभाइ ॥१३१॥

॥ कफ परिछा ॥

डार पात जिहि बृछ के, मलिन चीकने देषि।
कुम्हिलाने से पात फल, रंग हरचो जु विसेषि ॥१३२॥
थोरो ही फूले फलै, फलउ ताल सुरि जाय।
असे लछन देषि कै, कफ कौ जानि सुभाय ॥१३३॥

॥ बात लछन ॥

बिन कारन सूखै बिरछ, बिन कारन न बढाय।
बिन कारन पतरौ परै, बिन कारन कुम्हिलाय ॥१३४॥
थोरो ही फूलै फरै, सजल न बृछ दिषाय।
बात रोग तिहि जानिये. निहचौ करिय भाय ॥१३५॥

।। औषद पित्तादि तीनौ क्रम ।।

प्रथमहि औषद पित्त को, करत ग्रंथ मत याइ।
इमली मोथा खस धना, कारौ नोन मिलाइ।।१३६।।
मलया चंदन कूटि कैं, सब सम करिये आन।
मीठौ पानी डारि कैं, काढ़ौ करौ सुजान।।१३७।।
तासौ सींचैं बृछ को, थोरो मही मिलाय।
करि औषद इहि भाँति सौं, पित्त रोग मिटि जाइ।।१३८।।

।। कफ रोग औषद ।।

पीपर मिर्च अजमोद अरु, कारौ नोन मिलाइ।
अदरक जुत ये पाँच हूँ, औषद सम कर लाइ।।१३६।।
कूटि सबन काढ़ौ करौ, पानी माहि मिलाइ।
तासौं सींचौ बृछ कौ, कफ को रोग नसाइ।।१४०।।

।। बात रोग की दवा ।।

मेथी बाइबिरंग अरु, चंदन लाल मगाइ।
कारौ नोनरु सौंठ कौ, काढ़ौ ताहि बनाइ।।१४१।।
तासौं सींचैं बृछ कौ, हरैं बात के रोग।
औषद तीनौ रोग की, बृछहि सींचन जोग।।१४२।।

।। असलेषमा ।।

असलेषम तासौं कहत, पित्त और कफ बाइ।
तीनौं मिलि येक ठौर ही, बाधा करत जो आइ।।१४३।।
सरद गरम ते होत है, असलेषम सो जान।
अब ताकी औषद कहौं, समुझौ चतुर निधान।।१४४।।
इमली अरु घृत गाय कौ, त्रिफला आँन मिलाइ।
काढ़ौ करि सींचौ बिरछ, असलेषम मिटि जाइ।।१४५।।

॥ बेली दोष ॥

कबहूँ काहू बृछ पै, कोउ बेलि चढ़ि जाइ।
फलत नही तासो बिरछ, बेली दोष कहाइ ॥१४६॥
मास बोकरा कौ कछू, तामे घीउ मिलाइ।
काढौ करि सीचै बिरव, बेलि दोष मिटि जाइ ॥१४७॥

॥ बृछ कीटा ॥

गोला से जेहि बृछ के, कढ़ै गमरा अंग।
तासौ फोरा बृछ के, जानौ अंग प्रसंग ॥१४८॥
पिस्ता अरु बादाम हू, घीउ चिरौंजी लेउ।
चारौ सम करि पीसि कै, पानी माहि मिलाउ ॥१४९॥
तासौ सीचौ बृछ कौ, फोरा बहुरि न होइ।
जो टेढौ ऐठे बिरछ, सीच कुनप जल सोइ ॥१५०॥

॥ भूमि दोष ॥

घृत अरु गोबर गाय कौ, बकरा चरबी लाइ।
ए तीनौ यक ठौर करि, पानी माहि मिलाइ ॥१५१॥
सीचै रोगी बृछ कौ, दूर होइ सब रोग।
भूमि दोष मिताय सब, औषध सीचन जोग ॥१५२॥

॥ काचौ फल झरै ॥

काचे फल जाके झरै, पत्ता सिमटे होय।
किरम दोष सो जानियौ, भूमि दोष पुनि सोय ॥१५३॥
घी तिल बाइबिरंग अरु, पीरो सरसो लाय।
गाय मूत्र इक ठौरि करि, तामे पीसि मिलाइ ॥१५४॥
तासौ सीचै बृछ कौ, सबै रोग मिटि जाय।
फिरि कांचे फल ना झरै यह औषध परभाय ॥१५५॥

॥ फल सुगंध होने की दवा ॥

फलन बीच जेहि बृछ के, फल में होइ कुबास।
लेयो चंदन कट कै, मैदा करै सुवास॥१५६॥

चिकनी माटी लेइ सम, तामे चंदन डारि।
ताहि पकावै अग्नि पर, डारै मीठौ बारि॥१५७॥

लेप करै सब बृछ पर, अरु कछु नीर मिलाय।
सीचौ तासौ बृछ को, होइ सुगंध सुभाय॥१५८॥

॥ नादन बन ॥

जो तिल हरदी ढाक के फूल सो नीर मिलाय।
नादन बन कौ सीचियै, ईरुई लाल दिखाइ॥१५९॥

॥ चौपाई ॥

सेवर को बकला लै आवै।
हरदी त्रिफला आनि मिलावै॥
इन्हैं कूटि कै सब सम करौ।
गुड़ की दारू मै घसि धरौ॥१६०॥

॥ दोहा ॥

नादन बन पर लेय करि, सीचौ नीर मिलाय।
हरे रंग रुई कढ़ै, औषद कौ गुन पाइ॥१६१॥

॥ तथा चौपाई ॥

मनसिल अरु हरताल मँगावै।
बीछू और आक जर लावै॥
तिल मंजीठ जैती के पात।
बूधरु मूल माम के तात॥१६२॥

॥ दोहा ॥

सब कौ कोसि मिलाय कै, नादन बन मे डार।
नीली रुई होइगी, कह्यौ ग्रंथ अनुसार॥१६३॥

॥ फल बिकास फल करनो ताकी औषद ॥

फलत नही है जो बिरछ, ताकौ सुनौ उपाउ।
घीउ बिलाई कंद लै, अरु रस ईष मिलाउ॥१६४॥
तासौ सीचै बृछ कौ, फल न लगै यह सोइ।
ग्रंथन कौ मत देषि, जतन कह्यौ यह सोइ॥१६५॥

॥ तथा ॥

तिल अरु गोबर गाइ कौ, बाइबिरंग मगाइ।
अरु सरसौ रह ऊष मै, सब कौ पीस मिलाइ॥१६६॥
तासौ सीचौ बृछ कौ, बहुत फलै बल पाय।
मीठौ और सुगंधजुत, फल कौ होय सुभाय॥१६७॥

॥ गुठुली छोटी करनी ॥

मिश्री महुवा मुलहटी, और कुटंब गवाय।
कूट सबन को येक सँग, गोला येक बनाय॥१६८॥
थालै मे गोला ध(रौ), ता पर बृछ लगाय।
बहुत छोटी गठा कठै, यह औषद परभाय॥१६९॥

॥ गूलर माठ कोरनं ॥

लाल घूघची घीउ अरु, सक्कर सहत मिलाय।
और बहेरा मुलहटी, पानी बीच्च पिसाय॥१७०॥
जहाँ बाग के बीच मे, गूलर बृछ दिषाय।
लै पाथर की नौक सौ, खेवा बहुल बनाय॥१७१॥

ता पर औषद लेय कर, सींचौ नीर मिलाय।
अति मीठौ गूलर फलै, अगुनित स्वाद बढाय॥१७२॥

॥ कच्चौ फल ठहरै ॥

बकरा मारयो तुरत कौ, उभरी तासु मगाइ।
तौन लपेटै डार मै, जापर जत(न) कराइ॥१७३॥
फल न पकै उहि बृछ कौ, काचै रहै निदान।
जतन कह्यौ यहि भाँति कौ, ग्रंथन के मत जान॥१७४॥

॥ पाके फल नही गिरै ॥

पीसै बाइबिरंग कौ, सहत दूध के माहि।
लेप करै जेहि डार सौ, पाके फल न गिराहि॥१७५॥

॥ बारह मास फलै ॥

॥ चौपाई ॥

जो कोउ हाथी को मद लावै।
कपि कौ लिंग कहुँ जो पावै॥
संख कील ये तीनौ लेय।
तासौ कील बृछ कौ देय॥१७६॥

॥ दोहा ॥

बारह मास फल्यौ रह्यौ, फिरि फिरि फूल कराय।
जो कोऊ चाहै करयो, सो यह जतन कराय॥१७७॥

॥ बीज जमायबे की दवा ॥

चरबी बकरा सूर की, तामे दूध मिलाय।
सीचै काहू बीज कौ, सबै जमै बहु भाय॥१७८॥

॥ तुरत बाग लागै ॥

पीसै तेल अंकोल मे, जो केसी कुर लाय।
बीज सबै जो बाग के, तामैं बोर षवाइ॥१७६॥
सो बालक के हाथ सौ, बीज बवावै सोइ।
मीठे पानी सींचिये, बाग तुरत ही होइ॥१८०॥
आम जंभीरी आदि के, बाग बीज जो जान।
बौरे तेल अकोल मे, जतन करै यह जान॥१८१॥
अरना कंडा लाय कै, ताकी राष बनाउ।
तामे बीज लपेटि कै, थालन बीच बनाउ॥१८२॥
मीठे पाँनी सींचिये, कछू मेनफल लाइ।
कह्यौ जतन यह ग्रंथ मत, बाग तुरंत दिषाई॥१८३॥

॥ षाटे आम को मीठा करना ॥

बाइबिरंग अर मूलहटी, गुड अरु सहित मिलाइ।
दूध मेल सींचै बिरछ, षाटौ आम जो आइ॥१८४॥
मीठे हौ वहि आम फल, षाटो होइ जो कोइ।
षाटे मीठे करन को, जतन कह्यौ यह सोइ॥१८५॥

॥ कमल जमाइबे की बिधि ॥

लै कै गोबर गाय कौ, गागर माहि रषाइ।
कमलगटा अंकोल के, तेल बीच चुरवाइ॥१८६॥
कमलगटा लै बोइयै, वहि गागर मे सोइ।
येकहि दिन अरु रात मै, पात फूल फल होइ॥१८७॥

॥ तरे वृक्ष फलै फूलै नहीं ताको उपाव ॥

दाष गुलाब अरु जामफल, अरु नारंगी जान।
नीबू श्रीफल आदि दै, चंपा बेला मान॥१८८॥

देष (त) वृछ हरचौ लगै, फूलै फलै न कोइ।
तिनके फूलन फलन कौ, जतन कहूँ अब सोइ॥१८९॥
प्रथमहि थालौ षोदि कै, माटी डार निकार।
जाला रेसा तोरि कै, थालौ भलौ समार॥१९०॥
पात डारियै भेंड की, लैंडी की तिहि सोइ।
मीठें पानी सींचियै, बहुत फूल फल होइ॥१९१॥

॥ वृछ पतझार ॥

प्रथमहि नारंगी कहो, अरु चकोतरा जान।
पुनि नारंगी की कनी, और जभीरी मान॥१९२॥
केरह जारा रेसमी, अरु सँगतरा सुढार।
पात फल फल कहत हौ, अरु इन कौ पतझार॥१९३॥
इन बृछन कौ होत है, कातिक मैं पतझार।
अगहन में थोरो बहुत, पात गिरत निरधार॥१९४॥
पूस मास ते क्वार लौ, पात फूल फल होत।
पातक अपने भाउ सौ, बाढ़त रस को सोत॥१९५॥
जल दीजै दिन आठ यैं, इन सब को सुष दान।
डेढ महीना माघ मे, नोर न दीजै जान॥१९६॥
और बृछ अब कहत हौ, तिन के सुनिये नाम।
प्रथम बिजौरा जानिये, अमलबेद सुषधाम॥१९७॥
पुनि तुरंज मीठा बहुरि, नीबू छै बिधि जान।
येक बिहारी कहत है, येक कागदी मान॥१९८॥
फूल लगात असाढ ते, कातिक लौ इन माहि।
या सिवाइ पाछे फले, सो द्रुम रेज कहाहि॥१९९॥
सीत काल दिन आठ ये, इन कौ पानी देहु।
उश्न काल त्रैमास मे, चौथे दिन सुन लेहु॥२००॥

इन्हैं चैत्र के मास मे, जलबंध करत सब कोइ।
रोग न उपजै कौन हू, पात फूल फल होइ॥२०१॥

॥ आडु सेकताडु बदाम पतझार ॥

प्रथमहि आडू कहत पुनि, सकतालू बादाम।
इन कौ अगहन चैत लौ, पात गिरत निकाम॥२०२
पुनि वैसाष असाढ लौ, पात फूल फल होय।
पाकत मास असाढ मे, जानत है सब कोय॥२०३॥

॥ जामफल सीताफलादि ॥

अब आगे जे कहत हौ, तिन के सुनिये नाम।
बिही जामफल अमृत पुनि, सीता (फल) अभिराम॥२०४॥
पुनि अंजीर बषानिये, औडुम रैज अनार।
इन के पत्ता फूल फल, सुनौ सहित पतझार॥२०५॥
बिही जामफल अमृत कौ, जेठ मास पतझार।
थोरौ बहुत अढा (असाढ?) लौ, पात गिरत निरधार॥२०६
अब अनार द्रुम रेज सो, पाकत काति(क) मास।
फेर माघ के मास मे, पात गिरत अनियास॥२०७॥
बहुरचौ जेठ आषढ मे, आछौ पकत अनार।
बाढत फल बहु भाँति सो, रस मै होत अपार॥२०८॥

॥ दाष अंजीर ॥

दाष आदि अंजीर कौ, फागुन लौ पतझार।
चैत मास मे फलत है, फल लागत द्वै बार॥२०९॥
पतझर अगहन चैत लौ, सीताफल कौ जान।
पाकै मास असाढ सौ, कातिक लौ परवान॥२१०॥
इन सब कौ जल दीजिये, बारह मास बिचार।
तीन बार प्रति मास में, कहत सकल निरधार २११॥

॥ कमरख ॥

कमरख या कौ होत हौ, सामन मैं पतझार।
कातिक तैं फागुन लगैं, फल पाकत निरधार॥२१२॥

॥ सेब ॥

माघ मास मैं सेब के, पतझर कौ परमान।
पात फूल फल चैत मैं, पूरन होत सुजान॥२१३॥
बहुर मास बैसाष मैं, जेठ मास लौं जान।
सेब सदा या भाँति सौं, पाकत है परवाँन॥२१४॥

॥ सहतूत ॥

येहि बिधि है सहतूत की, सो सुनिये चित लाय।
अगहन ते अरु माघ लौं, पत्ता गिरत बनाय॥२१५॥
पात फूल फल होत है, पुनि फागुन के मास।
चैंत और बैसाष लौं, पाकत है सुषरास॥२१६॥
तीन जात सहतूत की, सो सुनिये चितु लाय।
प्रथम पैमद्री जानिये, दुजो षाटौ आय॥२१७॥
तीजै बेदानी सुनौ, जाकौ बदन सुपत।
परम सुषद सहतूत के, कही तीन ये भेद॥२१८॥

॥ अंगूर ॥

बीते आधौ पूस तब, षसी करैं अंगूर।
माघ और फागुन लगैं, फैलत हैं भरपूर॥२१९॥
फलैं बरष मैं बेर द्वै, पहिलै मीठौ बार।
दूजै षाटौ बार है, जानै सब संसार॥२२०॥
पाकत जेठ असाढ मैं, दोउ बार सुजान।
अब ताकौ सुनि लीजिये, पानी कौ परवान॥२२१॥

कातिक भर जलबंध करि, फिर पाछैं फल देउ।
अंकुर आवैं माघ लौं, कहत सयाने भेउ।।२२२।।
पुनि फागुन के मास मे, बंध करावै नीर।
असी बिधि अंगूर की, सो कहि दीन्ही बीर।।२२३।।
अब जाते अंगूर की, तिन के सुन लै नाम।
ककरी आबी साहिबी, हबसी अति सुषधाम।।२२४।।
पुनि बेद(ा)ना मोतिया, ये षट जात अंगूर।
स्वाद कहैं बहु भांति के, सुंदर रस कै पूर।।२२५।।

।। गुलाब कमल ।।

जल दै मास कुवार मैं, पुनि सुनि लेहु जुबाब।
पूस मास मे कमल करि, सीचै सर गुलाब।।२२६।।
आवैं कली गुलाब मे, तब कौ सुनौ बिधान।
कृश्न पक्ष भरि माघ मे, नीर न दीजै जान।।२२७।।

।। सर्व फूल ।।

अब फूलन की बिधि सुनौ, कहियत नाम बषान।
राइबेल बेला मदन, बान हजारा मान।।२२८।।
केर मोतिया धूलिया, बट मोगरा सुजान।
और पथरिया जानियै, इन कौ कहत बिधान।।२२९।।
इन को पानी दीजियै, आठ मास सुषदान।
चार मास बरसात मे, नहि सीचिये सुजान।।२३०।।
साधारन जो सीचिये, तिन कौ सबै उपाउ।
अब तो यह पूरन भयौ, पतझर कौ परभाउ।।२३१।।

।। पैमद करने लायक ।।

अब पैमदी सकल बिधि, सो सुनियै चित धार।
बक्ष पर बे बढ़त है कहत (तासु सु) बिचार २३२

होय सरस फल पैंमदी, सब जग करत बषान।
तिन के नाम गना (इ) यै, सो सुन लेहु सुजान ॥२३३॥
नारंगी अरु संगतरा, अरु चकोतरा जाँन।
पुनि महताबी सदाफल, अमलबेद सुषदान ॥२३४॥
मीठा नीबू काग(दी), कौला बहुर तुरंज।
सहसराइ नीबू कह्यौ, और बिरीजा रंज ॥२३५॥
इन बारह कौ जानिये, येक अंग सुषदान।
यामे पैंमद एक पर, चढ़त बारहौ आँन ॥२३६॥
चहै बारहौ बृछ कौ, येक बृछ कर लेइ।
न्यारे न्यारे फल लगै, न्यारे स्वादहि देइ ॥२३७॥
चहै येक पर दो करै, चहै (ये) क पर तीन।
जेते पैंमद लाइये, तेते होहि प्रबीन ॥२३८॥

॥ चार कौ ॥

आड़ू सफतालू कहौ, और बदाम सुजान।
बहुरौ आड़ू चीन कौ, जिन कौ सुनौ बिधान ॥२३९॥
सो इन चारौ बृछ कौ, येक अंग पहिचान।
इन कौ पैंमद परसपर, एक एक पर जान ॥२४०॥
चाहौ चारो बृछ कौ, येक (क)रो मतिमान।
चाहौ (तो) दो तीन कौ, पैंमद करि सुषदान ॥२४१॥

॥ तथा चार ॥

बट गूलर सहतूत पुनि, सुनि लीजै अंजीर।
येक अंग इन चार कौ, कहत सबै मति धीर ॥२४२॥

॥ चार जात ॥

येक बृछ इन चार कै, पैंमद करि कै होइ।
मन मानै दो तीन करि, कहत सयाने लोइ ॥२४३॥

येक अंग इन चार कौ, प्रथम कहत आनार।
गुलानार है दूसरौ, पुन कोकनी अनार॥२४४॥
पुनि अनार षाटौ सुनौ, ये चारौ सुष सार।
इन कौ पैंमद परस्पर, कहत ग्रंथ निरधार॥२४५॥
उनहू को पैंमद कियैं, येक बृछ ह्वै जाय।
स्वाद फूल फल सबन कौ, जुदौ जुदौ हरसाय॥२४६॥

॥ तथा ॥

सेब जामफल दुहुन कौ, येक अंग पहिचान।
इन कौ पैंमद परस्पर, चढत पर्म सुषदान॥२४७॥
पैंमद करिबैं बृछ कौ, येक बृच्छ ह्वै जाय।
जुदौ जुदौ फूलैं फलैं, सरस स्वाद हरसाय॥२४८॥

॥ नारंगी आम पर ॥

नारंगी अरु आम कौ, येक अंग अभिराम।
पैंमद कीजै आम पर, नारंगी अरु आम॥२४९॥
इन हूँ के फल लागिहैं, जुदे जुदे सुषसार।
अचरज जानै सकल जग, सोभा बढै अपार॥२५०॥

॥ बदरी ॥

तीन भाँति के बेर हैं, षाटे प्रथम सुजान।
बहुरि अंगुली जानियै, अरु पैवदी बषान॥२५१॥
इन कौ पैंमद परस्पर, चढत येक पर येक।
बेद सास्त्र मे अति चतुर, तिन यह कह्यौ बिबेक॥२५२॥
पैंमद पर पैबद करै, तौ फल बढ़ै अपार।
सरस स्वाद जामै कढै, जानै सब संसार॥२५३॥

॥ फूल पैबद ॥

मदनबान अरु मोतिया, और मोगरा जान।
बहुरि धूलिया पथरिया, अरु इकहरो सुजान ॥२५४॥
रायबेल पुनि जानियैं, कहे नाम ये सात।
इन कौ पैंमद परसपर, येक अंग दरसात ॥२५५॥
पैंमद करि इन सात कौ, येक बृछ दरसाइ।
फूलैं फूल जुदे जुदे, अपनौ समयौ पाइ ॥२५६॥

॥ पैबद गुलाब कौ ॥

पैंमद सरस गुलाब कौ, अरु सेवुती सुजान।
बहुरयौ सदा गुलाब कौ, येक अंग पहिचान ॥२५७॥
येक बृछ पर दुहुन कौ, पैंमद चढत अनूप।
न्यारे न्यारे दुहुन के, फूल मूल एक रूप ॥२५८॥

॥ दाष ॥

मीठौ षारौ बाकसौ, लाल दाष ये चार।
येक अंग इन चहुन कौ, पैंवंद कह्यौ विचार ॥२५९॥
होत परस्पर पैंउदी, दाष सबै सुन बीर।
स्वाद कढै अरु फल बढै, या मति सौं बिधि वीर ॥२६०॥
पै(म)द जा पर चढै, सो मैं कह्यौ प्रमान।
पैंबद करिबे को समैं, सो अब सुनौ सुजान ॥२६१॥

॥ समय ॥

नारंगी कौ माघ मैं, पैंबद करैं बिचार।
माघ मास ही मै कह्यौ, आवहु कौ निरधार ॥२६२॥
आड़ू पैंबद कीजियै, चैत मास मै बीर।
अरु अनार पैंबद चढैं, चैतहि मे मतिधीर ॥२६३॥

चैत मास मे मोतिया, पैमद करैं सुजान।
वेर चढावै चैत मे, होय परम सुषधान ।।२६४।।
अरु गुलाब को चैत मे, पैमद को परमान।
दाष चढत हैं माघ मे, यैसौ समौ बिधान ।।२६५।।
पैबद जो तै बृछ कौ, कीजै बुद्धिनिकेत।
उही बृछ को लीजियै, अषुआ छाल समेत ।। २६६ ।।
लकरी काठै जुक्ति सौ, ताको सुनौ सुजान।
अषुआ छाल समेत जो, ताकौ कहत बिधान ।।२६७।।
धरियै जाही बृछ पर, ताको चीरै छाल।
दुहूँ छोर सौ दाबियै, सन बाँधे ततकाल ।।२६८।।
ताके ऊपर मस्तगी, गोबर गाय बिलाय।
लेय करै पैवंद पर, अंषुआ बेग हिराय ।।२६९।।
अँषुआ मे अंगुर कढै, तब सन डारै षोल।
पैवद की यह जुक्ति है, सबै सुनाई बोल ।।२७०।।
जा दिन सौ पैवद करै, ता दिन सौ सुनि लेउ।
छाया राषै बृछ पर, दूजे दिन जल देहु ।।२७१।।
सुरदी बनी रहै सदा, धुवा बचावै बीर।
अैसो बिधि जल दीजियै, कहत सबै मत धीर ।।२७२।।
भुजपर देस आरा सहर, सूबा नगर बिहार।
दफतर भुलईपूर के, कानगोई बिचार ।।२७३।।
श्रीवास्तव कायस्थ कुल, कहिन नाम षुस्याल।
ब्रज को आयौ जानि कै, सरन लाडिली लाल ।।२७४ ।।
जो कोउ बाग धरचौ चहै, बृछ लगावै कोइ।
पोथा बिपिन बिनोद की, प्रथम पढै यह सोइ ।।२७५।।

।। इति श्री बिपिनबिनोद बाग लगाने की बिधि संपूरनं ।।

स्फुट प्रसंग

इलाहाबाद या इलाहाबास

'हिंदुस्तानी' पत्रिका के भाग २, सं० २, पृष्ठ २१६-२५ पर 'इलाहाबाद या इलाहाबास, शीर्षक लेख में यह दिखलाया गया है कि इलाहाबाद नगर अकबर ने बसाया था, और उस का नाम इलाहाबास रक्खा था। उक्त लेख में उस समय तक लेखक को प्राप्त सभी साधनों का उपयोग किया जा चुका है, पर उस के अनंतर इधर कुछ और भी साधन मिले हैं. जिन से उस बात का समर्थन होता है, अतः वे भी इस लेख में दे दिए जाते हैं।

१. बनारसीदास जैन का जन्म संवत् १६४३ में अकबर के जीवन-काल में हुआ था। इन्हों ने अपना आत्मचरित दोहे चौपाइयों में 'अर्द्धकथा'[१] नाम से लिखा है। इस में तीन बार इन्हों ने इलाहाबास का उल्लेख किया है—

अ. इस बिधि कीनौ मास दस साहिजादपुर बास।
फिरि उठि चले प्रयाग पुर बसे त्रिबेनी पास॥
बसै प्रयाग त्रिबेनी पास।
जाकौं नांव इलाहाबास॥

आ. सुख समाधि सौं दिन गए करते सकल बिलास।
चिट्ठी आई बाप की चले इलाहाबास॥
चले प्रयाग बनारसी रहे फतहपुर लोग।
पिता पुत्र दोऊ मिले आनंद सों बिधि जोग॥

इ. बहुरौ त्याग फतहपुर बास।
गए न कोस इलाहाबास॥

---

[१] 'हिंदुस्तानी' (१९३५), पृष्ठ ३४५–९३

जाय सराय उतारा लिया ।
गंगा के तट भोजन किया ॥

२. नरहरि बंदीजन को अकबर ने महापात्र की पदवी दी थी। इन्ही के वंश में भवन कवि हो गए हैं, जिन्हो ने 'रसरत्नाकर' ग्रंथ लिखा है। इन का समय संवत् १८००-१८५० के लगभग है। इन्हों ने उक्त ग्रंथ में लिखा है[1]—

इमि आयसु लै भौन कवि भौन आपने आय ।
जस प्रताप बरनै लगौ बिरुद बंस को गाय ॥
सूबे इलाहाबास है मानिकपुर सरकार ।
पच्छिम डलमउ परगनो जहं सुरसरि की धार ॥

३. 'तारीखे-दाऊदी'[2] का रचयिता जहाँगीर का समकालीन था, अतः इस की रचना सन् १६०० के आसपास की है। यह लिखता है कि "इलाहाबास के उतार पर जो पहले पयाग कहलाता था।"

४. 'इक़बालनामए-जहाँगीरी'[3] मे लिखा है कि "पर्वेज तथा महाबत खा को आज्ञा भेजी गई कि दक्षिण की रक्षा का प्रबंध कर इलाहाबास तथा बिहार जायँ।"

५. जोआन्स द लाएत (सन् १५९३-१६४९) की रचना 'द इंपीरिओ मैग्नी मोगोलिस' सन् १६३१ ई० में प्रथम बार लैटिन भाषा में प्रकाशित हुई थी। इस का अंग्रेजी अनुवाद जे० एस्० हायलेंड ने किया है, जिस के पृष्ठ १९९ पर दक्षिण में खुसरो की मृत्यु का विवरण देते लिखा गया है कि शाहजहां ने आज्ञा भेजी थी कि "उस का शव मसालों में रख कर उस के पास भेजा जाय, जिस में वह इलाहाबास में उस की माता के मक़बरे के पास गाड़ा जाय।"

६. एडवर्ड टेरी सन् १६१७ ई० में सर टॉमस रो का पादरी हुआ है, और उस के साथ मांडू गया। यह सन् १६१९ ई० में इंग्लिस्तान लौट गया। यह अपने यात्रा-विवरण में हिंदुस्तान के सूबों का उल्लेख करते हुए लिखता

---

[1] 'विशाल भारत', सितंबर, १९३४
[2] इलियट और डाउसन, 'हिस्ट्री अव् इंडिया', भा० ४, पृ० ४५७
[3] वही, भा० ६ पृ० ४०८

है[1] कि "जमना नदी इसे नरवर(?) से अलग करती है और उस के अनंतर हेलावास (इलाहाबास) में गंगा में गिरती है।"

७. विलिअम हॉकिन्स एक जहाज का कप्तान तथा तीन जहाजों के बेड़े का प्रधान था, जिस में एक लापता हो गया था। हॉकिन्स सन् १६०६ ई० में सूरत पहुँचा और तीन वर्ष बाद लौट गया। जहाँगीर के विद्रोह के विषय मे लिखते हुए कहता है[2] कि "उक्त उद्देश्य के कारण एहाबास में रहते हुए जो पूरब प्रांत की राजधानी है, उस ने अस्सी सहस्त्र सवार के साथ आगरा तथा वहां का कोष लेने के लिए कूच किया।" यहां 'एहाबास' से इलाहाबास का ही तात्पर्य है।

८. राल्फ़ फ़िंच पहला अंग्रेज़ यात्री है, जो भारत में सन् १५८३ ई० मे आया था। यह सन् १५९१ में लौट कर इंग्लैंड पहुँचा। यह लिखता है[3] कि "मैं आगरे से प्राग आया, जहां जमुना नदी महानद गंगा में मिलती है और अपना नाम खो देती है।" यह यहां के दुर्ग या नगर के विषय में कुछ नहीं लिखता क्योंकि उस समय तक दोनों के निर्माण का आरंभ मात्र हुआ था।

९. 'हिंदुस्तानी' भा० ८, सं० १, पृ० ४१-६८ पर एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिस मे ब्रजभाषा गद्य में मुग़ल राजवंश का प्रायः पौने दो सौ वर्ष प्राचीन इतिहास छपा है। इस में इलाहाबाद तथा इलाहाबास का कई बार प्रयोग हुआ है।

ब्रजरत्नदास

---

[1] 'अर्ली ट्रैवल्स इन इंडिया', संपादक, विलियम फ़ॉस्टर, पृ० २९३
[2] वही, पृ० १०७
[3] वही, पृ० १९

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १।)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १।)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे केमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १।)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि किसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर राम सिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम्० ए०। मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़ल। मूल्य १ॖ

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४ॖ; सादी जिल्द ३॥ॖ

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥ॖ; सादी जिल्द ५ॖ

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत व्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥ॖ; सादी जिल्द ४ॖ

(२२) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥ॖ; सादी जिल्द ५ॖ

(२३) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६ॖ; कपड़े की जिल्द ६॥ॖ

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्यकृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०। मूल्य ॥ॖ

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २ॖ; सादी जिल्द १॥ॖ

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १ॖ

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १ॖ

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १ॖ

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४ॖ; सादी जिल्द ३॥ॖ

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री व्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य ५ॖ

(३१) हिंदी कवि और काव्य—(भाग १) संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥ॖ; कपड़े की जिल्द ५ॖ

(३२) हिंदी भाषा और लिपि—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥ॖ

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक, श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १ॖ

(३४) जीवनवृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफ़ेसर महाजोत सहाय। मूल्य १ॖ

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।

० टीपरे, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
एकेडेमी

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

अक्तूबर, १९३६

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी, अक्तूबर, १९३९

लेख-सूची

वार्षिक मूल्य ४)—डाकव्यय-सहित

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

भाग ९ } अक्तूबर, १९३९ { अंक ४

कंपनी सरकार के ज़माने में समाचारपत्र

[लेखक—श्रीयुत ओंकार प्रसाद भटनागर, एम० ए०]

(१)

हर मुल्क में समाचारपत्रों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। हमारे देश के लिए भी यही बात ठीक है, यद्यपि पश्चिमी देशों के मुक़ाबले में हिंदुस्तान में समाचारपत्र लोकमत प्रकट करने के उतने प्रबल साधन नहीं बन पाए हैं। यूरोप के मुल्कों में समाचारपत्र उन्नीसवीं सदी के शुरू में ही बलशाली हो चुके थे, यहां तक कि नैपोलियन कहा करता था कि, "चार विरोधी समाचारपत्रों से एक हज़ार संगीनों की अपेक्षा ज़्यादः डरना चाहिए।" ऐसे भयावह अस्त्र के हिंदुस्तान में जन्म और विकास का इतिहास मनोरंजक होगा।

अठारहवीं सदी के अंत होते-होते ईस्ट इंडिया कंपनी या कंपनी सरकार एक प्रबल राजनैतिक शक्ति बन चुकी थी। शासन-कार्य में हाथ बटाने के उद्देश्य से, और नए-नए व्यापारों की तलाश में बहुत से अंग्रेज़ हिंदुस्तान में आने लग गए थे। हिंदुस्तान के तीन प्रेसीडेंसी नगरों, यानी कलकत्ता, बंबई और मद्रास में अंग्रेज़ों की जनसंख्या बढ़ती जा रही थी। इन नवागंतुकों के यहां बसने के परिणाम-स्वरूप बड़ी-बड़ी तब्दीलियों का होना स्वाभाविक था। नए विचार और नई संस्थाएं इस भूमि में जड़ पकड़ने लगे। इन संस्थाओं

मे समाचारपत्र भी था। लेकिन समाचारपत्रों का आरंभ हिंदुस्तान में व्यक्तिगत उद्योग के कारण हुआ, कंपनी सरकार की प्रेरणा और मदद से नहीं।

इंग्लिस्तान का पहला समाचारपत्र 'दि वीक्ली न्यूज़' सन् १६२२ में निकला था। इस प्रकार इंग्लिस्तान में तो समाचारपत्रों के पीछे डेढ़ पौने दो सौ बरसो का इतिहास उस समय भी था। इंग्लिस्तान और यूरोप के दूसरे मुल्कों के समाचारपत्र आरंभ मे बहुत छोटे हुआ करते थे; उन में प्रकाशित समाचारो की सच्चाई संदिग्ध होती थी, और वह किसी पक्ष की स्तुति से या इतर पक्ष की निंदा से भरे रहा करते थे। चोरी-छिपे उन का प्रकाशन होता था, और उन का प्रचार भी प्रायः इसी तरह होता था।

हिंदुस्तान के पहले समाचारपत्रो की कहानी इस से भिन्न है। न तो वह आकार-प्रकार में ही तुच्छ थे, और न उन का प्रचार ही लुक-छिप कर होता। इंग्लिस्तान में पहले समाचारपत्र के निकलने के डेढ़ सौ साल बाद का वातावरण ही बदल गया था, और समाचारपत्रों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में अंतर आ गया था। हिंदुस्तान के समाचार-पत्रो ने इस बदली हुई हवा में जन्म लिया था।

सन् १७६८ मे बोल्ट्स नाम के एक आदमी ने एक छापाखाना क़ायम करना चाहा था, लेकिन उस का मंसूबा पूरा हो इस के पहले ही फ़ोर्ट विलियम की कौंसिल ने उसे हिंदुस्तान से चले जाने का हुक्म दे दिया। बाद मे जे० ए० हिकी नाम के एक सज्जन ने एक छापाख़ाना क़ायम किया। कलकत्ते में जेलख़ाने में समय काटते हुए इन्हें छापाख़ाने के विषय मे एक पुस्तक पढ़ने का अवसर मिला था। इन महोदय को क़र्ज़ न अदा कर सकने की इल्लत मे सज़ा मिली थी। इन्हों ने क़र्ज़ लेने की बात से ही इन्कार किया था, लेकिन स्वभाव के यह इतने उग्र थे कि कोई वकील इन की पैरवी के लिए तैयार न होता था। बाद में इन्ही के हमनाम एक मित्र ने इन की पैरवी की मगर पैरवी के बीच मे ही यह इतने उत्तेजित हो गए कि इजलास मे खड़े होकर आवेश में अपने पैरोकार को बुरा-भला कहने लगे और बताया कि वह मामले को कुछ नही जानता। पैरोकार ने इन की पैरवी करने से इन्कार किया, लेकिन बाद में प्रार्थना करने पर उस ने इन के मुक़द्मे की पैरवी की और इन की रिहाई हासिल की।

जेल से मुक्त हो कर हिकी साहब ने एक छापाख़ाना खोला और पहला हिंदुस्तानी ——— 'दि बंगाल गज़ट' नाम का निकाला यह १७८० की बात है उस पत्र

की इस समय सिर्फ़ दो प्रतियां मिलती हैं, जिन में एक तो लदन के ब्रिटिश म्यूज़ियम की लाइब्रेरी में है, और दूसरी कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल लाइब्रेरी में।

शुरू से ही यह पत्र आमपसद हुआ। समाचारपत्र हिंदुस्तान के लिए नई चीज़ थे, इस लिए यह बड़ी दिलचस्पी से पढा जाता था। कलकत्ते के निवासियों की व्यंग्यपूर्ण उपनामों के साथ आलोचनाएं और हास्य के चुटकले पाठकों को आनंद दिया करते थे। टिरेट्टा नाम के एक कलकत्ता-निवासी पर, उस के छैलपन की आदत के कारण, आक्षेप हुआ। उन दिनों कलकत्ते में अंग्रेजों की संख्या बहुत थोड़ी थी, इस लिए प्राय. हर अंग्रेज गवर्नमेंट हाउस के बाल-नाचों में आमंत्रित हो जाता था। ऐसे अवसरो पर टिरेट्टा उपस्थित होने से कभी न चूकता था। चाहे जून का महीना हो और गर्मी की ख़ासी उमस हो, फिर भी वह अपने मखमली पोशाक में नजर आता। इस की सूरत-शकल अच्छी जरूर थी लेकिन इस की नाक कुछ ज़्याद: लंबी थी। इस लिए इन के संबंध में पत्र में टिप्पणी निकली, 'नक्कू (नोज़ी) जार्गन अपनी पूरी लाल मख़मली धज मे अपना वार्षिक नाच नाचा।' उस दिन से टिरेट्टा का नाम 'नक्कू जार्गन' पड़ गया।

लेकिन आगे चल कर पत्र में बेहूदा बातें और लोगों का बुरा उपहास भी छपने लगा। पत्र ज़िस-किसी पर आक्षेप करने लग गया। संपादक की इतनी हिम्मत बढ़ी कि उस ने तत्कालीन गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्स पर भी व्यंग्य कसने शुरू किए। अब सरकार ने इस बढ़ती हुई बुराई को रोकना मुनासिब समझा। यह हुक्म जारी हुआ कि सरकारी डाकघरों के ज़रिए यह पत्र न जा सके। फिर भी इस का विशेष असर संचालकों पर न पड़ा और वह समाचारपत्र पास-पड़ोस की जगहों तक अपने हरकारों द्वारा पहुँचाने लगे। अंत मे हिकी किसी मुक़द्दमे के संबंध में गिरफ़्तार हुआ और उसे आज्ञा मिली कि हिंदुस्तान छोड़ कर चला जावे। इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स के ज़माने में पत्र का दमन कर दिया गया। पत्र का इस प्रकार दमन तो कर दिया गया लेकिन यह बात विचार करने की है कि सरकार की तरफ़ से किसी 'सेंसर' के बैठाने की आवश्यकता न पडी। उस की दुर्बल बाल्यावस्था को देखते हुए ऐसी रोक की जरूरत न जान पड़ी।

'बंगाल गज़ट' के दमन ने औरो को निरुत्साह न किया। दूसरे प्रयास किए गए। १७९१ और १८५७ के बीच बहुत से अंग्रेज़ी समाचारपत्रों का जन्म हुआ। कलकत्ता प्रेसीडेंसी में इस काल में जो पत्र चलते थे उन में से प्रमुख थे—'कलकत्ता जर्नल'

'बगाल हरकारू', 'दि जान बुल', 'कलकत्ता कौरियर', 'दि इंग्लिशमैन', 'दि रिफ़ार्मर', और 'दि फ़्रेंड अव् इंडिया', जिस का संपादन सिरामपूर के पादरी लोग किया करते थे। इन पत्रों के स्वामी तथा संपादक निजी व्यक्ति थे। बंगाल सरकार का अपना पत्र भी था जिस का नाम 'गवर्नमेंट गज़ट' था। बंबई और मद्रास के अहातों में जिन पत्रो को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी वह थे, 'बंबई टाइम्स', 'बंबई कौरियर एंड बंबई टाइम्स', और 'मद्रास गज़ट'।

इन समाचार-पत्रों की बहुत सी प्रतियां कलकत्ते की इंपीरियल लाइब्रेरी मे सुरक्षित है और पठन की मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत करती है। अंग्रेजी समाचार-पत्र बहुत मँहगे थे, इस लिए उन के ग्राहक होने की सामर्थ्य बहुत कम लोगों में थी। 'जान बुल' जैसे दैनिक पत्र का वार्षिक चदा ६४) और मासिक चंदा ८) था। पढ़ने की सामग्री इस में एक अंक मे चार पृष्ठों से ज्यादः न होती, और अधिकांश कलकत्ता और उस के आस-पास के समाचारो तक सीमित होती। कभी-कभी कंपनी सरकार के कारनामो पर टिप्पणियां भी निकल जाती और इन के अलावा अंग्रेज़ी समाचारपत्रों से कुछ उद्धरण भी दे दिए जाते। इंग्लिस्तान के ये समाचारपत्र कुछ धनी व्यक्तियो के पास बरावर आते थे।

उन्नीसवी सदी के आरंभ में हमें यह मिलेगा कि यह समाचारपत्र व्यक्तिगत टीका-टिप्पणी में बहुत लगे रहते। बहुधा एक संपादक दूसरे पर आक्षेप ही किया करता था। 'दि कलकत्ता जर्नल' उस समय का एक आमपसंद पत्र था। उस ने अपने सहयोगियों की भलाई और बुराई की समीक्षा करके और अपने को सब से अच्छा सिद्ध करने का प्रयत्न करके अपने ऊपर एक आफ़त सी बुला ली। दूसरे समाचारपत्रों के सपादकों ने मिल कर 'कलकत्ता जर्नल' के संपादक जे० एस्० बकिंघम के विरुद्ध घोर और विषाक्त आंदोलन शुरू कर दिया। उन पर चार बीबिया रखने का आरोप किया गया और यह भी बताया गया कि उन मे से एक बंबई पहुँच गई है। 'एशियाटिक मिरर' के सपादक पादरी ब्राइस ने बकिंघम पर तीव्र आरोप किए। सन् १८१६ में 'कलकत्ता जर्नल' में स्थानीय ऐंग्लिकन गिरजाघर की एक सभा का समाचार प्रकाशित हुआ। इस में कंपनी के डार्वेल नाम के एक क्लर्क का भी कुछ हाल छपा। पत्र की विरोधी आलोचना पर डार्वेल बहुत झुँझलाया। एक दिन बकिंघम संध्या-समय अपनी बग्घी पर सैर के लिए निकला

था कि डार्वेल की उस की मुलाक़ात हो गई। डार्वेल ने बकिंघम से पूछा कि 'आप ही जर्नल के संपादक हैं'। इस के बाद उस ने संपादक महोदय पर कोड़े से प्रहार किया। इस का जवाब संपादक ने भी अपनी घोड़ेवाली चाबुक से दिया। सारांश यह कि इस तरह का वातावरण उन दिनों रहा करता था। एक दूसरे अवसर पर बकिंघम ने डाक्टर जेमसन नाम के एक व्यक्ति की आलोचना इस बात को लेकर की कि जेमसन तीन भिन्न-भिन्न पदों पर काम करता था। इस पदाधिकारी को बात बुरी मालूम दी। उस ने बकिंघम को 'डुएल' (द्वंद्व युद्ध) के लिए ललकारा। उन दिनों इस प्रकार के द्वंद्वों का प्रचार था और चुनौती न स्वीकार करने वाला कायर समझा जाता था। दोनों का द्वंद्व युद्ध हुआ होता लेकिन कुछ बीच के लोगों ने किसी प्रकार मामला ठंडा किया।

इस प्रकार के आरोपों और प्रत्यारोपों के अलावा, समाचारपत्रों में विज्ञापन भी रहा करते थे। विज्ञापनों की छपाई की दर चार आने प्रति लाइन होती, और यह नीलामों, कबाब-घरों (जहां तरह तरह के भोजनों की व्यवस्था होती) आदि के विषय में हुआ करते। विलायत से आई हुई नई किताबों के भी विज्ञापन होते। अंग्रेज़ी समाज में उस समय 'लार्ड बाइरन की कविताएं', 'शिकारी का अपराध-स्वीकार', 'कुँआरे का अपराध-स्वीकार' आदि पुस्तकें लोक-प्रिय थीं। थियेटरों के समाचार और घुड़दौड़ों की विज्ञप्तियां भी समाचारपत्रों में मुख्य स्थान लिया करती थीं। चिट्ठियां या 'लाटरियां' प्रायः साल भर ही पड़ा करती थीं और उन के द्वारा लोगों में बड़ी उत्तेजना रहा करती थी। इन की भी विज्ञप्तियां बराबर निकलती रहती थीं। और और विषय भी विज्ञापन के स्तंभों में जगह पाते थे, जैसे विवाह-संबंधी आवश्यकताएं या नक़ाबपोश बाल-नाच आदि। इन नक़ाबपोश बाल-नाचों द्वारा कभी-कभी शादियों की डौल लग जाया करती थी। विवाह-संबंधी विज्ञापनों में अकसर यह कहा जाता था कि दूल्हन ऐसी चाहिए जिसे तिल्ली का रोग न हो।

हिंदुस्तानियों द्वारा संपादित एक अंग्रेज़ी पत्र, 'दि रिफ़ार्मर' में हमें एक मनोरंजक घटना का वर्णन मिलता है। कलकत्ते में चौरंगी थियेटर उन्नीसवीं सदी के आरंभ में तफ़रीह की एक आमपसंद जगह थी। इस का हाल या बड़ा कमरा दो भागों में बँटा हुआ था। एक हिस्सा तो अंग्रेज़ों के लिए रिज़र्व रहता और दूसरे हिस्से में हिंदुस्तानी बैठते। बहुत थोड़े प्रतिष्ठित हिंदुस्तानी थियेटर में जाते क्योंकि बहुत कम हिंदुस्तानी

अंग्रेजी समझ पाते थे। एक दिन ऐसा देखा गया कि एक अंग्रेज सिविलियन का बेयरा हिंदुस्तानियों के बैठने वाले हिस्से में बैठा हुआ था। उस के मालिक ने उसे अपना टिकट दे दिया था। इस बात को कलकत्ते के हिंदुस्तानी समाज ने बहुत बुरा माना था।

हिंदुस्तान के समाचारपत्रों के इतिहास में इस स्थल पर एक बात ध्यान देने योग्य है. वह यह कि हिंदुस्तान के अंग्रेजी पत्रकार प्राय. उसी ढर्रे पर चल रहे थे जिस पर कि इंग्लिस्तान में अंग्रेजी पत्रकार चलते थे। इंग्लिस्तान मे समाचारपत्र दलबंदियों में बुरी तरह फँसे हुए थे। उन्नीसवीं सदी के आरंभ के समाचारपत्र इंग्लिस्तान में 'ह्विग' और 'टोरी' (उदार और अनुदार) दलों के झगडों से भरे रहते थे। संपादकों के बीच का संघर्ष समाचारपत्रों के स्तंभों तक सीमित न रहता, बल्कि अकसर अदालतों तक पहुँचता, और आपस मे द्वंद्व भी हो जाया करते थे। सन् १८२१ में 'लंदन मैगजीन' और 'ब्लैकउड मैगजीन' के संपादकों में द्वंद्व हुआ। समाचारपत्रों के लेखक भी, वह चाहे जिस पक्ष के हों, इस भय से बचे नहीं थे।

हां, इंग्लिस्तान में प्रकाशित होने वाले पत्रों की संख्या अवश्य बहुत अधिक थी। १८३० के आस-पास हिंदुस्तान के समाचारपत्रों की संख्या तीस से अधिक न थी। उस समय इंग्लिस्तान और स्काटलैंड को मिला कर देखें तो वहां २५० से ऊपर पत्र-पत्रिकाएं चल रही थीं। हिंदुस्तान मे मूल्य की अधिकता के कारण और डाक-व्यय के कारण समाचारपत्रों के गाहक बहुत सीमित होते; विलायत मे पत्रों का प्रचार हजारों की संख्या में होने लग गया था।

(२)

इस प्रकार अंग्रेजी समाज ने हिंदुस्तान और उस के लोगों को एक प्रकार से एक नई संस्था प्रदान की। हिंदुस्तानियों ने अपने विचारों और दुखड़ों को प्रकट करने के इस माध्यम की उपयोगिता पहचानने में कसर न की। इस समय कलकत्ता में हिंदुस्तानियों की एक बढ़ती हुई संख्या थी जो पश्चिमी शिक्षा मे दिलचस्पी लेना आरंभ कर चुकी थी। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में कुछ प्रमुख अंग्रेजों और भारतीयों की कोशिश से एक ऐंग्लो-इंडियन कालिज या विद्यालय की स्थापना हो गई थी। एक पक्ष के प्रतिनिधि थे मिस्टर डेविड हेयर और दूसरे पक्ष के प्रतिनिधि थे राजा राममोहन राय

कंपनी सरकार भी भारतीय शिक्षा में दिलचस्पी लेने लगी थी। सन् १८१३ के चार्टर एक्ट की एक धारा में हिंदुस्तानियों की शिक्षा के लिए एक लाख रुपए का ख़र्च निर्धारित किया गया था। यह ख़र्च बहुत समय तक मुल्तवी रहा। लेकिन यह देखते हुए कि पादरियों ने हिंदुस्तानियों की शिक्षा के लिए अपने स्कूल और शिक्षा-संस्थाएं खोलनी आरंभ कर दी थीं, और कंपनी सरकार को भी अपने बढ़ते हुए इलाक़े के कारण पढ़े-लिखे हिंदुस्तानियों की आवश्यकता अधिकाधिक पड़ रही थी, शिक्षा के संबंध में एक निश्चित नीति का निर्धारण ज्याद: समय तक मुल्तवी नहीं रक्खा जा सकता था। अधिकतर अंग्रेज़ी अफ़सर और हिंदुस्तानियों का भी एक दल अंग्रेज़ी को अदालत की भाषा बनाने के पक्ष में आंदोलन कर रहे थे और १८३५ में यह भाषा सरकारी भाषा बन भी गई। यह स्वाभाविक था कि जिस समय ऐसे परिवर्तन हो रहे थे और शिक्षा की सुविधाएं की जा रही थीं, उस समय हिंदुस्तानी भी अख़बार-नवीसी की ओर आकर्षित होते।

देशी भाषाओं का पहला पत्र 'दर्पण' था। इस का संपादन सिरामपुर के पादरियों द्वारा होता था, इस लिए सच्चे अर्थ में यह हिंदुस्तानी पत्र नहीं कहला सकता था। यह पत्र २३ मई सन् १८१८ को निकला, और इसे तत्कालीन गवर्नर-जेनरल लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा प्रोत्साहन भी मिला। लार्ड हेस्टिंग्स देशी भाषाओं के समाचारपत्रों के समर्थक थे और जो लोग स्वतंत्र देशी समाचारपत्रों को सरकार के लिए ख़तरे की चीज़ समझते थे उन से वह सहमत न थे।

परंतु देशी भाषाओं के समाचारपत्रों के संबंध में जिस व्यक्ति ने नेतृत्व किया वह राजा राममोहन राय थे। वह अपने समय के निस्संदेह सब से बड़े हिंदुस्तानी थे और भारतीय जातीयता के पिता कहला सकते हैं।

सन् १८२१ में, 'कलकत्ता जर्नल' के पृष्ठों में बंगाली समाचारपत्र 'संवाद कौमुदी' की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। मिस एस्० डी० कालेट ने राजा के जीवन-चरित संबधी अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'यह पत्र एकमात्र देशीयों द्वारा संचालित देशी भाषा का पत्र' था। इस लिए हम इस पत्र को पहला देशी भाषा का पत्र कह सकते हैं और राजा राममोहन राय को देशी भाषा के समाचारपत्रों का संस्थापक। इस के साथ-साथ और भी कई बंगाली पत्र निकले। सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक महत्व के लेख इन में निकला करते थे। 'संवाद कौमुदी' के एक अंक में कलकत्ता

के मजिस्ट्रेटों के नाम एक अपील निकली थी। उन से इस बात की प्रार्थना की गई थी कि वह कलकत्ता के हिंदू निवासियों की रक्षा के लिए दृढ़ प्रयत्न करे और उन्हें उन ईसाई सज्जनों से बचाए जो भीड़ में अपनी बग्घियों को दौड़ाते हैं और औरतों और बच्चों का भी न ध्यान देते हुए भीड़ में चाबुक चलाते हुए रास्ता काटते रहते है।

सन् १८२२ मे राजा राममोहन राय ने एक साप्ताहिक पत्र फ़ारसी भाषा में निकालना आरंभ किया और इस के कुछ ही समय बाद एक धार्मिक पत्रिका भी निकाली। राजा राममोहन राय सुधारवादियो के नेता थे और इन पत्र-पत्रिकाओ द्वारा वह सामाजिक कुरीतियो पर गहरा वार किया करते थे। सती-प्रथा उस समय बंगाल में प्रचलित थी और राजा राममोहन राय और उन के साथियो ने इस प्रथा का जोरदार विरोध किया। लेकिन सख्या में कट्टरपथियों का दल बड़ा था और उस ने भी सुधारवादियो को चुनौती दी, अपनी 'चद्रिका' नाम की एक पत्रिका निकाली, और हिंदू धार्मिक संस्थाओ के पक्ष में आंदोलन किया। बाद मे और भी कई पत्र निकले। सन् १८३० के लगभग कलकत्ता से ही सोलह पत्र प्रकाशित हो रहे थे। बंबई और मद्रास के अहातो में, और उस सूबे मे भी जिसे अब सयुक्त प्रात का नाम दिया जाता है समाचारपत्रों की दिशा मे उद्योग आरंभ हो गया था।

देशी भाषाओं के पत्र खुल्लम-खुल्ला सभी विषयों पर विचार प्रकट करते थे, यहा तक कि यूरोप में इंग्लिस्तान की नीति पर भी टीका-टिप्पणी करते थे। हिंदुस्तान मे कंपनी सरकार के जो कर्मचारी थे, उन पर व्यंग्योक्तियां करने मे भी न चूकते थे। इस प्रकार के लेख अंग्रेज़ों में असंतोष उत्पन्न करते और यह स्पष्ट था कि अधिक समय तक यह स्थिति चलने नही दी जा सकती थी। इंग्लिस्तान के 'टोरी' या अनुदार समाचारपत्र हिंदुस्तानी समाचारपत्रों की स्वतंत्रता पर रोक लगाने के लिए आंदोलन करने लगे। इस प्रकार अब हम समाचारपत्रो के इतिहास में ऐसी परिस्थिति पर पहुँचते हैं जब कि 'सेंसर' द्वारा उन पर नियत्रण आरभ किया गया।

(३)

सन् १७९१ से पूर्व हिंदुस्तानी समाचारपत्रों पर इस से अधिक कोई रोक न थी कि हुक्क-दस्वत का जो अंग्रेज़ी कानून था उस के भीतर उन्हें रहना पड़ता था।

हिंदुस्तानी समाचारपत्रों को वही स्वतंत्रता मिली हुई थी जो इंग्लिस्तान में अंग्रेज़ी पत्रों की थी। उस ज़माने में हर एक अंग्रेज़ को जो हिंदुस्तान में रहना चाहता था एक लैसंस सरकार से लेना पड़ता था। गवर्नर-जेनरल कंपनी सरकार के प्रांतों में प्रेस न रखने की आज्ञा नहीं दे सकते थे। वह उन अंग्रेज़ों से जिन्हें यहां बसने का लैसंस मिला हुआ था, लैसंस अवश्य वापस ले सकते थे, यदि बसने वाले अंग्रेज़ पर आचार का कोई दोष ठहरे। इसी अधिकार का इस्तेमाल करके हिकी हिंदुस्तान से बाहर निकाला गया था और इस प्रकार उस का 'गज़ट' बंद किया गया था।

सन् १७९१ और १७९८ के बीच, दो संपादकों की फ़ौजी घटनाओं की चर्चा करने की वजह से तंबीह की गई, और एक अफ़सर जिस का कि पद कप्तान का था इंग्लिस्तान वापस भेज दिया गया। उस का अपराध समाचारपत्रों में सेना को संबोधन करते हुए कुछ गरम लेखों का प्रकाशित कराना था। सन् १७९८ में मैकलियन नाम का एक व्यक्ति एक जज की आलोचना करने के अपराध में इस देश से बाहर भेज दिया गया। कंपनी सरकार के कुछ असंतुष्ट कर्मचारी अपना असंतोष समाचारपत्रों में प्रकट करने लग गए थे, और यह बात ऊँचे पदाधिकारी पसंद नहीं कर सकते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी अब एक प्रधान राजनैतिक शक्ति बन रही थी और उस की शासन-व्यवस्था की आलोचना पदाधिकारियों को सह्य नहीं हो सकती थी। कंपनी सरकार को यह डर था कि इस तरह की नुक्ताचीनी से आम जनता में उस की प्रतिष्ठा घट सकती है।

लार्ड वेल्ज़ली ने समाचारपत्रों पर नियंत्रण लगाने के लिए कड़े क़ायदे बनाए। उन्हों ने एक सेंसर भी इस मतलब से नियुक्त किया कि वह समाचारपत्रों पर निगरानी रख सके। इन क़ायदों के अनुसार हर एक संपादक को अपना नाम अपने पत्र के नीचे छापना पड़ता, और उसे अपना नाम और पता सरकार के यहां भी दर्ज कराना पड़ता। एतवार के दिन कोई समाचारपत्र नहीं निकल सकता था। इस संबंध में प्रत्येक समाचारपत्र के संचालक को एक लैसंस लेना पड़ता था। इन क़ायदों का पालन न होने पर, या सेंसर की आज्ञा की अवहेलना करने पर यह लैसंस छिन सकता था। इन नियंत्रणों से इस बात का पता चलता है कि किस प्रकार का लोकमत इंग्लिस्तान में प्रबल था। उन दिनों 'टोरियों' या अनुदार दल वालों का इंग्लिस्तान में बहुमत था और वह हिंदुस्तान में स्वतंत्र समाचारपत्रों के अस्तित्व को बुरा समझते थे और उस से डरते थे। वह समझा

करते थे कि हिंदुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्य दो स्तंभो पर रुका हुआ है, एक तो हिंदुस्तानी जनता का अज्ञान और दूसरे सरकारी कार्यों की आलोचना से रक्षा। सन् १८०१ मे बगाल सरकार की आज्ञा से एक आयोजना इस तरह की तैयार की गई कि एक सरकारी छापाखाना स्थापित किया जाय और एक सरकारी पत्र निकाला जाय। यह पत्र निकला भी और इस का नाम पड़ा 'गवर्नमेंट गजट'। इस का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन पत्रो की विरोधी आलोचनाओ का जवाब देना था।

सन् १८०१ से लेकर आगे वहुत से क़ायदे-क़ानून समाचारपत्रो की स्वतन्त्रता पर रोक लगाने के लिए बनाए गए। फ़ौजी हुक्म और युद्ध के समाचार छापना मना कर दिया गया। सन् १८११ में समाचारपत्रो के मालिकों को अपना नाम प्रकाशित करना जरूरी ठहराया गया। सन् १८१३ में और भी नियंत्रण लगे। यहां तक कि सब समाचारपत्रों और उन के ओड़पत्रों के प्रूफ़ का चीफ सेक्रेटरी को दिखा कर सशोधन कराने की क़ैद भी लगाई गई। इसी प्रकार इश्तहारों और विज्ञप्तियो के प्रूफ दिखाना भी आवश्यक हुआ। इस से पहले जो क़ायदे नियंत्रण के लिए बनाए गए थे, वह भी पूरी-पूरी तरह लागू रहे।

इस समय सेंसर के पद पर जो व्यक्ति नियुक्त था उस का नाम एडेम्स था। वह बंगाल में खुल्लम-खुल्ला 'टोरी' या अनुदार मत का समर्थक था। वह कलकत्ता के शासक-वर्ग का नेता भी था। वह इस बात को दृढ़ता-पूर्वक कहता रहा कि समाचार-पत्रो पर पूरा-पूरा नियंत्रण होना चाहिए। प्रेस पर नियंत्रण लगाए जाने का अपना एक इतिहास रहा है, और एडेम्स उस इतिहास का एक प्रधान पात्र था।

बंबई और मद्रास के अहाते की सरकारें सभी बातों में बंगाल की सरकार का अनुकरण किया करती थी। और उन्हों ने समाचारपत्रों पर नियंत्रण लगाने के मामले में भी बंगाल सरकार की नक़ल की। इन दो अहातों मे भी बंगाल जैसे ही नियंत्रण समाचारपत्रों पर लगाए गए। अकसर संपादकों को तंबीह कर दी जाती, पर कुछ सपादक देश से बाहर भी निकाल दिए गए।

सन् १८१३ से १८२३ तक लार्ड हेस्टिंग्स कंपनी सरकार के गवर्नर-जेनरल रहे। इन्हों ने सन् १८१८ में 'सेंसर' प्रथा को बंद कर दिया। उन्हों ने इस बात का अनुभव किया कि ———ें की स्वतंत्रता एक हद तक पर अच्छा प्रभाव डालती है

उस समय कंपनी सरकार की सब से बड़ी कमज़ोरी यह थी कि उस के कर्मचारी अपने कामों में ढील देने के आदी हो गए थे। स्टैनहोप ने अपने एक पैम्फ़्लेट 'इंफ़्लुएंस अव् दि ब्रिटिश प्रेस इन इंडिया' ('हिंदुस्तान में ब्रिटिश समाचारपत्रों का प्रभाव') में लिखा है, "मद्रास में फौजी मंत्री से एक साधारण चिट्ठी का जवाब हासिल करने में कभी-कभी इतने काग़ज़ और रोशनाई की ज़रूरत पड़ जाती थी जितना कि एक बड़े चांसरी अदालत के फ़ैसले में पड़ती।" समाचारपत्रों में की गई आलोचनाओं द्वारा कार्रवाई में शायद कुछ कम समय लगे, ऐसी आशा की जाती थी। इस के अतिरिक्त हेस्टिंग्स के विचार में एक और बात थी, वह यह कि अगर कोई अंग्रेज़ संपादक आपत्तिजनक लेख लिखे तो उस को तो हिंदुस्तान से बाहर भेज दिया जा सकता था। यही बात हिंदुस्तानी संपादक पर लागू नहीं हो सकती थी। उन्हे यहां रहने के लिए कोई लैसंस न लेना होता। इस लिए हिंदुस्तानी संपादक प्रायः अधिक स्वतंत्रता से टीका-टिप्पणी करते थे।

हेस्टिंग्स के ज़माने में समाचारपत्रों को कुछ स्वतंत्रता ज़रूर मिली, लेकिन इस से यह न समझना चाहिए कि उन पर से सभी रोकें उठा ली गईं। कुछ ऐसे क़ायदे जारी किए गए जिन का पालन करना संपादकों के लिए आवश्यक होता था:—

(१) 'कोर्ट अव् डाइरेक्टर्स' की कार्रवाई, गवर्नर-जेनरल, कौंसिल के मेंबरों और जजों के काम पर किसी प्रकार की विरोधी टीका-टिप्पणी नहीं हो सकती थी।

(२) निजी अपवादों और व्यक्तिगत आक्षेपों की मनाही थी।

(३) हिंदुस्तान की जनता के दिलों को दुखाने वाली बातें नहीं लिखी जा सकती थीं।

(४) विदेशी समाचारपत्रों से ऐसे उद्धरण नहीं छापे जा सकते थे जिन से किसी प्रकार की आशंका या विद्रोह का भय हो।

इन नए क़ायदों का अमल में लाने से पहले 'सुप्रीम कोर्ट' (सदर अदालत) में रजिस्टरी कराया जाना ज़रूरी था।

समाचारपत्रों की स्वतंत्रता के बारे में लार्ड हेस्टिंग्स ने जो यह लंबा क़दम आगे बढ़ाया था, वह इंग्लिस्तान में कोर्ट अव् डाइरेक्टर्स द्वारा पसंद न किया गया;

और उन्हों ने लार्ड हेस्टिंग्स के नए क़ायदों को रद्द कर के फिर से सेंसर बैठाने का निश्चय किया। ७ अप्रैल, १८२० को एक परवाना तैयार कर के 'बोर्ड अव् कंट्रोल' के पास भेजा भी गया, कि वह बोर्ड द्वारा वाइसराय के पास भेज दिया जाय, लेकिन बोर्ड अव् कंट्रोल ने उसे रोक लिया।

जिस साल समाचारपत्रों के ऊपर से सेंसर उठा लिया गया, उसी साल कलकत्ता से 'कलकत्ता जर्नल' नाम का पत्र प्रकाशित हुआ था। इस का तथा इस के संपादक जे० एस्० बकिंघम का कुछ हाल हम ऊपर कह आए हैं। समाचारपत्रों पर प्रतिबंध लगाए जाने के इतिहास में इस पत्र और उस के संपादक का काम महत्वपूर्ण रहा है।

सेंसर के उठ जाने पर सभी अहातों में खुशी मनाई गई। हां, मद्रास में अलबत्ता सेंसर अभी बना रहा। गवर्नर-जेनरल को बधाई देते हुए और मद्रास सरकार की आलोचना करते हुए संपादकीय लेख 'कलकत्ता जर्नल' में निकले। आरंभ से ही 'जर्नल' ने लोक-प्रियता हासिल की। उस ने शुरू से ही निर्भीकता के साथ व्यक्ति-गत शिकायतों को प्रकट करना आरंभ किया। जुदा-जुदा सरकारी अहकामों की आलोचना करते हुए अनेक पत्र प्रकाशित हुए। 'सैमुएल सोबरसाइड्ज़' का उपनाम धारण करके कर्नल राबिन्सन नाम के एक सैनिक अफ़सर ने पत्रों का एक सिलसिला छपा डाला। इस का नतीजा यह हुआ कि उसे अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा और इंग्लिस्तान वापस जाना पड़ा। इन पत्रों को छापने के लिए संपादक को भी क्षमा माँगनी पड़ी।

जे० एस्० बकिंघम एक बार फिर संकट में पड़े। उन्हों ने मद्रास के गवर्नर ईलियट की नियुक्ति का समाचार मोटा काला हाशिया लगा कर छापा। यह मातमी ढंग का हाशिया था। मद्रास के गवर्नर ने इस पर आपत्ति की और बंगाल की सरकार ने बकिंघम से माफ़ी माँगने के लिए कहा। 'कलकत्ता जर्नल' ने सरकार की सहानुभूति खो दी। एडेम्स, जो पहले चीफ़ सेक्रेटरी की हैसियत से सेंसर का काम करता था अब सीनियर मेंबर हो गया था और वह इस पत्र का घोर विरोधी था।

सन् १८२३ में लार्ड हेस्टिंग्स ने हुकूमत की बागडोर रक्खी। लार्ड एमहर्स्ट उन के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए। जब तक वह हिंदुस्तान पहुँचे, तब तक उन के कार्य का भार कौंसिल के सीनियर मेंबर होने के कारण एडेम्स ने ग्रहण किया। एडेम्स ने

इस पद पर आते ही रेवरेंड डाक्टर ब्राइस को 'एशियाटिक मिरर' का संपादक और बकिंघम के एक प्रतिस्पर्द्धी को एक उत्तरदायित्व के पद पर नियुक्त किया। इन नियुक्तियों को एक विशेष गजट द्वारा घोषित किया गया। यह कार्रवाई किंचित् असाधारण थी और इस के विरुद्ध 'कलकत्ता जर्नल' में व्यंग्यपूर्ण टीका-टिपणी हुई। यह टिप्पणी ८ फरवरी १८२३ को प्रकाशित हुई थी। इस से स्थानापन्न गवर्नर-जेनरल, ऐसे रुष्ट हुए कि १२ फ़रवरी को बकिंघम का हिंदुस्तान में रहने का लैसंस छीन लिया गया, और उसे हिंदुस्तान छोड़ कर चले जाने की आज्ञा मिली।

यह घटना एक अचानक दैवी घटना के रूप में घटी। 'जर्नल' की ग्राहक-संख्या अच्छी खासी थी और व्यापारिक दृष्टि से भी यह सफल समाचारपत्र था। बकिंघम को अपने एक सहकारी के ऊपर काम छोड़ कर हिंदुस्तान से जल्दी में विदा लेनी पड़ी। कुछ दिनों तक पत्र चलता रहा, लेकिन इस का एक दूसरा संपादक भी हिंदुस्तान से निकाल बाहर किया गया और बाद में इसे बंद होना पड़ा। बकिंघम को गहरा माली नुकसान हुआ। उस ने इंगलिस्तान में प्रिवी कौंसिल के सामने अपील पेश की और निष्पक्ष जाँच की प्रार्थना की। एक कमिटी इस संबंध में नियुक्त की गई। उस की जाँच का नतीजा यह हुआ कि बकिंघम को अपने नुकसान का मुआवज़ा मिला। लेकिन हिंदुस्तान वापस जाने की उस की प्रार्थना नामंजूर हुई।

एडेम्स की सरकार ने समाचारपत्रों की स्वतंत्रता के विरुद्ध और भी क़ायदे बनाए। लेकिन इन्हें जारी करने के पहले सदर अदालत में इन की रजिस्टरी आवश्यक थी। उस समय एक मात्र स्थानापन्न जज सर फ्रैंसिस मैकनाटन थे। उन्हों ने इन कायदों से आशंकित लोगों से प्रार्थना-पत्र पेश करने की विज्ञप्ति प्रकाशित की। विरोधियों में सब से प्रमुख राजा राममोहन राय थे। दो 'मेमोरियल' या प्रार्थना-पत्र सदर अदालत में पेश हुए। इन में दूसरा आम तौर से राजा राममोहन राय का तैयार किया हुआ माना जाता है। मिस कालेट ने, जिन्हों ने राजा राममोहन का चरित्र लिखा है, इस प्रार्थना-पत्र को 'हिंदुस्तानी इतिहास का एरिओपैजेटिका' कहा है। स्मरण रहे कि प्रेस की स्वतंत्रता के संबंध में 'एरिओपैजेटिका' कवि मिल्टन की एक प्रसिद्ध पुस्तिका है। सर फ्रैंसिस ने निर्णय नए क़ायदों के पक्ष में दिया। राजा राममोहन और उन के समर्थकों ने इंग्लिस्तान के राजा की कौंसिल के सामने अपील की। उन की अपील अंग्रेज़ी

रचना का एक बहुत अच्छा नमूना मानी गई, लेकिन उस की सुनवाई न हुई। आत्म-सम्मान पर आघात करने वाले इन प्रतिबंधों के विरोध के रूप में राजा राममोहन ने 'मीरातुल अखबार' का संपादन बंद कर दिया। उन के इस कार्य को कलकत्ते के ऐंग्लो-इंडियन (यानी अंग्रेजी) समाज ने बहुत नापसंद किया।

लार्ड एमहर्स्ट ने सरकार की बागडोर हाथ में लेने के बाद एक गश्ती ऐलान जारी किया जिस के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को समाचारपत्रों से संबंध रखने की मनाही कर दी गई। सन् १८२८ में एमहर्स्ट के बिदा होने पर लार्ड विलियम बेंटिक ने यह प्रथा क़ायम रक्खी। समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता से फिर छेड़-छाड़ नही की गई। हां, लार्ड बेंटिक के कुछ माली अहकाम, खास कर 'आधा भत्ता' का बंद किया जाना फौज द्वारा सख्त नापसंद किया गया। इस संबंध मे एक लेख-माला निकली, जिसे सरकार को बंद कराना पड़ा। गवर्नर-जेनरल ने सभी समाचारपत्रों के नाम हुक्म जारी किया कि 'भत्ता' के प्रश्न पर और लेख न निकाले जायँ। 'कलकत्ता जर्नल' के दमन की मिसाल संपादकों के सामने थी, इस लिए फिर इस विषय पर लेख न प्रकाशित हुए।

बेंटिक के बाद १८३५ में सर चार्ल्स मेटकाफ़ आए। समाचारपत्रो की स्वतन्त्रता के इतिहास के साथ उन का नाम मुख्य रूप से लिया जायगा। उन्हों ने सेंसर की प्रथा बिल्कुल बंद कर दी। इस विचार को जन्म देने वाले लार्ड मैकाले थे जो कि गवर्नर-जेनरल की कौंसिल के पहले कानूनी सदस्य (लॉ मेंबर) होकर हिंदुस्तान में आए थे। सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने उन के विचारों को व्यावहारिक रूप दिया। इस घटना के स्मारक रूप मे कलकत्ते में एक विशाल हाल बनाया गया और उस का नाम मेकटाफ़ हाल रक्खा गया।

इंग्लिस्तान में कंपनी के संचालकों (कोर्ट अव् डाइरेक्टर्स) ने यह काम पसंद न किया। गवर्नर-जेनरल की कौंसिल के कुछ सदस्यो को भी बड़ी आशंकाएं हुईं। इंग्लिस्तान में कामन्स सभा का मत भी इस के पक्ष में न था। सन् १८११ में कामन्स सभा मे हिंदुस्तानी समाचारपत्रों की स्वतंत्रता का विषय लेकर इस के पक्ष में बहस हो चुकी थी। लेकिन तब से समय बहुत बदल चुका था। साम्राज्यवाद की भावना इंग्लिस्तान मे बहुत बढ़ गई थी और एक आश्रित देश में स्वतंत्र ——————ें का होना उपयुक्त न

समझा गया। स्वतंत्र समाचारपत्र अन्य स्वतंत्र संस्थाओं के संगी मात्र हो सकते थे। परतंत्र देश में उन का स्थान न था।

फिर भी सन् १८५७ तक समाचारपत्रों के प्रतिबंध कम होते रहे। इस घटना के पूर्व वर्ष में हिंदुस्तान के राजनैतिक आकाश में काले बादल घिर रहे थे और सरकार ने खतरे की आशंका से समाचारपत्रों को नियंत्रण मे लाने का उद्योग किया।

सन् १८५७ का 'ऐक्ट १५' बिना सरकारी लैसंस लिए हुए प्रेस का रखना या व्यवहार करना मना करता है। लैसंस देने मे सरकार अपना अधिकार मनमाने ढंग से बरतती रही। सरकार को यह भी अधिकार था कि जिस समय चाहे दिया हुआ लैसंस रद्द कर सकती थी और समाचारपत्रों, पुस्तको तथा अन्य उत्तेजना-जनक रचनाओं का प्रचार बंद कर सकती थी। यह ऐक्ट देशी भाषाओं के और अंग्रेज़ी के पत्रों पर समान-रूप से लागू था। जब समाचारपत्रों को १८३५ में स्वतंत्रता मिली थी उस समय भी कोई भेद-भाव भाषा का नही किया गया था और इस समय भी वैसा ही किया गया।

इस प्रकार हम देखेंगे कि समाचारपत्रों की स्वतंत्रता का इतिहास उस के प्रारंभिक काल में विशेष जटिल नहीं रहा है। यह इतिहास बाद में जटिल होता गया। परंतु उस के वृत्तांत से इस लेख का संबंध नहीं है।

तुलसीदास का अध्ययन

[लेखक—श्रीयुत माताप्रसाद गुप्त, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

महाकवि तुलसीदास का अध्ययन इस समय हिंदी-साहित्य के अध्ययन का सर्व-प्रमुख अंग हो रहा है। नवीन परिपाटी पर इस अध्ययन का प्रारंभ कब से होता है, उस का विकास किस प्रकार होता है, उस विकास में प्रमुख रूप से किन महानुभावों के हाथ लगते हैं, वे इस अध्ययन को किस प्रकार आगे बढ़ाते हैं, अब भी कौन-कौन सी दिशाएं ऐसी हैं जिन में कार्य करने की आवश्यकता है, और उन दिशाओं में अध्ययन के लिए हमें किस प्रकार आगे बढ़ना चाहिए यही बातें इस निबंध का विषय हैं।

नवीन परिपाटी के इस अध्ययन का एक प्रकार से श्रीगणेश करने वाले स्वर्गीय श्रीयुत एच्० एच्० विलसन महोदय थे। 'एक प्रकार से' मैं ने इस लिए कहा कि यद्यपि आप ने स्वत: हमारे महाकवि की रचनाओं का अध्ययन संभवत: न किया होगा पर आप के बाद के कई लेखकों ने जो तुलसीदास का अध्ययन हमारे सामने उपस्थित किया उस में दिए हुए जीवन-वृत्त के प्रमुख साधन आप ही थे। 'ए स्केच अव् दि रेलिजस सेक्ट्स अव दि हिंदूज' नामक आप का वह निबंध जिस में हमारे कवि का उल्लेख हुआ था पहले-पहल सन् १८३१ में 'एशियाटिक रिसर्चेज़'[1] में प्रकाशित हुआ था। कवि के जीवन-वृत्त संबंधी आप की सूचना के आधार नाभादास जी का छप्पय और उस पर प्रियादास जी की टीका के अतिरिक्त कुछ जनश्रुतियां थीं। इस सूचना में कवि की जाति, जन्म-स्थान, काशी में कार्य-क्षेत्र, गुरु-परंपरा, जन्म-काल, देहावसान-तिथि और रचनाओं पर कुछ प्रकाश पड़ता है। तुलसीदास आप का मुख्य विषय न होने के कारण यद्यपि हमें यह आशा न करनी चाहिए कि जन-श्रुतियों के संग्रह करने में आप ने कोई विशेष परिश्रम किया होगा फिर भी वे हमारे लिए महत्व की हैं, क्योंकि एक तो यह पीछे संकलित की

---

[1] जिल्द १६, पृ० ४८

हुई जन-श्रुतियों से कुछ भिन्न है, और दूसरे इतनी प्राचीन है कि उन से पहले किसी विश्वस्त व्यक्ति द्वारा संकलित की हुई दूसरी जन-श्रुतिया इस समय अप्राप्य हैं।

'हिंदी और हिंदुस्तानी' के कदाचित् प्रथम इतिहास लेखक गार्सा द तासी ने सन् १८३९ में अपने महत्वपूर्ण इतिहास 'इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदुई ए इंदुस्तानी' का जो पहला खंड प्रकाशित किया उस में हमारे कवि का परिचय देते हुए[1] उपर्युक्त विल्सन साहब का ही आश्रय लिया। इस इतिहास के परिवर्धित और संशोधित सस्करण मे जो सन् १८७०–७१ में प्रकाशित हुआ आप ने कवि के ग्रंथो और उन की प्रतियों के संबंध में कुछ नवीन सामग्री अवश्य उपस्थित की पर जीवन-वृत्त ज्यो का त्यो रक्खा।

इन प्राथमिक अध्ययन-कर्ताओं में एक और भी अविक स्मरणीय नाम है स्वर्गीय एफ्० एस्० ग्राउस महोदय का जिन्हो ने कवि की सब से अधिक महत्वपूर्ण रचना 'मानस' का कई वर्षो के निरंतर परिश्रम के अनतर अंग्रेजी अनुवाद कर के हमारे कवि का यश पाश्चात्य देशों मे फैलाने का प्रयत्न किया। इस ओर आप का पहला प्रयास सन् १८७६ मे दिखाई पड़ा जब 'दि प्रोलॉग टु दि रामायण अव् तुलसीदास : ए स्पेसिमेन अव् ट्रांसलेशन' नामक आप का लेख एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जरनल मे प्रकाशित हुआ। पूरे ग्रथ का अनुवाद तो खंडों में १८७७ से १८८१ तक निकलता रहा। इस अनुवाद की भूमिका में आप ने जो कवि का जीवन-वृत्त दिया है वह विल्सन साहब की ही सूचना के आधार पर है, पर उक्त सूचना का उपयोग आप ने सावधानी से किया है, और उस की कुछ भूलों पर भी दृष्टिपात किया है।

सन् १८७७ मे लिखने वाले 'सरोज' के लेखक श्री शिवसिंह सेंगर का नाम भी उल्लेखनीय है। 'सरोज' में हमारे कवि के संबंध में लिखते हुए आप ने उस का एक सक्षिप्त जीवन-वृत्त दिया, और किन्ही पसका-निवासी वेनीमाधवदास रचित एक वृहत् 'गोसाईचरित्र' की सूचना दी, जिसे आप ने लिखा कि आप ने देखा था। फिर भी आप ने यह नहीं लिखा कि कवि का जो जीवन-वृत्त आप ने दिया है वह इस 'गोसाईचरित्र' के आधार पर लिखा गया था अथवा स्वतंत्र रीति से, और न आप ने उक्त 'गोसाईंचरित्र'

---

[1] पृ० ५१६

के प्राप्ति-स्थान का निर्देश किया। परिणाम यह हुआ कि कवि के प्रेमियों में उक्त 'चरित्र' की उत्सुकता जागृत कर आप ने उस के समाधान का कोई मार्ग नहीं दिखाया। इसी लिए आप के परवर्ती लेखकों ने यद्यपि आप के 'चरित्र' विषयक उल्लेख का उल्लेख तो किया पर आप के लिखे हुए संक्षिप्त जीवन-वृत्त पर कोई विश्वास नहीं किया। इस संबंध में विशेष उल्लेख-योग्य सर जॉर्ज ग्रियर्सन हैं, जिन्हों ने अपना 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदोस्तान' लिखते समय आप के 'सरोज' का पूरा उपयोग किया पर उसी में हमारे कवि का जीवन-वृत्त देते हुए कदाचित् अपने स्वतंत्र अनुसंधानों से आप के उल्लेखों का विरोध देखने पर ही आप के निष्कर्षों का उल्लेख भी नहीं किया।

किंतु यशस्वी सर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन की सेवाओं की (ईश्वर उन्हें और भी आयु प्रदान करे!) इस क्षेत्र में तुलना ही नहीं हो सकती। जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आप ने हमारे महाकवि के जीवन और रचनाओं के संबंध में पहले ही पहल अनुसंधान किया, यह दुःख का विषय है कि उस का परिचय आप के पीछे आने वाले विद्वानों ने नहीं दिया। इस दिशा में आप ने पहला उल्लेख-योग्य प्रयास सन् १८८६ में किया जब वेन की अंतर्राष्ट्रीय ओरियंटल कांग्रेस के सामने आप ने "हिंदुस्तान का मध्यकालीन साहित्य, विशेषतया तुलसीदास" नामक अपना सारगर्भित निबंध पढ़ा।[१] इस लेख में आप ने हमारे कवि के जीवन, उस की कृतियों और विचारों पर भी नया प्रकाश डाला। पीछे सन् १८८९ में प्रकाशित होने वाले आप के 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदोस्तान' नामक ग्रंथ में कवि के विषय में जो सूचना दी गई है[२] वह बहुत कुछ इसी निबंध का रिप्रिंट मात्र है। किंतु १८९३ की 'इंडियन ऐंटीक्वेरी' में आप के जो 'नोट्स आन तुलसीदास' प्रकाशित हुए[३] वह इस क्षेत्र में बिल्कुल नवीन थे और आप की उज्ज्वल कीर्ति के स्तंभ हुए। इन 'नोट्स' का पहला अंश कवि की तिथियों की गणना से संबंध रखता है। गणना परिश्रम-पूर्वक ज्योतिष के मान्य सिद्धांतों के अनुसार की गई है। इस जाँच में आप को जो सहायता स्वर्गीय महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी से मिली थी उसे कृतज्ञता-पूर्वक आप ने

---

[१] अरीशे खंड, पृ० १७९—२१० [२] पृ० ४७—५७

[३] पृ० ८९, १२२, १९७, २२५, और २५३

स्वीकार किया है। दूसरा अंश कवि की कृतियों से संबंध रखता है। इस में पहले कवि की कृतियों की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है जिस मे छः छोटे और छः बड़े ग्रंथो को कवि की रचना माना गया है, और शेष उन की रचना कहे जाने वाले ग्रंथों को अस्वीकार किया गया है। इस के अनन्तर कृतियों का सविस्तर अलग-अलग परिचय दिया गया है। तीसरे खंड मे कवि के जीवन-वृत्त से संबंध रखने वाले कथानकों और जनश्रुतियो का संग्रह है। अंत मे आपने सुधाकर द्विवेदी जी तथा बाबू रामदीन सिंह के प्रति आभार-प्रदर्शन किया है जिन की सहायता से आपने यह 'नोट्स' प्रस्तुत किए है। इस अन्वेषण की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। इतनी वैज्ञानिक रीति से हिंदी के किसी कवि अथवा लेखक के संबंध में आज तक अन्वेषण किया गया है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। सन् १८९८ की एशियाटिक सोसाइटी अव् बेंगाल की कार्यवाही मे आप का एक नोट "तुलसीदास के कवित्त रामायण की रचना-तिथि" शीर्षक निकला[1] जिस में आप ने 'कवितावली' के महामारी तथा उस से मिली-जुली जान पड़ने वाली घटनाओं से संबंध रखने वाले छंदो का आश्रय लेते हुए अपना यह विचार उपस्थित किया कि उन छंदो मे उल्लिखित महामारी प्लेग या ताऊन थी। इस विषय में आप का दूसरा नोट "तुलसीदास और बनारस में प्लेग के विषय मे दूसरा नोट" शीर्षक फिर उसी वर्ष और उसी पत्रिका मे प्रकाशित हुआ[2] जिस में आप ने महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी के इस अनुमान का उल्लेख किया कि बाहुपीड़ा जिस से कवि अपने जीवन के अंतिम अंश मे व्यथित हुआ था संभवतः प्लेग की गिल्टी थी और उसी से उस का देहांत भी हुआ। सन् १९०३ में आप का "तुलसीदास—कवि और सुधारक" नामक सुंदर पर संक्षिप्त लेख रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में प्रकाशित हुआ।[3] उस मे कवि के देहांत के संबंध में आप ने जो उल्लेख किया उस से यह जान पड़ता है कि इस के पूर्व प्लेग से कवि के देहांत का जो आप का विचार हो रहा था वह आप को पीछे ठीक नहीं जँचा और उसे आप ने छोड़ दिया।[4] सन् १९०७ मे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल मे आप का "आधुनिक हिंदू धर्म और नेस्टोरियनों के प्रति उस का ऋण" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ[5] जिस में आप ने

---

[1] पृ० ११३–११५ [2] पृ० १४७–४८ [3] पृ० ४४९ और आगे। [4] पृ० ४५० [5] १९०७ पृ० ३११ और आगे।

यह दिखाने का प्रयत्न किया कि भारतीय भक्ति-मार्ग की एक प्रकार से उत्पत्ति का श्रेय 'नेस्टोरियन' नामधारी उन ईसाई मिशनरियों को है जो किसी समय दक्षिण भारत मे आकर बसे थे। आप के इस विचार का प्रतिवाद अनेक तर्कपूर्ण युक्तियो से भारत और योरप के विद्वानो ने किया[1] पर आप का विचार इन प्रतिवादो से कदाचित् अधिक प्रभावित नही हुआ, क्योंकि सन् १९१२ में प्रकाशित होने वाले 'इंपीरियल गजेटियर' के लिए तुलसीदास के संबंध मे आप ने जो वृत्त लिखा[2] उस मे आप के इस विचार की प्रतिच्छाया स्पष्ट है। सन् १९१३ में आप का एक लेख "क्या तुलसी-दास की रामायण एक अनुवाद ग्रंथ है?" शीर्षक रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल मे प्रकाशित हुआ[3] जिस में आप ने बड़े युक्ति-पूर्वक बलिया से प्रकाशित होने वाले एक संस्कृत रामायण को 'मानस' का मूल और 'मानस' को उस का अनुवाद कहे जाने का निराकरण किया। हमारे कवि के संबंध मे आप का अंतिम उल्लेख-योग्य लेख जहा तक मुझे ज्ञात है, सन् १९२१ मे 'एनसाइक्लोपीडिया अव् रेलीजन ऐंड एथिक्स' मे निकला।[4] यह लेख संक्षेप मे पर विशद रूप से तुलसीदास के संबंध में आप के विचारो का परिचय देता है, और पढ़ने योग्य है। तुलसीदास के अध्ययन मे श्री ग्रियर्सन एक युग के विधायक हुए। सन् १८८६ से ४० वर्ष पीछे तक कवि की जीवनी और कृतियो के संबंध में जो कुछ भी लिखा गया उस के अधिकांश का श्रेय आप के कार्य को ही मिलना चाहिए इस में संदेह नहीं।

एक लेख पादरी ई० ग्रीव्स साहब का सन् १८९९ की 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' मे "गुसाई तुलसीदास का जीवन-चरित्र" शीर्षक प्रकाशित हुआ जो 'तुलसी-ग्रंथावली' तीसरे खंड मे पुनर्मुद्रित हुआ। लेख छोटा है और अच्छा है पर कोई नवीनता उस मे नही है। आप ने अंग्रेजी भाषा में हिंदी-साहित्य का जो इतिहास लिखा है उस में हमारे कवि के संबंध में जो कुछ लिखा है वह यद्यपि और भी संक्षेप मे है, पर और भी अच्छे ढंग से लिखा गया है।

तुलसीदास के अध्ययन के इतिहास में एक उल्लेख-योग्य तिथि सन् १९०२ भी

---

[1] 'जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी', पृ० ४७७ और आगे। [2] जिल्द २, पृ० ४१८ [3] पृ० १३३ [4] जिल्द १२ पृ० ४६९

है, जिस मे इंडियन प्रेस के मालिक श्री चिंतामणि घोष ने हिंदी के पाँच प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा संपादित 'रामचरितमानस' प्रकाशित किया। संपादक थे महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू श्यामसुंदर दास (अब रायबहादुर), बाबू कार्तिक प्रसाद और बाबू अमीर सिंह। प्रारंभ में इस संस्करण में एक बड़ी सी भूमिका है जिस में कवि के जीवन-वृत्त तथा उस की कृतियों पर विचार किया गया है। पर यह भूमिका अधिकांश ग्रियर्सन साहब की खोजों के आधार पर लिखी गई है। संपादन अवश्य परिश्रम से किया गया जान पड़ता है, पर अपने ढंग का पहला प्रयास होने के कारण इस मे त्रुटियां भी अनेक हैं इस में संदेह नही। लिपि, उच्चारण और व्याकरण से संबंध रखने वाली त्रुटियो पर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक होगा। यह त्रुटियां किसी विस्तृत जाँच के बाद नहीं, साधारण तौर पर देखने से ही मिली है, और केवल उदाहरण के लिए नीचे रक्खी जाती हैं :—

'व' और 'ब' मे कही-कही भ्रम हो गया है : जैसे 'अवध' 'अबध' रूप मे भी मिलता है।

और कही-कही 'ब' का 'व' हो गया है. जैसे बरूथ, बसन, बस्तु, बायस, बरियहि, बामिन्ह, बिचारू, बिचित्र, बृषकेतु, बृष्टि, बेगि, बेषा, बैद्य, ब्यसन, और ब्यापक मे। यह अवश्य संभव है कि 'व' को 'ब' का रूप जान-बूझ कर दिया गया हो।

'ए' रूप साधारण है पर 'ये' भी मिलता है।

'अउर' रूप साधारण है पर कहीं-कही 'और' भी मिलता है।

'कै' रूप साधारण है पर 'कइ' रूप भी मिलता है।

'नि' और 'न्हि दोनों रूप बहुवचनो मे मिलते हैं।

'कहहुँ' और 'कहउँ', और इसी प्रकार 'कहहु' और 'कहउ' दोनों रूप मिलते हैं।

'कहेहु' और 'कहेउ', 'किएहु' और 'कियेहु', 'कीन्हेहु' और 'कीन्हेउ' भी समान रूप से पुस्तक भर में मिलते है।

यदि इस प्रकार की त्रुटियां न होती तो यह संपादन कदाचित् उस से भी अधिक महत्वपूर्ण होता जो पीछे किया गया—मेरा आशय है उस संस्करण से जो 'तुलसी-ग्रंथावली' में प्रकाशित हुआ जिस के विषय में हम आगे कहेंगे।

स्वर्गीय लाला सीताराम की सेवाएं भी उल्लेखनीय हैं गोस्वामी जी के आप

बडे भक्त थे। सन् १९०८ में राजापुर के अयोध्याकांड की बड़े परिश्रम से प्रतिलिपि करा कर आप ने प्रकाशित की। सन् १९१४ के रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल मे आप का एक विचारपूर्ण निबंध "तुलसीदास के रामायण की मौलिकता" शीर्षक प्रकाशित हुआ। इन के अतिरिक्त इस क्षेत्र में लेखों तथा भूमिकाओ आदि[1] के रूप में कुछ और भी सेवाएं आप ने की जो प्रशंसनीय है।

वयोवृद्ध मिश्रबंधुओं की सेवा इस क्षेत्र मे भी, जैसे अन्य क्षेत्रों में, विशेष उल्लेखनीय है। सन् १९१० में आप लोगों का 'हिंदी-नवरत्न' नामक सुप्रसिद्ध समालोचनात्मक ग्रथ प्रकाशित हुआ। उस समय तक हमारे कवि के जीवन-वृत्त और उस की कृतियो के सबध में बहुत-कुछ लिखा जा चुका था, फिर भी नजदीक से उस की रचनाओं का अध्ययन करना और काव्य-संबंधी उस के सिद्धातों का निश्चय करना रह ही गया था। यह कार्य वयोवृद्ध मिश्रबंधुओं ने किया। इस उपेक्षित पक्ष पर स्वतंत्रता-पूर्वक अपने विचार उपस्थित कर आप लोगों ने एक प्रकार से तुलसीदास की समालोचना की नींव डाली। 'हिंदी-नवरत्न' मे आप लोगों ने हमारे कवि को न केवल हिंदी साहित्य पर संसार-साहित्य के कवियो में सर्वोच्च स्थान दिया। कवि के जीवन-वृत्त को १० पृष्ठों में कह कर लगभग ५० पृष्ठों में उस की कृतियों का परिचय दिया और फिर लगभग ६५ पृष्ठो मे कवि के काव्य-कौशल तथा उस के सिद्धातो पर विचार किया। जिन प्रमुख विशेषताओं के कारण आप लोगो ने हमारे कवि को इतना ऊँचा स्थान दिया उन का उल्लेख आवश्यक होगा। "कवि की कविता" का परिचय देते हुए आप लोगों ने उस के गुणों और दोषों पर अलग-अलग विचार किया है। जिन गुणो का आप लोगों ने उल्लेख किया है उन की संख्या २१ है और जिन दोपों का आप लोगो ने उल्लेख किया है उन की संख्या १६ है। अत्यंत संक्षेप मे गुण क्रमश: इस प्रकार है:—

(१) कथा-वर्णन मे गोस्वामी जी कोई बात यकबारगी नहीं कह देते बल्कि आने वाली बड़ी-बड़ी घटनाओं की सूचना पहले ही से देते रहते हैं।

---

[1] 'माधुरी', जिल्द ६, खंड २, पृ० २९०, 'गोस्वामी तुलसीदास और रामचरित्र' तथा वही, जिल्द १२, खंड २, पृ० ३६४, 'मानस की रचना का स्थान और समय'; तथा '——— फ्राम हिंदी लिटरेचर' भाग ३ पृ० ८ और आगे।

(२) पात्रों के उचित अथवा अनुचित आचरणो पर अपनी सम्मति प्रकट करते चलते हैं।

(३) रोचकता-रहित तैयारियों में समय नष्ट न कर मुख्य कथा पर तुरत पहुँचा देते हैं।

(४) अमुक उवाच कहे बिना भी बात कह देते हैं पर यह विदित हो जाता है कि बात किस ने कही।

(५) बड़ी-बड़ी घटनाओ मे आकाशवाणी करा देते हैं।

(६) निंद्य मनुष्यों पर सदैव बड़ा क्रोध प्रकट करते हैं।

(७) कथा में घटा-बढ़ी करने के संबंध में कवि ने स्वयं लिख दिया है—"नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं" आदि।

(८) समय तथा स्थान का परिमाण कहीं-कहीं बहुत बढ़ा कर लिखा है।

(९) युद्ध-वर्णन मे इस बात का ध्यान रक्खा है कि शिथिलता कहीं न आने पावे।

(१०) अपने नायक तथा उपनायक के शीलगुण का एक रस निर्वाह किया है।

(११) विप्रगण की महिमा का सदा गान किया है, और यह कहा है कि गुणी अथवा गुणहीन सब प्रकार के ब्राह्मण पूज्य हैं।

(१२) इंद्र तक देवताओ को मनुष्यों से कुछ ही बड़ा और ऋषि-मुनियों से कम माना है।

(१३) राम के अतिरिक्त सभी देवताओ का पूजन केवल इसी लिए किया है कि उन के सहारे राम की भक्ति प्राप्त और दृढ़ हो।

(१४) सगुण ब्रह्म की उपासना की है।

(१५) रामचंद्र को परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप माना है पर कहीं-कहीं उन को विष्णु का अवतार भी कह दिया है।

(१६) राम के लिए अकसर सिफारिशी बाते कही है।

(१७) भक्ति को ज्ञान आदि से ऊँचा कहा है।

(१८) माया दो प्रकार की कही है, एक राक्षसो की दूसरी परमेश्वर की।

१९ तपस्या को भी बड़ा पद दिया है

(२०) स्त्रियों की हर जगह निंदा की है, और भाग्य पर विश्वास प्रकट किया है। और

(२१) दीनता और निरभिमानता के साथ अपनी रचना के परमोत्तम होने का विश्वास भी प्रकट किया है।

दोष साधारण हैं, उन्हें दोष नही त्रुटियां ही कहना ठीक होगा, उन के उल्लेख की यहां आवश्यकता नही है। इस के बाद "गोस्वामी जी के मत" का शीर्षक है जिस की संख्या १५ है। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

(१) कवि का मत है कि कविता टेढ़ी और निंद्य है पर यदि उस मे रामकथा गाई जाय तो सत्संग से वह भी पावन हो जाती है।

(२) कवि की दृष्टि इतनी पैनी थी कि कोई बात उस के देखने और मनन करने से छूटती नही थी।

(३) कवि ने लोगों का वार्तालाप बड़ी उत्तमता से वर्णित किया है।

(४) नायकों का शीलगुण दिखाने के लिए कवि ने उपनायकों की त्रुटियां खूब ही दिखला दी हैं।

(५) कवि ने बड़े-बड़े एवं बड़े ही सुंदर रूपक कहे हैं।

(६) उस ने रामचंद्र के अनेक नखशिख कहे हैं और वे एक से एक बढ़िया है।

(७) वह रामचंद्र के संबंध में कोई भूल कर भी अनुचित संदेह करने वाले को क्षमा नहीं कर सकता।

(८) यद्यपि उसे हँसी पसंद न थी तो भी उस ने कहीं-कहीं प्रच्छन्न प्रहसन को जगह दे ही दी है।

(९) उस के सैकड़ों पद कहावत के रूप में प्रचलित हो गए है।

(१०) कई प्रकार की भाषाओं में उस ने सफलता-पूर्वक कविता की है।

(११) स्थान और विषय के अनुसार समुचित शब्दों का प्रयोग तो कोई उस से सीख ले।

(१२) उस ने अनुप्रास तथा यमक को बहुत आदर नहीं दिया है।

(१३) उस ने बहुत स्वतंत्रता के साथ सब प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है।

(१४) हर्ष या उमंग के समय प्रायः उस ने छंद लिखे हैं, यद्यपि वे दोहे-चौपाइयों से प्रायः शिथिल हैं।

(१५) "महात्मा तुलसीदास सरीखे महाकवि के गुणों का समुचित वर्णन करना हमारी शिथिल लेखनी और स्वल्पशक्ति से परे है। इन की रचनाओं के प्रति पृष्ठ, प्रति पंक्ति, बल्कि प्रति शब्द में अद्वितीय चमत्कार देख पड़ता है।"

यहां पर वयोवृद्ध समालोचकों द्वारा किया हुआ "गोस्वामी जी के मत" का विवेचन समाप्त होता है। इस विवेचन के अनंतर 'मानस' के २४ स्थलों की खूबिया "स्फुट गुणों" के रूप में दिखाई हैं। तदनंतर कवि के गुणों और दोषों को सामूहिक रूप मे तुलना की दृष्टि से देख कर गुणो के आधिक्य का निर्देश किया जाता है और साहित्य मे उस के सर्वोच्च स्थान पाने का उल्लेख किया जाता है। 'हिंदी-नवरत्न' में समाविष्ट हमारे कवि के विवेचनात्मक अध्ययन का यह एक सक्षिप्त खाका है।

तुलसीदास के समालोचनात्मक अध्ययन का सूत्रपात करनेवाला यह विवेचन कितना युक्तियुक्त और गहरा है यह प्रकट ही हो गया होगा। वस्तुतः आज भी इस ढग का दूसरा विवेचन हमारे सामने नही है और यही कारण है कि इस का इतना मान हुआ कि ग्रंथ के चार संस्करण हो चुके और पाचवां शीघ्र ही होने जा रहा है। तुलसीदास के अध्ययन वाले कुल साहित्य में यह सौभाग्य अभी तक किसी अन्य विवेचन को नही प्राप्त हुआ है।

सन् १९११ में एक इटालियन विद्वान् एल० पी० टेसीटरी का 'ज्योर्नेल डेला सो-साइटा एसियाटिका इटालियाना' नामक इटालियन पत्रिका में "इल रामचरितमानस ए इल रामायण" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ[१] जो पुनः अनूदित होकर 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' मे १९१२ तथा १९१३ में निकला।[२] इस लेख में विज्ञ लेखक ने 'रामचरित-मानस' की कथा-वस्तु की तुलना विस्तार से वाल्मीकि कृत 'रामायण' की 'कथा-वस्तु' से की है, और जो अंतर इस तुलना में उसे दिखाई पड़ा है उस के सबंध मे कल्पना द्वारा

---

[१] जिल्द २९। देखिए 'जरनल अव् दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी', पृ० ७९४-८

[२] १९१२, पृ० २७३ और आगे; तथा १९१३, पृ० १ और आगे।

कुछ समाधान भी उस ने पेश किए हैं। जहाँ तक तुलना का प्रश्न है वहां तक तो लेखक का परिश्रम व्यर्थ नहीं गया क्योंकि इस लेख से एक बात कम से कम अवश्य स्पष्ट हो गई कि वाल्मीकि का 'रामायण' कथा के ढाँचे के लिए हमारे कवि ने अपने सामने नहीं रक्खा था पर जहाँ तक लेखक के उपस्थित किए हुए समाधानों का प्रश्न है वे नितांत व्यर्थ गए, और उन्हीं के साथ उन पर किया हुआ परिश्रम भी व्यर्थ गया। लेखक ने यद्यपि इस बात का अपने लेख में उल्लेख किया है कि हमारे कवि के ऊपर अन्य ग्रंथों के साथ अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव पड़ा है और उस ने उस से भी अपने काम की बातें ली हैं पर जान ऐसा पड़ता है कि कभी उस ने तुलनात्मक दृष्टि से 'अध्यात्म रामायण' का अध्ययन नहीं किया था। यदि वस्तुतः उस ने ऐसा किया होता तो उसे ज्ञात होता कि वाल्मीकि के 'रामायण' की अपेक्षा वह हमारे कवि की रचना के कहीं अधिक निकट है। फिर भी जिस परिश्रम के साथ उस ने यह कार्य किया है वह सराहनीय है।

'हिंदी-नवरत्न' के प्रकाशित होने के लगभग दो वर्ष बाद सन् १९१२ की 'मर्यादा' पत्रिका में बाबू इंद्रदेवनारायण का एक नोट किन्हीं रघुबरदास लिखित 'तुलसीचरित' के संबंध में प्रकाशित हुआ। इस 'चरित' की छंद-संख्या उस में १३४९६२ बताई गई और उस से कुछ अंश उद्धृत भी किया गया। इस अंश में कवि का जितना जीवन-वृत्त आता है उस में अन्य बातों के साथ यह भी लिखा गया है कि कवि के पूर्वज धनाढ्य मारवाड़ियों के गुरु थे और उन से उन लोगों को बड़ा धन मिला करता था, और हमारे कवि की तीन शादियाँ हुई थीं, अंतिम में उस के पिता को दहेज में ६०००) मिले थे। ऐसी बातों पर विश्वास करना उस समय बड़ा कठिन हो जाता है जब हम स्वतः किए हुए कवि के अपने प्रारंभिक जीवन-संबंधी उल्लेख पढ़ते हैं। तुलसी-साहित्य के प्रेमियों के दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ अभी तक पूरा प्रकाशित नहीं हुआ। यदि यह प्रकाशित हो जाता तो उत्तम था, किंतु जितना अंश प्रकाश में आया है उस से यही अंदाजा लगता है कि इस की प्रामाणिकता बहुत संदिग्ध होगी।

सन् १९१६ में स्वर्गीय श्री शिवनंदनसहाय का 'श्री गोस्वामी तुलसीदास जी' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में क्रमशः कवि के जीवन और उस की कला पर विचार करने वाले दो खंड हैं। प्रथम खंड में लेखक ने अपने समय तक प्राप्त समस्त जीवन-

वृत्त संबंधी सामग्री पर परिश्रम और विस्तारपूर्वक विचार किया है, किंतु इस खंड को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर कुछ ऐसा लगता है कि जनश्रुतियों को उन की योग्यता से अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि यह सही है कि उस समय तक जनश्रुतियों के अतिरिक्त कवि के जीवनवृत्त-संबंधी सामग्री बहुत कम थी, फिर भी यह आवश्यक नहीं था कि जनश्रुतियों को इतना महत्व दिया जाता जितना इस ग्रंथ में दिया गया है। द्वितीय खंड में लेखक ने कवि की कला पर जो विचार किया है वह अधिकतर ग्रंथ-ग्रंथ का अलग-अलग हुआ है। लेखक ने सब से पहले 'मानस' को लिया है। कुछ पृष्ठों में उस के रोचक स्थलों का निर्देश कर अन्य विद्वानों द्वारा उस में दिखाई गई त्रुटियों का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। यहां भी लेखक की कुछ ज्यादती जान पड़ती है। तदनंतर क्रमश 'रामायण में नवरस', 'रामायण में रूपक', 'रामायण में राजनीति', 'रामायण के पात्र-वर्ग', (चरित्रों से शिक्षा क्या मिलती है यही इस अध्याय का मुख्य विषय है), 'रामायण का आदर और प्रचार', 'क्षेपक और काट-छाँट', 'रामायणके संस्करण तथा टीकाएं' शीर्षक अध्याय आते हैं जिन के विषय स्पष्ट हैं। इस के बाद के कुछ अध्यायों में कवि के अन्य कृतियों के संबंध में कहा जाता है। उस के भी अनंतर 'कवि की संस्कृतज्ञता' (उस ने किन-किन ग्रंथों से क्या लिया) और 'कवि के दार्शनिक विचारों' का परिचय दिया जाता है, और 'वाल्मीकि' तथा 'अध्यात्मरामायण' से 'मानस' की कथा-वस्तु की तुलना करके ग्रंथ समाप्त किया जाता है। समालोचना बहुत-कुछ बहिरंग है अंतरंग नहीं। फिर भी ग्रंथ दो दृष्टियों से उपादेय है, एक तो इस के पहले कवि के संबंध में जो कुछ लिखा गया था इस ग्रंथ में उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है, और दूसरे 'मानस' में अपने पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथों की जो प्रतिच्छाया मिलती है उस की ओर स्पष्ट रूप से पहले-पहल इसी ग्रंथ में तुलसीदास के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। कहीं-कहीं लेखक ने तुलसीदास की तुलना शेक्सपीयर से करके अपने कवि को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का यत्न किया है, वह अवश्य बहुत युक्तियुक्त नहीं जँचता।

पादरी जे० एन० कारपेन्टर डी० डी० की एक रचना 'दि थियालोजी अव् तुलसीदास' भी यहां पर उल्लेखनीय है। यह सन् १९१८ में प्रकाशित हुई। इस में कवि के धार्मिक सिद्धांतों का विवेचन करने का उद्योग किया गया है। विवेचन की प्रणाली यह है कि 'मानस' से अध्यात्मिक स्थलों को छाँट-छाँट कर उन्हें भिन्न भिन्न शीर्षकों में बाँट

दिया गया है और उन से फिर कवि के सिद्धांतों के संबंध में निष्कर्ष निकाला गया है। प्रयत्न सराहनीय है, क्योंकि बड़े परिश्रम से लेखक ने सामग्री इकट्ठा की है, पर खटकने वाली बातें भी दो एक हैं जिन के संबंध में यहां पर कहना आवश्यक है। पहली खटकने वाली बात यह है कि पुस्तक मिशनरी—ईसाई मिशनरी—दृष्टिकोण से लिखी गई है। ऐसा होना अनिवार्य भी था क्योंकि यह डी० डी० की धर्म-विषयक डिगरी के लिए 'थीसिस' के रूप में लिखी गई थी। पर इस से जो एक दूसरी बात पैदा हो जाती है वह विचारणीय है। इस से लेखक का दृष्टिकोण ही विकृत हो जाता है। दूसरी बात जो खटकने वाली है वह यह है कि विषय इस का 'तुलसीदास के आध्यात्मिक विचार' होते हुए भी लेखक ने केवल 'मानस' का अवलंबन कर यह निबंध लिखा है, कवि की अन्य कृतियों की सर्वथा उपेक्षा की है। और तीसरी बात जो विचारणीय है यह है कि लेखक में आलोचनात्मक दृष्टिकोण की कुछ कमी ज्ञात होती है—सारा काम जैसे किसी संग्रह-कर्ता का किया हुआ हो ऐसा जान पड़ता है। अन्यथा पुस्तक उपादेय है।

सन् १९२३ इस अध्ययन के इतिहास की एक विशेष उल्लेख-योग्य तिथि है। इस वर्ष नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने 'तुलसी-ग्रंथावली' के प्रकाशन का आयोजन किया। पहले खंड में उस ने 'मानस', दूसरे में उस ने कवि के मानसेतर ग्रंथ, और तीसरे में कवि के जीवन तथा काव्य के संबंध में विचारपूर्ण निबंध प्रकाशित किए। इस प्रकाशन से हमारे कवि का अध्ययन जिस वेग से आगे बढ़ा वह सर्वथा स्मरणीय है। 'ग्रंथावली' का संपादन-भार साहित्य के तीन माननीय विद्वानों पर रक्खा गया था. श्री पंडित रामचंद्र शुक्ल, स्वर्गीय लाला भगवानदीन, और बाबू ब्रजरत्नदास। जो कार्य फलतः इस संपादक-मंडल ने किया उस पर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। 'ग्रंथावली' के इस प्रयास के तीन पक्ष हैं: रचनाओं का पाठपक्ष, कवि का जीवनवृत-पक्ष, और उस की कला और विचारों का विवेचन-पक्ष। इन तीनों पर क्रमशः हम विचार करेंगे।

रचनाओं में सब से प्रथम हमारे सामने 'रामचरितमानस' आता है। उस के इस संस्करण में एक विशेषता दिखाई पड़ती है जो साधारणतः अन्य संस्करणों में नहीं मिलती। उस के इस संस्करण में कई स्थलों पर कुछ ऐसे दोहे और चौपाइयां मिलती हैं जो प्रक्षिप्त जान पड़ती हैं। प्रक्षिप्त जान पड़ने का कारण केवल यह नहीं है कि वे साधारणतः छपी या हस्तलिखित प्रतियों में नहीं मिलतीं. बल्कि यह है कि उन में कवि

की वह शैली और विचार-प्रणाली नहीं मिलती जो ग्रंथ भर में सर्वत्र मिलती है। दूसरी बात जो उन के प्रक्षिप्त होने की इस संभावना की पुष्टि करती है यह है कि ये दोहे और चौपाइयां अपने अपने प्रकरणों के अनिवार्य अंग नहीं हैं अर्थात् इन के न रहने पर भी विचारधारा को कोई क्षति नहीं पहुँचती। और तीसरी बात जो इन के विरोध में पड़ती है वह यह है कि कभी-कभी इन में व्यक्त की हुई वस्तु हमारे उस संस्कार को धक्का देती हुई जान पड़ती है जो कवि की कृतियों को पढ़ने के उपरांत बनता है। उदाहरण के लिए विराध-वध प्रकरण की नीचे लिखी अर्द्धालियों को आप लें :—

तुरतहिं सीतहिं सो लै गयऊ। राम हृदय कछु बिसमै भयऊ।
समुझा हृदय कैकेयी करनी। कहा अनुज सन बहु बिधि बरनी।

मुझे तो यह विश्वास नहीं पड़ता कि तुलसीदास के राम ने कभी भी इस तरह की बात सोची होगी—विशेष करके चित्रकूट की घटनाओं के बाद—और पुनः उसे अपने भाई (लक्ष्मण) से "बहु बिधि बरनन करके" कहा होगा। इस प्रकार घुसी हुई चौपाइयो आदि की संख्या इस संस्करण में बहुत है। उदाहरणार्थ अरण्यकांड दो० १३, १४, १५, १६, १९ सो० २१ दो० २३, २४, २५, २९, ३०, ४६, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३ की कई अर्द्धालियां, दोहे और छंद। यह तो हुआ वस्तु की दृष्टि से। भाषा की दृष्टि से भी पाठ त्रुटिपूर्ण है। तीसरे खंड की भूमिका में यह दावा किया गया है कि अयोध्या-कांड का पाठ नमूने के लिए ज्यों का त्यों राजापुर का ही रक्खा गया है। इस दावे की जाँच के लिए नीचे तीन दोहों और उन की अर्द्धालियों का पाठभेद नीचे रक्खा जाता है। ये विशेष दोहे केवल इस दृष्टिकोण से चुने गए हैं कि इन के चित्र प्रकाशित साहित्य में सुलभ हैं :[1]

		राजापुर की प्रति का पाठ		सभा की प्रति का पाठ
दो० ५६ अर्द्धाली १	..	आयेसु	..	आयसु
,, ४	..	हिय, हरांसू	..	हिय, हरासू
,, ५	.	जौ	..	जो

[1] 'वेन अंतर्राष्ट्रीय ओरियंटल कांग्रेस की रिपोर्ट' और 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदोस्तान' जिन के हवाले ऊपर दिए जा चुके हैं

दोहा	..	एह, करउँ, सनेहु	..	यह, करौं, सनेह
दो० ५७ अर्द्धाली १	..	राखहुँ	..	राखहु
,, ७	..	जाहिं	..	जाइ
दो० ५८ अर्द्धाली २	..	रूपरासि	..	रूपराशि
,, ४	..	करतबु	..	करतब

भाषा-शास्त्रियों की दृष्टि से इस प्रकार के अंतर कितने महत्वपूर्ण हैं इस का अनुमान साधारणत: लोग नहीं कर सकते। जिस पाठ के लिए संपादकों ने अपने सामने यह प्रतिबंध रक्खा था कि वह ज्यों का त्यों राजापुर का ही रहेगा उस अयोध्याकांड के पाठ की यह दशा है, तो और कांडों के पाठ की जिन के संबंध में संपादकों के सामने कोई प्रतिबंध नहीं था क्या दशा होगी यह कहना कठिन है। पाठभेदों का उल्लेख न होना साधारणत संपादकों को इस संबंध में और स्वतंत्रता देता है। फलत: इस संस्करण के पाठ के संबंध में और क्या कहा जाय कुछ ठीक समझ नहीं पड़ता। मानसेतर ग्रंथों के संपादन की समस्या और भी विचित्र है। 'मानस' के संपादन के संबंध में तो भला इतना भी कहा गया कि उस के पाठ के लिए किन प्रतियों का आश्रय लिया गया है, और किन सिद्धांतों को ध्यान में रक्खा गया है, इन बेचारे ग्रंथों के संबंध में तो यह भी कहने की आवश्यकता नहीं समझी गई। मैं नहीं कह सकता कि मेरा अनुमान कहां तक सही है पर जान यह अवश्य पड़ता है कि किसी छपे संस्करण को लेकर और उस में स्वेच्छापूर्वक कुछ संशोधन कर, बिना हस्तलिखित और प्राचीन प्रतियों की सहायता के इन ग्रंथों को प्रकाशित कर दिया गया। इन के संपादन की जो समस्या है उस पर इसी निबंध में पीछे विचार किया जायगा। अभी हमें इतना ही विचार करने की आवश्यकता है कि इस संपादन पर निर्भर रह कर अपना कुछ अमूल्य समय देने के बाद यदि किसी गंभीर अन्वेषी को पश्चात्ताप करना पड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं। फिर भी जैसा हम पहले कह चुके हैं हमें यह बात भूलनी न चाहिए कि तुलसीदास के अध्ययन में इस संस्करण ने बड़ा भारी सहयोग दिया है।

'ग्रंथावली' में प्रकाशित जीवन-वृत्त के संबंध में इतना ही कहना कदाचित् पर्याप्त होगा कि वह साधारण हेरफेर के साथ सन् १९०२ में प्रकाशित 'मानस' की भूमिका में दिए हुए जीवन-वृत्त का रिप्रिंट मात्र है।

'ग्रंथावली' का तीसरा पक्ष अवश्य मूल्यवान है—वह हमारे तुलसी-साहित्य

की स्थायी संपत्ति है---मेरा तात्पर्य यहां उस आलोचनात्मक सामग्री से है जो 'ग्रंथावली' के तीसरे खंड में संगृहीत है। इस के लेखक हैं पंडित रामचंद्र शुक्ल, पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, सर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन, पादरी एडविन ग्रीव्स, पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पंडित रामचंद्र दुबे, पंडित बलदेव उपाध्याय, बाबू राजबहादुर लमगोड़ा, श्री सुखराम चौबे और श्री राजेंद्रसिंह ब्यौहार, तथा पंडित कृष्णबिहारी मिश्र। सर जॉर्ज ग्रियर्सन का जो लेख इस में दिया गया है वह 'इनसाइक्लोपीडिया अव् रेलिजन ऐंड एथिक्स' वाले लेख का अनुवाद मात्र है, उस के संबंध में हम पहले विचार कर ही चुके हैं। इसी प्रकार पादरी ग्रीव्स का जो लेख यहां दिया गया है वह 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में सन् १८९९ में प्रकाशित लेख का रिप्रिंट मात्र है, और उस के संबंध में भी हम विचार कर चुके हैं। शेष पर हम यहां विचार करेंगे।

वयोवृद्ध शुक्ल जी की समालोचना अब अलग संशोधित और कुछ परिवर्धित रूप में प्रकाशित हुई है, इस लिए उस के इस पिछले रूप को लेकर ही विचार करना ठीक होगा। इस समालोचना के दो खंड हैं, पहला कवि के आध्यात्मिक जगत से संबंध रखता है, और दूसरा उस के काव्य-जगत से। यह दोनों खंड यद्यपि लेखक द्वारा अलग किए हुए नहीं हैं, पर विचार की सुविधा के लिए यहां अलग कर लिए गए हैं। यह दोनों खंड क्रमशः कई शीर्षकों में विभक्त हैं। हम इन शीर्षकों के नीचे उन के विषयों के संबंध में वयोवृद्ध समालोचक द्वारा प्रतिपादित कुछ सिद्धांत पाते हैं जिन का संक्षिप्त उल्लेख यहां आवश्यक होगा। पहले खंड का पहला शीर्षक है "तुलसी की भक्ति पद्धति" जिस के अंतर्गत विचार करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "शुद्ध भारतीय भक्ति-मार्ग का रहस्यवाद (पाश्चात्य सूफ़ी धर्म आदि ?) से कोई संबंध नहीं है, और तुलसी-दास इसी (शुद्ध ?) भारतीय भक्तिमार्ग के अनुयायी थे, अतः उन की रचना को रहस्य-वाद कहना हिंदुस्तान को अरब या विलायत कहना है।" दूसरा शीर्षक है "प्रकृति और स्वभाव" जिस के नीचे कवि के प्रेम के उच्च आदर्श, उस के दैन्य और विनय, उस की लोकसंग्रह की भावना, अंतःकरण की सरलता, सदाचार आदि संबंधी विशेषताओं पर विचार किया गया है। तीसरा शीर्षक है "लोकधर्म" जिस में इस बात पर जोर दिया गया है कि धार्मिक विशृंखलता के एक युग में लोकसंग्रह की भावना से प्रेरित होकर हमारे कवि ने धर्म के उस स्वरूप का प्रचार किया जो पूर्ण है लोकनीति और नामक

अगले शीर्षक के नीचे कवि के वर्णाश्रम धर्म संबंधी विचारों का समर्थन किया गया है। "शील साधना और भक्ति" नामक शीर्षक के नीचे कवि की उपासना के आलंबन राम में शील और सदाचार की पराकाष्ठा और लोक-मर्यादा के संरक्षण की प्रवृत्ति देखी गई है। इस आध्यात्मिक खंड का अंतिम शीर्षक है "ज्ञान और भक्ति का समन्वय" जिस में दिखाया यह गया है कि कवि में ज्ञान और भक्ति का समन्वय मिलता है पर उस की वाणी में भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ही ढूँढ़ना अधिक फलदायक होगा ज्ञानमार्ग के सिद्धांतों को ढूँढना नहीं। इस शीर्षक के अनंतर समालोचना का दूसरा खंड प्रारंभ होता है जिस का पहला शीर्षक है "तुलसी की काव्य-पद्धति"। इस शीर्षक में कहा गया है कि कवि की रुचि काव्य के अतिरंजित अथवा प्रगीत स्वरूप की ओर नहीं थी और न कुतूहल और मनोरंजन-उत्पादन की ओर, उस की रुचि थी यथार्थ चित्रण की ओर; दूसरी बात यह है कि वह हमारे सामने कवि के अतिरिक्त उपदेष्टा के रूप में भी आता है, तीसरी बात यह है कि उस ने वीरगाथाकाल, और प्रेमगाथाकाल की काव्य-प्रणालियों से भी अपनी काव्य-पद्धति को धनवान् बनाया है। दूसरा शीर्षक है "तुलसी की भावुकता" जिस के नीचे यह दिखाने का उद्योग किया गया है कि कवि ने रामकथा के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान कर उन का विशद और विस्तृत वर्णन किया है। तीसरा शीर्षक है "शील निरूपण और चरित्र-चित्रण" जिस के नीचे कथा के विभिन्न प्रमुख पात्रों के चरित्रों का अध्ययन किया गया है। अगला शीर्षक है "बाह्य दृश्य चित्रण", जिस के नीचे यह दिखाया गया है कि यद्यपि कवि ने संश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण की प्राचीन पद्धति का आश्रय कम लिया है पर उस के चित्रों में असंगति, सुरुचि का अभाव, चमत्कार-प्रियता, अस्वाभाविकता आदि वे अवगुण न मिलेंगे जो हिंदी के अन्य अनेक छोटे-बड़े कवियों में पाए जाते हैं। "अलंकार-विधान" नामक शीर्षक के नीचे यह दिखाने का उद्योग किया गया है कि अलंकारों द्वारा भावों का उत्कर्ष दिखाने और रूप, क्रिया, तथा गुणों का अनुभव तीव्र कराने में किस प्रकार सहायता ली गई है। इस के अनंतर के शीर्षकों में कवि के उक्ति-वैचित्र्य, भाषा पर अधिकार, कुछ खटकने वाली बातों पर कुछ विचार कर के हिंदी-साहित्य में उस के सर्वश्रेष्ठ कवि होने का निर्देश किया गया है, और विवेचन समाप्त किया गया है। वयोवृद्ध समालोचक के संपूर्ण निष्कर्षों से अथवा उस की विचार-प्रणाली से सहमत होना न होना दूसरी बात है, पर यह कदाचित् हर एक व्यक्ति अनुभव करेगा कि साधारण से साधारण विषय को लेकर एक असा-

धारण दृष्टिकोण से विचार करने की जैसी क्षमता शुक्ल जी में है वह अन्यत्र कम मिलेगी।

वयोवृद्ध उपाध्याय जी का निबंध "गोस्वामी तुलसीदास का महत्व" शीर्षक है। इस मे कोई उल्लेख-योग्य नवीनता नहीं दिखाई पडती। यह अवश्य है कि स्वत एक सुकवि होने के कारण वयोवृद्ध लेखक ने एक विस्तृत क्षेत्र से जो चयन किया है उस मे भावुकता की छाप उस के हर एक अंश पर लगी हुई है।

चतुर्वेदी जी का निबंध, "गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार" शीर्षक है। इस में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामी जी सर्वथा शांकर अद्वैत के अनुगामी थे। निबध विचारपूर्ण अवश्य है पर वह सत्य को कदाचित् अंशतः ही उपस्थित करता है।

दुबे जी का "गोस्वामी जी और राजनीति" शीर्षक निबध अपने विषय का विस्तृत विवेचन करता है। और दूसरा निबंध "गोस्वामी जी और नारी जाति" उसी प्रकार अपने विषय पर विस्तार-पूर्वक विचार करता है, पर उस में वीरपूजा की भावना बोलती हुई मालूम पड़ती है। तुलसीदास महाकवि और महान् विचारक थे इस लिए यह आवश्यक नहीं है कोई कमी उन मे न रही हो। माना कि स्त्री जाति के प्रति ऐसे ही भाव जैसे हमारे कवि के थे दूसरे देशों के भी अनेक मध्यकालीन कवियों और विचारको के थे पर यह हमारे कवि की उस त्रुटि को किसी मात्रा में भी न्यायोचित नहीं बना सकता।

लनगोड़ा जी का निबंध "हिंदी भाषा और तुलसीकृत रामायण" शीर्षक है इस लेख के लिखने का उद्देश्य लेखक के ही शब्दों मे यह है कि "साहित्य-संसार को यह ज्ञात हो जावे कि वह खूबियां जिन के लिए मुँह से सहसा 'वाह वाह' निकल पड़ती है साधारणत. हिंदी भाषा और विशेषतः तुलसीकृत रामायण में अत्यंत मनोहर रूप मे प्रस्तुत है। इस के अतिरिक्त उस मे कुछ ऐसी खूबियां भी हैं जो अभी अन्य भाषाओ को हमारी भाषा से सीखनी है।" इस लेख मे लेखक ने यद्यपि अंग्रेजी भाषा और साहित्य का कुछ ज्ञान अवश्य प्रदर्शित किया है और दूसरी ओर हिंदी शब्दो को कामधेनु की भाँति दुर्लभ से दुर्लभ अर्थों और ध्वनियो का दाता भी दिखाने का उद्योग किया है पर इस से लेखक का दावा कुछ सिद्ध होता नही दिखाई देता—पूरा प्रयास एक इंद्रजाल के खेल सा लगता है।

चौबे जी और ब्यौहार जी के दो लेख "तुलसी और रहीम" तथा "तुलसी और केशवदास" शीर्षक है। विषय दोनों के स्पष्ट हैं। लेखकों का ध्यान बाहरी अंतर

की ओर अधिक है, उन के आधारभूत मनोवृत्तियों के विश्लेषण की ओर नही है।

श्री मिश्र जी का निबंध "बरवै रामायण" शीर्षक है। विषय छोटा सा भी ले कर एक योग्य समालोचक यदि विचार करने बैठे तो कितनी सुदरता से उस पर विचार कर सकता है यह निबंध उस का उदाहरण है। रचना के सबंध में विचार सहृदयता के साथ किया गया है।

सक्षेप में 'तुलसी-ग्रंथावली' का यही सहयोग है।

सन् १९२५ तुलसीदास के अध्ययन में एक तीसरी उल्लेख-योग्य तिथि है। क्योंकि इसी वर्ष लखनऊ के पंडित रामकिशोर शुक्ल द्वारा सपादित 'मानस' के एक संस्करण के साथ किन्ही बेनीमाधवदास-रचित उस 'मूलगोसाईंचरित' का प्रकाशन हुआ जिस ने कवि के जीवन-वृत्त के सबंध मे कुछ समय के लिए एक हलचल सी उत्पन्न कर दी थी। संस्करण के प्रारभ में ही इस बात का निर्देश किया गया कि प्रस्तुत जीवनी उस बृहद् जीवनी का अंतिम अध्याय है जिस का उल्लेख शिवसिह सेंगर ने अपने सरोज मे किया है। यह सब लिखते हुए भी संपादक ने इस बात की सूचना उस में नही दी कि प्रति उसे कहां से प्राप्त हुई और उस का आकार-प्रकार आदि कैसा है।

सन १९२६ में महाराष्ट्र के एक लेखक द्वारा इस क्षेत्र में एक अपूर्व सेवा प्रकाश मे आई। यह थी श्री यादव शंकर जी जामदार की 'मानसहंस' नामक पुस्तिका। इस पुस्तिका मे 'कवि-परिचय', 'काव्य-समालोचना', 'लोक-शिक्षा', 'पात्र-परिचय', 'उपसहार,' और 'पंचवाद' नामक छः अध्याय है। 'कवि-परिचय' साधारण है। इसी प्रकार के 'लोक-शिक्षा' और 'पंचवाद' नामक धार्मिक और दार्शनिक अध्याय भी हैं। उल्लेख-योग्य अध्याय शेप तीन ही हैं। 'काव्य-समालोचना' तथा 'पात्र-परिचय' वाले अपने दो अध्यायों में लेखक ने एक मौलिक पथ का अनुसरण किया है। लेखक की विवेचन-प्रणाली इन अध्यायों में यह रही है कि उस ने केवल उन्ही स्थलों को 'मानस' से चुना है जो कवि के मौलिक स्थल हैं, अथवा जहां पर अपने पूर्ववर्ती कवियों के भाव लेते हुए भी हमारे कवि ने कोई नवीन चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। ऊपर के कुल लेखक-समुदाय में यह बात यदि कुछ मात्रा में मिलती है तो स्वर्गीय श्री शिवनंदन सहाय मे, पर उन में भी यह उतना विकास नही कर सकी है जितना जामदार जी में। जामदार जी के प्रयत्न में यदि कोई कमी है तो इस बात की कि उन्हों ने यह विवेचना किसी निबंध क्रम में नहीं उपस्थित की है।

यदि कुछ क्रम मिलता है तो उन के 'पात्र-परिचय' वाले अध्याय मे। 'काव्य-परिचय' वाले अध्याय में वे कथा-क्रम से चले हैं, और उस से कवि की मौलिक उद्भावनाओं के ढर्रे का यथार्थ बोध नहीं होता। 'उपसंहार' वाले अध्याय मे इस प्रकार के कुछ परिणाम पाने की आशा करना स्वाभाविक है, पर वहां भी इस संबंध मे निराश होना पड़ता है।

रायबहादुर बाबू श्यामसुदरदास की हमारे विषय से संबध रखती सेवाएं उसी समय से प्रारंभ होती है जब से १६०२ वाले 'मानस' के संपादक-मंडल में उन्हों ने सहयोग दिया। किंतु आप का इस क्षेत्र में सब से अधिक उल्लेखनीय सहयोग 'मूल गोसाईं-चरित' के प्रकाशित होने पर मिला। सन् १६२७ की 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' मे आप ने "गोस्वामी तुलसीदास" शीर्षक एक निबध प्रकाशित किया जिस मे 'मानस' के उक्त संस्करण में प्रकाशित 'मूल गोसाईंचरित' का पाठ ज्यो का त्यो प्रकाशित करते हुए उस में आने वाली तिथियो और घटनाओ के संबंध में आप ने विचार किया। घटनाओं के सबंध मे आप का विचार चलते ढंग का था, पर तिथियों के संबंध का विचार ज्योतिष की गणना पर अवलंबित था। गणना से आप इस परिणाम पर पहुँचे कि 'चरित' मे आने वाली १४ तिथियों मे से ४ ऐसी है जिन की गणना इस लिए नही हो सकती कि उन का विवरण अपूर्ण है, शेष १० में से ६ ऐसी हैं जो गणना से सर्वथा शुद्ध उतरती है, और तीन ऐसी है जिन में केवल एक-एक दिन का अंतर आता है, और केवल एक ऐसी है जो सर्वथा अशुद्ध उतरती है। दूसरी बात आप ने यह देखी कि कवि ने अपने संबध मे जो-जो बाते अपने ग्रंथों में कही है उन सब का सामंजस्य 'चरित' मे दिए हुए वर्णनों से पूरा-पूरा हो जाता है। फलतः आप ने लिखा कि यह 'चरित' बहुत कुछ प्रामाणिक है और इस के आधार पर गोस्वामी जी की एक अच्छी सी जीवनी तैयार की जा सकती है। अपनी ऐसी सम्मति लिखते हुए आप ने हिंदी के अन्य विद्वानों की सम्मतिया भी आमंत्रित कीं। सम्मतियां आईं, और वे 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' की अगली सख्याओं में प्रकाशित हुईं। इन सम्मतियों मे से केवल दो ऐसी थीं जिन्हो ने 'चरित' की प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट किया था, शेष सभी आप से सहमत थीं। इन में से एक सम्मति थी राय बहादुर पंडित शुकदेव बिहारी जी मिश्र की, जिन्हों ने 'चरित' में से १० अलौकिक और एक काल-विरुद्ध घटनाओं का निर्देश कर 'असंभव एकादशी' नाम से उन्हे अभिहित किया था दूसरी सम्मति थी श्री याज्ञिक की जिन्हो न उस में

कुछ इतिहास विरुद्ध बाते दिखाई थी। फलतः अधिकतर विद्वानों को अपनी सम्मति का समर्थन करता हुआ देख कर बाबू साहब ने कवि के जीवन-वृत्त के पुनर्निर्माण में हाथ लगाया। इस उद्योग मे आप को श्री पंडित पीतांबरदत्त बड़थ्वाल (अब डाक्टर) से पर्याप्त सहकारिता और सहयोग प्राप्त हुए और सन् १९३१ मे आप ने अपनी 'गोस्वामी तुलसीदास'[१] नामक नवीन रचना प्रकाशित कर दी। इस पुस्तक मे आप के ही शब्दो मे "तब तक की उपलब्ध समस्त सामग्री को उपयोग में लाने तथा गोस्वामी जी के एक सुशृ-खल जीवन वृत्तांत को प्रस्तुत करने का उद्योग किया गया है, साथ ही उन के जीवन पर एक व्यापक दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।" पर यह उद्योग इस विश्वास के साथ किया गया है कि "जिस व्यक्ति (बेनीमाधवदास) को अपने चरित-नायक से ६४-७० वर्ष का दीर्घकालीन संपर्क रहा हो उस के लिखे जीवन-चरित की प्रामाणिकता के विषय मे संदेह के लिए अवकाश बहुत कम हो सकता है, यदि यह 'मूल चरित' प्रामाणिक न हो तो आश्चर्य की बात होगी।"[२] फलत: कवि के जीवन-वृत्त के इस उद्योग में 'मूल गोसाईंचरित' को प्राधान्य मिलना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ है कि जब तक 'चरित' की किसी भी बात के विरोध में—चाहे वह कितनी ही साधारण क्यों न हो—दृढ प्रमाण नही मिला है तब तक उसे इस पुस्तक में दिए हुए जीवन-वृत्त में सम्मिलित किया गया है। पूरी पुस्तक की पृष्ठ संख्या २१० है, जिस मे से १५० पृष्ठ इस जीवन-वृत्त को दिए गए है और शेष ६० में कवि की कला उस के व्यवहार-धर्म, तत्व-साधन, तथा व्यक्तित्व पर विचार किया गया है। यह विवेचन स्थान-संकोच के कारण स्वभावतः बहुत संक्षिप्त है और इस में कोई उल्लेख-योग्य नवीनता भी नही है।

जिन दिनों 'मूल गोसाईंचरित' 'गाँव में आए नए नए ऊँट' की तरह आधुनिक हिंदी-साहित्य की छोटी सी दुनिया मे आ कर कोने-कोने से अभिनंदन-पत्र ले रहा था उन्हीं दिनों सन् १९२९ में सोरों जिला एटा के एक शास्त्री जी का "गोस्वामी जी का जन्म-स्थान—राजापुर या सोरों?" शीर्षक एक लेख 'माधुरी' में प्रकाशित होने के लिए आया। उस समय उक्त पत्र के संपादकों को इस बात का क्या अनुमान होता

---

[१] हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

[२] पृ० २२

कि कभी इस लेख का विषय तुलसी-संसार का एक गर्म विषय भी हो सकेगा; फलत उन्हों ने इसे एक कोने में 'कवि-चर्चा' नामक स्तंभ के नीचे स्थान दिया। इन शास्त्री जी का नाम था पंडित गोविंदवल्लभ भट्ट। आप सोरों ज़िला एटा के निवासी हैं। लेख मे आप ने पहले-पहल इस बात की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित किया कि कवि का जन्म सोरों ज़िला एटा में हुआ था, सोरो के योगमार्ग नामक मुहल्ले में अब भी उस का मकान है, वह जाति का सनाढच शुक्ल था, उस के गुरु का नाम नरसिंह चौधरी था, वह भी सनाढच थे, और यही के निवासी थे, उन का स्थान सोरों मे सुरक्षित है, हमारे कवि और नंददास भाई-भाई थे, कवि का विवाह, सोरों से मिले हुए बदरिया नाम ग्राम में हुआ था, जहा उन के श्वसुर-गृह का खडहर अब तक बताया जाता है, नंददास के पुत्र का नाम कृष्ण-दास था, तुलसीदास के राजापुर चले जाने पर यह कृष्णदास उन को मना कर घर वापस लाने के लिए उन के पास गए थे पर वह लौटे नही। इन सारी बातों के प्रमाण में लेखक ने अधिकतर स्थानीय मौखिक जन-श्रुतियों का होना बताया है, और कुछ अन्य प्रकार से भी उन्हे सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

सन् १९३० में एक अंग्रेज़ विद्वान जे० एम्० मैकफ़ी की लिखी हुई 'दि रामायण अव् तुलसीदास' नामक पुस्तक प्रकाश में आई। यह पुस्तक भी कारपेंटर महोदय की 'थियालोजी अव् तुलसीदास' नामक पुस्तक की भाँति कवि के धार्मिक सिद्धातों का विवेचन करती है, पर इस मे उन त्रुटियों में से एक भी नही है जो कारपेंटर साहब की पुस्तक मे पाई जाती है। प्रारंभ में कवि की एक छोटी सी जीवनी भूमिका के रूप में दी जाती है। तदनतर सक्षेप में रामकथा कही जाती है। और पीछे देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव के संबंध में कवि के विचारो का अध्ययन किया जाता है। और उस के बाद ब्रह्म का स्वरूप 'मानस' में क्या है इस बात पर विचार किया जाता है। पुस्तक का अतिम अध्याय है "भारतीय विचारधारा और जीवन में उस का भाग"। यह हर्ष की बात है कि लेखक इस सिद्धांत से ज़रा भी प्रभावित नही है कि भारतीय भक्तिमार्ग के विकास पर ईसाई धर्म का कोई प्रभाव पड़ा है। कृति सुंदर है।

सन् १९३३ में पंडित गौरीशंकर द्विवेदी नामक एक सज्जन ने 'बुंदेल-वैभव' तथा 'सुकवि-सरोज' नामक दो ग्रंथ प्रकाशित किए, जिन मे बुंदेलखंड के कवियों का परिचय देते हुए हमारे कवि को सोरों का निवासी बताया और उन तमाम बातो का समर्थन

किया जिन्हें उपर्युक्त शास्त्री जी ने अपने लेख में स्थान दिया था। लेखक ने शास्त्री जी के लेख के विरोध में लिखी गई बातों का खंडन करने का भी प्रयास किया यही आप का सहयोग था।

सन् १९३५ में श्री सद्गुरुशरण अवस्थी लिखित 'तुलसी के चार दल' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। यह दो खंडों में विभक्त है: पहले में कवि के जीवन-वृत्त, तथा उस की काव्य-कला पर विचार किया गया है, फिर उस के चार छोटे-छोटे ग्रंथ 'रामलला नहछू', 'बरवै रामायण', 'पार्वतीमंगल', तथा 'जानकीमंगल' की क्रमशः समीक्षा की गई है, और दूसरे में इन ग्रंथों का मूल-पाठ दिया गया है और उस की टीका की गई है। जीवन-वृत्त चलते ढंग से कह दिया गया है। काव्य-कला वाले शीर्षक के नीचे लगभग ४५ पृष्ठों मे साहित्य-शास्त्र के सिद्धांतों का विवेचन किया गया है, और उस के अनतर केवल १५ पृष्ठों में कवि के "काव्य के संबंध मे संक्षिप्त चर्चा" की गई है। इस संक्षिप्त चर्चा मे समालोचना का दृष्टिकोण अवश्य है, इस मे वर्गोवृद्ध शुक्ल जी के लोकधर्म वाले सिद्धातो के विरोध मे आवाज़ उठाई गई है। लेखक का दृष्टिकोण विचारणीय है। शेप पुस्तक मे उद्दिष्ट ग्रंथों की जो समालोचना की गई है उस मे नवीनता बहुत कम मिलती है। यह अवश्य है कि वह विस्तार से की गई है। मूल-पाठ और टीका में कोई उल्लेख-योग्य विशेषता नहीं है। टीका विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर लिखी गई ज्ञात होती है।

सन् १९३६ मे श्री पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'मानस' का एक संस्करण निकाला और उस के साथ एक विस्तृत भूमिका भी निकाली। इस भूमिका मे आप ने उस समय तक प्राप्त कवि के जीवन-वृत्त तथा रचनाओं के संबध की लगभग सभी प्रमुख सामग्री का आधार ग्रहण कर कवि का परिचय उपस्थित किया। सन् १९३७ में पुनः इसी सामग्री को कुछ और विस्तार और आवश्यक फेरफार के साथ अलग पुस्तकाकार 'तुलसीदास और उन की कविता' नाम से प्रकाशित किया। इस पुस्तक के दो खंड निकल चुके है, तीसरा खंड अभी निकलने को है। इस दूसरे प्रयास मे, पहले खंड की प्रस्तावना में आप ने जिस उदाराशयता का प्रदर्शन किया है वह उल्लेखनीय है। आप के शब्द यह है : "जान पडता है, अभी हिंदी में ठोस काम करने वालों का समय नही आया है साहित्य मे एक अधड सा चल रहा है और साहित्य-पथ के पथिक अंधकार में उद्दिष्ट रास्ते की खोज करते

हुए आकुल-व्याकुल की तरह चारों ओर दौड़ रहे हैं। उन के लिए मै अपने कुछ छोटे-छोटे दिए रास्ते के किनारों पर टिमटिमाते हुए छोड़े जाता हूं। संभव है, कभी उन की दृष्टि इन पर पड़े और वे इन को हाथ मे लेकर साहित्य का राजमार्ग खोज निकालने मे समर्थ हों।" कितना प्रशंसनीय दृष्टिकोण है! खेद यदि होता है तो इतना ही कि जिन से आप को दीए मिले, या जिन के दीयों से आप ने अपने दीए जलाए उन के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश के लिए इस पुस्तक में आप को स्थान नही मिला। पुस्तक के दूसरे खंड की प्रस्तावना मे आप एक दर्जा और भी ऊपर उठते है। आप लिखते है "हमारे सहृदय पाठक ध्यान से देखेगे तो तुलसीदास के बहिर्जगत और अंतर्जगत की विस्तृत सीमा मे अनेक प्रकार के सुदर-सुंदर दृश्य देखने को मिलेंगे, जहा पहुँचने पर साहित्यिक आनंद पाने के अतिरिक्त कल्याणेच्छु जिज्ञासुओं को जीवन के नवीन मार्ग भी दिखाई पड़ेगे। इस पुस्तक द्वारा मैंने उन दृश्यों तक, उन कल्याण-केंद्रों तक पहुँचने के रास्तों की ओर सकेत-मात्र किया है। जो सहृदय जन उन रास्तो पर चलेगे मुझे पूरा विश्वास है वे तुलसीदास के सच्चे स्वरूप का दर्शन कर के सच्चा आत्मसुख प्राप्त करेंगे।" जीव-कोटियां साधारणत तीन मानी जाती हैं, बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त। साहित्य के अंधकार-पूर्ण पथ में भटकते लोग पहली ही श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। कल्याणेच्छु तो स्पष्ट ही दूसरी श्रेणी मे होगे। तीसरी श्रेणी रह जाती है और 'तुलसीदास और उन की कविता' का तीसरा खड रह जाता है। विश्वास है कि इस तीसरी श्रेणी को भी त्रिपाठी जी निराश न करेंगे। अस्तु। अभी तक जो दो खंड प्रकाशित हुए है उन में से पहले में कवि का जीवन-वृत्त है और दूसरे मे उस की कविता और कला का अध्ययन है। पहले खड मे यद्यपि नवीनता कम मिलेगी पर उस में एक विशेषता अवश्य है: सन् १९३७ तक प्रकाशित कवि के जीवन-वृत्त संबंधी सभी उल्लेख-योग्य सामग्री पाठक को एकत्र मिल जावेगी। पुस्तक के दूसरे खड मे अवश्य लेखक ने कहीं-कही ऐसे दृष्टिकोणो से भी विचार किया है जो उस के अपने है। और एक बात जो दोनों खंडों मे समान-रूप से मिलती है वह है लेखक का लेखन-चातुर्य। लेखक स्वयं एक सिद्धहस्त कवि भी है। फलत: साधारण से साधारण बात को भी वह पाठक के सामने सर्वत्र ऐसे ढग से रखता कि वह रोचक और सरस हो जाती है।

सन् १९३६ मे ही श्री विजयानंद त्रिपाठी ने 'मानस' का एक उल्लेख-योग्य

प्रकाशित किया इस के कुछ वर्ष पूर्व कल्याण' में आप न तुलसीकृत

ग्रथों के शुद्ध पाठ की खोज" शीर्षक एक विचार-पूर्ण लेख लिखा था जिस में आप ने कवि के ग्रंथो की कुछ प्राचीन प्रतियो पर प्रकाश डाला था। प्रस्तुत संस्करण आप ने परिश्रम से तैयार किया। इस की विशेषता मुख्यतः यह है कि इस में कई प्रतियों के पाठांतर दिए गए हैं। पर हमे देखना यह भी है—जैसा हम ने ऊपर कुछ अन्य संस्करणों के विषय मे देखा है—कि संपादन में उन दावों का कहा तक पालन किया गया है जिन का उल्लेख संपादक ने भूमिका में किया है। संपादक का एक दावा है कि बालकांड का पाठ सं० १६६१ की प्रति के अनुसार रक्खा गया है, और दूसरा दावा है कि अयोध्याकांड का पाठ राजापुर की प्रति के अनुसार रक्खा गया है। नीचे हम देखेंगे कि यह दावे किस हद तक सही उतरते है। बालकांड से केवल एक दोहा लिया जाता है, यह दोहा भी इस लिए कि प्रति के एक फ़ोटोग्राफ़ में प्रकाशित हो चुका है[१] और इस लिए वह सभी को सुलभ है। अयोध्याकांड से वही तीन दोहे लिए जाते है जो 'ग्रंथावली' वाले संस्करण की जाँच के लिए ऊपर लिए गए है, वे भी जैसा कहा जा चुका है, इस दृष्टि से चुने गए है कि उन के फोटोग्राफ प्रकाशित हैं[२] और इस लिए सुलभ हैं :—

		प्रति का पाठ	संस्करण का पाठ
बाल० दो० ३०२			बाल० दो० ३०७
अर्द्धाली	३	रामु, आयेसु	राम, आयसु
,,	५	कुलाहल	कुलाहलु
,,	६	गाई	गाई
,,	७	जाही, सरव, पाइक, फहराहीं	जाई, सरौ, पाउक, फहराई
,,	८	कउतक	कौतुक
दोहा चरण	१	कुँअर	कुअँर
,,	४	डगहि	डगहिं

[१] 'हिंदुस्तानी', १६३७, पृ० ३३८

[२] 'वेन अंतर्राष्ट्रीय ओरियंटल कांग्रेस की रिपोर्ट' और ग्रियर्सन की 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदोस्तान'।

अयो० दो० ५६

अर्द्धाली	१	आयेसु	आयसु
,,	४	हियं	हिय
,,	५	जौं	जौ
दोहा चरण	२	झूंठ	झूठ

अयो० दो० ५७

अर्द्धाली	५	भयेउ	भयउ

फलत: यह स्पष्ट है कि इस संपादन में भी उतनी शुद्धता नहीं है जितनी का दावा किया जाता है। यह अवश्य है, जैसा ज्ञात हुआ होगा, कि यह संस्करण 'ग्रंथावली' वाले संस्करण की अपेक्षा अधिक शुद्ध है।

सन् १९३७ मे डाक्टर सूर्यकांत शास्त्री ने हमें 'इंडेक्स वर्बोरम अव् दि तुलसी रामायण' भेंट कर हमारे अध्ययन को एक क़दम और आगे बढ़ाया। तुलसी-अध्ययन मे इस प्रकार का यह पहला प्रयास हुआ है। लेखक ने यह नहीं लिखा है कि इस परिश्रम-पूर्ण और किंचित् नीरस कार्य में उस का कितना समय लगा, पर निस्संदेह इस में कई वर्ष लगे होंगे। लेखक का यह 'इंडेक्स' 'रामचरितमानस' के उस संस्करण पर अवलंबित है जिसे इंडियन प्रेस ने प्रकाशित किया था, और जिस पर रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास की टीका है, फलत: ऊपर जो त्रुटियां हम उक्त संस्करण के संपादन में देख आए हैं उन से इसे भी क्षति पहुँची है—और लेखक ने स्वयं उन के संबंध में खेद प्रकट किया है। केवल एक बात जो मुझे इस के संबंध मे खटकी है, वह यह है रूप-भ्रम से, अथवा जान-बूझ कर, विभिन्न आशय के दो या अधिक शब्द एक ही शब्द के नीचे सूचीबद्ध किए गए हैं: उदाहरणार्थ 'करि' शब्द के नीचे 'हाथी' वाचक और 'कर' क्रिया का पूर्वकालिक रूप दोनों सूचीबद्ध हुए है, इसी प्रकार 'कि' शब्द के नीचे 'क्या' अर्थ का प्रश्नवाचक और 'या' अर्थ का बोधक, 'कहँ' शब्द के नीचे 'कहाँ' अर्थ का स्थानवाचक और 'को' अर्थ की विभक्ति, 'गुण' शब्द के नीचे 'त्रिगुण' का 'गुण' और 'विशेषता' के अर्थ में प्रयुक्त शब्द, 'स्रुति' शब्द के नीचे 'कान' अर्थ का वाचक और 'वेद' अर्थ का वाचक, 'हरि' शब्द के नीचे 'बंदर,' 'विष्णु', 'सिंह', और 'सूर्य' के वाचक, 'रस' शब्द के नीचे 'नवरस' का 'रस' और स्वाद विषय का रस' और बलि' शब्द के नीचे राजा बलि' और 'बलिदान और

'न्योछावर' के अर्थ में आने वाले शब्द सूचीबद्ध किए गए हैं। यदि इन विभिन्न अर्थ-वाची शब्दों को उन के आशय के अनुसार अलग-अलग सूचीबद्ध किया गया होता तो 'इंडेक्स' की उपयोगिता कुछ और बढ जाती। फिर भी इस सूची से तुलसी-अध्ययन मे बडी सहायता मिलेगी इस मे संदेह नहीं। सच बात तो यह है कि आजकल की परिपाटी के अध्ययन के लिए 'इंडेक्स' अनिवार्य है, और इस दिशा में यह पहला प्रयास होने के कारण इस की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

सन् १९३८ में प्रकाशित श्री पंडित बलदेवप्रसाद मिश्र लिखित 'तुलसी-दर्शन' नामक पुस्तक भी उल्लेखनीय है। यह पुस्तक आठ अध्यायों में विभक्त है: 'गोस्वामी जी और मानस', 'भारतीय भक्ति मार्ग', 'जीव-कोटिया', 'तुलसी के राम', 'विरति विवेक', 'हरि-भक्ति पथ', 'भक्ति के साधन', तथा 'तुलसी-मत की विशेषता'। अध्यायों के विषय उन के शीर्षकों से ही स्पष्ट है। अंग्रेजी में इस प्रकार की दो पुस्तकों का उल्लेख ऊपर हो चुका है (१) कारपेंटर की 'थियालोजी अव् तुलसीदास' और (२) मेकफ़ी की 'दि रामायण अव् तुलसीदास'। पर हिंदी में इस प्रकार की कोई पुस्तक नहीं थी। इस अभाव की पूर्ति मिश्र जी ने इस रचना द्वारा की है। पुस्तक विचार-पूर्ण है। फिर भी एकाध बातें खटकती हैं। पुस्तक का विषय 'तुलसी-दर्शन' होते हुए भी लेखक ने केवल 'मानस' का अवलंबन किया है, कवि की अन्य कृतियों की उपेक्षा की है, यह एक बात विचारणीय है; दूसरी बात जो खटकती है, पर जिसे लेखक इस ग्रंथ की खूबी समझता है यह है कि "इस में गीता ले कर गाँधीवाद तक के सभी भारतीय साम्प्रदायिक तत्वों का समावेश किया गया है।" कहना नहीं होगा कि उस के इस प्रयास में कहीं-कहीं कुछ खींच-तान भी जान पड़ती है। अन्यथा पुस्तक उपादेय है।

गीता प्रेस, गोरखपुर से सन् १९३८ मे 'कल्याण' का एक विशेषांक निकला है जिस का नाम है 'मानसांक'। यह विशेषांक वृहत्काय है। इस का प्रमुख अंग 'मानस' और उस की टीका है, और गौण अंग 'मानस'-संबंधी लेख है। संपादक हैं श्री चिम्मन-लाल गोस्वामी और श्री नंददुलारे बाजपेयी। लेख कुछ बहुत महत्वपूर्ण नहीं है, इस लिए केवल संस्करण के संपादन पर विचार करना यथेष्ट होगा। इस संपादन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए भी ऊपर की भाँति कहा गया है कि बालकांड का पाठ सं० १६६१ की प्रति के अनुसार और अयोध्याकांड का राजापुर की प्रति के अनु-

सार रक्खा गया है। नीचे हम उन्हीं दोहों के आधार पर इस कथन की सत्यता पर विचार करेंगे जिन दोहों के आधार पर हम ने 'तुलसी-ग्रथावली' और पंडित विजयानंद त्रिपाठी के संस्करणों पर विचार किया है '—

		प्रति का पाठ	संस्करण का पाठ
बाल० दो० ३०२ अर्द्धाली ३	..	आयेसु ..	आयसु
,, ५	..	भयेउ, कुलाहल	भयउ, कोलाहल
,, ८	..	कउतुक ..	कौतुक
दोहा चरण १	..	कुँअर ..	कुअँर
,, ४	..	डगहि ..	डगहि
अयो० दोहा ५६ अर्द्धाली १	..	आयेसु ..	आयसु
,, ४	..	अंतहु ..	अंतहुँ
,, ५	..	जौ ..	जो
दोहा चरण १	..	एह ..	यह
,, २	.	झूंठ ..	झूठ
अयो० दोहा ५७ अर्द्धाली ३	.	सबहि, जेहि ..	सबहि, जेहि
,, ५	..	भयेउ, करालु .	भयउ, कराल

सावधानी की कमी इस संस्करण में भी स्पष्ट है, पर यह कहना होगा कि इस संस्करण में उपर्युक्त सभी संस्करणों की अपेक्षा अशुद्धियां कम है। एक बात इस सबंध में और विचारणीय है—वह यह है कि यह संस्करण मासिक पत्रिका के एक अंक के स्थान पर निकला है, अतः समय पर निकलना अनिवार्य होने के कारण कुछ आश्चर्य नही कि जल्दी करनी पड़ी हो, और जल्दी करने के कारण भी काम उतना अच्छा न हो सका हो जितना वह अन्यथा होता। पत्र के संचालक महोदय ने यह सूचना दी है कि वे शीघ्र ही मूल पाठ का एक सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिस में आवश्यक पाठातर भी दिए जायेगे।[१] आशा है कि उक्त संस्करण में पाठो के संबंध में

---

[१] पृ० ४

कुछ अधिक सावधानी मिलेगी।

इस वर्ष कवि के जीवन-वृत्त के संबंध मे बहुत सी अनोखी बाते प्रकाश मे आ रही हैं। वह कहां तक प्रामाणिक है, और वह जिस सामग्री का अवलंबन ग्रहण करती है वह कहां तक प्रामाणिक है यह दूसरी बात है, पर यदि वह प्रामाणिक सिद्ध हुई तो इस मे संदेह नही कि कवि का जो कुछ जीवन-वृत्त अभी तक हमें ज्ञात था उस में बड़ी वृद्धि होगी, और हमें अपने बहुत से पुराने विचारों और तर्कों पर पुनर्विचार की आवश्यकता पडेगी। पंडित गोविंदवल्लभ भट्ट शास्त्री तथा पंडित गौरीशंकर द्विवेदी की सूचनाओं का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है पर जैसा हम ने देखा था वह सूचनाएं प्रमुख रूप से मौखिक जनश्रुतियों पर अवलंबित थी। इधर उसी विषय से संबंध रखने वाली जो बातें हमारे सामने आई हैं वे कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे सुरक्षित साक्ष्य के आधार पर कही गई है। इस सामग्री को पहले-पहल इस बार प्रकाश में लाने वाले हैं कासगंज निवासी श्री रामदत्त भारद्वाज, एम्० ए०। आपने फ़रवरी तथा जून के 'विशाल भारत' मे दो लेख लिखे हैं, जिन के शीर्षक हैं क्रमश: "गोस्वामी तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली (जीवनी और रचना)" और "महाकवि नंददास"। और उन के बाद उसे प्रकाश में लाने वाले है श्री पंडित भद्रदत्त शर्मा, और लखनऊ यूनिवर्सिटी के श्री दीनदयालु जी गुप्त। इन सज्जनों के लेख 'सनाढचजीवन' नामक एक जाति विशेष के पत्र में उस के "तुलसी-स्मृति-अंक" में निकले हैं। इस "तुलसी-स्मृति-अंक" में लेख तो बहुत से हैं, पर इन दो लेखो मे वह सभी सामग्री आ जाती है जो अन्य लेखों मे भी बिखरी पड़ी है। पर यह दोनों लेख भी एक ही सामग्री के आधार पर लिखे गए है इस लिए इन पर एक ही साथ विचार करना ठीक होगा। श्री भद्रदत्त जी के लेख का शीर्षक है "श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास जी" और गुप्त जी के लेख का शीर्षक है "महात्मा तुलसीदास और कविवर नंददास"। ऊपर जिस हस्तलिखित सामग्री का उल्लेख किया गया है उस में सर्व-प्रमुख दो हैं—'मानस' की दो प्रतियां जिन की पुष्पिका में उन का लिपिकाल सं० १६४३ (सन् १५८६) लिखा गया है। इन में से एक की पुष्पिका में इतना और लिखा गया है कि वह नंददास के पुत्र कृष्णदास के लिए लिखी गई, और दूसरी की पुष्पिका में इसी प्रकार लिखा गया है कि वह तुलसीदास जी की आज्ञा से उन के भतीजे कृष्णदास सोरों निवासी के लिए लिखी गई। तीसरी सामग्री है 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा' नामक एक पुस्तिका की प्रति जिस के रचयिता

उपर्युक्त कृष्णदास कहे जाते हैं और जिस की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल सं० १८७० (सन् १८१३) कहा जाता है। पुस्तिका को प्रारंभ करते हुए उस के कथित रचयिता ने तुलसीदास को "पितु बड़ भ्राता", नंददास को "पिता", नरसिंह को "पितगुरु" और अपना अल्ल "मुकुल" कह कर इन की वंदना की है और पुस्तिका की रचना सं० १६७० (सन् १६१३) में बनाते हुए अपने को सोरों के निकट रामपुर का निवासी कहा है। चौथी सामग्री है रत्नावली की रचना कहे जाने वाले दोहों का संग्रह। इन दोहों में से कुछ इन लेखो में उद्धृत किए जाते हैं जिन मे रत्नावली का जन्म-स्थान बदरिया, उस के पिता का नाम दीनबंधु, श्वसुर-कुल का अल्ल मुकुल श्वसुरालय सोरों, कहा गया है और जिन से कवि के विवाह, द्विरागमन, वैराग्य ग्रहण करने के समय स्त्री की अवस्था, वैराग्य ग्रहण करने का सवत् (सं० १६२७=सन् १५७०), वैराग्य का कारण आदि विषयो पर नवीन प्रकाश पड़ता है। पाँचवी सामग्री है किन्ही मुरलीधर चतुर्वेदी कृत कही जाने वाली रत्नावली की एक जीवनी, जिस की रचना-तिथि ग्रंथ मे ही सं० १८२९ (सन् १७७२) बताई जाती है और जिस की प्रति सं० १८६४ (१८०७ ई०) की कही जाती है। कथित रचयिता ने लिखा है कि रत्नावली की इस जीवनी मे जैसा कुछ उस ने वृद्धों से सुना वैसा ही लिखा है। रत्नावली के इस जीवन-चरित से उन मे से अधिकतर बातों का समर्थन तो होता ही है जिन का जिक्र ऊपर आया है, पर उन के अतिरिक्त कुछ और बातो का भी पता चलता है जिन का संक्षिप्त परिचय रोचक और ज्ञानवर्द्धक होगा। कहा जाता है कि रत्नावली बड़ी बुद्धिमती और पढ़ी लिखी थी। जब वह विवाह के योग्य हुई तब उस के पिता दीनबंधु पाठक ने उस का विवाह तुलसी-दास के साथ कर दिया जो उस समय नरसिंह जी की पाठशाला मे विद्यालाभ कर रहे थे और रामपुर के सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलासो था। उन के माता-पिता उन की बाल्यावस्था में ही उन्हे निराश्रय छोड़ कर चल बसे थे। उन का पालन-पोषण उन की वृद्धा दादी ने किया था। विवाह के अनतर दंपति में प्रगाढ़ प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हें तारापति नामक एक पुत्र भी हुआ जो जीवित न रहा। तुलसीदास की वृत्ति पौराणिक थी। वे एक बार कही कथा कहने गए थे। १०, ११ दिन बाद जब घर लौटे तो उन की स्त्री उन्हे वहां न मिली। पता चला कि वह अपने मायके चली गई है रात को ही उन्हो ने गंगा पार की और सोरो की दूसरी

और गंगातट पर बसे हुए अपनी ससुराल के गाँव बदरिया में जा पहुँचे। स्त्री से मिले। उस समय स्त्री से जो बाते उन की हुई, उन से उन की वैराग्य-वृत्ति जागृत हो गई और स्त्री को सोती छोड़ कर वे घर से चल निकले। विवाह के केवल १५ वर्ष बाद की यह घटना है। इस घटना के बाद रत्नावली बहुत दिनों तक जीवित रही पर अंत में सं० १६५१ (सन्-१५९६) में वह परलोकगामी हुई। यह कुल सामग्री सोरो के आस-पास ही मिली कही जाती है। अब रत्नावली के दोहों का यह 'संग्रह' और मुरलीधर चतुर्वेदी कृत उस की यह 'जीवनी' पंडित प्रभुदयाल शर्मा द्वारा शर्मा-भवन, इटावा से और कृष्णदास कृत उपर्युक्त 'सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा' लाला रघुनाथ प्रसाद गुप्त द्वारा सोरों गेट, कासगज जिला एटा मे प्रकाशित हो गए है। तुलसीदास के अध्ययन करने वालो को इस पूरी सामग्री को पढ़ना और देखना अवश्य चाँहिए। इस की प्रामाणिकता और इस मे दी हुई जीवन-वृत्त संबंधी कथनो की प्रामाणिकता का विषय जैसा हम कह चुके है दूसरा है, पर इस मे कोई संदेह नही कि सामग्री मूल्यवान् जान पड़ती है। यदि इस की प्रामाणिकता सिद्ध हो जावे तो इस में संदेह नही कि इस से अधिक मूल्यवान सामग्री अपने कवि के जीवन-वृत्त के संबंध में अभी तक हमें दूसरी नही मिली है।

तुलसीदास पर जो कार्य हुआ है संक्षेप मे हम उस का निरीक्षण कर चुके। हमारे इस अध्ययन मे कौन सा पक्ष छूट रहा है अथवा कौन सा पक्ष अधूरा रह गया है, और उस पक्ष को हम किस प्रकार पूर्ण बनावे यह प्रश्न अब हमारे सामने है। नीचे के पृष्ठों में इस प्रश्न पर हम अत्यंत संक्षेप मे विचार करेगे।

तुलसीदास के अध्ययन को हम मुख्यतः चार भागों में बाँट सकते है। उन का जीवन-वृत्त, उन की कृतियां, उन की कला, और उन के आध्यात्मिक विचार। नीचे हम क्रमशः इन्ही पक्षो पर विचार करेगे।

तुलसीदास के जीवन-वृत्त के संबंध में हमारे सामने बहुत-सी सामग्री इस समय तक आ चुकी है, और बहुत सी नई सामग्री आने की आशा है। इन सब पर हमें भली भाँति विचार करना है। अपने संबध में कवि ने जो कुछ स्फुट उल्लेख किए हैं उन का आशय ठीक-ठीक समझना है। नए पुराने उस के कई चरित्र—और एकाध उस की स्त्री के भी—प्रकाश मे आ चुके हैं, इन पर बड़ी सावधानी के साथ विचार करना है। जिन स्थानो से कवि का सपर्क था उन स्थानो से कितनी ही सामग्री प्रकाश

में आ रही है। इस सामग्री की भी जाँच करने की आवश्यकता है। यह कोई भी सामग्री बिना भली भाँति कसे और परखे ग्रहण करने योग्य नहीं है। बहुत मुमकिन है यह खरा सोना न हो, कुछ मिलावट इस में की गई हो, और यह भी असंभव नहीं कि सोना ही न हो केवल सोने का रंग रूप इसे दिया गया हो। इतना हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि इस सामग्री को ग्रहण करने में हमें तनिक भी उतावली और असावधानी न करनी चाहिए नहीं तो सारा काम बिगड़ जायगा। उदाहरण के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है—दस वर्ष पूर्व 'मूल गोसाईंचरित' का जो अभिनंदन हुआ, आज उस की वह प्रतिष्ठा क्यों नहीं है? एक समय था जब सात-सात हस्तलेख कवि के हस्तलेख होने का दावा करते थे, और उन में से अनेक का दावा स्वीकार भी किया जाता था, क्या आज भी गभीरता पूर्वक उन सभी का यह दावा समान-रूप से स्वीकार किया जा सकता है? अस्तु।

कवि की कृतियों का पक्ष तो बहुत ही अधिक उपेक्षित है। 'मानस' को छोड़ कर अभी तक उस की किसी कृति का संपादन ही नहीं हुआ है; और 'मानस' का भी जैसा हुआ है वह हम ऊपर देख चुके है। किंतु, अन्य ग्रंथो की तो कदाचित् प्रतियों को भी अभी नहीं देखा गया है। मुझे तो विश्वास है कि यदि विद्वन्मंडली इन प्रतियों की बाबत थोडी सी भी जानकारी प्राप्त करे तो उसे विश्वास हो जावे कि अभी तक वह किस अँधेरे में थी। नीचे मैं बहुत संक्षेप में कुछ उदाहरण देकर अपने इस कथन को स्पष्ट करूँगा।

'विनयपत्रिका' की एक प्रति सं० १६६६ की लिखी हुई रामनगर, बनारस स्टेट के एक चौधरी साहब के पास है। इस प्रति की सूचना पंडित बिजयानंद त्रिपाठी के एक लेख में निकल चुकी है जिस का उल्लेख ऊपर आ चुका है। 'विनय' की इस प्रति में केवल १७६ पद है और इन्हीं १७६ पदों पर पुस्तक समाप्त होती है। इन १७६ में से भी कुछ पद अब 'गीतावली' में मिलते है 'विनय' में नहीं। और इस समय जो 'विनयपत्रिका' हमारे सामने है[1] उस की पद-संख्या २७९ है। दोनों मे कितना अंतर है। किंतु इस से भी अधिक ध्यान योग्य अंतर है दोनों के पाठों में। नीचे एक छोटा सा पद दोनों से उद्धृत कर इस अतर को दिखाने का प्रयत्न किया जा रहा है:—

---

[1] ना० प्र० स० संस्करण

प्रति का पाठ	'ग्रंथावली' का पाठ
मेरो भलो कियो राम अपनी भलाई।	मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हो तो साईं द्रोहों पै सेवक हितु साईं।	हौं तो साईं द्रोही पै सेवक हितु साईं।
राम सो बड़ो है कोनु मोसो कोनु छोटो।	राम सों बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो।
राम सो खरो खसम मोसो खल खोटो।	राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो।
लोगु कहे राम को गुलामु हों कहावों।	लोक कहै राम को गुलाम हौं कहावो।
एते बड़े अपराध भी न मन बावो।	एतो बड़ो अपराध भो न मन बावो।
पाथ माथे चढ़ै तिनु तुलसी जो नीचो।	पाथ माथे चढ़ै तृन तुलसी जो नीचो।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो।	बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो।
पद ३५	पद ७२

दोनों में कितना महत्वपूर्ण अंतर है !

'विनयपत्रिका' की उपर्युक्त प्रति के साथ की ही एक 'गीतावली' की प्रति भी उक्त चौधरी साहब के पास है। इस में यद्यपि कई पत्रे निकल गए हैं, और अंतिम पत्रा भी निकल गया है जिस से उस की लिपि की तिथि का ठीक-ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता, फिर भी वह प्रति 'विनयपत्रिका' की उक्त प्रति के साथ की इस लिए जान पडती है कि उक्त 'विनयपत्रिका' के जो पद अब 'गीतावली' में हैं उन में से कोई पद इस 'गीतावली' की प्रति में नहीं है; पद-संख्या भी प्रस्तुत 'गीतावली'[1] की अपेक्षा इस में कम है, और पदो का क्रम कुछ भिन्न है। पाठ में भी उसी प्रकार का अंतर है जैसा हम ने ऊपर 'विनयपत्रिका' वाली प्रति के संबंध में देखा है। इस लिए उस के उदाहरण देने की कोई आवश्यकता यहां नहीं है। क्या कभी किसी संपादक का ध्यान 'विनयपत्रिका' और 'गीतावली' के संपादन संबंधी इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर गया है ?

'बरवा' रामायण की प्रतियों की समस्या और भी विचारणीय है। 'बरवा' की अभी तक कुल आठ प्रतियों का पता खोज से चला है। इन आठ में से दो ही ऐसी हैं जिन के छंदों की संख्या और क्रम प्रस्तुत 'बरवा' से मिलते हैं, शेष के उस से भिन्न हैं।

---

[1] ना० प्र० स० संस्करण।

सब से पुरानी प्रति जो अभी तक ज्ञात है सं० १७९७ की है। इस में प्रस्तुत पुस्तक[१] के पहले ४२ बरवे हैं ही नही, उन के स्थान पर २५ दूसरे बरवे मिलते है। प्रस्तुत 'बरवा' ग्रथ के जो कथा-संबंधी बरवे है वे यही ४२ हैं, जो इस में नहीं हैं। ऐसी ही दशा अन्य अनेक प्रतियों की भी है।

'दोहावली' की समस्या भी कुछ इसी प्रकार की है। इस की १३ प्रतियां अभी तक ज्ञात हो सकी हैं, किंतु यह जान कर कदाचित् आश्चर्य होगा कि एक भी प्रति का पाठ और छंद-सख्या प्रस्तुत संस्करण के पाठ और छंद-संख्या से पूरा-पूरा मिलान नही खाते। इस की भी सब से प्राचीन प्रति जो अभी तक ज्ञात हो सकी है सं० १७९७ की है। इस प्रति में उक्त संस्करण के ९६ दोहे नही है और उक्त संस्करण में इस के भी ६ दोहे नही है। शेष प्रतियों की समस्या भी ऐसी ही है।

'कवितावली' और 'बाहुक' की समस्या भी ऐसी ही है। इन की कुल २६ प्रतियो का अभी तक पता चल सका है, पर इन में से केवल ८ का मिलान प्रस्तुत संस्करण से होता है, शेष उस से भिन्न हैं। इस की भी सब से प्राचीन प्रति सं० १७९७ की है। उस मे २ छंद ऐसे हैं जो उक्त संस्करण में नही हैं और उक्त संस्करण के १३ छंद ऐसे है जो इस मे नहीं है। 'कवितावली' और 'बाहुक' की एक प्रति सं० १८२० की है। उस मे छपी पुस्तक के ४२ छंद नही मिलते। अन्य अनेक प्रतियों की भी समस्या ऐसी ही है।

जो सब से ध्यान देने योग्य बात है वह यह है कि कवि की स्वकथित जीवनी इन्ही ग्रंथो में मिलते हुए उल्लेखों के आधार पर निर्मित होती है, जिन का उल्लेख ऊपर हुआ है और उन की यह दशा है। फलत: यह शोचनीय है कि छपे हुए संस्करणों पर अवलंबित रह कर हम किसी युग में अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे या नही। वस्तुस्थिति यह है कि जब तक 'तुलसी-ग्रंथावली' का विश्वास-योग्य संपादन न हो जायगा तुलसीदास पर गंभीरता-पूर्वक ठोस काम हो नहीं सकेगा।

इस दिशा में हमें एक काम अभी और करना है, जिस का पथ-प्रदर्शन डा० सूर्य-कांत जी शास्त्री ने किया है। 'मानस' का 'इंडेक्स' बन चुका। शेष ग्रंथों का भी बनना

---

[१] ना० प्र० स० संस्करण

चाहिए। जब तक सभी ग्रंथों का 'इंडेक्स' अलग-अलग नहीं बन जाता, ठीक रूप से सपादन असंभव है।

रचनाओं के कालक्रम पर विचार करना भी एक महत्वपूर्ण कार्य है। पर इस सबंध में हमें इस बात का ध्यान रखना है कि हम अनेक स्थानों पर बहुत निश्चयात्मक नही हो सकते। सन् १९३२ की 'हिंदुस्तानी' में लिखे हुए "गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का कालक्रम" शीर्षक मेरे लेख के एक परिणाम पर लक्ष्य करते हुए श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने अपनी 'तुलसी के चार दल' नामक अन्यत्र ऊपर कही हुई पुस्तक में लिखा है "किसी शिष्ट लेखक ने गोस्वामी जी का निर्माण-काल निश्चित करते हुए शिष्ट समझी जाने वाली एक पत्रिका में 'जानकीमंगल' को सं० १६२० में रचित बतलाया है।"[1] "लेखक ने (इस संबंध में) एक बात और उपहास-जनक कही है वह यह कि 'जानकी-मगल' का शृंगार-वर्णन 'नहछू' और 'मानस' के शृंगार-वर्णन का मध्यवर्ती है।"[2] "(कथाभेद) से मनमाना निष्कर्ष निकालना बालचापल्य मात्र है। (और) इधर-उधर के वाक्यांशों के आधार पर यह स्थिर करना कि काव्य की दृष्टि से 'जानकीमंगल' 'पार्वतीमंगल' से हेय है अथवा वह उक्त ग्रंथ की समकालिक रचना नही हो सकती अपने को बदनाम करके नाम कराने की वृत्ति का परिचय देना है।"[3] कुछ इसी प्रकार का, यद्यपि इस से सरस, उपहास 'जानकीमंगल' की तिथि संबंधी मेरे निष्कर्ष के सबध मे श्री पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपनी 'मानस' की भूमिका में किया है।[4] बिना इस बात को स्वीकार किए हुए कि अवस्थी जी कालक्रम वाले मेरे लेख के तर्कों को ठीक-ठीक रख रहे हैं मुझे नम्रता-पूर्वक उन्हें तथा त्रिपाठी जी को यह सूचित करते प्रसन्नता होती है कि 'जानकीमंगल' की सं० १६३२ की एक प्रति अयोध्या में मिली है जो कवि के हाथ की लिखी हुई नहीं है।

कवि के अध्ययन का तीसरा पक्ष है उस की कला का। उस की कला और काव्य-प्रतिभा के अध्ययन के पूर्व हमें उस सामग्री पर भी विचार कर लेना चाहिए जिस के आधार पर हमें यह अध्ययन करना चाहिए। साधारणतः कवि की प्रतिभा का विचार उस

---

[1] पृ० २२९ [2] पृ० २३० [3] पृ० २३१
[4] पृ० २४०

के 'मानस' के आधार पर किया जाता है। पर 'मानस' में ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जहां पर पूर्ववर्ती संस्कृत ग्रंथों और विशेष कर के 'अध्यात्म रामायण' की प्रतिच्छाया मिलेगी। प्रश्न यह है कि क्या हमें आँख मूँद कर बिना इस बात को सोचे हुए विचार करना है कि कवि किसी स्थल पर किसी का ऋणी है या नहीं और किस हद तक उस का ऋणी है, अथवा यह सोच कर करना है। मेरा अनुमान है कि ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो पहले वाले विचार से सहमत होंगे। फलतः पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि कवि किस हद तक और कहां कहां पर ऋणी है। यह कार्य हमें विशेष कर के 'अध्यात्म रामायण' की तुलना में करना है, क्योंकि कवि का 'मानस' के लिए मुख्याधार 'अध्यात्म रामायण' ही है, यद्यपि दुर्भाग्यवश उसे वह श्रेय नहीं दिया जाता जो उस के योग्य है। मैं तो समझता हूं कि जिन-जिन दृष्टिकोणों से हम 'मानस' का अध्ययन करना चाहते हैं पहले उन्हीं-उन्हीं दृष्टिकोणों से हम इन ग्रंथों का और विशेष कर के 'अध्यात्म रामायण' का करें, उस के अनंतर ही हम दावे के साथ यह कह सकेंगे कि हमारे कवि ने अपने से पूर्व से उपस्थित साहित्य में इतना और इस प्रकार का योग दिया है।[1] दूसरी बात जो हमें देखनी है वह यह है कि हमारे कवि ने जहां-जहां पर अपना मतभेद प्रकट किया है, अथवा कृति को कुछ भिन्न रूप दिया है उस का कोई रहस्य भी है या यों ही उस ने यह किया है। उस की मनोवृत्ति को हम पढ़ने का प्रयत्न करें। और अंत में हम कहें कि हमारे कवि की कला यह है, हमारे कवि की प्रतिभा यह है, और हमारे कवि ने साहित्य को इतना अपनी प्रतिभा के बल पर दिया है। बिना इस कार्य के किए हुए यदि हम आँख मूँद कर और उस के पूर्ववर्ती ग्रंथकारों के प्रति कृतघ्न हो कर सारे के सारे के लिए अपने ही कवि को श्रेय देते हैं तो हम समालोचनात्मक दृष्टिकोण का दिवाला और अपने कवि का पोपलापन ही सूचित करते हैं, और साथ ही अपने कवि को भी ठीक-ठीक नहीं समझते हैं। कवि की अन्य रचनाओं का भी अध्ययन हमें इसी प्रकार करना चाहिए।

---

[1] उदाहरणार्थ, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का यह कथन विचारणीय है कि "मानस में लोकधर्म के यदि दर्शन होते हैं तो उस का श्रेय कवि के उपास्यदेव को है, वाल्मीकि को है, प्रसन्नराघवकार को है और, उस के अनेक पूर्ववर्ती रामचरित लेखकों को है" 'तुलसी के चार दल', पृ० ६९

चौथे पक्ष पर भी संक्षेप में हमें विचार करना है। 'मानस' में आए हुए आध्यात्मिक कथनों की जाँच बड़े परिश्रम के साथ हुई है किंतु कवि की अन्य रचनाओं में आने वाले कथनों की जाँच का अभी प्रारंभ भी नहीं हुआ है। 'मानस' के कथनों के आधार पर भी जो जाँच हुई है उस में हमें एक बात और देखनी है, 'मानस' में कोई कथन कवि को केवल इस लिए तो नहीं करना पड़ा है कि उस ने अपने विचारों का माध्यम एक 'श्रुति-सम्मत' 'नाना-पुराण-निगमागम-सम्मत' कथा को बनाया है—कम से कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसे यथेष्ट स्वतंत्रता उस रचना में न रही होगी। मैं तो इस ध्यान से उस की 'विनयपत्रिका' में आए हुए आध्यात्मिक कथनों को अधिक मूल्यवान समझता हूं। फलतः इस विषय में उस के अन्य ग्रंथों की उपेक्षा घातक हो सकती है।

एक और दूसरी बात है जिस की ओर इसी प्रसंग में ध्यान आकर्षित करना आवश्यक समझता हूं। मेरा ध्यान है कि 'विनयपत्रिका' के पदों को यदि बहुत मनोनियोग पूर्वक पढ़ा जाय तो उस में कवि के भक्त-जीवन का एक इतिहास सा मिलेगा, उस मे हमें 'मिस्टिक' जीवन की वह सब अवस्थाएं मिलेंगी जिन के बीच से कभी न कभी वह गुजरा होगा। मैं समझता हूं कि यह प्रयास बहुत ही रोचक और उपादेय होगा।

एक और बात की ओर भी यहां ध्यान आकर्षित करना है, वह यह है कि क्या 'रामचरितमानस' का कोई ऐसा रहस्यमय पक्ष भी है जिस की ओर कवि ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ और कहीं-कहीं संकेत किया है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस की राम-कथा का एक रहस्यपूर्ण पक्ष है जिस की ओर अभी तक लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। विषय गंभीर है, और उस की ओर साधारण संकेत भी इस लेख में नहीं हो सकता। यहां पर केवल उस के नाम-वंदना वाले प्रकरण की कुछ पंक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित करना पर्याप्त होगा। इन पंक्तियो में कवि ने 'नाम' को न केवल निर्गुण ब्रह्म अथवा निर्गुण राम से बड़ा कहा है, बल्कि उसे सगुण ब्रह्म अथवा सगुण राम से भी बड़ा कहा है:—

निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार॥
राम भगत हित नरतनु धारी।
सहि संकट किय साधु सुखारी

नामु सप्रेम जपत अनयासा ।
भगत होंहि मुद मंगल बासा ॥
राम एक तापस तिय तारी ।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की ।
सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी ॥
सहित दोष दुख दास दुरासा ।
दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा ॥
भंजेउ राम आपु भव चापू ।
भव भय भंजन नाम प्रतापू ॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सोहावन ।
जनमन अमित नाम किए पावन ॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन ।
नामु सकल कलि कलुष निकंदन ॥

सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ ॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ ।
राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे ।
लोक बेद बर बिरिद बिराजे ॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा ।
सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं ।
करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥
राम सकुल रन रावनु मारा ।
सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
राजा रामु अवध रजधानी ।
गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥

सेवक सुमिरत नामु सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती।
फिरत सनेह मगन सुख अपनें।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें।
ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस जिय जानि॥

बाल० २५

यह पंक्तियां तो पाठकों ने कई बार पढ़ी होंगी पर क्या उन्हों ने कभी इस बात पर विचार किया है कि जिन सगुण राम के संबंध में ज़रा सी शंका करने पर कवि ने शिव के मुख से पार्वती को संबोधित करते हुए खूब खरी-खोटी सुनाई है उस सगुण राम की उपासना से भी किसी बड़ी वस्तु की कल्पना उस के हृदय में हुई होगी तभी तो उस ने इन रहस्यपूर्ण पंक्तियों को लिखा। मेरा तो अनुमान है कि सगुण राम की इस कथा के पीछे उस ने अपना कोई गूढ़ आशय भी छिपा रक्खा है जिस के समझने का प्रयास अभी तक नहीं हुआ है। क्या तुलसीदास के अध्ययन में हम इधर भी अपनी कल्पना और विचार-शक्ति का उपयोग करेंगे?

मोहेंजो-दड़ो तथा सिंधु घाटी की सभ्यता

[लेखक—श्रीयुत सतीशचंद्र काला, बी० ए०]

पुरातत्व-संबंधी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान ने अनेक ऐसी पुरानी संस्कृतियो का ज्ञान हमारे लिए सुलभ कर दिया है जिन्हें हम बिल्कुल विस्मृत कर चुके थे। मोहेंजो-दडो, हड़प्पा, तथा सिंध प्रांत के अन्य कई स्थानों से प्राप्त प्राचीन वस्तुओं ने हमारे अतीत पर नवीन और मूल्यवान् प्रकाश डाला है। इस लेख में मोहेंजो-दड़ो-निवासियों के जीवन के कुछ पहलुओं पर विचार करने का प्रयत्न किया गया है।

सैकड़ों वर्ष पूर्व सिंधु प्रांत में खूब वर्षा होती थी, प्रत्येक नगर का सुखी जीवन बहुत कुछ प्राकृतिक सुविधाओं पर भी निर्भर रहता है। लोगों की सब से बड़ी आवश्यकताएं हैं उर्वरा भूमि, तथा जल। काश्मीर के पश्चिमी भाग व चितराल में घास की कुछ ऐसी किस्में मिली हैं जिन से गेहूं व जौ के पौधे निकले हैं। एक जर्मन अन्वेषक तो यहा तक कहते हैं कि संसार में सर्व-प्रथम गेहूं व जौ की उत्पत्ति इसी भाग में हुई थी। मोहेंजो-दड़ो की खुदाई में गेहूं व जौ मिले है। यह गेहूं व जौ के दाने खूब बड़े होते थे। गेहूं तो उसी जाति के थे जैसे आजकल भी पंजाब में उगाए जाते हैं, किंतु उस तत्व तथा आकार का जौ पंजाब में आज कहीं नहीं दीख पड़ता। चावल का भी शायद प्रयोग होता था और वह उसी तरह का चावल रहा होगा जैसा आजकल लरकाना जिले में उगाया जाता है। पशुओं के दूध व घी से भी लोग परिचित थे। हरी तरकारी तथा शाक-भाजी का भी लोगों को शौक़ था। सुंदर मिठाई बनाने के ढाँचे भी बहुतायत में मिले हैं। अनाज कूटने के लिए ओखलियां व गेहूं पीसने की पट्टियां भी प्राप्त हुई है। खजूर का लोग प्रायः प्रयोग करते थे। खजूर के थोड़े से बीज एक बर्तन में मिले है। अनाज रखने के लिए गुदामघरों में बड़े घड़े रक्खे जाते थे। ये घड़े खंडित अवस्था मे हैं। जिन घड़ों की उँचाई, चौड़ाई से कम थी उन के मुँह चौड़े होते, व जो घड़े लबे होते उन का मुँह कम चौड़ा होता था। इन घड़ों का तला समतल नहीं होता था, और

सभवतः यह किसी आधार पर खड़े किए जाते थे, आधार या तो लकड़ी या पत्थर के बनने रहे होंगे, कुछ छोटे घड़ों के गले पर छिद्र-से हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन छिद्रों मे रस्सी डाल कर ये लटकाए जाते रहे होंगे या इन से ऊपर के ढकने बाँधे जाते रहे होंगे। अनेक घडों पर सुदर चमकीली पालिश है। इस चमकीली पालिश पर शायद चूहे नही चढ सकते थे। ग़रीब लोग साधारण लिपे हुए गड्ढों मे ही अनाज रखते थे।[१] कुछ प्राप्त खोपड़ियों के दाँत घिसे तथा टूटे मालूम होते हैं। सभवतः पिसाई करते समय आटे में पत्थर के कण भी मिल जाते थे। रोटियां खाते वक्त ये कण लोगों के दाँतो को हानि पहुँचाते रहे होंगे।[२]

गाय, शूकर, घड़ियाल, कछुवे, भेड़, पंडुक व मछली का मांस मोहेंजो-दड़ो के निवासियों के भोजन का मुख्य अंग था। घोघा खाने के भी काफी प्रमाण मिले हैं। वे ताज़ी तथा सूखी मछली खाते थे। ताज़ी मछली तो सिंधु नदी से व सूखी समुद्र से आती रही होगी। चकमक पत्थर के औज़ार शायद गोश्त वग़ैरह काटने के काम आते थे।

नागरिक जीवन की उच्च सीढ़ी पर पहुँच कर यह स्वाभाविक है कि यहा के निवासी दावत आदि का प्रबंध करते। इस शहर में दावतों के सैकड़ों अवसर आते होंगे। त्योहार व ब्याह-शादी के अवसर पर आजकल ही की तरह हितैषी, मित्र व संबंधी बुलाए जाते होंगे। प्याले, थाली, चम्मच आदि बर्तन बहुत बड़ी संख्या मे यहां मिले हैं। मिट्टी के आधार पर स्थित तश्तरियां भी मिली है। ये तश्तरियां दावतों में फल आदि रखने के काम आती रही होंगी। इन के अतिरिक्त घोघे के चार बड़े चम्मच भी प्राप्त हुए है। ये चम्मच या तो हवन या दावतों मे काम आते थे। कुछ प्याले वग़ैरह रखने की बड़ी तश्तरियां भी मिली हैं। इन के कई भाग किए गए हैं। मिस्टर मैके कहते है कि इन पर दाल वग़ैरह रक्खी जाती थी। भारत में आजकल भी ऐसी थालियां होती हैं जिन पर कि दाल व शाक-भाजी रखने के लिए अलग-अलग कटोरिया बनी रहती हैं। कुछ छोटे छिद्र वाले वर्तुलाकार बर्तनों से मालूम होता है कि वे हाथ धुलाने के बर्तन थे। घोघे की तश्तरियां, मिट्टी की तश्तरियों से अधिक है। ताँबे व पीतल के बर्तनों का भी प्रयोग

---

[१] मैके, 'दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० १५६
[२] मैके, 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो' पृ० ४६

होता था। शायद ग़रीब लोग भूमि पर बैठ कर खाना खाते थे, और धनी लोग चौकियो पर बैठ कर।

पशु-पंजरों से ज्ञात होता है कि वहां के लोग पशु-पालन के शौक़ीन थे। सिंधु प्रात में बहुत पहले से पशुओं को पालतू किया जाता था। यह कहा जा सकता है कि यहा से पालतू पशु बाहर भी भेजे जाते थे। कूबड़दार बैल की उत्पत्ति तो निस्संदेह सिंधु प्रात मे हुई है, और यही से यह बैल भारत के अन्य भागों मे गया था।[1] अब तक बैल, भैंस, भेड, हाथी, कुत्ता तथा ऊँट के पंजर मोहेंजो-दड़ो में मिले है। जंगली जानवरो में काली बिल्ली, हिरन, नीलगाय, बंदर, भालू तथा खरगोश की हड्डियां मुख्य हैं। कुत्ते का चित्रण तो मुद्राओं में हम बार-बार पाते हैं। कुछ ईटो पर भी कुत्तों के पंजों के चिह्न हैं, आज दिन तक कुत्ता मनुष्य का बड़ा भारी साथी समझा जाता है। हड्डियो से पता चलता है कि यहां दो भिन्न जाति के कुत्ते होते थे। एक तो वैसी ही जाति का था जैसी कि आजकल के गाँवों में पाई जाती है, व दूसरा भूरे रंग के बुलडाग जाति का होता था। मिट्टी के खिलौनों से भी पता लगता है कि कुत्ते शिकार के लिए प्रयोग मे आते थे। सिकदर जब भारत में आया था तो राजा सौभूति (?) ने कुत्तों का एक सुंदर प्रदर्शन किया था[2]। इन में कई अच्छी जाति के कुत्ते थे। घोड़े की जाति भी वही थी जो अब तक पश्चिमी सीमा-प्रांत में पाई जाती है। खेद है कि घोड़े का प्रत्यक्ष चित्रण किसी भी मुद्रा पर नही दीख पड़ता। मिट्टी का बना, घोड़े की तरह का, एक खिलौना है[3]। इस के या तो कान थे ही नहीं या वे बहुत छोटे बनाए गए थे। मिस्टर मैके इसे ठीक घोड़ा नहीं बतलाते। किंतु अन्य कई विद्वानों ने इसे घोड़ा ही प्रमाणित किया है। सर ओरियल स्टाइन को भी बलूचिस्तान में कुछ ऐसे खिलौने मिले थे। मद्रास म्यूजियम में रक्खे कुछ खिलौनों से भी इन की तुलना की जा सकती है[4]। सिंध के बैल उच्च नस्ल के होते थे। उन की मास-पेशिया कितनी दृढ़ व शरीर कितना सुडौल होता था यह मुद्राओं में चित्रित बैलों से मालूम

---

[1] 'कलकत्ता रिव्यू', जनवरी, १९३५

[2] मेगेस्थनीज़, 'फ्रैगमेंट्स', पृ० ६

[3] 'आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट', १९२८–२९, पृ० ७४

[4] फ़ुट, 'कैटेलॉग अव् प्रिहिस्टारिक ऐंटिक्विटीज इन दि मैड्रास म्यूज़ियम', पृ० ४८ ६९

होता है। अभी तक सिंध में बहुत अच्छी नस्ल के बैल मिलते हैं। इन शानदार बैलो की नस्लों की रक्षा तथा पालन की कैसी सुव्यवस्था थी, इस का अंदाज, जानवरों के ढाँचो से किया जा सकता है।

कताई, बुनाई के काम के दमकड़े ग़रीब व अमीर दोनों के घरों में मिले हैं। इन मे से कुछ तो फ़ियांस (नफीस मिट्टी) व कुछ साधारण मिट्टी के बने हैं। किसी में दो व किसी में तीन छिद्र तक बनाए गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में मोहेंजो-दडो में कताई-बुनाई का अच्छा प्रचार था। एक बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु जो मोहेंजो-दडो मे मिली है, वह सूत के कपड़े का एक टुकड़ा है। उस काल मे मिश्र, बेबीलोन, आदि देश सूत के विषय में कुछ नहीं जानते थे। सन् १९२६ ई० की खुदाई में रायबहादुर दयाराम साहनी को सूती कपड़े से लिपटी एक कलशी मिली थी। इस कलशी के अदर बहुमूल्य व बेशक़ीमती गहने थे। बाद को परीक्षा के लिए यह टुकड़ा भारतीय सूत की केंद्रीय प्रयोगशाला, बंबई में भेजा गया। मिस्टर टर्नर ने इस कपड़े की जाँच की और यह प्रमाणित किया कि यह कपड़ा शुद्ध भारतीय सूत का बना है। स्मरण रहे कि मोहेंजो-दडो की समकालीन सभ्यताएं अतसी (फ़्लैक्स) ही से परिचित थी। इस के बाद मिस्टर मैके को भी सूत के कुछ तागे व कपड़े के टुकड़े प्राप्त हुए। ये टुकड़े ताँबे की वस्तुओ पर लपेटे हुए थे। शायद वस्तुओं की रक्षा ही के लिए यह कपड़ा लपेटा गया था, ये भी शुद्ध भारतीय कपास के बने हैं। तीन बर्तनों पर चिपका कपड़ा तो छाल के रेशों (फ़ाइबर) से बना है।[१] कुछ सूत के टुकड़ों पर मजीठ का रंग चढ़ा-सा मालूम होता है। वैराट की खुदाई मे फिर सूत का कपड़ा पाने का श्रेय रायबहादुर दयाराम साहनी को ही है।[२] इस कपडे के अदर कुछ सिक्के रक्खे मिले थे। यह कपड़ा पहली शताब्दी ई० का है।

भारत में कपास की कताई-बुनाई के आरंभ का कोई पता नहीं। कताई-बुनाई व दमकड़ों का वर्णन तो हम ऋग्वेद से सूत्रकाल तक के साहित्य में पाते हैं। किंतु इन मे केवल ऊन व रेशम ही का वर्णन है। कपास का सर्व-प्रथम उल्लेख हम 'आश्वलायन-सूत्र' मे पाते हैं। यूनान और रोम के निवासी तथा यहूदी लोग तो कपास को उस के संस्कृत

---

[१] मैके, 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दडो', पृ० ५९१
[२] साहनी ऐट बैराट' पृ० २२

नाम 'कार्पास' से ही जानते थे। इस में संदेह नहीं कि कपास की सर्व-प्रथम उत्पत्ति उत्तर भारत में हुई थी।[1]

मोहेंजो-दड़ो में पहनने का कोई वस्त्र नहीं मिला है। दो चार खंडित मूर्तियो तथा खिलौनों के वेशों से ही हम यहां की वेशभूषा के विषय में थोड़ा-बहुत जान लेते हैं। कुछ स्त्रियों की मूर्तियों पर पंखे की तरह का एक विचित्र शिरोवस्त्र दीख पड़ता है। यह शिरोवस्त्र पीछे से शायद किसी फीते द्वारा बांधा जाता था। इस ढंग की शिरोभूषा ससार के अन्य किसी देश में देखने को नहीं आती। मोहेंजो-दड़ो तथा हडप्पा में भी यह उन्हीं मूर्तियों तक सीमित है जिन को पुरातत्त्व-पंडित मातृदेवी की मूर्तियां मानते है। फिर सिर के दोनों ओर प्याले जैसी भी कुछ वस्तुएं हैं। शायद इन पर घी, मक्खन, वगैरह रख कर जलाया जाता होगा।[2] शिरोवस्त्र पर कुछ धुएं की लपटों के चिह्न है। मातृदेवियों की मूर्तियां केवल एक छोटा-सा पटका पहने हैं। इन मे शरीर के अन्य भाग नग्न हैं। सिर्फ़ एक उदाहरण में शरीर पर संघाटी सी है। शायद संघाटिया शीत वग़ैरह से बचने के कारण पहनी जाती थीं।

पुरुष प्रायः शाल की तरह के कपड़े को शरीर पर लपेटते थे। यह शाल बाएं कुहने के ऊपर तथा दाएं हाथ के नीचे होकर शरीर पर पड़ा रहता था। इस के नीचे भी कोई वस्त्र पहना जाता था या नहीं इस का कोई प्रमाण हमें नहीं मिल सका है। संभवत यह शाल किसी पिन से शरीर पर बाँधा जाता था। मेसोपोटेमिया की कई क़ब्रों में अस्थि-पजरों की बाहों के निकट पिनें प्राप्त हुई थीं। वूली महोदय का कहना है कि शरीर का बाहरी वस्त्र सिला नहीं होता था। शरीर पर लपेट कर यह कपड़ा पिन से बाँध दिया जाता था।[3] उर में भी जो ऐसी पिनें मिली है, वे भी कुचली हुई खोपड़ियों के निकट पडी थी।[4] मिस्टर मैके इन धारणाओं पर कुछ आपत्ति करते है। वे कहते हैं कि ये पिनें वास्तव में सिरों पर लगाने की है। किश की खुदाइयों से तो यह प्रमाणित हो ही

---

[1] जयचंद्र विद्यालंकार, 'भारतभूमि व उस के निवासी', पृ० ३१

[2] मैके, 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो', पृ० २६०

[3] वूली, 'डिगिंग अव् दि पास्ट', पृ० १०४–५

[4] वूली 'रॉयल सिमेट्री', पृ० २३६

गया है कि ऐसी पिनें केवल सिर पर लगाई जाती थी।[१] यहां पर इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि गढ़वाल प्रदेश में अभी तक एक-दो पट्टियों में लोग सिले कपडे नहीं पहनते है। वे बाहर से भाग के रेशों से बनी चद्दरें (त्यूखे) तथा पतले ऊनी कंबलो को पहन कर, उसे फिर पिनों से बाँध देते है।

ग़रीब व धनी व्यक्तियों की वेशभूषा में बड़ा अंतर रहा होगा। ग़रीब लोग तो साधारण कपडे पहनते व धनी लोग कलापूर्ण या शिल्प-सुसज्जित कपड़े पहनते होगे। गले पर कॉलर की तरह का आभूषण कई खिलौनों में है। एक खिलौने से तो मालूम होता है कि कॉलर धातु के छल्लों का बना है।

मोहेंजो-दड़ो तथा सिंधु प्रांत के निवासियों को नाना भाँति के केश-कलापो से प्रीति थी। बाल अक्सर पीछे की ओर ले जाकर चोटी में गूँथे जाते थे। कुछ मूर्तियो मे तो बाल कटे से भी मालूम होते है। एक दो उदाहरणो मे बाल बिना गूँथे बाँध कर पीछे की ओर छोड़ दिए गए हैं। बालों को बाँधने के लिए फ़ीतो का प्रयोग होता था। ये फीते प्रायः बुने रहते होंगे, क्योंकि कुछ मूर्तियों में गाँठे सी दीखती है जिन से ऐसा अनुमान होता है। सोने के बने फ़ीते भी मिले है, किंतु इन का प्रयोग धनी-मानी लोग ही करते रहे होगे। साधारणतया सोने के फ़ीते १६ इंच लंबे व ½ इंच चौड़े हैं। सिर पर शायद टोपी वगैरह भी लगाई-जाती थी।

केशकला की यह सुदर परपरा अजंता, इलौरा, बाघ, तथा त्रावणकोर के भित्ति-चित्रो मे भी प्रदर्शित होती है। किंतु समयानुसार प्राचीन व नवीन केशकलाओं में अतर है। मोहेंजो-दड़ो की केशकला प्राचीन काल की थी, अजता व इलौरा की नवीन युग की। किंतु दोनों देशों की कलाएं सौंदर्य-प्रेम का परिचय देती हैं।

पुरुष छोटी-छोटी दाढ़िया रखते थे। ओंठ का ऊपरी भाग प्रायः साफ़ रक्खा जाता था। ऐसी प्रथा अभी तक दाढ़ी रखने वाले मुसलमानों में पाई जाती है। सुमेर के लोग भी ओंठ का ऊपरी भाग साफ रखते थे। कुछ खिलौनों में सिर मुँडे हुए स मालूम देते हैं।

मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा में उस्तरों की तरह के कई औज़ार मिले हैं। सब से

---

[१] 'एंटिक्वेरीज़ जर्नल' जनवरी १९२९, पृ० २१

प्रचलित उस्तरे वे हैं जो कि दोनों ओर से काम दे सकते थे। बिल्कुल सीधे तथा सिरे पर गोलाकार नमूने के उस्तरे भी काफ़ी प्रचलित थे। सिर मूँड़ने के लिए भी ऐसे ही उस्तरे प्रयुक्त होते रहे होंगे।

यहां कुछ सुइयां भी मिली हैं। कुछ बड़े तार शायद चमड़े वग़ैरह पर छिद्र करने के लिए थे। श्री दीक्षित जी को तीन सोने की सुइयां भी मिली थीं। इन में एक तो सजावट के लिए थी। यह भी संभव है कि इन का प्रयोग संपन्न घरों की स्त्रियां या राजकुमारियां करती थीं। सैकड़ों वर्ष तक भूमि में पड़ी रहने के कारण इन पर ज़ंग लग गई है। इस कारण इन के वास्तविक स्वरूप को जानना कठिन-सा है।

ताँबे के बटन भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। इन बटनों की शकल बीच में गुंबज-नुमा है। क़ियास के बटन भी चलते थे।

मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा निवासियों के कला-प्रेम का सर्वोत्तम उदाहरण उन के आभूषणों में मिलता है। आज तक जितनी भी मिट्टी की मूर्तियां मिली हैं, वे सभी गहनों से लदी हैं। स्त्रियों के अतिरिक्त बच्चे भी शायद सुंदर आभूषण पहनते थे। मर्द सिर्फ़ एक खिलौने में आभूषण पहने है। नगर के निर्धन लोग मिट्टी तथा घोंघे के गहनों को पहनते थे। धनी लोग सोने, हाथीदाँत तथा अन्य बेशक़ीमती पत्थरों के बने गहने अपनाते थे। आभूषणों में गुरियों की मालाएं, कंठहार, बाजूबंद, मेखलाएं, नूपुर, कड़े व चूड़ियां प्रमुख थीं। शायद गले में हँसुली भी पहनी जाती थी। मालाओं के अंत में लगाने के लिए सोने व अन्य धातुओं की पट्टियां बनती थीं। इन पर दो से छ: तक छिद्र बने होते थे। इस से मालूम होता है कि मालाओं में कई लड़ियां होती थीं। कड़े प्राय धातुओं के बनाए जाते थे। चाँदी व सोने के कुछ कड़े अंदर से खाली हैं। उन में शायद लाख या अन्य पदार्थ भरा जाता रहा होगा। आजकल ही की तरह उस काल में गहने रखने के लिए शृंगारदान या कलशियां वग़ैरह थीं। इन आभूषणों की सुंदरता देखते ही बनती है। इन के काटने के ढंग, नाना भाँति के रंगों का मिलान तथा रंग-विधान के दृष्टिकोण से पिरोए जाने के ढंग से अच्छे सौंदर्य-प्रेम का परिचय मिलता है। सब से अच्छे आभूषण अभी तक चाँदी की कलशी में श्री दीक्षित जी को मिले हैं। कंठहारों में सोने की प्राय: चपटी गुट्टिकाएं व्यवहृत होती थीं। दो साधारण कर्णफूल व चाँदी-सोने की कई अँगूठियां भी खुदाई में मिली हैं। कुछ अँगूठियां तो साधारण तार को मोड़ कर

ही बनाई गई हैं। कानों के लटकनों का अभाव-सा दीखता है। सर जॉन मार्शल की धारणा है कि किसी कारण से मृत्यु के बाद कानों से लटकन निकाल दिए जाते थे[1]। यह भी हो सकता है कि सिंधु प्रांत में किसी समाधि को पाकर ये वस्तुएं भविष्य में प्राप्त हो सकें। कानों के कुंडल कैसे थे, इस का भी पता नही। शायद गुरियों पर छिद्र कर व तागे पिरो कर एक प्रकार के कुंडल बनते थे। यह भी संभव है कि कुंडल किसी ग़ैर टिकाऊ पदार्थ के बनते हों, या कुंडल यहा के लोगो को अरुचिकर प्रतीत होते थे। बिना पालिश की हुई एक मिट्टी की गोल छल्ली भी मिली है जिस के कुंडल होने का अनुमान किया गया है[2]। फ़ियांस की नाक की कीलें व फूलियां भी संभवतः लोगों को ज्ञात थीं। किंतु यह अनुमान विवादग्रस्त है, क्योंकि मिट्टी के किसी भी खिलौने पर नाक का कोई आभूषण नही मिलता। श्री दीक्षित की तो धारणा है कि नाक का यह विशेष आभूषण मुसलमानो के आने से पहले भारत में प्रचलित नहीं था[3]। छोटी नथों व बुलाक़ के प्रयोग से भी वहा के लोग अपरिचित न थे।

कंठहार अधिकतर पीतल या ताँबे के हैं। ग़रीब लोग मिट्टी ही के कंठहार पहन कर संतोष कर लेते थे। गुरियों का बना एक कंठहार भी मिला है। कुछ कंठहारों पर कारीगरी की गई है। सर जॉन मार्शल के अनुसार इन पर वस्तुओं के अधिकारी या निर्माण-कर्ता के नाम खुदे हैं।

एक विशेष बात मोहेंजो-दड़ो व हड़प्पा में दीख पड़ती है, वह यह है कि यहां सोने की बनी (एक के अतिरिक्त) अँगूठी नहीं मिली है। अधिकतर अँगूठियां ताँबे की है, और इन का निर्माण ठीक सुमेर की अँगूठियों जैसा है। चाँदी की अँगूठियां भी बहुत कम है। चाँदी की तो मोहेंजो-दड़ो मे किसी प्रकार की कमी न थी। फिर न जाने क्यों इन लोगो ने अँगूठियां नहीं बनाई? शायद किसी धार्मिक संकोच के कारण इस धातु की अँगूठियां न बनाई जाती रही हों[4]।

फ़ियांस के कई छोटे-छोटे बर्तन हड़प्पा व मोहेंजो-दड़ो में प्राप्त हुए हैं। इन मे

---

[1] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० ५२८
[2] मैके, 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो', पृ० ५२२
[3] दीक्षित, 'प्रिहिस्टारिक सिविलिज़ेशन अव् दि इंडस वैली', पृ० १८
[4] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस , पृ० ५२८

तो पीने का पदार्थ अधिक मात्रा में नहीं आ सकता। अनुमान किया जाता है कि इन पर शृंगार का कुछ पदार्थ रक्खा जाता था। आज वैज्ञानिक युग में हम क्रीम, वेसलीन व पाउडर के प्रयोगों की भरमार देखते हैं। किंतु प्राचीन काल के लोगों में भी सौंदर्य बढ़ाने की प्रबल इच्छा थी। नेत्रों पर लगाने के आँजनों को रखने के वर्तनों तथा सीकों से मालूम होता है कि स्त्रियां (और शायद पुरुष) काजल या सुरमे की तरह का कोई पदार्थ आँखों मे लगाते थे। ऐसे बर्तनों में लाल महीन मिट्टी भी मिली है जो कि गेरू की तरह है। घोघे की डिब्बियों में प्रायः यह पदार्थ रक्खा जाता था। यह पदार्थ सुमेर, किश, उर तथा नाल (बलूचिस्तान) में भी प्रचलित था, और निःसंदेह प्राचीन काल के पूर्वी प्रदेशों मे रहने वाले लोग इस का प्रयोग करते थे। रानी शुब-अब की क़ब्र (मेसोपोटेमिया) मे ऐसे पदार्थों से भरी कई डिब्बियां मिली हैं। उन के अंदर के रंग अब बहुत ही ठोस हो गए हैं। इन मे पीला, लाल, नीला, हरा तथा काला रंग था[1]। फिर मोहेंजो-दड़ो मे सीसे का ऐसा द्रव्य भी पाया गया है जो यूनान व चीन में चेहरे पर श्वेत आभा लाने के हेतु प्रयुक्त होता था। एक प्रकार का हरा पदार्थ जो कि ढेरों के रूप में मोहेंजो-दड़ो मे मिला है, संभवतः नेत्र सौंदर्य-वर्धक कोई पदार्थ था।

कुँओं की बहुतायत से अनुमान किया जाता है कि सिंधु प्रांत के निवासी निजी स्वच्छता पर विशेष ध्यान देते थे। और आजकल भी स्नान-ध्यान की जो विशद प्रथा भारत मे दीख पड़ती है उस का उद्गम भी संभवतः सिंधु प्रांत से ही हुआ है[2]।

तपाई हुई मिट्टी के खिलौने समस्त सिंधु प्रांत मे होते थे। ये बड़े ही कौतूहल-जनक हैं। एक बैल या गाय का-सा खिलौना है। इस का सिर हिलता है। इस का बहुत प्रचार था। एक हाथी है जिस को दबाने से विचित्र शब्द होता है। एक जानवर ऐसा है जिस के सिर व सींग तो भेंड़ की तरह, किंतु शरीर व पूँछ चिड़िया जैसी हैं। जानवर के दोनों ओर छिद्र हैं। इन छिद्रों में लकड़ी डाल कर संभवतः पहिए लगाए जाते थे, या इन छिद्रों मे रस्सी लगा कर जानवरों को झुलाया जाता था[3]। सीटियां भी असंख्य

[1] वूली, 'दि रॉयल सिमेट्री', पृ० २४५
[2] दीक्षित, 'प्रिहिस्टारिक सिविलिजेशन अव् दि इंडस वैली,' पृ० १८
[3] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिजेशन', पृ० ५५०

मिली हैं। मुर्ग़ी की शक्ल की कई सीटियां सर जॉन मार्शल को प्राप्त हुई थी। मिस्टर मैके को नाशपाती की तरह की सीटियां मिली है। इन के सिरे व बगल में छिद्र हैं, ऊपर के छेद से बजाने व बगल के छिद्र को बंद करने पर विचित्र आवाज़ आती है। कुछ पक्षी पिंजड़ों के अंदर बंद व कुछ खंभों पर चढ़ते हुए दिखाए गए हैं। ऐसा जान पड़ता हे कि कुछ जानवरो के पैर लकड़ी के बने थे। उन के केवल धड़ ही प्राप्त हो सके हैं। एक पिंजड़े के अंदर तो बुलबुल-जैसी शक्ल का कोई पक्षी है। मिट्टी के सुंदर झुनझुने बच्चो मे बहुत प्रचलित थे। इन के अंदर एक से लेकर तीन तक दाने होते थे। ये झुनझुने हाथ से बनते थे और देखने में बहुत ही साधारण है। दो-चार के ऊपर अवश्य लाल रंग की लकीरो से कारीगरी की गई है। मिट्टी व पत्थर के मनुष्य आकृति के खिलौने भी यत्र-तत्र दीख पडते हैं। मिस्टर मैके को बौनों के रूप के कई खिलौने खुदाई में मिले थे। ऐसे ही बौने प्राचीन मिश्र में आमोद-प्रमोद के लिए प्रयोग मे लाए जाते थे। मोहेंजो-दड़ो मे भी बौनो का शायद यही उपयोग होता था।

प्राचीन काल के लोगों ने अपने बच्चो के दिल-बहलाव के लिए प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर रक्खी थी। हमारा अनुमान है कि सिंधु प्रांत मे खिलौने, आधुनिक चीन व जापान की तरह औद्योगिक तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से भी बनाए जाते थे।

सिंधु प्रांत में गाड़ी का भी प्रचार था। गाड़ी के खिलौनों के बहुत से मिट्टी के पहिए मिले हैं। यह भी बड़े महत्व की बात है कि सभ्यता के इस काल में सिंधु प्रांत निवासी गाडियों से पूर्णतया परिचित थे। एक खिलौने का पहिया तो रथ के ही साथ जुड़ा हुआ पाया गया। दूसरा रथ एक संदूक़ की तरह है। इस की रूप-रेखा अति साधारण है। अनुमानतः प्राचीन काल में सिंध में गाड़ियों को बैल ही खींचते थे। रथों को कौन जानवर खीचता था यह ज्ञात नहीं, घोड़े की हड्डियां तो अवश्य प्राप्त हुई है, किंतु पुरातत्व-शास्त्री इन को बहुत प्राचीन बताने में संकोच करते है। अनेक प्रमाणों से कहा जा सकता है कि मोहेंजो-दड़ो निवासी घोड़े से अनभिज्ञ थे[१]। गाड़ियों के ऊपर चटाई की तरह या जाली जैसा चंदोया पड़ा रहता था[२]।

---

[१] दीक्षित, 'प्रिहिस्टारिक सिविलिज़ेशन अव् दि इंडस वैली,' पृ० ५०
[२] मैके 'फ़र्दर ऐट मोहेंजो-दड़ो' पृ० ५६८–७०

हड़प्पा में ताँबे की एक छोटी सुंदर गाड़ी मिली है[1]। इस को खींचने वाला पशु तथा पहिए खो गए हैं। गाड़ी आगे और पिछले भाग में खुली है। इस के ऊपर एक चदोया है और आगे से एक ऊँचे स्थान पर गाड़ीवान बैठा है। चन्हु-दड़ो में भी दो सुदर मिट्टी की गाड़ियां मिली हैं[2]। गाड़ीवान हाथ में एक कोड़ा लिए है। इन में एक गाडी गाँव की-सी मालूम होती है।

प्राचीन उर के लोग रथों से अनभिज्ञ न थे। उर में प्राप्त एक पत्थर (जो कहीं पर जड़ा था) पर रथ का चित्रण है। इस को पाँच गधे खींच रहे हैं। बनावट से पता चलता है कि असली रथ लकड़ी के बनते थे। यह रथ अनुपम ढंग का है। उस काल मे उर मे शायद रथ नवीन वस्तु नहीं थे[3]। मिस्टर मैके इस रथ की तुलना सिंधी गाडियो से करते है। दोनों स्थानों के पहिए लकड़ी के तीन हिस्सों को जोड़ कर बनते थे। फिर रथ के अनेक भागो को जोड़ने के तरीक़ों में भी दोनों स्थानों में समानताएं दीखती है। तृतीय सहस्राब्दी में उर मे कम से कम तीन प्रकार के रथ थे[4]।

मिश्र देश-निवासियों को भी संभवतः रथ का ज्ञान था। किंतु उन्हों ने इस का वास्तविक प्रयोग काफ़ी देर में किया। सम्राट् हिक्सोस के धावे तक मिश्र की किसी भी वस्तु पर रथ का चित्रण नहीं मिलता। रथ का प्रयोग वहां द्वितीय या तृतीय सहस्राब्दी के मध्य में हुआ होगा[5]।

हड़प्पा में प्राप्त कुछ गर्दभ की हड्डियों से ज्ञात होता है कि यह जानवर सिंधु प्रात निवासियों को ज्ञात था। यह पता चलाना वास्तव में कठिन है कि यह जानवर बोझा ढोने के काम आता था या नही। किंतु हम यह भली भाँति जानते ही हैं, कि प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युग में बैलगाड़ियों से ही बोझा ढोने का काम लिया जाता था।[6]

अन्य वस्तुओं में मिट्टी की एक मोमबत्ती व मोमबत्ती रखने का बर्तन प्रमुख है।

---

[1] 'आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट', १९२६-२७, पृ० १०५

[2] वही, १९३५-३६, पृ० ४२

[3] गैड, 'हिस्ट्री अव् मानूमेंट्स इन उर', पृ० २१-३३

[4] 'एंटिक्वेरीज़ जर्नल', १९२९, पृ० २६-२७

[5] हॉल, 'हिस्ट्री अव् दि नियर ईस्ट', पृ० २३१

[6] दीक्षित 'प्रिहिस्टॉरिक सिविलिज़ेशन अव् दि इंडस वैली'- पृ० ४०

कमरों में रोशनी करने का शायद यह एक ढंग था। मोहेंजो-दड़ो के समकालीन कई देशों में लैंप जलाए जाते थे; मोहेंजो-दड़ो में लैंप की तरह की कोई वस्तु नहीं मिली है।

मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा के बच्चे आजकल ही की तरह गहने पहनने का शौक रखते थे। वे स्वयं कभी-कभी खिलौने बना लिया करते थे। आपस में खेलने के लिए गुडिए भी बनती रही होंगी किंतु ग़ैर-टिकाऊ वस्तु की बनी होने के कारण वे अब नष्ट हो चुकी हैं।

सिंधु प्रांत के लोग शिकारी थे। दो तावीज़ों में अंकित दृश्यों में एक-शृंग तथा जंगली बकरा तीर से मारा जा रहा है। एक मुद्रा में पीपल के वृक्ष पर आल्प्स पर्वत में पाए जाने वाले जंगली बकरे का चित्रण है। संभवतः यह जानवर शिकार का जानवर था। धनुष उन लोगों का प्रमुख हथियार था। चकमक तथा साधारण पत्थर के तीरों का सिंधु प्रांत में सर्वथा अभाव है। धातु के बने थोड़े से सिर मिले हैं। धनुषों द्वारा गोली चलाने का भी प्रचार सिंधु प्रांत में रहा होगा। भालों के फल, तलवारें, व कटारें खुदाई में मिली हैं। मछली तो वहां काँटों से ही मारी जाती थी। इन काँटों के छिद्र तथा बनावट वैसी ही है, जैसी कि आजकल के काँटों की होती है। मछलियां तो सिंधु नदी ही में मारी जाती थीं। गदाओं के सिर पत्थर के होते थे। इन का प्रचार मोहेंजो-दड़ो में अधिक दीखता है। इन में कुछ तो कंकड़ या चूने के पत्थर तथा कुछ सख़्त हरे पत्थर के बनते थे। भालों व बर्छियों के कुछ सिरे बहुत पतले हैं। शायद ये लकड़ी के ऊपर लगाए जाते थे। छोटे-छोटे जानवर तो जालों से पकड़े जाते रहे होंगे क्योंकि यहां जाल-सदृश चिन्हों से अंकित कुछ मिट्टी की वस्तुएं प्राप्त हुई हैं।

प्रतिदिवस काम में आने वाली कितनी ही वस्तुएं खुदाई में मिली हैं। पदार्थों को भूनने की बेंट सहित एक सुंदर तश्तरी विशेष महत्व रखती है, क्योंकि समस्त सिंधु प्रांत में बेंट सहित यह प्रथम वस्तु है। एक प्रकार के वर्तुलाकार बर्तनों पर कई छिद्र चारों ओर से बने हैं। इन से शायद दही वग़ैरह निकालने का काम लिया जाता रहा होगा, या यह धूप आदि जलाने के काम में आती रही होंगी। कुछ के अंदर राख भी पाई गई है। इन में धूप वग़ैरह जलाने पर छिद्रों से फिर सुगंध की लपटें निकलती रही होंगी। प्याले जैसे बर्तन भी मिले हैं, किंतु इन का वास्तविक प्रयोग क्या था इस का पता नहीं। सर जॉन मार्शल कहते हैं कि या तो यह पानी पीने के प्याले हैं या दीपक पत्थर के बहुत

कम बर्तन मोहेंजो-दड़ो में हैं। यहां के निवासी गुरियों के लिए तो सख्त से सख्त पत्थर काट सकते थे, किंतु किसी कारण उन्हों ने पत्थर के बर्तन नहीं बनाए। जो बर्तन हैं भी वे बहुत ही साधारण हैं। भूरे तथा लाल चूने की पत्थर की दो सुंदर तश्तरिया हैं। निःसंदेह इन को कुशलता-पूर्वक बनाया गया है। बर्तनों के अंदर किसी औजार से कोर लगाया जाता था। पत्थर की दो विचित्र संदूकचिया भी मोहेंजो-दड़ो में मिली हैं। एक सदूकची के अंदर तो चार खाने बनाए गए हैं। शायद इन के अंदर नाना प्रकार के सौंदर्य-वर्द्धक पदार्थ रक्खे जाते थे। दूसरी संदूकची के बाहर सुंदर नक्क़ाशी की गई है।[1]

कई लोढ़े व सिलहट भी मोहेंजो-दड़ो में मिले हैं। सिलहटों के बीच में अधिक घिसा होने से जान पड़ता है कि उन से रोजमर्रा काम लिया जाता था। सिलहट प्राय भूमि पर जड़े रहते होंगे, क्योंकि तले का भाग कुडौल बने हैं। कुछ साधारण तख्तिया भी सिलहट का काम देती रही होंगी। तश्तरियां पीले स्लेटी पत्थर की हैं। इन पर पालिश का रंग वग़ैरह पीसा जाता रहा होगा।

अन्य वस्तुओं में आरियां, तलवारें, आदि हैं। बेंट के लिए छिद्र वाली केवल एक गैंती मोहेंजो-दड़ो में मिली है। मोहेंजो-दड़ो में छेद सहित यह पहला औज़ार है। मिस्टर मैके तो कहते हैं कि यह गैंती कुषाण-कालीन है, किंतु यह धारणा ठीक नही जान पड़ती, क्योंकि ऐसी गैंतियों का चित्रण प्रायः बर्तनों पर दीख पड़ता है। यहां की आरिया सुमेर व ईलाम की आरियो से उच्चतर व भव्य थीं। पाठक यहां पर इस बात को स्मरण रक्खेंगे कि प्राचीन देशों की सभ्यताओं में दाँतों वाले बहुत ही कम औजार व्यवहृत हुए हैं। पीतल की एक १६½ इंच लंबी आरी में नीचे की ओर तीन छिद्र हैं। इन छिद्रो पर कीलों द्वारा बेंट जड़ा रहता होगा। छेनियां असंख्य प्राप्त हुई हैं। ये अधिकतर ताँबे या पीतल की बनी हैं। इन में कुछ तो सीधी डंडे की तरह व कुछ चौकोर हैं। दोनों प्रकार की छेनियों के मुख पैने होते थे। दरातियों की तरह के भी कुछ औज़ार हैं, किंतु वे टूटी-फूटी अवस्था में हैं, इस लिए उन का ठीक रूप नही जाना जा सकता। ताँबे की दो तलवारें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन मे एक की लंबाई १८½ इंच है। मजबूती के लिए हथियार को एक ओर बीच में मोटा कर दिया गया है। ऐसी ही एक तलवार फ़िलिस्तीन

---

[1] मार्शल 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिज़ेशन' पृ० ३६९

मे भी मिली है। कुछ हथियारों पर चित्रलिपि-सी है। इस वर्ग के हथियार मोहेंजो-दडो मे बहुत प्रचलित थे। यह अंकन शायद वस्तुओं का नंबर सूचित करता है। या हो सकता है कि यह वस्तुएं किसी नागरिक सस्था या संदिर की निजी संपत्ति रही हो[1]। कभी-कभी कटारों तथा चाकुओं में भेद दिखलाना असंभव हो जाता है।

जानवरों या पक्षियों को लड़ाना उन के आमोद-प्रमोद का एक भाग था। एक मुद्रा में दो जंगली मुर्गों के आपस में लड़ने का सुंदर दृश्य है। इस के अतिरिक्त बाघ व अन्य जानवरों की लड़ाइयो के चित्रण भी यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं।

फलकों पर खेले जाने वाले खेल मोहेंजो-दडो निवासियों को ज्ञात थे। चौपड या शतरंज भी ये लोग खेलते रहे होंगे। टेबुलर पाँसे की तरह कुछ वस्तुओं पर १,२,३ सख्याएं अंकित हैं। कुछ गोटो मे चारों ओर ऊपर-नीचे जाने वाली पक्तियां भी अंकित की गई है। पाँसे वर्तुलाकार है। इन के अतिरिक्त मिट्टी, फ़ियांस व क़ीमती पत्थरो के बने सवार भी है। इन को लोग प्रायः चौकोर तख्तियों पर खेलते रहे होंगे। उर की खुदाई में भी कुछ खेलों के लिए बने लकड़ी के फलकों सी वस्तुएं मिली हैं[2]। मोहेंजो-दडो में तीन भागों सहित चौकोर ईंट का एक टुकड़ा मिला है। यह टुकड़ा फ़र्श पर कही जुडा रहा होगा। अवकाश पाकर लोग प्रायः आँगन में ही बैठ कर पाँसे वग़ैरह खेलते होंगे[3]। घन की तरह के पाँसे सभी सतहों में मिले है, किंतु टेबुलर पाँसे अधिक प्रचलित थे। हाथीदाँत के बने पाँसों की रूप-रेखा बड़ी मनोहर है।

प्राचीन वैदिक साहित्य में अनेक स्थानो पर द्यूत का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में एक पुरुष का खेल मे हार कर अपने कुटुंब सहित दास बनने का वर्णन है[4]।

संगमरमर की गोलियां फेंकने का भी वहां प्रचलन था। कुछ गोलिया सख्त पत्थर की बनी हैं। क़ीमती तथा सख्त पत्थरों की गोलियां शायद पानी के साथ किसी सख्त चूर्ण से रगड़ी जाती रही होंगी। इन गोलियों के साथ साथ चाँदी व सोने की गोलिया भी पड़ी थी। संभवतः चाँदी-सोने की गोलियां अप्राप्य समझी जाती थीं। कुछ छोटे

---

[1] मैके, 'दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० १३१
[2] वही, पृ० १८२
[3] 'एंटिक्विटी' दिसंबर १९३० पृ० ४२५
[4] 'कैंब्रिज हिस्ट्री अव इंडिया', जिल्द १, पृ ९८ १०२

कोण की शक्ल की वस्तुएं भी मोहेंजो-दड़ो मे प्राप्त हुई हैं। शायद बिलियर्ड की तरह का कोई खेल उस काल में प्रचलित रहा हो।

मोहेंजो-दड़ो में मुद्राएं तथा ताम्र-पट्टियां बहुत मिली हैं। केवल दो चार मिट्टी के ही बर्तनों पर इन की छाप दीख पड़ती है। इन मुद्राओं पर अधिकतर पशु ही चित्रित किए गए हैं। प्रायः सभी मुद्राएं औज़ार से काटी जाती थी। इस के बाद छेनी से चित्रण किया जाता था। फिर पालिश करके इसे आग में तपाया जाता था। गरम होने पर इन का रंग श्वेत हो जाता था। कुछ टूटी हुई मुद्राओं का अंदर का भाग नीले रंग का है[1]। कई पुरातत्व-पंडितों ने इन्हें करामाती तावीज़ माना है।

ताम्र-पट्टियां कई आकारों में हैं। इन पर अधिकतर जानवर ही अंकित किए गए हैं। ये शायद तावीज़ थे। इन में खुदान गहरा नहीं है। शायद ये पट्टियां कपडे के अंदर सिली जाती थीं। आजकल की ही तरह फिर यह गले या बाँह में पहनी जाती रही होंगी। सैकड़ों वर्ष बाद फिर बौद्धधर्म के अनुयायियों में भी ऐसे ही तावीज प्रचलित दीख पड़ते है। बौद्धधर्म की, एक प्रकार की मुद्राओं के अंदर भी मंत्र लिखे जाते थे। बाद मे कपड़े पर लपेट कर ये बौद्ध तीर्थ-स्थानों में चढ़ाए जाते थे[2]। संभवतः कुछ भिक्षु इन्हे गले या हाथ में भी बाँधते थे।

मोहेंजो-दड़ो निवासियों के बौद्धिक जीवन का विशेष पता नहीं। उन की लिखावट केवल मुद्राओं ही पर मिलती है। मिट्टी की कुछ पतली तख्तियों से ज्ञात होता है कि ये लिखने की पाटियां थीं। इन की लंबाई ४ से ७ इंच तक है। इन पर शायद किसी प्रकार की पालिश रही होगी। लिखने के बाद फिर ये पाटियां धो दी जाती थीं[3]।

खेती के कम औज़ार सिंधु प्रांत में मिले हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऐसे औज़ार केवल लकड़ी के बनते थे। छिले हुए चकमक पत्थर का एक औज़ार दोनो ओर ढलुवां व बीच में ऊँचा है। यह शायद किसी हल की कील थी। वज़न में भी यह औज़ार बहुत भारी है।

---

[1] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० ३७९
[2] हीरानंद शास्त्री, 'नालंदा', पृ० ३५
[3] मैके 'फ़र्दर ~~एक्सकैवेशन~~ ऐट मोहेंजो-दड़ो', पृ० ४३०

इतना सुसंकृत जीवन बिताते हुए भी यह स्वाभाविक है कि मोहेंजो-दड़ो निवासी मेज़, कुर्सी, पलंग व संदूको से परिचित थे। किंतु ये सभी वस्तुए लकड़ी की बनती होगी। मिट्टी के खिलौने की दो छोटी कुर्सियां खुदाई में मिली है। एक मुद्रा पर भी कोई आकृति बैल के पैरों वाली जैसी कुर्सी पर बैठी है। यह हो सकता है कि इसी नमूने की कुर्सिया उस काल में प्रचलित थीं। इन के अतिरिक्त तिपाइयां व तख्त भी उन लोगों के यहा बनते थे।

आधुनिक फ़ैशन के बीज मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा निवासियों मे उग चुके थे। स्त्रियां बालों मे पिन लगाती थीं। इन पिनों के सिरों पर कभी-कभी पशुओं की आकृतियां बनी रहती थीं। कंघियां उस युग में लकड़ी की बनती थीं। किंतु हाथीदांत की एक सुंदर कंघी भी प्राप्त हुई है। इस कंघी के दोनों ओर गोले बने है। मिस्टर मैके को यह नौ अस्थि-पंजरों के बीच मिली थी।

हड़प्पा में प्राप्त कुछ खिलौनों के शिरोवस्त्रो पर पुष्प लगे हैं। कालातर मे यही फैशन कुषाण व गुप्तकालीन मूर्तियो पर भी पाया गया। आजकल भी दक्षिण-भारत (महाराष्ट्र) व बंगाल में सिर पर फूलों को लगाने की प्रथा है। कुछ आकृतियो से यह भी मालूम होता है कि स्त्रियां कभी-कभी नुकीली टोपियां पहनती थी। नुकीला भाग सिर के एक ओर लटकता रहता था। ऐसी ही टोपी पुरुष-आकृतियों पर भी मिलती है, किंतु इन पर नुकीला भाग एक ओर न गिर कर सीधा रहता है। फ़ीते को माथे पर लगा कर यह टोपी गिरने से बचाई जाती थी।

सिंधु प्रांत की स्त्रियों के विषय मे भी विशेष ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ विद्वानो का कहना है कि खिड़कियों का न होना यह प्रदर्शित करता है कि उस काल मे भी पर्दे की प्रथा थी। किंतु खेतिहर तथा कृषि-प्रधान देशों में पर्दे की कोई आवश्यकता नही पड़ती। मोहेंजो-दड़ो के किसी भी मकान या स्थापत्य से यह ज्ञात नही होता कि पर्दे के लिए मकानों में कुछ विशेष प्रबंध किया गया हो।

यहा के निवासियों का सार्वजनिक जीवन क्या था, यह प्रश्न भी अभी अंधकार मे है। हड़प्पा के कुछ सभा-भवनों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहां के लोग सामूहिक जीवन से परिचित थे और पूजा-उपासना आदि के लिए संघ-रूप में एकत्रित भी होते थे। इस प्रकार के कमरे ५७ फ़ीट लंबे है ईंटें ११×५.५×२.५ की प्रयोग मे

लाई गई है। 'कश्यप-संहिता' में लिखा है कि अग्निवेदी के लिए भी इसी नाप की ईंटें प्रयोग में लाई जाती थीं[1]। बाहर से देखने में ये भवन विशाल मंदिरों की तरह जान पडते है। कुछ लोग अपने घरों में छोटे-छोटे कमरों में ही देवताओं का स्थापन करते रहे होंगे। पूजा की कोई भी मूर्ति मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा में नहीं मिली है।

ऋग्वेद में भी मूर्तिपूजा के संकेत मिलते है। यह संभव है कि मोहेंजो-दड़ो मे लकड़ी की मूर्तियां रही हों। खारवेल की हाथीगुफा (ई० पू० १६१) के शिलालेख मे लकड़ी की बनी केतु की मूर्ति का वर्णन है[2]। शायद यही परंपरा पहले भी रही हो।

मोहेंजो-दड़ो नगर का इतना सुंदर प्रबंध किसी संस्था या समिति ही के द्वारा हो सकता था। मिस्टर मैके एक इमारत को राजमहल के सदृश बतलाते है। उन का कहना है कि मोहेंजो-दड़ो एक गवर्नर (प्रतिनिधि) के अधीन था। अनेक प्रमाणो से मालूम होता है कि सुविधा व सुचारु प्रबंध के लिए नगर को कई भागों में बाँटा गया था। प्रत्येक भाग मे एक-एक रक्षक रहता होगा। इन रक्षकों के लिए सड़कों के कोनो पर बड़े-बड़े मकान बने थे। ऐसे मकानों के दरवाज़े प्रधान सड़क की ओर हैं। एक सडक के बीच में दीवाल बना कर उसे दो भागों में बाँट दिया गया है। इस से नगर के भिन्न-भिन्न भागों मे बाँटे जाने की पुष्टि हो जाती है। यदि ऐसा प्रबंध न होता तो वहा सैकड़ों घटनाएं होती व लोगों का जीवन खतरे में रहता। सड़कों पर शायद रोशनी का भी प्रबंध था। मिस्टर मैके को सड़क के निकट लैप रखने के आधार से मिले हैं[3]।

स्थान-स्थान पर कूड़ा रखने के लिए पीपो को रखना व नालियों को ठीक समय पर साफ करना, मकानों का स्थापन, तथा सुविधाजनक पानी व सड़कों का प्रबंध करना आदि बातों से मालूम होता है कि यहां अवश्य कोई जानपद या म्यूनिसिपल बोर्ड था और यही संस्था नगर के स्वास्थ्य व सुभीते के लिए योजनाएं बनाती थीं[4]। यह बतलाना कठिन है कि शहर में कौन-कौन से अफ़सर होते थे। संभवतः राज्य तथा म्यूनिसिपल बोर्ड की ओर से कई निरीक्षक नगर की देख-भाल के लिए नियुक्त थे। सफ़ाई की देखभाल

---

[1] **'आर्यन पाथ', जुलाई १९३६, पृ० ३०९–१०**

[2] **कुमारस्वामी, 'हिस्ट्री अव् इंडियन ऐंड इंडोनेशियन आर्ट', पृ० ४३**

[3] **मैके, 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो', पृ० १३७**

[4] **'न्यू रिव्यू' सितंबर १९३८ पृ० २४१**

के लिए अवश्य एक अधिकारी अलग नियुक्त रहा होगा।

मिस्टर मैके की धारणा का खंडन मिस्टर हंटर करते हैं। वह कहते है कि मोहेंजो-दड़ो में राजमहल के सदृश कोई इमारत नहीं। उन की धारणा है कि मोहेजो-दडो में कोई राजा न था। यहां प्रजातंत्र सरकार थी। प्रजातंत्र सभा के सदस्य ही सभवतः शहर का प्रबंध भी करते रहे होंगे[1]। इस सभा में अनेक राजनीतिक दलो व मतों के अनुयायी तथा प्रतिनिधि रहे होंगे।

मकानों के पृथक्-पृथक् भाग व्यापारिक सभ्यता का आभास देते हैं। मोहेजो-दडो के एक भवन से मालूम होता है कि इस में एक बड़ी दूकान स्थित थी। इस भवन को कई भागों में बाँटा गया था। एक दूसरी इमारत तो देखने में बिल्कुल अन्न-भंडार की तरह है। बलूचिस्तान जाने के रास्ते की बस्तियों से ज्ञात होता है कि मोहेंजो-दड़ो एक व्यापारी नगर था।

फिर एक ही घर मे पृथक्-पृथक् परिवारो का रहना यह सूचित करता है कि नगर का सामाजिक जीवन भली-भाँति सुसंगठित था। इस से यह भी मालूम होता है कि वहा के निवासी अधिकतर एक ही धर्म के अनुयायी थे। यदि उन में कुछ धर्मभेद था भी तो उस भेद का सामाजिक जीवन पर प्रभाव न था[2]।

व्यापार की दशा दिखलाने वाली दूसरी वस्तु पत्थर के बटखरे है। इन के बनाने मे बडी चतुरता से काम लिया गया है। संभवतः इन बटखरों की परीक्षा के लिए कोई अफसर नियुक्त था, क्योंकि इन बटखरों की तौल में ज़रा भर भी अंतर नहीं है। सब से अधिक बटखरे घन शैली के हैं। किंतु गोल और अन्य शक्लों के बटखरे भी बनाए गए थे। एक बटखरे का (जो सिरे पर त्रिकोण है) वज़न २५ पौंड है। इस के सिरे पर दो छिद्र हैं। इन छिद्रों में रस्सी डाल कर यह बटखरा ऊपर को उठाया जाता होगा[3]। ये बटखरे कई प्रकार के पत्थरों के बने हैं, एक दो को छोड़ कर किसी पर भी चिह्न नही दीख पड़ते। छोटे बटखरे जोड़ के (बाइनरी) व बड़े बटखरे दशमलव (डेसिमल) के

---

[1] हंटर, 'स्क्रिप्ट अव् मोहेंजो-दड़ो ऐंड हड़प्पा', पृ० १३--१४

[2] 'गंगा', पुरातत्वांक, पृ० ६४

[3] मैके, 'दि इंडस , पृ० १३४

आधार पर बनाए गए थे ।

नापने के लिए शायद कुछ पटरियां बनाई गई थीं । एक घोंघे की पत्ती पर १० २६४ इंच के चिह्न बने हैं । ऐसे ही कई टुकड़ों को जोड़ कर संभवतः एक पूरी पटरी बनाई जाती थी[१] ।

ऐसा जान पड़ता है कि मोहेंजो-दड़ो की स्त्रियां चूहों के आतंक से दुखी थीं । इन को पकड़ने के लिए चूहेदानियां बनी थीं । ये चूहेदानियां घड़ों में बनाई जाती थीं । इन के ऊपर तीन-चार छिद्र कर उन पर लकड़ी या लोहे की सींकें डाल दी जाती थीं । लुढ़कने की डर से इन का तला समतल बनाया जाता था[२], पालतू पक्षी पिंजड़ों के अंदर रक्खे जाते थे ।

हाथीदाँत की मछलियों की तरह कुछ वस्तुएं भी मोहेंजो-दड़ो में मिली हैं । इन में छिद्र नहीं है, और इस कारण ये तावीज़ नहीं माने जा सकते । अनेक प्रकार के घोंघे तथा हाथीदाँत की वस्तुएं भी मिली हैं । संभवतः ये संदूक आदि को जोड़ने के लिए होती थीं । दोनों ओर से अंकित हाथीदाँत की सींकें शायद किसी खेल में काम आती थीं । प्राचीन काल में भारत में हाथीदाँत की चीज़ों का महत्व था । कहा जाता है कि राजा सोलोमन के जहाजों द्वारा भारत से हाथीदाँत की चीज़ें बाहर भेजी जाती थीं ।

सिंधु प्रांत निवासियों का जीवन लड़ाई और झगड़े का न था । समस्त सिंधु प्रांत में आत्मरक्षा के हथियारों की कमी है । जो तलवारें मिली भी हैं उन की नोकें पैनी नहीं हैं । इस से जान पड़ता है कि वे शरीर को बेधने के काम में नहीं आती थीं । बाणों के सिरे अवश्य अधिक पाए गए हैं । यदि आत्मरक्षा के लिए किसी शस्त्र का प्रयोग होता था तो वे धनुष-बाण ही थे । इस के अतिरिक्त हम अनुमान करते हैं कि उस काल के लोग उदार-चित्त भी थे और वे एक-दूसरे के हक़ों का आदर करते थे । ढाल व कवच कहीं भी प्राप्त नहीं हुए हैं ।

मोहेंजो-दड़ो में सफाई का सुंदर प्रबंध था, किंतु वहां के निवासी रोगों से मुक्त न थे । आजकल ही की तरह सिंधु प्रांत निवासियों में यह विश्वास था कि तावीज़ों की

---

[१] मैके, 'दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० १३६
[२] मैके, 'फ़र्दर इक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो', पृ० ४२७

शक्ति से भी रोग दूर किए जा सकते हैं। हड्डियों के चूर्णों से भी उस काल में औषधिया बनाई जाती थी। मोहेंजो-दड़ो मे चार प्रकार के हिरनो (काश्मीरी बारहसिंगा, चीतल, साँभर, व पारा) के सींग प्राप्त हुए हैं। कर्नल सिवेल की धारणा है कि ये सींग इधर-उधर से केवल औषधि के लिए मँगाए जाते थे। प्राचीन काल में बारहसिंगों से कई प्रकार की औषधियां बनाई जाती थीं। यहा पर प्राप्त चार प्रकार के हिरनो के सींगों में से केवल पारा नामक हिरन के सींग ही यहां के होंगे, क्योंकि पारा आधुनिक काल के सिंध मे भी पाया जाता है। अन्य प्रकार के हिरन सिंधु प्रांत से बहुत दूर के देशों में पाए जाते हैं[1]। सिंधु प्रांत के ओथ भांजो बूथी नामक स्थान मे मिट्टी के बर्तनों पर श्री मजूमदार को कटल मछली के अंदर की हड्डियां मिली है। यह पदार्थ जिस को 'समुद्रफेन' नाम से पुकारा जाता है आयुर्वेद की बड़ी गुणदायक औषधि है। डाक्टर बेणीप्रसाद के अनुसार यह औषधि कोष्टबद्धता, आँख, कान, गले व चर्म रोगो के लिए रामबाण है[2]।

चट्टानों से निकाली जाने वाली शिलाजीत भी मोहेंजो-दड़ो में मिली है। यह औषधि कई रोगों के लिए काम मे लाई जाती है। आजकल भी पंजाब, काश्मीर, गढ़वाल तथा अलमोड़े के कई स्थानों मे शिलाजीत निकाली जाती है।

यह जानना कठिन-सा है कि वास्तव में सिंधु प्रांत निवासी गणित तथा ज्योतिष शास्त्र से विज्ञ थे य नहीं। मकानों को बनाते समय सदैव सूर्योदय की दिशा का ध्यान रक्खा जाता था। इस के अतिरिक्त वे तारों की गति से दिशाओं को निर्धारित करते थे। संभवत: उन का वर्ष-काल का निर्णय सूर्य की गति ही से होता था। इसी निर्णय के आधार पर सिंधु प्रांत निवासियों को बाढ़ आदि के आने की सूचना मिलती थी[3]।

१९३०--३१ की खुदाई मे मिस्टर मैके को फ़र्शों के नीचे ताँबे के बर्तनों के ढेर तथा अन्य कई मूल्यवान् वस्तुएं मिली थी। शायद किसी भावी धावे की आशंका के कारण लोगों ने जल्दी-जल्दी ये बर्तन गाड़ दिए थे किंतु मारे जाने व अन्य किसी कारण से वे इन बर्तनों को फिर न निकाल सके। इधर-उधर पड़े हुए अस्थि-पंजरों से भी धावे का आभास

---

[1] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिजेशन', पृ० २९
[2] मैके, 'दि इंडस सिविलिजेशन', पृ० १९०
[3] दीक्षित 'प्रिहिस्टारिक सिविलिजेशन अव दि इंडस वैली' प० ३०

होता है। एक कुएं की सीढ़ी पर दो पंजर पड़े थे। सब से नीचे की सीढी पर पड़े मनुष्य-पजर से मालूम होता है कि वह मनुष्य पीछे ढकेला जाकर मरा था[1]। शरीर से अलग किए गए भी कई सिर मिले हैं। शायद शत्रुओं द्वारा कुछ मनुष्यों की हत्या की गई थी। डा० गुह के अनुसार कई खोपड़ियां जली-सी मालूम देती हैं। मिस्टर मैंके कहते है कि "खतरे के नजदीक होने के कारण कुछ शरीर अच्छी तरह से नही जलाए जा सके थे। सभवतः ऐसे मौके पर लकड़ी तथा समय की कमी थी। जल्दी में सिर्फ दाह-संस्कार पूर्ण करने ही के लिए शरीर जलाया गया था।"

मोहेंजो-दडो निवासियों को सीमा-प्रात की ओर से सदैव धावे की आशंका रहती थी। ऐसा जान पड़ता है कि इस नगर पर बलूचिस्तान की ओर से धावा किया गया था। किरथर पहाड़ी की शाखाएं मोहेजो-दड़ो से मुश्किल से ४० मील की दूरी पर हैं। इन पहाड़ों पर रहने वाली पहाड़ी जातियों के लोग शीतकाल या अकाल से घबड़ा कर, नीचे की सुंदर उपजाऊ भूमि मे उतर कर लूट-पाट मचाते थे। मोहेंजो-दड़ो के अंतिम युग मे बहुत से लोग इन्ही शत्रुओं द्वारा मारे गए थे। यह धावा करने वाले ऐसे लोग रहे होंगे जिन्हें मूर्तिपूजा से घृणा थी। धावों की आशंका अधिकतर अंतिम युग मे रही होगी। प्रारंभिक तथा मध्ययुग में शायद मोहेजो-दड़ो नगर की रक्षा का सुंदर प्रबंध था[2]।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि आत्मरक्षा के कोई भी हथियार मोहेंजो-दडो में नही मिले। शहर में न क़िलेबंदी थी और न कोई रक्षा की दीवाल, और श्री दीक्षित जी तो कहते है कि सिंधु-सभ्यता के लोप होने का एक कारण यह कमज़ोरी भी थी। वे संभवतः किसी भी प्रकार की लड़ाई के लिए उपयुक्त न थे। इस कारण वे मजबूत पहाड़ी जातियो द्वारा शीघ्र ही दबा दिए गए[3]।

यह जानना आवश्यक है कि मोहेंजो-दड़ो सदृश नगर के जन-समुदाय में किस-किस आजीविका व धर्म के अनुयायी रहते थे। अब तक प्राप्त वस्तुओं से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह शहर किसी देश की राजधानी था। यह औद्योगिक केंद्र था, और यहां भिन्न-भिन्न जातियों तथा देशों के लोग रहते थे। यह माना जा सकता

---

[1] 'आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट', १९३१–३२, पृ० ५४–५
[2] मैंके. 'फ़र्दर एक्सकैवेशन्स ऐट मोहेंजो-दड़ो'. पृ० ६४७–४८
[3] दीक्षित 'प्रिहिस्टारिक सिविलिज़ेशन आव् दि इंडस वली' पृ० ५७–५८

है कि उच्च वर्ग में पुरोहित, वैद्य या डाक्टर, ज्योतिषी, तथा जादूगर थे। निम्न वर्ग मे मछुवे, मल्लाह, कृषक, दुकानदार, भिश्ती, गाड़ीवान चरवाहे तथा कुम्हार आदि थे[1]। छोटे-छोटे व्यवसायों के तो न जाने कितने लोग यहा पर बसे थे। यह कहना पडेगा कि मोहेंजो-दडो की सभ्यता मे भी आर्थिक असमानता और विषमता थी। समाज का एक शोषित अंग भी था जिस की भित्ति पर उच्च वर्ग स्थित था। अपने यश के दिनो मे मोहेंजो-दड़ो में बड़ी चहल-पहल रहती होगी। भिन्न-भिन्न शक्लों तथा वेष-भूषा के लोग इधर-उधर दीख पड़ते होंगे। इन लोगों के जीवन के अध्ययन का अच्छा अवसर मिलता रहा होगा।

खेद है कि मिश्र तथा सुमेर निवासियों की तरह सिंधु प्रांत के निवासियों ने अपने मृतकों के शरीरों को तथा उन के साथ प्रतिदिवस काम मे आने वाली चीजो को सुरक्षित रखने का प्रबध नही किया। प्राचीन मिश्र निवासियो का विश्वास था कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य या उस का एक भाग जिस को वे लोग 'का' कहते थे, दूसरे संसार में जीवित रहता है। आज उन मीलों तक फैले हुए बालू के मैदानों मे स्थित पिरामिडों की ओर संसार के पुरातत्व-पडितों की दृष्टि लगी है। इन के अंदर इतनी चीजें प्राप्त हुई है कि पुरातत्व-शास्त्री बिना कठिनाई के मिश्र के इतिहास का निर्माण कर सकते है। शायद मोहेंजो-दडो निवासी पुनर्जन्म के सिद्धांत को नहीं मानते थे। उन के धार्मिक विश्वास बहुत भिन्न थे। जीवन व मृत्यु तक ही वे मनुष्य-जीवन का अभिनय समझते थे।

मोहेंजो-दड़ो में अभी तक कोई शव-स्थान नहीं मिला है। इस कारण उन लोगो के शव-संस्कार के विषय मे हमारी जानकारी बहुत थोड़ी है। हड़प्पा में अवश्य एक शव-स्थान मिला है, किंतु सर जॉन मार्शल इसे बहुत बाद का बतलाते हैं। उन के अनुसार मोहेंजो-दड़ो की शव-संस्कार प्रणालियां तीन प्रकार की थीं—

(१) जिस मे शरीर पूरा दफ़न किया जाता था।

(२) जिस मे हड्डी या शरीर के कुछ भागों को गाड़ा जाता था। और

(३) अस्थि-फूलों को गाड़ने की प्रणाली।

पहली प्रणाली के अंतर्गत इक्कीस पंजर हैं। चौदह पंजर एक कमरे में पाए गए

---

[1] दीक्षित प्रिहिस्टारिक सिविलिज़ेशन ऑव दि इंडस वैली पृ० ३२

है। इन में तेरह तो स्त्री-पुरुषों के हैं तथा एक बच्चे का है। मिस्टर हारग्रीव्ज़ कहते हैं कि इन सब की मृत्यु एक ही साथ हुई है। इन के साथ अँगूठियां, कंठहार, मुद्रा व गुरियां भी थीं। इन के अतिरिक्त एक गली में छः पंजरों का दूसरा समूह मिला है। इन के साथ घोंघे का एक बैल तथा कुछ टुकड़े मिले हैं। एक दूसरी गली में एक पंजर पड़ा था, किंतु यह उस समय का है जब कि मोहेंजो-दड़ो अवनति की ओर अग्रसर हो चुका था। कुछ विद्वान् कहते हैं कि ये पंजर किसी बाहरी जाति के लोगों (जो कि मोहेंजो-दड़ो को लूटने आए होंगे) के हैं। किंतु यह धारणा युक्ति-संगत नहीं जान पड़ती, क्योंकि ये पंजर तो तीन भिन्न जातियों के लोगों के हैं। सर जॉन मार्शल कहते हैं कि मृत्यु की थोड़ी देर बाद ये पंजर गाड़ दिए गए थे। उन के अनुसार अंतिम युग के (ई० पू० २७५०) के लगभग यह शरीर गाड़े गए थे[१]।

नाल व शाही टंप (बलूचिस्तान) में भी कुछ इसी प्रकार की प्रथाएं मालूम होती हैं[२]। वहां पूर्ण शरीर ज़मीन के नीचे गाड़े गए थे। इन के लिए विशेष प्रकार की क़ब्रें बनी थी। घुटनों पर ५० डिग्री का कोण बना कर शरीर क़ब्रों में रक्खे जाते थे। हड़प्पा में भी यह प्रथा प्रचलित थी। ऋग्वेद में भी इस प्रकार के दाह-संस्कार का वर्णन है[३]। 'शतपथ ब्राह्मण' व 'अथर्ववेद' काल तक यह प्रथा चलती रही।

दूसरी प्रणाली में मृत्यु के बाद शरीर को खुला छोड़ दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् फिर हड्डियां उठा कर गाड़ी जाती थीं। मोहेंजो-दड़ो में एक मकान के आँगन में, मिट्टी के टूटे बर्तन में एक खोपड़ी मिली थी। इस के निकट ही कुछ हड्डियां टूटे बर्तन, घोंघे व हाथीदाँत की वस्तुएं पड़ी थीं। सर जॉन मार्शल कहते हैं कि यह बर्तन मध्ययुग (ई० पू० ३०००) में गाड़ा गया था। किंतु इस के साथ की सभी वस्तुएं प्रस्तर-ताम्रयुग की हैं। इस प्रणाली के कई और उदाहरण भी मिले है। तीन बर्तनों मे तो कुछ भी हड्डियां नही हैं। यह हो सकता है कि जब मृतक शरीर खुली जगह छोड़ा गया था तो जानवरों ने हड्डियां खा ली थीं। जो कुछ बची भी रही होंगी वे भी मिट्टी के

---

[१] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० ८०-८१

[२] हारग्रीव्ज़, 'ऑर्कियालाजिकल सर्वे मेम्वायर', नं० ३५, पृ० २६

[३] ऋग्वेद, १०।११।१८

साथ मिल कर नष्ट हो गई है। एक गड्ढे में टोकरी भर शरीर की हड्डियां थी।

हड़प्पा के शव-स्थानों को अति प्राचीन नही माना जाता है। यहा दो पृथक् प्रणालियां दीख पड़ती हैं। एक स्थान मे घड़ों पर खोपड़ियां, जबड़े व कुछ हड्डियां थी। ऐसी कब्र एक मकान के कोने पर भी थी। इन के साथ मिट्टी के आहुति आधार व गुरियां थी। दूसरी जगह मे मिट्टी के बहुत बड़े-बड़े घड़े है। इन घडों के अंदर कोई बर्तन नही। लगभग १०० घड़ों मे सिर्फ़ एक घड़े पर छोटा-सा पानी पीने का एक बर्तन मिला था। कुछ में तो केवल खोपड़िया ही थी और कुछ में खोपड़ियों के साथ हड्डियां। एक घडे मे न तो खोपड़ी थी और न हड्डी[1]।

बिल्कुल ऐसी ही प्रणाली नाल मे प्रचलित थी। यहां की कुछ कब्रों मे तो केवल हड्डियों ही के टुकड़े थे। पूर्ण शरीर का पंजर कही भी नहीं पाया गया।

हड्डियों को गाड़ने की प्रथा वैदिक युग के अंतिम भाग तथा उस के बाद तक भी चलती रही[2]। इस के सर्वोत्तम उदाहरण लौरिया नंदनगढ की खुदाई से विदित होते हैं। यहां पर डाक्टर ब्लौक को शव-स्थानों मे सोने की मातृदेवी की एक मूर्ति मिली थी। यह देवी ऋग्वेद के दाह-मंत्र (१०—१६) में पृथ्वी मानी गई हैं[3]। मार्शल तो कहते है कि हड्डियों को गाड़ने की प्रथा वैदेशिक थी, किंतु लौरिया नंदनगढ़ की खुदाई से यह धारणा निर्मूल साबित हो जाती है।

मोहेंजो-दड़ो व हड़प्पा में चौड़े मुंह के कितने ही घड़े मिले है। इन के अदर मिट्टी के खिलौने, पशु-पक्षियो की हड्डियां, कोयला, राख, छोटे-छोटे मिट्टी के बर्तन तथा और कई चीज़े थी। कुछ घड़ों में खोपड़ी के टुकड़े तथा अंगुलियों की हड्डियो के साथ राख पाई गई है। श्री माधवस्वरूप वत्स ने ऐसे १२६ घड़े प्राप्त किए थे।

जिन घड़ों पर जली हुई राख, कोयला तथा हड्डियां है, उन से ज्ञात होता है कि शरीर को जला कर बाद को ये वस्तुएं घड़ों में रक्खी गई थी। अधिकतर घड़े खाली है। शायद जलाने के बाद कुछ भी हड्डियां न बचती थीं। पंजाब मे अभी तक ऐसी प्रथा

---

[1] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिजेशन', पृ० ८४
[2] 'मैन इन इंडिया', जिल्द १६, १९३६, पृ० ३००
[3] ——————— सर्वे रिपोर्ट १९०६, पृ० १२३ २६

है कि चिता से बची-खुची हड्डियां ले जाकर, उन का चूर्ण किया जाता है और फिर य चूर्ण नदी में बहा दिया जाता है ऐसी ही प्रथा शायद मोहेंजो-दड़ो में भी रही हो[१]। इस प्रकार के अस्थिफूल प्रायः फ़र्शों के नीचे रक्खे जाते थे। फ़र्श के नीचे मृतक शरीरों को गाड़ने की प्रणाली तो प्राचीन उर में भी थी[२]।

डाम बूथी में श्री मजूमदार को कुछ प्रागैतिहासिक शव-स्थान मिले थे। इन शव-स्थानों में आमरी शैली के बर्तन थे। एक कमरे में बर्तनों के साथ हड्डियां भी थीं। पूरे पंजर इन स्थानों में कभी न गाड़े गए। इन घड़ों में हड्डियां हैं। राख, कोयले आदि का पता नहीं। संभवतः शरीर को पारसियों में प्रचलित प्रणाली की ही तरह कुछ समय के लिए खुला छोड़ दिया जाता था[३]।

ममी की शकल में मुर्दे की देह को सदैव सुरक्षित करने की विधि शायद मोहेंजो-दडो निवासियों को ज्ञात न थी क्योंकि वहां अभी तक एक भी ममी नहीं निकली है। मेरी लेविन तो कहती हैं कि भारत में दाह-संस्कार से पूर्व ममी का प्रचलन था। किंतु यह धारणा ठीक नहीं है। ऋग्वेद में लिखा है कि शरीर को चिता पर रखने से पहले उस पर घी और लेप लगाया जाता था। किंतु ममी का लेप इस लेप से भिन्न जान पडता है।

अंत में सर जॉन मार्शल कहते हैं कि मोहेंजो-दड़ो में शव को जलाने ही की प्रणाली थी। इस का प्रमाण बर्तनों पर पाए गए कोयले तथा राख हैं। किंतु अन्य दो प्रकार की प्रणालियां भी प्रचलित रही होंगी। जलाने के बाद राख को गाड़ने की प्रथा वैदिक काल के अंत से लेकर आज तक पाई जाती है। महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उन के शरीर को जलाया गया, और फिर अस्थिफूल आठ भागों में बाँटे गए। ये अस्थि-फूल फिर स्तूपों के भीतर रक्खे जाते थे, जिन के चारों ओर परिक्रमा कर बौद्ध भिक्षु, बुद्ध भगवान् का स्मरण करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि मुर्दों को गाड़ने व जलाने की विधियां ऋग्वैदिक

---

[१] मार्शल, 'मोहेंजो-दड़ो ऐंड दि इंडस सिविलिज़ेशन', पृ० ८८
[२] गैड, 'हिस्ट्री अव् मॉनूमेंट्स इन उर', पृ० १७२
[३] मजूमदार, 'आर्कियालाजिकल सर्वे मेम्वायर', नं० ४८, पृ० ११६-१७

काल में भी थीं[१]। किंतु ये दोनों प्रणालियां एक ही साथ न थीं। कई विद्वानों की धारणा है कि ऋग्वेद के मंत्र भिन्न-भिन्न कालो के हैं। मैक्समूलर ने ऋग्वेद काल को दो भागो—प्राचीन व नवीन—मे विभाजित किया है[२]। वे दोनों प्रणालियां संभवतः अलग-अलग युगों मे रही होंगी। सिंधु प्रांत तथा ऋग्वैदिक युग की प्रणालियों में तो निःसंदेह कई समानताएं हैं।

मोहेंजो-दड़ो में कौन-सी लिपि व भाषा प्रचलित थी, यह प्रश्न भी विवाद-ग्रस्त है। श्री हंटर और प्रोफ़ेसर लैंग्डन ने मुद्राओं तथा तावीज़ों पर खुदे चिह्नों का निरीक्षण किया है। यह पता नहीं कि उस काल मे किस वस्तु पर लिखा जाता था। संभव है कि उस समय लकड़ी की तख़्तियां या पटरिया, लिखने के लिए व्यवहृत होती हो।

संसार के प्राचीन देशों की तरह इस लिपि को भी कुछ विद्वान् चित्र-लिपि मानते है। यहां प्राप्त अनेक मुद्राओं के चिह्न सुमेर व मिश्र के चिह्नों की तरह हैं। मिस्टर हंटर तो यहां तक कहते है कि सिधु-लिपि पर आधा प्रभाव मेसोपोटेमिया व आधा मिश्र का है। सिंधु-लिपि में थोड़े से पशु-पक्षियों के रूप के चिह्नों के अतिरिक्त अन्य बाते परंपरागत-सी हैं।

यह संभव हो सकता है कि ये सभी लिपियां एक ही स्रोत से निकली हो[३]। किंतु भिन्न-भिन्न देशो में जाकर इन का रूप बदलता गया। आरंभ में अनेक देशो की लिपियो मे समानता रही होगी; किंतु कुछ ही समय बाद लिपियों में परिवर्तन हो गया। श्री दीक्षित के विचार में सिंधु-लिपि भारत में स्वतंत्र-रूप में फली-फूली[४]।

आश्चर्य होता है कि सुदूर प्रशात महासागर में स्थित ईस्टर टापू में भी सिंधु-लिपि जैसी लिपि मिली है।

मिस्टर हंटर के अनुसार सिधु-लिपि संकेतात्मक है और इस की उत्पत्ति पदार्थ-चित्रों तथा साधारण चित्र-लिपि से हुई है। यह लिपि बाईं ओर से दाईं ओर को पढी

---

[१] 'मैन इन इंडिया', जिल्द १६, १९३६, पृ० २८५
[२] मैक्समूलर, 'ए हिस्ट्री अव् संस्कृत लिटरेचर', पृ० ४५७–४८३
[३] हंटर, 'स्क्रिप्ट अव् मोहेंजो-दड़ो ऐंड हड़प्पा', पृ० ४६
[४] दीक्षित, 'प्रिहिस्टारिक अव् दि इंडस वैली', पृ० ४६

जाती थी किंतु कभी-कभी यह दाईं से बाईं ओर को भी पढ़ी जाती होगी। इस लिपि की उत्पत्ति तृतीय सहस्राब्दी से बहुत पहले हो गई होगी।

प्रोफ़ेसर लैंग्डन की धरणा है कि ब्राह्मी-लिपि सिंधु-लिपि से निकली है। किंतु इन दोनों लिपियों के बीच अवश्य कोई लिपि रही होगी। डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल तो इन के बीच की लिपि को विक्रम खोल की लिपि मानते हैं।

कुछ विद्वान् इन मुद्राओं में द्राविड़ भाषा के कुछ चिह्न पाते हैं। बलूचिस्तान मे 'ब्राहुई' जाति को पाकर इन का अनुमान है कि द्राविड़ पश्चिम एशिया से यहां आकर बसे थे। अनेक पंडित इस धारणा पर आपत्ति करते है। द्राविड भाषा का मूल ये लोग दक्षिण भारत मे मानते हैं। ब्राहुई लोगो के विषय में कहा जा सकता है कि वे लोग दक्षिण भारत के समुद्र-तट के पश्चिमी देश के साथ होने वाले व्यापार के सिलसिले में उत्तर-पश्चिम मे जा बसे हों; और एक द्राविड़ उपनिवेष सूचित करते हों[1]। सिंधु प्रांत की लिपि तीन भागों (१) अक्षरों (सिलेबल) (२) पदार्थ-चित्रों (आइडियोग्राम) व (३) निर्धारकों (डिटर्मिनेशन्स) में विभाजित रही होगी। प्रत्येक मुद्रा पर इन्हीं में से एक चिह्न रहता था। परंतु कई मुद्राओं पर ये तीनों चिह्न साथ हैं। चिह्नों द्वारा अर्थ को पूरा करने के लिए पदार्थ-चित्रों तथा निर्धारकों से सहायता ली जाती थी। प्रायः सभी चिह्न लिपि के अंत में हैं। जहां ऐसे चिह्न मध्य में हैं वहां शब्द-विभाजन हो जाता है। कुछ अंशों मे तो चिह्न स्वयंबोधक हैं व कुछ में वे पदार्थ के अर्थ के बोधक हैं।

इन मुद्राओं पर क्या लिखा है, यह ज्ञात नहीं। संभवतः इन पर किसी के नाम लिखे है। कुछ मुद्राएं संभव है व्यापार के गट्ठों पर लगी मिट्टी की पट्टियों पर छापी जाती रही हों। एक गट्ठे पर तो वास्तविक मुद्रा मिट्टी की मुद्रा के साथ चिपकी मिली थी।

भारत के प्राचीनतम सिक्कों—कार्षापणों—पर भी सिंधु-लिपि जैसे चिह्न अंकित हैं। ऐसा विदित होता है कि प्राचीन भारत की परंपरा ही के कारण ये चिह्न इन सिक्कों में आए हैं[2]। कतिपय विद्वानों ने कहा है कि भारत में कार्षापण सिक्के या सिक्कों का

---

[1] जयचंद्र विद्यालंकार, 'भारतभूमि व इस के निवासी', पृ० २४०

[2] 'जर्नल अव् दि एशियाटिक सोसाइटी अव् बेंगाल'; न्यूमिस्मेटिक सप्लिमेंट फ़ॉर १९३४; पृ० १६–७

प्रचलन यहा बाख्त्री के यूनानियों द्वारा हुआ। किंतु यह धारणा ठीक नहीं है। पहले तो हम लोगों को ऐसे मूर्तिकला के उदाहरण प्राप्त हुए हैं, जिन की आयु ई० पू० २५० व १५० है।[१] इन में कार्षापण सिक्कों का अंकन है। कनिंघम ने इस विषय में अच्छी धारणाएं पेश की हैं[२]। इन सिक्कों व सिंधु प्रांत के चिह्नों में अवश्य कोई सबंध था, ऐसा जान पड़ता है।

---

[१] मजूमदार, 'ए गाइड टु दि स्कल्प्चर इन दि इंडियन म्यूज़ियम', भाग १, पृ० ४६
[२] कनिंघम 'क्वायन्स अव् ऐंशेंट इंडिया' पृ० ५२ ४

हिंदी नाटक और नाट्यमंच

[लेखक—श्रीयुत रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

(१)

इस छोटे से निबंध में हिंदी नाटकों के इतिहास पर एक साधारण दृष्टि डालने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही साथ हिंदी नाट्यमंच के वर्तमान रूप और उस के ह्रास के कारणों पर विचार किया गया है। सच बात तो यह है कि हम ऐसी परिस्थिति मे है जब हम हिंदी के अपने नाट्यमंच के होने का दावा ही नही कर सकते। इस का प्रभाव हमारे यहां नाटकों की रचना पर भी पड़ा है। इस लिए यह कहना अनुचित न होगा कि इस विषय का व्यावहारिक दृष्टि से महत्व है।

यह कहना कठिन होगा कि हिंदी का पहला नाटक कौन है। हम ने अपनी परपरा बहुत अंशों में संस्कृत से ग्रहण की है। हम जानते हैं कि संस्कृत साहित्य नाटकों के विषय मे विविध, पूर्णरूप से विकसित, और संपन्न है। यह देखते हुए यह अनुमान होना स्वाभाविक है कि हमारे प्रारंभिक नाटक संस्कृत का आधार लेकर बने होंगे। संस्कृत के नाट्यशास्त्र की भी अपनी परंपरा है, इस लिए यह आरंभिक नाटक उस से भी प्रभावित रहे होंगे। लेकिन हिंदी की वह प्रारंभिक रचनाएं जो 'नाटक' के नाम से अभिहित हुई हैं इस बात का प्रमाण नही देतीं। संभव है खोज करने पर हमें सोलहवीं सदी या उस से पूर्व की भी कुछ रचनाएं मिलें, लेकिन जिन दो सब से पुराने नाटकों के हवाले मुझे इतिहास-ग्रंथों में मिले है वह है 'करुणाभरण नाटक' और 'रामायण महानाटक या महानाटक भाषा'। इन मे से पहला सन् १६०० में अर्थात् १६वीं और १७वीं सदी के संधिकाल में, किसी लच्छिराम के बेटे कृष्णजीवन द्वारा रचा गया। दूसरे की रचना प्राणचंद ने १६०९ में की। यह नाटक इसी सदी की खोज में प्राप्त हुए हैं, और प्रकाशित नहीं हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में हम इन के उद्धरण पाएंगे। प्राणचंद के नाटक का उद्धरण पंडित रामचद्र शुक्ल ने भी अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में दिया है। यह नाटक पद्यमय है। पहले

मे कृष्णलीला और दूसरे में रामकथा का बखान हुआ है। नाटक संवाद के ढंग के हैं। इन में हमें कवित्व की छटा मिलेगी, कोई नाटकीय विशेषता नही। अब से पचीस-तीस साल पहले की अपने गाँव की रामलीला देखने की मुझे सुधि है। संगीत-मंडली कथा का पाठ किया करती थी। मूरतें उन्ही के बोल दुहराया करती थी, या पाठ के सहारे अभिनय किया करती थीं। प्राणचद और कृष्णजीवन के नाटक इसी अर्थ में नाटक है। और यह कहना न होगा कि नाटकों की जिस रूप-रेखा से हम आजकल परिचित है, उस से यह बहुत अलग हैं। इन नाटको के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता न थी। प्राकृतिक दृष्यों में इन की भूमिका होती रही होगी। हमें सत्रहवीं सदी की और भी रचनाओ का पता लगता है जो 'नाटक' के नाम से अभिहित तो हुई है, परंतु जो वास्तव में नाटक है नहीं। उदाहरण के लिए केवल एक ऐसी रचना का नाम लेना पर्याप्त होगा। सन् १६३७ के आसपास आगरे के प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास जी ने 'समयसार' नाटक की रचना की। यह कुंदकुंदाचार्य के ग्रंथ का भाषांतर है। यह एक प्रसिद्ध जैन काव्य है जिस मे केवल जैनधर्म-संबंधी सात तत्वों का पद्यमय वर्णन तथा नीति-कथन है। नाटकीय आख्यान कुछ भी नही है। इस प्रकार हम देखेगे कि हिंदी के प्रारंभिक तथा-कथित नाटक आधुनिक अर्थ मे नाटक न हो कर कुछ और ही हैं। 'करुणाभरण' और 'रामायण, महानाटक' जैसे सवाद-नाटकों का क्रम हमारे समय तक चला आता है और हम आज भी रासलीला तथा रामलीला करने वालों के यहाँ इन का उपयोग पाते है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र से पहले हिंदी मौलिक नाटकों का प्रायः अभाव है। सत्रहवी और अठारहवी सदी के जिन हिंदी नाटकों का हमें पता चलता है---और इन की संख्या बहुत थोडी है---वह या तो किसी सस्कृत नाटक के अनुवाद है, या उस का सहारा लेकर रचे गए हैं। सत्रहवीं सदी के आरंभ में ही, सन् १६२३ में पंजाब के एक हृदयराम ने संस्कृत नाटक के आधार पर 'हनुमन्नाटक' लिखा। सत्रहवीं सदी के मध्यभाग में मारवाड़ के महाराजा जसवंतसिह ने 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक संस्कृत के इसी नाम के नाटक का सहारा लेकर रचा। सन् १६८८ के लगभग नेवाज कवि ने कालिदास के सुविख्यात नाटक को लेकर हिंदी में 'शकुंतला नाटक' का पहला रूप प्रस्तुत किया। यह सज्जन अंतर्वेद के निवासी ब्राह्मण थे और शाहजादा आजमशाह के आश्रित रहे, और उन्हीं की आज्ञा से उन्हो ने शकुतला नाटक के ---------- को ब्रजभाषा पद्य में लिखा। सत्रहवीं सदी के अंत में कवि

देव ने (जो श्री ब्रजरत्नदास जी के अनुसार प्रसिद्ध कवि देव से भिन्न हैं) अपना देवमाया प्रपच' नाटक प्रस्तुत किया। यह भी संस्कृत के 'प्रबोध-चंद्रोदय' के आधार पर लिखा गया है। अठारहवीं सदी के मध्यभाग में भरतपूर दरबार के आश्रित माथुर ब्राह्मण सोमनाथ उपनाम 'ससिनाथ' ने भवभूति के 'मालतीमाधव' का पद्यमय अनुवाद 'माधव-विनोद' नाम से किया। इस प्रकार संस्कृत नाटकों के अनुवाद होते रहे। परंतु जैसा बताया गया ऐसी प्राप्त रचनाओं की संख्या इनी-गिनी है।

यह किंचित् आश्चर्य की बात है कि यद्यपि हमारा नाट्य-साहित्य इतना क्षीण है, पड़ोसी बिहार में इस संबंध की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। मिथिला में संस्कृत साहित्य के अध्ययन की परंपरा आज भी कुछ अंशों मे अक्षुण्ण है। वहां संस्कृत में, तथा मैथिली मे, और साथ ही संस्कृत और मैथिली मे मिले-जुले बहुत-से नाटक रचे गए, जिन मे से अनेक मौलिक भी थे। चौदहवी सदी के आरंभ में परमार-वंशीय राजा हरिसिंह देव की सभा मे ज्योतिरीश्वर ठाकुर नाम के प्रसिद्ध कवि तथा नाटककार हो गए हैं जो सस्कृत में रचना किया करते थे। इन्हीं की सभा के उमापति उपाध्याय ने 'पारिजात-हरण' नाटक लिखा, जिस की भाषा तो संस्कृत-प्राकृत का मिश्रण है परंतु जिस के पद सभी मैथिली में हैं। इस तरह संस्कृत नाटक-परंपरा किस प्रकार मैथिली में प्रविष्ट हुई, इस का हम इस उदाहरण में किंचित् परिचय पाते हैं। हिंदी मे ऐसे उदाहरण हमे नही मिलते। सन् १३२६ के लगभग ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के मिथिला पर अधिकार कर लेने के अनंतर हरिसिंह देव नैपाल चले गए और आगे चल कर इन के वंशजों का विवाह-सबंध नैपाल के मल्ल-राजवंश में हो गया। इस के परिणाम स्वरूप अनेक मैथिल विद्वानो को नैपाल में राज्याश्रय मिला। मल्लवंश के आश्रय में तथा स्वयं राजपुरुषों द्वारा मैथिली मे पंद्रहवीं से अठारहवीं सदी के बीच अनेकानेक नाटक रचे गए। उस के अतिरिक्त भी प्रतिभाशाली लेखकों ने बहुत से नाटक रचे जिन में अधिकांश अभी अप्रकाशित है। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने ही 'पारिजातहरण', 'रुक्मिणीपरिणय' आदि नाटक लिखे। देवानंद ने 'उषाहरण', हरिनाथ झा ने 'उषाहरण' और 'माधवानंद', भानुनाथ झा ने 'प्रभावतीहरण', लाल झा ने 'गौरीपरिणय', जीवन झा ने 'सामवती-पुनर्जन्म' और 'नर्मदा-सट्टक' आदि लिखे। इन सभी नाटकों के आधार प्रायः पौराणिक आख्यान हैं, एक ही कथा लेकर कई-कई नाटक भी रचे गए हैं। इन के स्वतंत्र-रूप से अध्ययन की

है। मिथिला में बहुत काल से यह प्रथा रही है कि विशेष उत्सवों पर राजसभा में तथा विशिष्ट आश्रयदाताओं के यहां नाटक प्रस्तुत करा कर उन का अभिनय कराया जाता रहा है। इस कारण वहां नाटकों का बहुत प्रचार रहा है। हिंदी साहित्य की निधि कविता के रूप में विशेषता के साथ हमारे सामने आई है, नाटक के रूप में नहीं।

(२)

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने, जिन्हों ने हिंदी नाटकों के लिखने में बड़ा यश पाया और हिंदी नाटकों के इतिहास की जिन्हों ने छान-बीन भी की, रीवां के महाराजा विश्वनाथ सिंह के 'आनंदरघुनंदन' नाटक को हिंदी का पहला सर्वांगपूर्ण नाटक बतलाया है। यह रामकथा को लेकर लिखा गया है। इस में छंदों की बहुतायत है, और वे ऊँचे दर्जे के है। पात्रों की व्यवस्था सुंदर है। कथोपकथन और छंद दोनों ही ब्रजभाषा में हैं। इन महाराजा ने १७२१ से १७४० के बीच राज्य किया था। इन के बाद भारतेंदु ने दूसरा नबर अपने पिता के रचे हुए 'नहुष नाटक' को दिया है, यह रचना भी मौलिक है। भारतेंदु के पिता गोपालचंद गिरिधर नाम से लिखा करते थे। यह नाटक सन् १८४१ मे लिखा गया था। पर इसे किसी ने पूरा देखा नही। कहते है कि नाटक की कापी प्रेस में जाकर गुम हो गई। इस का पहला अक 'कविवचनसुधा' के पहले साल की जिल्द में छपा था और लोगों को इतना ही मालूम है कि संस्कृत की चाल पर इस नाटक में पदों की बहुतायत है। पहले ही अंक में ६१ पद हैं। कथोपकथन उस समय के साधारण गद्य मे है, और कथा इद्र की है और पुराणों से ली गई है। इस प्रकार मौलिक नाटकों की रचना का आरभ तो हो गया था लेकिन उन पर संस्कृत शैली का प्रभाव पर्याप्त था। साथ ही अनुवाद भी होते ही रहते थे। महाराजा रीवां और गोपालचद के समय के बीच हम अन्य नाटकों का परिचय भी पाते है। इन में से सोमनाथ के 'माधव-विनोद' के सबध मे हम अभी बता चुके है। १७७० के लगभग रचा हुआ ब्रजबासीदास का 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक मिलता है। सन् १८६२ में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुंतला नाटक' का अपना प्रसिद्ध अनुवाद प्रकाशित किया।

हरिश्चंद्र से पूर्व के हमारे नाट्यसाहित्य का यह सक्षिप्त परिचय है। हमें नाट्य-मच की दो अलग परंपराए मिलेंगी। एक तो संस्कृत नाटकों की परिपाटी के अंतर्गत है दूसरी परिपाटी के रगमंच को हम लोक-रंगमंच कह सकते हैं इस काल में संस्कृत

मे भी नाटक रचाए जाते थे, अतएव रंगशाला आदि का निर्माण पुरानी शैली पर होत रहा, यह अनुमान सहज है। संस्कृत नाट्यमंच की रूपरेखा भरत के नाट्यशास्त्र, अन्य शास्त्रीय ग्रंथों तथा स्वयं नाटकों के अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने किया है। इन मे सिल्वान लेवी, कीथ, डे, और याज्ञिक मुख्य है। भरत के नाट्यशास्त्र मे नाट्य-मंडप के निर्माण के संबंध मे विस्तार से बताया गया है। इस के अतिरिक्त देवार्चन, तांडव, पूर्वरंग, नांदी, प्रस्तावना, रस, भावादि, अभिनय, नृत्यभाव, पात्र, प्रवृत्ति, छंद, अलकार, कथावस्तु, संधि, वृत्ति, हाव-भाव, नायक-नायिका-भेद, अभिनय-कला, दर्शन, वादनयंत्र आदि आदि का भी विवेचन है। सारांश यह कि सस्कृत के नाट्यशास्त्रियो ने नाट्य के सभी अवयवों पर सूक्ष्म विचार किया है और कभी-कभी इन के विश्लेषण बाल की खाल खींचने के दर्जे तक पहुँच गए हैं। इस से यह अनुमान लगाना उचित न होगा कि संस्कृत नाटक पूर्णतया रूढ़िवद्ध थे। कथावस्तु, पात्र, और रस के हेर-फेर से रूपकों और उपरूपकों के अनेक भेद किए गए हैं। इस प्रकार नाटककारों को वहुत स्वतंत्रता मिल जाती रही है और संस्कृत नाट्यसाहित्य में विविधता की कमी नहीं है। हिंदी के रूपक-बद्ध नाटकों के अभिनय के विषय में यह मानना होगा कि उन में काल और स्थान के भेद से परिवर्तित पुरानी परंपरा का अनुसरण हुआ है। लेकिन इस प्रकार के नाटकों का अभिनय विशिष्ट समाज में ही होता रहा है। लोक-नाट्यमंच तो हमे रासलीला और रामलीला के रूप में ही मिलेगा।

(३)

हरिश्चंद्र के साथ हिंदी नाटकों का नया युग आरंभ होता है। उन्हों ने हिंदी नाटको को नए ढंग से सँवारा, उन में नई जान पैदा की, उन्हें इस ज़माने की चीज़ बनाया। बचपन में हरिश्चंद्र ने उर्दू-फ़ारसी सीखी थी। संस्कृत भी अच्छी जानते थे। बंगाल मे कुछ दिन रह कर बँगला जान गए थे, और बंगाली नाट्यमंच में जो नए प्रभाव पैठ रहे थे उन का भी अंदाज़ पा गए थे। अंग्रेज़ी पढ़े थे। हिंदी भाषा-साहित्य के तो वह पूरे पडित थे। उन्हों ने अपने से पहले के नाटक-साहित्य की छान-बीन की। नाट्यशास्त्र का भी अध्ययन किया। १८८२ के लगभग उन्हों ने जो 'नाटक' शीर्षक निबंध लिखा उस से पता चलता है कि उन्हों ने न केवल संस्कृत तथा अंग्रेज़ी के नाट्यकला के ग्रंथों को आधार माना- वरन् संस्कृत- भाषा तथा यूरोपीय नाटकों का संक्षिप्त इतिहास भी दिया।

उन्हों ने हिंदी नाटक के भांडार को रिक्त पाया और उस की पूर्ति का निश्चय किया। यद्यपि वह सन् १८८५ में केवल ३५ वर्ष की अवस्था में परलोकवासी हुए, नाटकों के क्षेत्र में जो काम वह कर गए थोड़ा नहीं था। यों तो वह बड़े अच्छे कवि भी थे। नाटक उन के १५–१६ मिलते हैं। उन में आधे के लगभग अनुवाद हैं, या दूसरे नाटको का सहारा लेकर लिखे गए हैं। अनुवाद भी उन्हों ने बँगला, संस्कृत, अंग्रेजी सभी से किए हैं। उन का कदाचित् सब से प्रसिद्ध नाटक 'सत्य-हरिश्चंद्र' है, और यह अनुवाद है एक बँगला नाटक का, जो स्वयं संस्कृत के 'चंडकौशिक' नाटक का अनुवाद है। इस के अतिरिक्त बँगला के 'विद्यासुंदर' नाटक का भी अनुवाद इन्हों ने किया। संस्कृत से 'कर्पूरमंजरी', 'मुद्राराक्षस' और रत्नावली के अनुवाद हुए। शेक्सपियर के 'मर्चेंट अव् वेनिस' का भी अनुवाद इन्हो ने किया। मौलिक नाटकों में 'चंद्रावली', 'नीलदेवी' और 'भारत-दुर्दशा' बहुत प्रसिद्ध हैं। 'भारतदुर्दशा' और 'अंधेरनगरी' प्रहसन हैं। हरिश्चंद्र के नाटको के गद्य पर उर्दू नस्र का प्रभाव पड़ा है और वह पहले हिंदी नाटक लिखने वालों में है जिन्हो ने खड़ी बोली का ठीक-ठीक उपयोग किया है। नाटक लिख कर हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य की सेवा तो करना ही चाहते थे। यह बात ध्यान देने की है कि वह समाज-सुधार का जरिया भी नाटकों को बताना चाहते थे। हरिश्चंद्र के नाटककार होने में सफलता का सब से बड़ा कारण मुझे यह जान पड़ता है कि वह स्वयं खिलाड़ी थे और मंच या स्टेज पर काम करना जानते और चाहते थे। बनारस में इन के नाम से एक 'भारतेंदु नाटक-मंडली' भी स्थापित हुई और इस की देखा-देखी और जगहों मे मंडलियां भी बनीं। इन मंडलियों पर पारसी रंगमंच का कुछ प्रभाव पड़े बिना न रहा। फिर भी नाटकों की साहित्यिकता ने अनेक दूषणों से इन मंडलियों के नाट्यमंचों की रक्षा की। जिस प्रकार स्वयं भारतेंदु के नाटको पर अपने समय के प्रभाव पड़े बिना न रहे, उसी प्रकार उन के नाट्यमंच पर भी। सब बातो पर विचार करते हुए यह कहना ठीक होगा कि हरिश्चद्र ही हिंदी के सब से अधिक प्रभाव रखने वाले नाटककार हुए हैं, उन्हीं का नाट्यमंच से भी घनिष्ट परिचय रहा है। आज पचास वर्ष बाद हम हरिश्चंद्र के नाटकों में त्रुटियां भले ही देखें, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने समय में वह बहुत बड़ी शक्ति थे। दूसरे साहित्यिकों पर उन का बड़ा असर था और उन के दिखाए मार्ग पर कितने ही चलने को तैयार थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाटको को बहुत प्रचलन दिया और उन के समकालीन

तथा उन के कुछ बाद आने वाले बड़े साहित्यिकों ने बहुधा नाटक लिखने का प्रयत्न किया। उन सभी लेखकों के या उन के नाटकों के नाम लेने की न तो यहां आवश्यकता है न इस के लिए स्थान ही है। इन में मुख्य-मुख्य लेखक थे—पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्री राधाचरण गोस्वामी, पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू तोताराम सनाढ्य, पंडित अंबिकादत्त व्यास, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू श्रीनिवासदास और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'। यह सभी आदरणीय साहित्यिक हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास मे इन के नाम अमिट रहेंगे। लेकिन नाटक लिखने में इन में से किसी ने विशेष कमाल न दिखाया। इन के नाटक पढ़ने की चीज़ें है। उन में ऊँचे दर्जे की कविता मिलेगी। लेकिन स्टेज से उन का मानो दूर का वास्ता है। बदरीनारायण चौधरी ही को ले लीजिए। उन के 'भारत-सौभाग्य' नाटक में ९० के करीब पात्र-पात्री हैं। रंगमंच के प्रबंधक के लिए इतने पात्रों का निर्बाह करना कितना कठिन है? या राय देवीप्रसाद पूर्ण के 'चद्र-कला-भानुकुमार' नाटक को ले लीजिए। नाटक क्यो यह महानाटक है। एक तो सारे के सारे नाटक का खेला जाना ही दुस्तर है। दूसरे इस में ऐसे-ऐसे सीनो तथा करतबो को स्थान दिया गया है कि उन का प्रबंध हो तो कैसे हो। नमूने के लिए किसी पात्र द्वारा शेर का मारा जाना लीजिए। कविता का हिस्सा इतना अधिक है कि उस से कथा की गति रुकती है। बहुत कुछ यह नाटक अब भी संस्कृत परंपरा लिए रहते थे। उन का उद्देश्य देखने वालों में किसी विशेष रस का उद्रेक करना होता था, स्वाभाविकता लाना नहीं। बाबू राधाकृष्णदास के नाटक खेले भी गए और पसंद भी किए गए। किसी समय मे उन की बड़ी ख्याति थी। फिर भी उन में औरों जैसी बहुत सी कमजोरियां है। दिल्ली के बाबू श्रीनिवासदास ने अलबत्ता औरों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया है। इन्हों ने संस्कृत के एक और नियम का भी बंधन तोड़ा है। अर्थात् अपने 'रणधीर-प्रेममोहिनी' नाटक को दुःखांत या ट्रेजेडी बनाया। यह बात सभी जानते है कि दु:खांत रचना के लिए संस्कृत में शास्त्रीय निषेध है। यह नाटक हिंदी का पहला दु:खांत नाटक है।

(४)

नाट्यमंच की आवश्यकताओं पर ध्यान न देने का एक परिणाम यह हुआ कि स्टेज हिंदी के के हाथो से निकल गया पारसी थियेट्रिकल कंपनियों ने जोर

पकड़ा। जो नाटक इन कंपनियों द्वारा हमारे सामने आए उन के बारे में और जो कुछ कहा जाय वह साहित्य की वस्तु नही थे। उन्हों ने देखने वालों में कैसी रुचि उत्पन्न की इस बात पर दो रायें हो सकती है। लेकिन साहित्य की दृष्टि से उन्हों ने मौलिक अच्छे नाटकों के लिखने के काम को धक्का पहुँचाया।

इस बीच में नाटकों के अनुवाद भी बहुतायत से हुए। अनुवाद संस्कृत से भी होते रहे और बँगला तथा अंग्रेजी से भी हुए। बँगला नाटकों के अनुवाद बहुत पहले बाबू राधाकृष्णदास ने आरंभ कर दिए थे। 'वीरनारी', 'पद्मावती' आदि इस बात की याद बनाए हुए हैं। बाद में पंडित रूपनारायण पांडेय ने द्विजेंद्रलाल राय के बँगला नाटको के हिंदी अनुवादों ने बाज़ार भर दिया। यह अनुवाद बहुत पसंद भी किए गए और पिछले बीस बरसों में इन की बड़ी माँग रही है। जब कभी शौक़ीन खिलाड़ियों को नाटक खेलने की जरूरत पड़ी तो वह बहुधा द्विजेंद्रलाल राय की शरण मे गए। संस्कृत से अनुवाद करने वालों में स्वर्गवासी लाला सीताराम खास आदमी हैं। उन्हों ने 'नागानंद', 'मृच्छ-कटिक', 'मालतीमाधव', 'उत्तररामचरित', 'मालविकाग्निमित्र' आदि कई संस्कृत नाटको के सरस हिंदी अनुवाद किए। पंडित सत्यनारायण कविरत्न ने भी 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव' के अनुवाद किए और लाला सीताराम ने और औरों ने भी शेक्सपियर के कई नाटकों के अनुवाद किए।

अपने समय से और निकट आने पर हम पाते हैं कि हिंदी नाटककारों में सब से अधिक प्रतिष्ठा और नाम बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ने प्राप्त किया। दुःख की बात है कि दो वर्ष होने को आते है इन का स्वर्गवास हो गया। यह कहना अनुचित न होगा कि नाटक के क्षेत्र में हरिश्चंद्र के बाद किसी ने इतना यश नहीं पाया। हिंदी का अपना नाट्यमञ्च न होने के कारण अवश्य इन्हें अपने नाटको को स्टेज की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने का अवसर न मिला। फिर भी इन के नाटक पढ़े-लिखे समाज मे जितना पसंद किए गए, दूसरे के नहीं। इस का प्रमाण एक यही है कि आज मिडिल कक्षा से लेकर एम्० ए० तक करीब-क़रीब सब जगह जहां हिंदी पढ़ाई जाती है इन के नाटक पाठ्य-ग्रंथों में सम्मिलित है। जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने नाटकों की कहानियां बहुधा इतिहास से ली हैं। हमारे देश के प्राचीन इतिहास के, विशेष कर बौद्धकालीन इतिहास के, वह बहुत अच्छे जान-कारों में कहे जाते थे उस काल के चित्र अपने नाटकों में बड़ी से खींच सके हैं

'जनमेजय का नागयज्ञ', 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' उन के अधिक प्रसिद्ध नाटकों में हैं।

पंडित बदरीनाथ भट्ट जी भी सफल-नाटककारों में थे। 'तुलसीदास', 'बेनचरित्र' 'दुर्गावती' उन के प्रसिद्ध नाटक है। आज कल के और नाटककारो में पंडित गोविंदवल्लभ पंत को ऊँचा आसन प्राप्त है। इन का वरमाला नाटक जो कि एक पौराणिक उपाख्यान है, बहुत प्रसिद्ध हुआ है। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' जो महाभारत की कथा का एक अंश है प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। पंडित बेचन शर्मा उग्र का 'महात्मा ईसा' नाटक और श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक भी प्रसिद्ध हो चुके है। सेठ गोविंददास के प्रयत्न भी इस दिशा में प्रशंसनीय हैं। प्रेमचंद के 'कर्बला' तथा 'संग्राम' नाटको में, श्री मैथिलीशरण गुप्त के 'चंद्रहास' और 'तिलोत्तमा' में, श्री राम-नरेश त्रिपाठी के 'जयंत' और 'प्रेमलोक' में, और श्री सुमित्रानंदन पंत की 'ज्योत्स्ना' मे हम देखते हैं कि अन्य क्षेत्रों में प्रतिष्ठा लाभ करने वाले लेखकों और कवियों ने भी नाट्य-रचना की ओर ध्यान दिया है। विशेष-रूप से प्रहसन लिखने वालो में हम श्री जी० पी० श्रीवास्तव को नही भूल सकते। अपने समय के नाटककारों से किंचित् हट कर पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपना मार्ग बनाया है। इन्हों ने इब्सन के ढंग के समस्या-नाटकों के प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'राजयोग' और 'सिंदूर की होली' इन के नाटक अच्छे बन पड़े हैं। नए-नए नाटककार भी उत्पन्न हो रहे हैं। इन में श्री उदयशंकर भट्ट, श्री सत्येंद्र, और श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क' के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। कुछ दिनों से एकाकी नाटकों की माँग हो चली है और ऐसे नाटक लिखे भी जाने लगे हैं। एकाकी नाटको के लिखने की ओर श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, श्री रामकुमार वर्मा और श्री उपेंद्रनाथ अश्क आदि ने विशेष ध्यान दिया है।

(५)

हमारे यहां नाट्यरचना का काम बंद तो नहीं है, लेकिन जैसा बताया गया है, नाटककारों और नाट्यमंच के बीच कोई सहयोग स्थापित नहीं हुआ है। इस कारण हमारे नाटक बहुधा पढ़ने की चीज़ बन कर रह जाते है। इस संबंध में अंतिम निवेदन करने के पूर्व अति संक्षेप में यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि हिंदी नाट्यमंच का विकास-क्रम आधुनिक युग में कैसा रहा है और यह विकास किन कारणों से रुक गया है।

इतना तो स्पष्ट है कि हमारे आधुनिक नाट्यमंच ने—जैसा भी वह है—पाश्चात्य के संपर्क से बहुत कुछ ग्रहण किया है। जब दो सभ्यताओं का संपर्क होता है तब स्वभावतया एक-दूसरे से यह कुछ न कुछ ग्रहण करती है। इन दो सभ्यताओं मे जब एक उन्नति की ओर अभिमुख हो और दूसरी ह्रास की ओर उन्मुख, तब यह भी स्वाभाविक है कि प्रबल सभ्यता ही दूसरी सभ्यता पर अपना विशेष प्रभाव डाले। भारतीय रहन-सहन, आमोद-प्रमोद पर अंग्रेजों का बड़ा प्रभाव पडा है, और उन्ही के द्वारा हमारा नाट्यमच भी बहुत अंशों में प्रभावित हुआ है। हिंदी नाट्यमच पर पाश्चात्य का जो प्रभाव पडा वह या तो बंगाल होकर हम तक पहुँचा या बंबई होकर। बंगाल और बंबई के नाट्यमंच किस तरह अंग्रेजी ढंगों से प्रभावित हुए, इस की कहानी रोचक है, और यदि इस के संबंध मे कुछ शब्द यहां पर कहे जायें तो कदाचित् अप्रासंगिक न हो।

सन् १७५७ के पलासी के युद्ध के पहले ही कलकत्ते में एक अंग्रेज़ी थियेटर की स्थापना हो चुकी थी। सन् १७७५–७६ में उस के लिए चंदे से नया भवन बना, चदा देने वालों में स्वयं वारेन हेस्टिंग्स भी थे। यह मंच व्यापारिक न होकर केवल शौकीन खिलाड़ियों के लिए था। अंग्रेज़ों की जो छोटी-सी बस्ती उस समय कलकत्ते में थी उसी के मनोरंजन के लिए इस में प्रबंध था। लेकिन कभी-कभी साहबो के कृपापात्र धनीमानी बगाली भी इस में दर्शकों के रूप में आमंत्रित होते थे। इस लिए उन पर पाश्चात्य मच का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, विशेष कर ऐसी अवस्था में जब हिंदुस्तान की अपनी नाट्य-परंपरा क्षीण हो रही थी। सन् १७९५ मे हेरासिम लेबेडेफ़ नाम के एक रूसी साहसी ने डोमटोला (जो अब एज़रा स्ट्रीट है) में एक भारतीय मंच स्थापित किया जिस मे सन् १७९५ तथा १७९६ में दो अंग्रेज़ी नाटकों के बंगाली अनुवाद खेले गए। इस मे बगाली अभिनेताओं और अभिनेत्रियों ने पार्ट लिया और इन अभिनयों ने दर्शकों में बडी दिलचस्पी पैदा की। यह दिलचस्पी बढ़ती रही और आगे चल कर हम पाते हैं कि सन् १८२५ और १८८५ के बीच डा० एच्० एच्० विल्सन जैसे विद्वान और हिंदू कालिज के कप्तान रिचर्डसन जैसे शिक्षक शौक़ीन खिलाड़ियों के रूप मे निजी मंचों पर काम करते थे। अमीर बंगाली इन अभिनयों की नूतनता से आकर्षित होकर इन की नक़ल में लगे। इस समय का मंच इंग्लिस्तान के समकालीन मंच से प्रभावित था और इस समय इंग्लिस्तान म मच पर आमोद-प्रमोद की सामग्री प्रस्तुत करन का अधिक प्रयत्न होता था वास्तविक

नाटक का रस लेने का कम। परिणाम-स्वरूप तड़क-भड़क के परदों के साथ यहां भी उन्नीसवीं सदी के मध्य के प्रारंभिक भारतीय नाट्यमंच पर मूक अभिनय, संगीत, नृत्य कोरस गानों, तलवार के करतब, और अन्य बाँकपन की चीजों के प्रदर्शन का प्रबंध रहा। क्रमशः शोकीन खिलाड़ियों के मंच व्यापारिक मंचों में परिणत होने लगे और अमीर जमीदारों ने इस में रुपया लगाना आरंभ किया। सन् १८३५ में ही लगभग दो लाख के खर्चे से 'विद्यासुंदर' नाम का नाटक खेला गया था। साथ ही साथ अंग्रेजी शिक्षा पाने वाले युवक कालिजों में अंग्रेजी शिक्षकों के निरीक्षण में अंग्रेजी के नाटकों के और संस्कृत नाटकों के अंग्रेजी अनुवादों के अभिनय करते रहे। सन् १८५७ बंगाली नाट्यमंच के इतिहास में एक प्रमुख वर्ष है। इस वर्ष बंगाल में 'कुलीनकुलसर्वस्व' नाम का पहला मौलिक बंगाली नाटक इस नई व्यवस्था के साथ खेला गया और आगे के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। इस सूत्र को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। इतना कहना पर्याप्त होगा कि सन् १८७२ में गिरीशचंद्र घोष ने 'नेशनल थियेटर' की स्थापना की, और नवीन नाट्यमंच को और भी प्रतिष्ठित किया। अंत में बंगाली नाट्यमंच में नई जान डालने वालों में श्री द्विजेंद्रलाल राय थे, जिन से हिंदी वाले अच्छी तरह परिचित हैं। रवींद्रनाथ ठाकुर के लाक्षणिक नाटक भी सफलता से वहां खेले गए हैं।

जो प्रभाव हिंदी नाट्यमंच ने बंगाली नाट्यमंच से ग्रहण किया वह अधिकांश पुस्तकों द्वारा, और कुछ साक्षात् संपर्क द्वारा भी था। परंतु साक्षात् संपर्क द्वारा जो प्रभाव हिंदी नाट्यमंच ने बंबई की पारसी कंपनियो द्वारा ग्रहण किया वह कहीं प्रबल था, यद्यपि मेरी दृष्टि में वह कहीं अधिक हानिकर भी रहा है।

बंबई में कलकत्ते जैसी भाषा की एकता नहीं थी। आरंभ से ही बंबई अनेक भाषाओं का केंद्र रहा है। शुद्ध गुजराती, पारसी गुजराती, मराठी, उर्दू या हिंदुस्तानी इन भिन्न भाषाओं के बोलने वाले वहां सदा से बड़ी संख्या में है। इस लिए जो पाश्चात्य प्रभाव वहां भिन्न भाषा-भाषियों ने ग्रहण किए वह किंचित् एक-दूसरे से पृथक् रूप में थे। इस बात को छोड़ दिया जाय तो हम अंग्रेजी नाट्यमंच के प्रभाव का इतिहास बंबई में बहुत कुछ वैसा ही पावेंगे जैसा कलकत्ते में। बंबई का पहला अंग्रेज़ी थियेटर सरकार द्वारा दी गई भूमि पर १७७० में स्थापित हुआ। यह अंग्रेज़ी नाट्यमंच भी तत्कालीन इंग्लिस्तान के नाट्यमंच से प्रभावित था। यह भी यूरोपियन शौक़ीन खिलाड़ियों के लिए

था, लेकिन बंबई में यह शीघ्र ही व्यापारिक बन गया। बाद में विद्यार्थियो आदि द्वारा भी यह काम उठाया गया। सन् १८४२ मे एक निजी थियेटर जगन्नाथ शंकर सेठ ने बनवाया। इसे किराए पर यूरोपियन तथा भारतीय खिलाड़ी समान-रूप से प्राप्त कर सकते थे। इस का प्रभाव यह हुआ कि भारतीय मंच यूरोपीय मंच से अधिकाधिक बातें ग्रहण करता रहा। साँगली के शासक के संरक्षण में विष्णुपथ भावे ने कर्नाटकी अभिनेताओ के ढग के मिश्रण के साथ अपना अलग मराठी मंच स्थापित किया। भावे के मंच ने अन्य मचो पर भी प्रभाव डाला। लेकिन हमारा विशेष ध्यान तो पारसी रंगमंच पर जाना चाहिए जिस ने कि अपनी घुमक्कड़ कंपनियो द्वारा समस्त भारत पर अपना गहरा असर डाला।

पारसियो में पाश्चात्य आदर्शों और तरीक़ों के ग्रहण करने की एक विशेषता रही है। सन् १८५१ मे उन्हों ने 'अमेच्यौर' या शौकीन खिलाड़ियों की एक मडली बनाई जो कि शनिवार-शनिवार अपने प्रदर्शन करती रही। पारसी अपनी व्यापारी बुद्धि के लिए भी प्रख्यात है। उन्हों ने देखा कि इस काम में नफ़ा भी अच्छा हो सकता है। अतएव व्यापारिक-रूप में भी उन्हों ने थियेटरों की स्थापना की। इस में उन्हों ने बहुत धन भी लगाया। प्रहसन, गानों, इतर आकर्षणों और तड़क-भड़क द्वारा दर्शकों के आकर्षित करने के प्रोग्राम ने उन मे ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी कि कला के सिद्धांतों को उन्हो ने त्याग दिया। उन के पक्ष में कदाचित् एक बात कही जा सकती है। वह यह कि उन के दर्शक गुजराती, उर्दू, हिंदी तथा अन्य भाषाए बोलने वाले होते अतएव भाषा में साहित्यिकता उत्पन्न कर सकना उन के वश की बात न थी। परंतु इस ओर उन्हों ने प्रयत्न भी नही किया। केवल व्यापारिक बुद्धि और एक निम्न स्तर के मनोरंजन के उपस्थित करने में उन का सारा प्रयास लगता रहा। पैसा ख़र्च करने में वह पिछड़े नहीं थे। उन की आमदनी भी इतनी होती थी कि पैसा व्यय करना उन्हे अखर न सकता था। कथाओं के लिए भी उन्हों ने भिन्न-भिन्न आधार ग्रहण किए—फ़ारसी आख्यान, संस्कृत की पौराणिक कथाएं, अंग्रेजी कहानियां। प्रहसन, करतबो, कोरस गानों, नृत्यों आदि जिन-जिन चीजो को संभव हुआ उन्हों ने मनोरंजन उत्पन्न करने के काम में लगाया। स्त्रियो को स्टेज पर आकर्षित किया। परदों और सीनों के सजाने में बहुत धन लगाया। लेकिन वास्तविक नाटक की कला के विकास में उन्हों ने चित्त न दिया। यही कंपनियां देश भर में घूमीं, उन की देखा-देखी अन्य लोगों ने भी कंपनियां बनाईं लेकिन सुरुचि को उन्हों ने न ग्रहण किया

जिन लोगों से उन्हों ने प्रेरणा प्राप्त की थी वह कितना आगे बढ़ गए इस पर उन्हों ने ध्यान न दिया। चमक-दमक की झूठी गुत्थियों में वह पड़ते गए — नाटक का सब से प्रधान कर्तव्य उचित रस का उद्रेक करना है, यह बात वह भूल गए।

हमारे साहित्यिक भी कुछ अंशों में इस पारसी नाटचमंच से प्रभावित हुए। परंतु शीघ्र ही उन्हों ने देखा कि उन की इस में गुज़र नहीं। उन की रचनाओं में कुछ परिवर्तन उपस्थित हुए बिना न रहा। लेकिन आत्मसम्मान रखने वाले साहित्यिकों ने इस स्टेज को नमस्कार किया। उन्हों ने विचार किया कि हम इस से अलग रह कर ही अपनी कला का विकास करेंगे। लेकिन नाट्यरचना का उद्देश्य ही प्रदर्शन है। नाटचकार नाटचमच की रूप-रेखा विचार में रख कर ही अपनी रचना कर सकता है, अन्यथा नहीं। परिणाम यह हुआ कि हमारे बहुत से नाटक—जैसा उन्हें न होना चाहिए था—केवल पढ़ने की चीज़ बन कर रह गए हैं।

(६)

अपने नाट्यमंच के सुधार के प्रश्न पर इस समय पूर्ण-रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारा रंगमंच तभी सफल और उन्नतिशील हो सकता है जब कि लेखक या नाटककार और प्रबंधक तथा अभिनेताओं के बीच विशेष सहकार हो। नाटको की रचना और उन का सजाना दो भिन्न व्यवसाय हैं। परंतु यह दोनों घनिष्ट रूप से सबद्ध है और इन में से कोई भी दूसरे की उपेक्षा नहीं कर सकता। जिस प्रकार यह आवश्यक है कि अभिनय नाटक-रचयिता के आशय तथा विचारों के तद्रूप हो। उसी प्रकार यह भी परम आवश्यक है कि रचयिता नाटचमंच की आवश्यकताओं से भली-भाँति परिचित हो। नाटक के रचयिता और उस के अभिनय के प्रबंधक के बीच का सहयोग नाटक की सफलता के लिए अनिवार्य है। जब हम अपने यहां के नाटककारों पर दृष्टि डालते है तो हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम उन मे आधुनिक रंगमंच की आवश्यकताओं के ज्ञान का परिचय नही पाते। पश्चिम में रंगमंच बड़ी उन्नत दशा मे है। रंगमंच की आधुनिक उन्नति किसी देशविशेष की वस्तु नहीं हो सकती। इस वैज्ञानिक युग मे उस उन्नति से सभी को लाभ उठाना चाहिए।

रंगमंच की आवश्यकताओं का ज्ञान न होने के कारण हमारे लेखकों की अधिकाश रचनाएं साहित्य में भले ही आदरणीय हों लेकिन रंगमंच के लिए अनुपयुक्त हुई

है। हमारे स्वर्गीय मित्र प्रेमचंद जी ने अपने 'कर्बला' नामक नाटक की भूमिका में नाटकों का वर्गीकरण 'दृश्य' और 'पाठ्य' नाटकों में किया है। हिंदी पाठकों के लिए यह वर्गीकरण नया है। मैं ने इस नाटक की आलोचना करते हुए इस वर्गीकरण का 'माधुरी' में उसी समय प्रतिवाद किया था। उस प्रतिवाद को दुहराने की आवश्यकता है। नाटक दृश्य काव्य है। वह अभिनय की दृष्टि से सफल तथा असफल हो सकता है। असफल नाटकों को 'पाठ्य' नाटकों का प्रतिष्ठित नाम देने का मैं पक्षपाती नहीं हूं। विशेष कर यह ध्यान रखते हुए कि यदि ऐसा किया जायगा तो लेखक-गण नाट्यमंच की आवश्यकताओं का तिरस्कार करने के लिए अपने को और भी स्वतंत्र समझेंगे। कहने का तात्पर्य यह कि नाटककारों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ वह लिख रहे हैं वह पाठकों के पढ़ने के उद्देश्य से नहीं, वरन् इस उद्देश्य से कि उस का अभिनय किया जा सके। इस लिए एक सुरुचिपूर्ण, परिमार्जित, उन्नतिशील रंगमंच की आवश्यकता है—जिस के अभाव में नाटककारों को कल्पना का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। फिर भी नाटकों का वर्गीकरण 'दृश्य' और 'पाठ्य' वर्गों में करना समीचीन नहीं।

नाटकों को अभिनय के उद्देश्य से ही लिखे जाना चाहिए, इस विचार का एक दूसरे ही ढंग से विरोध स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' ने किया है। 'प्रसाद' जी के जीवन-काल मे ही ऐसी आलोचनाएं उन के नाटकों के संबंध मे निकली थी कि वे रंगमंच की आवश्यकताओं की पूर्ति नही करते। मेरे अनुरोध से उन्हों ने 'हिंदुस्तानी' में 'रंगमच' शीर्षक एक लेख लिखा था। खेद है कि यह लेख उन के जीवन-काल में प्रकाशित उन का अंतिम लेख था। इस लेख में उन्हो ने रंगमंच के विविध पहलुओं पर विद्वत्तापूर्ण विचार किया है। जहां तक नाटकों के रंगमंच की आवश्यकताओं की दृष्टि से लिखे जाने का प्रश्न है, वह लिखते हैं—"रंगमंच की वाध्यबाधकता का जब हम विचार करते हैं तो उस के इतिहास से यह प्रकट होता है कि काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नही हुए। अर्थात् रंगमंचों को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा और यह प्रत्येक काल में माना जायगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए ही रंगमंच होते हैं। काव्यों की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है।" दूसरी जगह वह फिर लिखते हैं—"रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमच के लिए लिखे जायें प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक

के लिए रंगमंच हों, जो व्यावहारिक है।"

बहुत विनय-पूर्वक इस बात के कहने की आवश्यकता है कि जिस आसन से 'प्रसाद जी बोल रहे हैं उस से बहुत नीचे उतर कर एक आधुनिक व्यवहार-कुशल नाट्यकार को बोलना पड़ेगा। यदि यह बात सच है कि नाटक की सफलता नाट्यमंच के कुशल प्रबंध पर बहुत कुछ निर्भर है तो यह भी अनिवार्य है कि नाटककार रंगमंच के नियमों और आवश्यकताओं की अवहेलना नहीं कर सकता। नाटककार और रंगमंच के प्रबंधक के बीच सहयोग का नाता होना चाहिए। एक को दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की आवश्यकता है। यदि काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुआ तो रंगमंच ने नाट्य-रचना पर भी निश्चय ही प्रभाव डाला। आज कल तो यह असंभव है कि बिना इस प्रकार के पारस्परिक सहयोग के कोई भी नाटकीय अभिनय सफल हो सके।

अंत में केवल यह कहना है कि हमारे नाटककारों के लिए एक बड़ी असुविधा यह रही है कि उन के सामने कोई सचेष्ट, जीवित, उन्नतिशील रंगमंच ही नहीं रहा है जिस की आवश्यकताओं का वह ध्यान रखते। जो रंगमंच उन के सामने रहा है—अर्थात् पारसी रंगमंच—उस की अनुपयुक्तता का उन्हों ने ठीक ही अनुभव किया। उस से किसी भी साहित्यिक का संतोष न हो सकता और उस से सहयोग दे सकना संभव न था। इस लिए आवश्यकता है एक ऐसे क्रियाशील रंगमंच की, जो हमारे नाटककारों का और भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करे, जो संसार के उन्नतिशील रंगमंचों का अध्ययन करे, भारत की विशेष संस्कृति और परिस्थिति को देखते हुए यदि नए साहसी प्रयोग आवश्यक हों तो उन से न डरे, और ऐसे विकास की ओर अग्रसर हो जिस से समाज का हित तथा कल्याण हो। यह बात सही है कि आधुनिक सिनेमा, टाकीज़, रेडिओ आदि ने नाट्यमंच पर बड़ा गहरा आघात किया है। लेकिन नाटकों का क्षेत्र इन से अलग और स्वतंत्र है, और यदि उचित रूप से ध्यान दिया जाय तो वह अब भी समाज के मनोरंजन का ही साधन नहीं हो सकते, वरन् उस की संस्कृति और सुधार के केंद्र हो सकते हैं। हां, ऐसे रंगमंच का विकास हम व्यवसायी कंपनियों पर नहीं छोड़ सकते। इस कार्य को तो साहित्यिकों को ही उठाना पड़ेगा।

स्फुट प्रसंग

राजा शिवप्रसाद की वंशावली

सर जॉर्ज ग्रियर्सन[1] ने बनारस के राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद का जीवन-वृत्त देते हुए उन के पूर्वजों के विषय में भी कुछ कहा है। उन्हों ने लिखा है कि ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रायः अंत में रणथंभोर में परमार वंशी धांधल[2] नामक एक व्यक्ति हुआ। आगे चल कर उन्हों ने धांधल की २६वीं पीढ़ी मे राय अमरदत्त के एक ही लड़का होना कहा है, और जगत सेठ फ़तहचंद को अपने पिता का इकलौता लड़का बतलाया है। ग्रियर्सन द्वारा दी गई उपर्युक्त तिथि और बाद के दोनों कथन भ्रांति-पूर्ण हैं, जैसा कि स्वयं राजा साहब द्वारा लिखे गए अपने वंश-वर्णन से ज्ञात होगा[3]।

कुछ बयान अपने ख़ानदान का.......

पुराने काग़ज़ों से मालूम होता है कि जयपुर की अमलदारी में रणथंभोर के बीच, जो एक बड़ा मशहूर क़िला है, संवत् १०४५ के दर्मियान परमार वंशी शाखेश्वरी

---

[1] 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर अव् हिंदुस्तान' (कलकत्ता, १८८९), पृ० १४८-१४९

[2] बाबू श्यामसुंदर दास ने 'हिंदी-कोविद-रत्नमाला', भाग १, में 'धांधल' के स्थान पर 'धंधार' लिखा है। स्वयं राजा शिवप्रसाद के अनुसार यह शब्द 'धांधल' है।

[3] संवत् १८३८ (सन् १७८१) चैत्र शुक्ल ९ पुष्यनक्षत्र में, मंगलवार को, राजा डालचंद की आज्ञानुसार कवि रायचंद ने 'कल्पभाष्य' या 'भाषा-कल्पसूत्र' नामक ग्रंथ बनारस में लिखा था। सन् १८८७ ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, से इस ग्रंथ की द्वितीयावृत्ति प्रकाशित कराते समय राजा शिवप्रसाद ने प्रारंभ में अपने वंश का परिचय दिया है। ग्रियर्सन महोदय ने लिखा है कि राजा साहब का जीवन-वृत्त लोकनाथ घोष कृत 'माडर्न हिस्ट्री अव् दि इंडियन चीफ़्स, राजाज़, ज़मींदार्स' तथा स्वयं राजा साहब की दी हुई सामग्री के आधार पर लिखा गया है। राजा साहब अपना उपर्युक्त वंश-वर्णन १८८९ ई० से दो वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुके थे। फिर ग्रियर्सन से यह भूल क्यों हुई? चाहे स्वयं उन से भूल हुई हो, या राजा साहब की दी हुई सामग्री में ही अशुद्धियां रह गई हों।

श्रेष्ठि धांधल हुआ। उस के कोई लड़का न था जैन धर्म पालक पूज्य श्री जयप्रभु सूरि गुरु के प्रतिबोध से अछुप्ता देवी की आराधना की। देवी ने स्वप्न में वर दिया। देवी के हस्तपुट में यत्रपुष्प और गोखरू था। इसी से जब लड़का हुआ उस का नाम गोखरू रक्खा, और उसी से गोखरू गोत्र चला। संवत् १०९१ में देहरा बनाया। जयप्रभु सूरि ने प्रतिष्ठा कराई। श्री शत्रुंजय का संघ निकला। उस का लड़का धर्मण, उस का कर्मण, उस का पुहपा, उस का भग्गा, उस का अक्का, उस का तोला, उस का मेहका, उस का हीरा, उस का मेघा, उस का भाणा। जब संवत् १३३५ में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने रणथंभौर का क़िला तोड़ा, भाणा अपने लड़के नायक समेत बादशाह के साथ चंपानेर चला आया। नायक का बेटा खीमा, उस का जयवंत, उस का वीरा, उस का गोरा, संवत् १४८५ में अहमदाबाद में आ बसा। उस का बेटा अभयड़, उस का बाला, उस का बस्ता, उस का बहला, उस का शिवसी, उस का कर्मसी, उस का रांका, उस का श्रीवंत, उस का पदमसी। संवत् १४८४ (?) में पदमसी साह खंभात में आ बसा। वहां उस ने श्री कल्याण सागर सूरि से श्री पार्श्वनाथ स्वामी का स्फटिकमय बिंब प्रतिष्ठित कराया। पाँच सोने की कल्पसूत्र और चार मोती के पूठे भेंट किए। श्री शत्रुंजय का संघ निकाला। पुस्तक भंडार भरा। उस के दो बेटे थे। श्रीपति और अमरदत्त। अमरदत्त ने शाहजहां बादशाह को एक ऐसा हीरा नज़र दिया कि बादशाह ने प्रसन्न होकर राइ की पदवी बख्शी और दिल्ली ले गया। उस के दो लड़के हुए। राइ उदयचंद और केसरी सिंह। राइ उदयचंद के चार लड़के राइ जगत मित्रसेन, सभाचंद, फ़तहचंद, और रायसिंह। फ़तहचंद ने क़हतसाली में ग़ल्ला सस्ता करने के कारण मुहम्मदशाह से जगत सेठ की पदवी पाई। लेकिन अपनी बहू बेटे समेत मुर्शिदाबाद में अपने मामू सेठ माणिकचंद नागौर वाले हीरानंद साह के बेटे को गोद जा बैठे। हीरानंद साह की बेटी धनबाई राइ उदयचंद को ब्याही थी। राइ सभाचंद के राइ अमरचंद और राइ अमरचंद के राइ मुहकमसिंह और राजा डालचंद। नादिरशाही में घर के दो आदमी क़त्ल होने के कारण राइ मुहकम सिंह और राजा डालचंद दिल्ली छोड़ कर मुर्शिदाबाद आ बसे। निदान शाहजहां से लेकर मुहम्मदशाह तक बल्कि नाम को शाह आलम और नव्वाब वज़ीर आसिफ़ुद्दौला तक बादशाही जवाहिरख़ाने की मुक़ीमी तो ख़ानदानी उहदा रहा, लेकिन और भी बहुत से काम भाई बंद भतीजों के सुपुर्द थे कोई था कोई सूबों की साइर

का इजारदार था। कोठियां जाबजा जारी थीं। ख़ज़ाने हाथ में थे। चैन से गुजरती थी। धन दौलत रखने की मानों जगह बाक़ी न रही थी। इस अर्से में बंगाले के सूबेदार नव्वाब नाज़िम क़ासिम अली खां ने जुल्म पर कमर बांधी। रय्यत तंग आई। जनाने में हरदम ख़ौफ़ लगा रहता था कि नव्वाब बेइज्ज़त न कर डाले। नाचार अंगरेज़ों से जा मिले रुपये की मदद थी, नव्वाब पर चढ़ा लाये, नव्वाब को ख़बर हो गई। राइ मुहकम सिंह का परलोक हो चुका था। राजा डालचंद और जगत सेठ फ़तहचंद के पोते जगत सेठ महताब राय को पकड़ मँगाया और क़ैद किया। घर में सलाह हुई कि राजा डालचंद अपने बाप के अकेले हैं और जगत सेठ फ़तहचंद की औलाद बहुत। पस पहरेवालों को मिला कर राजा डालचंद के बदले जगत सेठ महताब राय के चचेरे भाई सरूपचंद तो क़ैदख़ाने में चले आये (क्या समय था!) और राजा डालचंद वहां से भाग कर बनारस में, नव्वाब वज़ीर सूबेदार अवध की हिमायत में आ बसे। क़ासिम अली खां इतना ही जानता था कि दो भाई जगत-सेठ क़ैद हैं, जब भागा तो दोनों को ले लिया। मुंगेर पहुँच कर तीरों से मार डाला। चुन्नी नाम एक ख़िदमतगार साथ था। जुदा होने को बहुत समझाया न माना। जब नव्वाब तीर मारता सामने आ खड़ा होता था, मानों दोनों भाइयों की ढाल बनता था। जब चुन्नी मर कर गिर लिया है तब दोनों भाइयों के तीर लगा है (कैसे नौकर थे!)। हमारी दादी कहती थीं कि उस काल जनाने में सब लोग बारूद बिछा कर बैठे थे कि जो नवाब के आदमी बेइज्ज़त करने को आवें आग लगा कर उड़ जावें। परंतु भगवान की कृपा से जल्द ही शहर में अंगरेज़ों की डौंड़ी पिटी। लोगों के जी में जी आया। सूखा धान फिर लहलहाया। यह राजा डालचंद हमारे घराने के मानो भूषण हो गये। अजब पुरुष थे। तत्वज्ञान और योगाभ्यास के प्रभाव से कहते हैं कि उन के पाँव के नीचे चींटी नहीं मरती थी। खेचरी सिद्ध हुई थी, जिह्वा भृकुटी के मध्य तक पहुँचती थी। आसनादिक और धोती नेती बज्रोली की क्या बात है सब सिद्ध थी, और खेचरी ही मुद्रा करके देह त्याग किया। संस्कृत पारसी अरबी बँगला ब्रजभाषा अच्छी तरह जानते थे। जोतिष और वैद्यक में भी निपुण थे। बहुतेरे ग्रंथ नये रचे। बहुतेरे तर्जुमा अर्थात् भाषांतर हुए। हाथी घोड़े की सवारी, लकड़ी, बांक, पटा, तीरंदाज़ी, गाना, बजाना, तैरना, सब में पूरे थे। घड़ीसाज़ की क्रिया, बढ़ई की, सुनार की, लुहार की, जड़िये पटुए की, बेगड़ की, दर्ज़ी की, जर्दोज़ की, मुलम्मेसाज़ की, मुसव्विर की, सारी क्रिया अपने हाथ से कर सकते थे,

और फिर वैसे ही उदार और शूर भी थे। जिस समय राजा चेतसिंह और वारन हस्टिंग्ज़ का बखेड़ा हुआ नव्वाब इबराहीम अली खां ने कहला भेजा कि हम वारन् हस्टिंग्ज़् की रिफ़ाक़त के बाइस नाहक़ मारे जाते हैं। उसी दम जनानी डोली भेज कर चुपचाप बुलवा लिया, और अपने मकान में छुपा रखा। ऐसे समय में कौन किस के साथ दोस्ती निभाता है, और साहस कर के अपनी जान खतरे में डालता है। उन के बेटे राजा उत्तमचंद ने, जिन्हों ने लखनऊ वाले राजा बछराज की बेटी ब्याही थी, पुत्रहीन होने के कारण, अपनी बहिन बीबी रत्नकुंअर' के बेटे बाबू गोपीचंद को गोद लिया, और उन्हीं के बेटे राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद......

—लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

---

[1]राजा डालचंद राइ अमरचंद के द्वितीय पुत्र थे। नवाब नाज़िम क़ासिम अली खां के यहां गिरफ़्तार होने से पहले ही इन के बड़े भाई राइ मुहकम सिंह का देहांत हो चुका था। ईश्वर की कृपा से राजा डालचंद अपने संबंधियों के चातुर्य से जेल से भाग कर अवध के नवाब वज़ीर की शरण में बनारस आ बसे और शांति-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे। वे बहुकलाविद् और पूरे पंडित थे। उन के पुत्र राजा उत्तमचंद के कोई संतान नहीं थीं। इस लिए उन्हों ने अपने भांजे बाबू गोपीचंद को गोद ले लिया। राजा शिवप्रसाद इन्हीं गोपीचंद के पुत्र थे। बाबू गोपीचंद की माता बीबी रत्नकुँवरि अपने काल की एक विदुषी महिला थीं। इन का 'प्रेमरत्न' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। राजा डालचंद शिवप्रसाद सितारे-हिंद के प्रपितामह थे, न कि पितामह, जैसा 'हिंदी-कोविद-रत्नमाला', भाग १, में लिखा है। राजा शिवप्रसाद की पत्नी का नाम बीबी गोविंद कुँवरि था, और इन के दो पुत्र थे, कुँवर सच्चितप्रसाद और कुँवर आनंदप्रसाद। अपनी संतान के लाभार्थ ही राजा शिवप्रसाद ने कवि रायचंद द्वारा लिखित 'कल्पभाष्य' प्रकाशित कराया था।

हिंदुस्तानी

हिंदुस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका

१९३९

हिंदुस्तानी एकेडेमी

संयुक्त प्रांत, इलाहाबाद

वार्षिक मूल्य चार रुपए

लेख-सूची

हिंदुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

(१) मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—लेखक, मिस्टर अब्दुल्ला यसुफ अली, एम्० ए०, एल्-एल्० एम्०। मूल्य १॥)

(२) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—लेखक, रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा। सचित्र। मूल्य ३)

(३) कवि-रहस्य—लेखक, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा। मूल्य १॥)

(४) अरब और भारत के संबंध—लेखक, मौलाना सैयद सुलैमान साहब नदवी। अनुवादक, बाबू रामचंद्र वर्मा। मूल्य ४)

(५) हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—लेखक, डाक्टर बेनीप्रसाद, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० एस्-सी० (लंदन)। मूल्य ६)

(६) जंतु-जगत—लेखक, बाबू ब्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र। मूल्य ६॥)

(७) गोस्वामी तुलसीदास—लेखक, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास और डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल। सचित्र मूल्य ३)

(८) सतसई-सप्तक—संग्रहकर्ता, रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास। मूल्य ६)

(९) चर्म बनाने के सिद्धांत—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस्-सी०। मूल्य ३)

(१०) हिंदी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट—संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य १॥)

(११) सौर-परिवार—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, एफ्० आर० ए० एस्०। सचित्र। मूल्य १२)

(१२) अयोध्या का इतिहास—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। सचित्र। मूल्य ३)

(१३) घाघ और भड्डरी—संपादक, पंडित रामनरेश त्रिपाठी। मूल्य ३)

(१४) वेलि क्रिसन रुकमणी री—संपादक, ठाकुर रामसिंह, एम्० ए० और श्री सूर्यकरण पारीक, एम० ए० मूल्य ६)

(१५) चंद्रगुप्त विक्रमादित्य—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद मेहता, एम्० ए० सचित्र। मूल्य ३)

(१६) भोजराज—लेखक, श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ। मूल्य कपड़े की जिल्द ३॥); सादी जिल्द ३)

(१७) हिंदी, उर्दू या हिंदुस्तानी—लेखक, श्रीयुत पंडित पद्मसिंह शर्मा। मूल्य कपड़े की जिल्द १॥); सादी जिल्द १)

(१८) नातन—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक—मिर्ज़ा अबुलफ़ज़्ल। मूल्य १)

(१९) हिंदी भाषा का इतिहास (दूसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य कपड़े की जिल्द ४); सादी जिल्द ३॥)

(२०) औद्योगिक तथा व्यापारिक भूगोल—लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना। मूल्य कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२१) ग्रामीय अर्थशास्त्र—लेखक, श्रीयुत ब्रजगोपाल भटनागर, एम्० ए०। मूल्य कपड़े की जिल्द ४॥); सादी जिल्द ४)

(२२-२३) भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ भाग)—लेखक, श्रीयुत जयचंद्र विद्यालंकार। मूल्य प्रत्येक भाग का कपड़े की जिल्द ५॥); सादी जिल्द ५)

(२४) प्रेम-दीपिका—महात्मा अक्षर अनन्य-कृत। संपादक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०। मूल्य ॥)

(२५) संत तुकाराम—लेखक, डाक्टर हरिरामचंद्र दिवेकर, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस), साहित्याचार्य। मूल्य कपड़े की जिल्द २); सादी जिल्द १॥)

(२६) विद्यापति ठाकुर—लेखक, डाक्टर उमेश मिश्र, एम्० ए०, डी० लिट्०। मूल्य १॥)

(२७) राजस्व—लेखक, श्री भगवानदास केला। मूल्य १)

(२८) मिना—लेसिंग के जरमन नाटक का अनुवाद। अनुवादक, डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम्० ए०, डी० फ़िल्०। मूल्य १)

(२९) प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्री शालिग्राम श्रीवास्तव। मूल्य कपड़े की जिल्द ४), सादी जिल्द ३॥)

(३०) भारतेंदु हरिश्चंद्र—लेखक, श्री ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी० मूल्य ५)

(३१-३२) हिंदी कवि और काव्य (२ भाग)—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य सादी जिल्द ४॥) ; कपड़े की जिल्द ५)

(३३) रंजीतसिंह—लेखक, प्रोफ़ेसर सीताराम कोहली, एम्० ए०। अनुवादक श्री रामचंद्र टंडन, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य १)

(३४) जीवनवृत्ति-विज्ञान—लेखक, प्रोफ़ेसर महाजोत सहाय। मूल्य १)

(३५) हिंदी के कवि और काव्य—संपादक, श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०, एल्-एल्० बी०। मूल्य प्रथम भाग ४॥); द्वितीय भाग ३॥)

(३६) न्याय—जॉन गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २॥)

(३७) चाँदी की डिबिया—जॉन गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य १॥)

(३८) धोखाधड़ी—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०। मूल्य १॥)

(३९) हड़ताल—जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' नामक नाटक का अनुवाद। अनुवादक, स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद। मूल्य २)

(४०) भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष—मूल-लेखक सर सी० वाई० चिंतामणि। अनुवादक, श्रीयुत केशवदेव शर्मा। मूल्य १)

(४१) हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी, एम० ए०। मूल्य २॥)

(४२) विज्ञान-हस्तामलक—लेखक, स्वर्गीय श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०। मूल्य ६)

(४३) यूरोप की सरकारें—लेखक, श्रीयुत चंद्रभाल जौहरी। मूल्य ३॥)

(४४) हिंदी भाषा और लिपि (तीसरा संस्करण)—लेखक, डाक्टर धीरेंद्र वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस)। मूल्य ॥)

(४५) भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत एन्० सी० मेहता, आई० सी० एस्०। सचित्र। मूल्य सादी जिल्द ६) ; कपड़े की जिल्द ६॥)

हिंदुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, इलाहाबाद

हिंदुस्तानी एकेडेमी के उद्देश्य

हिंदुस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की रक्षा, वृद्धि तथा उन्नति करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह

(क) भिन्न भिन्न विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों पर पुरस्कार देगी।

(ख) पारिश्रमिक दे कर या अन्यथा दूसरी भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित करेगी।

(ग) विश्व-विद्यालयों या अन्य साहित्यिक संस्थाओं को रुपए की सहायता दे कर मौलिक साहित्य या अनुवादों को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेगी।

(घ) प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों को एकेडेमी का फ़ेलो चुनेगी।

(ङ) एकेडेमी के उपकारकों को सम्मानित फ़ेलो चुनेगी।

(च) एक पुस्तकालय की स्थापना और उस का संचालन करेगी।

(छ) प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करेगी।

(ज) ऊपर कहे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिए और जो जो उपाय आवश्यक होंगे उन्हें व्यवहार में लाएगी।